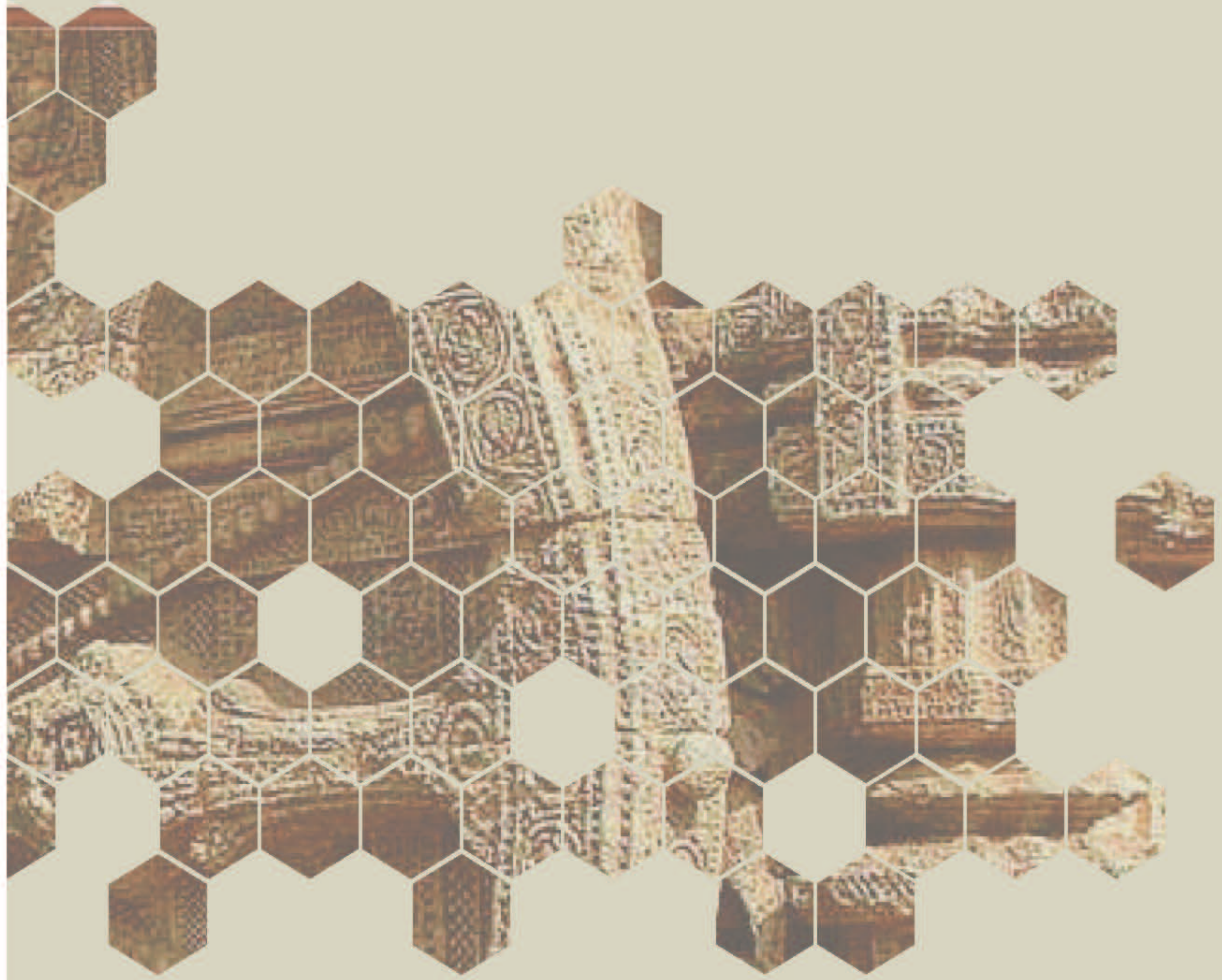

Sociology of tribal society

Institute of Open and Distance Education

Faculty of Arts

Sociology of Tribal Society

4BA5

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

4BA5

Sociology of Tribal Society

4BA1
Sociology of Tribal society

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr Kajal Moitra, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Mahesh Shukla, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Reena Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Ram Ratan sahu, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Anju Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr. Sandhya Jaiswal , Dr. C. V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

---

Course Editor:

Dr Ramsiya Charmkar, Assistant Professor Department of Political Science Humanities and liberal arts, Rabindranath Tagore University, Bhopal, M.P.

Unit Written By:

---

1. Dr. Richa Yadav

(Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Reena Tiwari

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई -1 अनुसूचित जनजाति- अर्थ, विशेषताएँ,
जनांकिकीय परिचय, आदिवासी क्षेत्र एवं जनजातीय महिलाएँ 1
इकाई -2 भारतीय जनजाति भौगोलिक वितरण,
भाषा, वर्गीकरण, पृथक्करण, आत्मसात्मीकरण एवं एकीकरण 88
इकाई -3 जनजातीय महिलाओं की प्रस्थिति-स्थिति,
पंचायती राज व्यवस्था में सहभागिता, अधिकार एवं सामाजिक सुरक्षा 151

ब्लॉक -II

इकाई - 4 सामाजिक-सांस्कृतिक
परिचय, परिवार, विवाह, नेतृत्व एवं सांस्कृतिक विविधताएँ 174
इकाई – 5 नातेदारी, धर्म, विश्वास एवं व्यवहार, टोटम 248
इकाई – 6 जनजातीय अर्थ-व्यवस्था एवं दरिद्रता-जीवन शैली,
नई कृषि नीति, भूमि सुधार, ऋणग्रस्तता 292

ब्लॉक -III

इकाई – 7 सामाजिक गतिशीलता एवं परिवर्तन-
संस्कृतिकरण, परसंस्कृतिग्रहण, संस्कृतिग्रहण एवं नगरीकरण 326
इकाई – 8 औपनिवेशिक शासन का जनजातीय समाज पर प्रभाव 387
इकाई – 9 जनजातीय क्रांति- अर्थ, विशेषताएँ, कारण एवं परिणाम 424

ब्लॉक -IV

इकाई – 10 जनजातियाँ मध्यप्रदेश में परिदृश्य 461
इकाई – 11 जनजातियाँ-छत्तीसगढ़ में परिदृश्य 482
इकाई – 12 जनजातियाँ-गोंड, भील, कोरकू, भारिया एवं मारिया 498

ब्लॉक - I

इकाई 1

अनुसूचित जनजाति- अर्थ, विशेषताएँ, जनांकिकीय परिचय, आदिवासी क्षेत्र एवं जनजातीय महिलाएँ

(SCHEDULED TRIBE- MEANING, CHARACTERISTICS, DEMOGRAPHIC PROFILE, TRIBAL AREA & TRIBAL WOMEN)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 जनजाति से संबंधित शब्दावली

1.4 अनुसूचित जनजाति

1.5 अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक संरक्षण

1.6 प्रशासनिक व्यवस्था

1.7 वन्यजातीय कल्याण संस्थाएँ

1.8 जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति की परिभाषा

1.9 जनांकिकीय परिचय

1.10 मध्य प्रदेश में जनजातियों का वर्गीकरण

1.11 मध्यप्रदेश की जनजातियों का वर्गीकरण

1.12 जनजातियों का सेकेंड्रान जनजातीय क्षेत्र

1.13 सार संक्षेप

1.14 मुख्य शब्द

1.15 स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.16 संदर्भ सूची

1.17 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारत विविधता में एकता का प्रतीक है, जहां विभिन्न सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक समूह सह-अस्तित्व में रहते हैं। इन समूहों में अनुसूचित जनजातियां (एसटी) विशेष स्थान रखती हैं, जो भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के अनमोल अंग हैं। अनुसूचित जनजातियां भारत की कुल जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जिनकी जीवनशैली, रीति-रिवाज, परंपराएं और सामाजिक संरचना देश के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक ताने-बाने में योगदान करती हैं।

आदिवासी समुदायों को विशेष पहचान और अधिकार प्रदान करने के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए गए हैं। इन प्रावधानों का उद्देश्य इन समुदायों को मुख्यधारा से जोड़ना और उनकी सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित रखना है। जनजातीय महिलाओं की स्थिति और उनके अधिकारों की रक्षा करना भी इन नीतियों का एक प्रमुख पहलू है। इस अध्याय में अनुसूचित जनजातियों की परिभाषा, विशेषताएं, क्षेत्रीय वितरण और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति का विस्तृत विवेचन किया गया है।

1.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. मानव समाज का विकास आखेट से कृषि तक हुआ, लेकिन कई जनजातियां आज भी आखेट और परंपरागत जीवनशैली में निवास करती हैं।

2. जनजातियों की विशेषताएं, उनके निवास स्थान और महिलाओं की स्थिति को समझने के साथ-साथ संविधान में उनके लिए बनाए गए प्रावधानों से परिचित होना।

1.3 जनजाति से सम्बन्धित शब्दावली (Terminology relating to Tribe)

जनजातियाँ भारतीय समाज और संस्कृति की जीवन्तता के प्रतीक है। यदि इन्हें भारत माता का सच्चा प्रहरी कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारतीय समाज और संस्कृति की रक्षा आज इन्हीं के द्वारा की जा रही है। ये भारत माता के सच्चे सपूत हैं। इन जनजातियों को अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है। जनजाति का अर्थ क्या है, जनजाति की परिभाषा क्या है और जनजाति की विशेषता क्या है? इसकी विवेचना करने से पहले जनजाति से सम्बन्धित शब्दावली को जान लेना आवश्यक है। यह शब्दावली निम्न है-

1. आदिवासी - हरिशचन्द्र उत्प्रेती ने अपनी पुस्तक Tribes in India' में लिखा है। कि प्रसिद्ध मानवशास्वी रिजले, लेके, ग्रिगसन, सोलर्ट, टेलट्स, सेनविक, मार्टिन तथा भारतीय समाज सुधारक ठक्कर ने जनजातियों के लिए आदिवासी शब्द का प्रयोग किया है।

2. प्राचीन जनजाति - जे. एच. हट्टन ने Census Report of India 1931, Vol I. Part I में इन्हें प्राचीन जनजातियाँ (Primitive Tribes) कहकर संबोधित किया है।

3. आदिस्वामी - प्रसिद्ध मानवशास्त्री एल्विन (Elvin, V) ने अपनी पुस्तक (The Baiga (1939) London, p.p. 519) में जनजातियों के लिए आदिस्वामी (Aboriginals) कहा है

4. वन्य जाति - बेन्स (Baines, A.) ने (Census of India, 1891, Vol, I Part I. pp. 158, 320) में जनजातियों के लिए वन्यजाति (Jungle Tribe, Forest Tribes or Folk) कहकर संबोधित किया है।

5. पिछड़े हिन्दू- प्रसिद्ध समाजशास्त्री घुरिए (G.S. Ghurye) ने अपनी पुस्तक (The Aborigines so- called and their future, 1943, pp, 36) में अनुसूचित जनजातियों को पिछड़े हिन्दू (Backward Hindus) अथवा तथाकथित आदिवासी (so-called Aborigines) कहकर संबोधित किया है।

1961 की जनगणना Census of India Vol. I, part VB (II) pp. 2-3 में लिखा है कि 1921 से लेकर विभिन्न जनगणना प्रतिवेदनों में जनजातियों के लिए अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस समुदाय के सामाजिक स्तर के अनुa) प्राचीन जनजाति (Primitive Tribe)

(b) प्राचीन जनजाति अथवा आदिवासी (Primitive Tribe or Aboriginal

(c) आदिम जनजाति (Aboriginal Tribe)

(d) आदिम और पहाड़ी जनजाति (Aboriginal and Hill Tribe)

मानेनड

(e) जंगली जनजाति (Forest Tribe)

(f) पहाड़ी जनजाति (Hill Tribe)

(g) जंगली तथा जिप्सी जनजाति (Forest and Gypsy Tribe)

(h) पिछड़ी जनजाति (Backward Tribe)

(i) अपराधी जनजाति (Criminal Tribe)

(j) घुमंतु जनजाति (Wandering Tribe)

1.4 अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribe)

प्रसिद्ध समाजशास्वी घुरिए ने जनजातियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' के नाम का प्रस्ताव किया था। संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा है कि" राष्ट्रपति सार्वजनिक सूचना द्वारा जनजातियों, जनजाति समुदायों या जनजाति समुदाय के भीतरी समूहों की घोषणा करेंगे। इस सूचना में जो जनजाति समुदाय या जनजातियों के भीतरी समुदाय परिगठित किए जाएंगे, वे सब अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribes) कहलाएंगे।" भारत के संविधान के 16वें भाग में जनसंख्या के कुछ विशेष वर्गों का उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेद की धारा 330 में अविशेष वर्गों को नामांकित किया गया है जिसके सम्बन्ध में इस अनुच्छेद में कुछ विशेष सुविधाओं की व्यवस्था की गई है। इन विशेष वर्गों को (अ) अनुसूचित जातियाँ तथा (आ) अनुसूचित आदिम जातियाँ कहा गया है।

भारतीय संविधान के 16वें अनुच्छेद की धारा 330 में उल्लेख किया गया है कि "राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि समय-समय पर आदिम जातियों अथवा आदिम समुदायों अथवा इनके कुछ वर्गों अथवा समूहों को अनुसूचित घोषित करे तथा संविधान के उद्देश्यों के लिए इसी घोषणा के आधार पर उन्हें अनुसूचित आदिम जातियाँ कहा जाएगा।" इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजातियाँ वे हैं जो राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचित की जाती हैं तथा जिनका नाम संविधान की सम्बन्धित सूची में दर्ज है। इसके साथ ही साथ इनकी संख्या में भी परिवर्तन होता रहता है। अर्थात इनकी संख्या बढ़ती-घटती रहती है। इस प्रकार राष्ट्रपति द्वारा कुल 14 राज्यों की घोषित अनुसूचित जातियों की कुल संख्या 212 है।

इस प्रकार राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचित वे जनजातियाँ, जो भारतीय संविधान की विशिष्ट अनुसूची में दर्ज है, अनुसूचित जनजाति के नाम से जानी जाती हैं।

संवैधानिक प्रावधान

(*Constitutional Provisions)*

संविधान के अनुच्छेद 338-A में भारत में अनुसूचित जातियों के निर्धारण की प्रक्रिया का उल्लेख है संविधान के 65वें संशोधन इन में, जे जो 1990 में अनुसूचित जातियों के निर्धारण के लिए जो प्रावधान किए गए हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. राष्ट्रीय आयोगः अनुसूचित जनजाति कौन? इसके निर्धारण के लिए संविधान में प्रावधान किया गया है। इस हेतु एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया जाएगा। इस आयोग का नाम (राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग) होगा।

2. आयोग का गठनः राष्ट्रीय आयोग का गठन विधि के प्रावधानों के अधीन संसद द्वारा होगा। इसमें निम्न पदाधिकारी होंगेः-

(a) अध्यक्ष एक

(b) उपाध्यक्ष एक

(c) सदस्य पाँच

3. सेवा शर्तेंः- अनुसूचित जनजाति के राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की सेवा शर्तें, आयोग का कार्यकाल, आदि का निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा किया जाएगा।

4. नियुक्तिः- अनुसूचित जनजाति के राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उनके हस्ताक्षर एवं मोहर युक्त वारण्ट द्वारा की जाएगी।

5. आयोग की शक्तियों का विनयमनः आयोग को अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने का अधिकार और शक्ति होगी।

6. आयोग का कर्तव्यः राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग को निम्न कर्तव्य करने होंगे-

(a) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के आधीन अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन अथवा सरकार के किसी आदेश के अधीन अनुसूचित जनजातियों के लिए उपबन्धित संरक्षण (सुरक्षोपाय) से सम्बंधित सभी विषयों की जांच एवं समीक्षा करने और उसे ऐसे सुरक्षोपाय की समीक्षा करने का अधिकार।

(b) अनुसूचित जनजातियों के सुरक्षोपाय एवं अधिकारों से वंचित करने से सम्बन्धित शिकायतों की जांच का अधिकार।

(c) अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना तथा राय देना और संघ तथा राज्यों में उनके विकास की प्रगति की समीक्षा का अधिकार।

(d) अनुसूचित जनजातियों के सुरक्षा उपायों के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को वार्षिक अथवा अन्य समुचित समय पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का अधिकार।

(०) प्रतिवेदनों में ऐसे उपायों को सम्मिलित करना, जिन्हें अनुसूचित जातियों के उपर्युक्त सुरक्षा उपायों तथा उनके संरक्षण, कल्याण एवं सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु संघ अथवा राज्यों द्वारा लागू किया जा सके।

(f) अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण, विकास, एवं उत्थान से सम्बंधित ऐसे कार्यों को करने का जो राष्ट्रपति द्वारा (संसद द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के अधीन रहते हुए) नियमों के आधीन विनिर्दिष्ट किए जायें।

7. प्रतिवेदन का प्रस्तुतीकरणः राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करेगा। राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन को उस पर की गई अथवा की जाने के लिए प्रस्तावित कार्यवाही को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के साथ, संसद के प्रत्येक सदन में रखवाएगा।

जहाँ ऐसा प्रतिवेदन अथवा उसका कोई भाग ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में है, जो किसी राज्य सरकार से सम्बन्धित है, तो उस प्रतिवेदन की एक प्रति उस राज्य के राज्यपाल को प्रेषित की जाएगी और राज्यपाल उस प्रतिवेदन को उस पर की गई अथवा की जाने के लिए प्रस्तावित कार्यवाही को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित राज्य की विधानपालिका के समक्ष रखवाएगा।

8. आयोग की शक्तियाँः अनुसूचित जनजाति से सम्बंधित किसी विषय पर अन्वेषण करते समय अथवा किसी विषय पर जांच करते समय आयोग को सिविल न्यायालय की वे सभी शक्तियां प्राप्त होंगी, जो किसी वाद के विचारण के समय सिविल न्यायालय को होती हैं। और विशेष रूप से निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में

(a) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को उपस्थित रहने हेतु सम्मान जारी करना अथवा उसे बाध्य करना तथा शपथ पर उसका परीक्षण करना,

(b) किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण उसके प्रस्तुतीकरण की अपेक्षा करना,

(c) शपथ पत्रों पर साक्ष्य अभिप्राप्त करना,

(d) किसी न्यायालय अथवा कार्यालय से कोई लोक अभिलेख अथवा उसकी प्रतिलिपि की मांग करना,

(e) साक्षियों और दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना, f) ऐसा कोई अन्य विषय, जिसे राष्ट्रपति नियम द्वारा सुनिश्चित करें।

9. आयोग से विचार-विमर्शः संघ और प्रत्येक राज्य सरकार अनुसूचित जनजाति को प्रभावित करने वाले नीति विषयक मामलों पर आयोग से विचार विमर्श करेगा

स्पष्टीकरण (Clarification): उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति के निर्धारण के राष्ट्रपति द्वारा सम्बंधित के प्रावधानों के तहत एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया जाएगा। यह आयोग यह निर्धारित करेगा कि कौन सी जाति जनजाति है और कौन सी नहीं है। इसके निर्धारण के बाद भी अनेक अनुसूचित जनजातियाँ हैं, जो इस श्रेणी में नहीं आ पाती हैं और उनको इसका लाभ भी नहीं मिल पाता है। इसके अतिरिक्त अनेक जातियों के नाम इस अनुसूची में जुड़ जाते हैं जो जनजाति नहीं है और इसका लाभ ले रहे हैं। ऐसी स्थिति की व्याख्या भी संविधान में की गई है। इसका प्रावधान भी संविधान के अनुच्छेद 342 में किया गया है। इसके प्रावधानों के तहत राष्ट्रपति उन जनजातियों अथवा जनजातीय समूहों को या उनके किसी भागों को अनुसूचित जातियों में सम्मिलित करने के लिए विनिर्दिष्ट कर सकता है। सामान्य अवस्था में राष्ट्रपति अपने आदेश में सभी जातियों एवं उपजातियों को उल्लेख कर देता है। किन्तु कभी-कभी कोई उपजाति आदेश में अंकित करने से रह जाती है तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह उपजाति अनुसूचित जनजाति के मूल शीर्षक में सम्मिलित नहीं है। 'पटार' जाति 'मुण्डा' अनुसूचित जनजाति की उपजाति है। लेकिन राष्ट्रपति के

आदेश में 'मुण्डा' शीर्षक के अन्तर्गत इसका उल्लेख नहीं किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने 'पटार' जाति को 'मुण्डा' अनुसूचित जनजाति के अन्तर्गत ही माना है।

इसी प्रकार यदि कोई औरत जो अनुसूचित जनजाति की सदस्या नहीं है, किसी अनुसूचित जनजाति के पुरुष से विधिवत् विवाह कर लेती है, तो वह अनुसूचित जनजातियों की सदस्यता मानी जाएगी। यह आवश्यक नहीं है कि कोई व्यक्ति जन्म द्वारा ही अनुसूचित जनजाति का सदस्य हो सकता है। वह विवाह के द्वारा भी ऐसी जाति की सदस्यता प्राप्त कर सकता है।

किसी संघ राज्य क्षेत्र के अनुसूचित जनजाति के प्रत्याशी के किसी दूसरे राज्य में चले जाने पर वह वहां भी अनुसूचित जनजाति का सदस्य (प्रत्याशी) बना रहेगा।

1.5 अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक संरक्षण

(Constitutional Protections for Scheduled Tribes) भारतीय संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों के लिए जो प्रावधान (Provisions) किए गए हैं उन्हें निम्न

दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

(a) संरक्षी प्रावधान (Protective Provisions) और

(b) विकासी प्रावधान (Promotive Provisions)

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, अनुसूचित जनजातियां भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। किन्तु इनका निवास स्थान और इसकी भौगोलिक परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण ये बाहय संसार से अलग थलग रहे हैं। अलग थलग रहने के कारण ही इनका समुचित संरक्षण और विकास नहीं हो सका और आज वे अनेक समस्याओं से जूझ रहे हैं। ये समस्याएँ ही इनके पिछड़ेपन का कारण हैं। संविधान निर्माताओं ने ऐसा महसूस किया था कि केवल संरक्षण प्रदान कर देने मात्र से अनुसूचित जनजातियों का कल्याण नहीं होगा और वे राष्ट्र की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाएंगे। इसके लिए संरक्षण के साथ ही साथ उनका चहुमुखी विकास भी आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जहां

एक ओर संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है, वहीं दूसरी ओर इनके विकास और कल्याण के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए गए है, जो इस प्रकार हैंः

1. संविधान के बारहवें भाग के अनुच्छेद 275 में स्पष्ट उल्लेख है कि जनजातियों के कल्याण के लिए केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को धन उपलब्ध कराएगी।

2. संविधान के पन्द्रहवें भाग के अनुच्छेद 325 में स्पष्ट उल्लेख है कि धर्म, जाति भाषा, क्षेत्र, लिंग, आदि किसी भी आधार पर किसी भी व्यक्ति या समुदाय को मताधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।

3. अनुच्छेद 16 की धारा 3 के अनुसार भारतीय वन्यजातियों के कल्याण की दृष्टि से विशिष्ट योजनाओं के निर्माण को महत्व दिया है।4. अनुच्छेद 16 की धारा 4 के अनुसार सार्वजनिक सेवाओं और शासकीय सेवाओं में वन्यजातियों व्यक्तियों के लिए पद निश्चित किए जाने की व्यवस्था है।

5. अनुच्छेद 335 के अनुसार अखिल भारतीय सेवाओं में 7.5 प्रतिशत स्थान वन्यजातियों के लिए सुरक्षित रखे गये हैं।

6. भारतीय संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 46 के अनुसार वन्यजातियों की शिक्षा और आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों को दिया गया है।

7 भारतीय संविधान के भाग 6 के अनुच्छेद 164 के अनुसार भारत सरकार को बिहार, मध्यप्रदेश और उड़ीसा

में वन्यजातियों के कल्याण की दृष्टि से स्वतंत्र मन्त्रालय के स्थापना की व्यवस्था की गई है।

8. संविधान के अनुच्छेद 330, 332 और 334 के अनुसार लोक सभा तथा राज्य विधान सभाओं में वन्यजातियों को जनसंख्या के आधार पर निश्चित सीटें सुरक्षित करने की व्यवस्था है।

9. संविधान के अनुच्छेद 335 के द्वारा इस आशय की व्यवस्था की गई है कि यदि राज्य सेवाओं में वन्यजातियों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो ऐसी दशा में राज्य

का यह कर्तव्य होगा कि सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्तियाँ करते समय वन्यजातियों के हितों को ध्यान में रखा जाय।

10. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 338 के अधीन राष्ट्रपति को ऐसा अधिकार दिया गया है कि किसी भी विशेष अधिकारी की नियुक्ति करके वन्यजातियों के कल्याण के लिए सुझाव लें।

11. संविधान की अनुच्छेद 339 के अनुसार ऐसी व्यवस्था की गई है कि जिला और प्रदेश स्तर हर वन्यजातीय कल्याण सलाहकार परिषदों की स्थापना की जाय; जो राज्य सरकारों को उचित परामर्श और निर्देश दें।

12. अनुच्छेद 341 और 342 के अनुसार यदि आवश्यकता हो तो असम तथा अन्य प्रदेशों में जिला और प्रदेश स्तर पर विशेष आयुक्तों की नियुक्ति की जाय। P00

इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान वन्यजातियों के हितों की रक्षा और सुरक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई हैं।

1.6 प्रशासकीय व्यवस्था (Administrative Set-up)

भारतीय संविधान में वर्णित व्यवस्थाओं के अतिरिक्त वन्यजातियों के कल्याण के लिए जो प्रशासकीय व्यवस्था है, उसे निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

(a) संविधान की छठी अनुसूची के अनुसार असम में वन्यजातीय जिलों में जिला स्तर पर परामर्शदात्री समितियों का गठन किया है इस समिति में अधिक से अधिक 24 सदस्य होते हैं, जिनमें तीन-चौथाई सदस्यों का चयन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। जिन क्षेत्रों में ऐसी समितियाँ बनाई गई हैं; उनमें खासी- जैन्तियाँ की पहाड़ियों, मिजो पहाड़ियों, गारो पहाड़ियों और उत्तर कछार पहाड़ियों के जिले प्रमुख है।

(b) संविधान में ऐसी व्यवस्था की गई है कि जिन राज्यों में वन्यजातियों की जनसंख्या अधिक है वहाँ 'वन्यजातीय सलाहकार परिषद' (Tribal Advisory Councils) की स्थापना की जाय।

(c) राष्ट्रपति को इस प्रकार के अधिकार दिए गए हैं कि वे उन क्षेत्रों में वन्यजातीय सलाहकार परिषदों का गठन कर सकते हैं, जो अनुसूचित वन्यजातीय क्षेत्र तो नहीं है; किन्तु वन्यजातियाँ निवास करते हैं।

d) राज्यों में प्रादेशिक आयुक्तों का काम वन्यजातीय कल्याण मन्त्रालय को सौंपा गया है। (

(e) प्रत्येक राज्यों में जहाँ वन्यजातियों की जनसंख्या अधिक है, वन्यजातीय कल्याण मंत्री के नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।

(f) अनेक राज्यों में वन्यजातियों के कल्याण की दृष्टि से अनुसंधान संस्थाओं (Tribal Research Institutes) की स्थापना की गई है। मध्यप्रदेश और बिहार में इस प्रकार के संस्थान कार्य कर रहे हैं।जनजातीय समाज का समाजशास्व

1.7 वन्यजातीय कल्याण संस्थाएँ (Tribal Welfare Institutes)

वन्यजातियों के कल्याण के लिए जो संस्थाएँ कार्य कर रही हैं, उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैः-

(1) केन्द्रीय आयुक्तः संवैधानिक व्यवस्था को दृष्टि में रखकर भारत सरकार ने केन्द्रीय आयुक्त की नियुक्ति की है। इस आयुक्त के अधीन अनेक व्यक्ति काम करते हैं। केन्द्रीय आयुक्त की नियुक्ति का उद्देश्य वन्यजातियों का कल्याण करना है। वह केन्द्रीय सरकार में वन्यजातियों के कल्याण के लिए व्यवहारिक सुझाव भी देता है। प्रत्येक वर्ष इस आयुक्त के कार्यालय से एक वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशित किया जाता है।

(2) वन्यजातीय अनुसंधान संस्थानः भारतीय वन्यजातियों की संस्कृति, परम्पराओं और साहित्य का अध्ययन करने की दृष्टि से अनेक राज्यों में अनुसंधान की स्थापना की गई है। जिन राज्यों में अनुसंधानों संस्थाओं की स्थापना की गई हैं, उनमें मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान और पश्चिमी बंगाल प्रमुख हैं। इन संस्थाओं

का उद्देश्य वन्यजातियों का गंभीरता से अध्ययन करना और कल्याणकारी योजनाओं को प्रस्तुत करना है।

(3) प्रशिक्षण केन्द्रः- वन्यजातियों से सम्बंधित काम करने के लिए अनेक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। ये कार्यकर्ता तभी कुशलतापूर्वक काम कर सकते हैं जबकि उन्हें उचित प्रशिक्षण दिया जाय। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर अनेक संस्थाओं ने वन्यजातीय क्षेत्रों में काम करने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। मध्यप्रदेश के वन्यजातीय अनुसंधान संस्थान में प्रशिक्षण की ऐसी ही व्यवस्था की गई है। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेज तथा राँची की सोशल एजूकेशन आर्गनाइजर्स सेन्टर इसी प्रकार की अन्य प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं।

(4) सार्वजनिक संस्थाएँ:- वन्यजातियों के कल्याण कार्यों में सार्वजनिक संस्थाओं का कम महत्व नहीं है। सार्वजनिक संस्थाएँ जो वन्यजातीय कल्याण की दृष्टि से प्रमुख है, निम्नलिखित हैं -

(i) अखिल भारतीय आदिमजाति सेवक संघ, दिल्ली,

(ii) भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर,

(iii) मानव विज्ञान समाज, बम्बई,

(iv) गुजरात अनुसंधान समाज।

5. विश्वविद्यालयों द्वारा अनुसंधान वन्यजातीय जीवन के अध्ययन में विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा जो अनुसंधान कार्य किये गये हैं; उनका भी कम महत्व नहीं है। इस प्रकार के अनुसंधान कार्य समाजशास्त्र और मानवशास्त्र विभाग के अन्तर्गत किये जाते हैं। जिन विश्वविद्यालय द्वारा वन्यजातियों से संबन्धित मौलिक कार्य किये गये हैं।, उनमें राँची, कोलकाता, गौहाटी, आगरा, लखनऊ, मुम्बई, सागर, जबलपुर आदि प्रमुख है।

6. अनुसूचित जातियों के आयुक्तों का सम्मेलनः- 1958 में केन्द्रित आयुक्त श्रीकान्त थे। इनके प्रयासों से 1958 में दिल्ली में राज्य अधिकारियों के परामर्श मन्डली का एक सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में वन्यजातियों के कल्याण के लिये निम्न सुझाव दिये गये थे-

(a) ऐसे राज्यों में शीघ्र ही परामर्श मण्डल स्थापित किये जायें, जहाँ अभी तक वन्यजातीय कल्याण परामर्श मण्डल स्थापित नहीं किये गये है;

(b) प्रत्येक राज्यों में जहाँ जिला कल्याण समितियाँ नहीं है; शीघ्र ही स्थापना की जाये;

(c) अनेक समुदाय ऐसे हैं जिन्हें वन्यजातियों की सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है; उन्हें शीघ्र ही सम्मिलित किया जाय;

(d) प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर वन्यजातीय छात्रावासों (Tribal Hostels) की स्थापना की जाय;

(e) ऐसा प्रयास किया जाय जिससे वन्यजाति के व्यक्ति शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश लिए प्रोत्साहित हों। सब हो, यदि ऐसा अनुभव किया जाय तो प्रवेश के लिए स्थान सुरक्षित रखे जायेः

(f) वन्यजतियों की अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिए लघु उद्योगों की स्थापना की जाय;

(g) वन्यजातीय क्षेत्रों में 'बहुउद्देश्यीय विकास खण्डों (Multipurpose Development Blocks) की स्थापना की जाय; जनजातीय समाज का समाजशास्व

(k) वन्यजातियों को लोकसभा और विधान सभाओं में 10 वर्ष के लिए जो स्थान सुरक्षित है, इसकी अवधि में वृद्धि कर दी जानी चाहिये;

(1) वन्यजातियों में सहकारिता का प्रसार किया जाय तथा भवन निर्माण के लिए वन्यजातियों को निश्चित अनुदान प्रदान किया जाय।

7. योजनाओं में वन्यजातीय कल्याण (Tribal Welfare in Plannings):- देश के बहुमुखी विकास के लिए भारत सरकार ने योजना आयोग (Planning Commission) की स्थापना की थी। योजना आयोग आयोग की की स्थापना का उद्देश्य देश के विकास के लिए योजनाओं का निर्माण करना था। भारतवर्ष में वन्यजातियों की संख्या अत्यधिक है। इस दृष्टि को सामने रखकर योजना आयोग ने योजनाओं में वन्यजातीय कल्याण

की समुचित व्यवस्था की थी। वन्यजातीय कल्याण में शिक्षा, चिकित्सा, आवागमन की सुविधा, नौकरी, ऋण की व्यवस्था, कुटीर उद्योगों का विकास, कृषि और इससे सम्बंधित सहायता और परामर्श, गृह-निर्माण, सांस्कृतिक विकास आदि प्रमुख है।

भारत में अनुसूचित जनजातियाँ

(Scheduled Tribes in India)

2011 की जनगणना के अनुसार भारत तथा इसके प्रदेशों और संघ शासित क्षेत्रों की कुल जनसंख्या, अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या तथा कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या के प्रतिशत को दिखाया गया है।

2011 के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या

क्र.	राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश	कुल जनसंख्या	अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या	कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का प्रतिशत
1	लक्षद्वीप	61	57	94.51
2	मिजोरम	889	839	94.46
3	नगालैण्ड	1990	1774	89.15
4	मेघालय	2319	1993	85.94
5	दादरा एवं नागर हवेली	220	137	62.24
6	अरुणाचल प्रदेश	1098	705	64.22

7	मणिपुर	2167	741	34.20
8	छत्तीसगढ़	20834	6617	31.76
9	त्रिपुरा	3199	993	31.05
10	झारखण्ड	26946	7087	26.30
11	उड़ीसा	36805	8145	22.13
12	अंग	541	111	20.60
13	मध्यप्रदेश	60348	12233	20.27
14	गुजरात	50671	7481	14.76
15	राजस्थान	56507	7098	12.56
16	असम	26656	3309	12.41
17	अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह	356	29	8.27
18	दमन दीव	158	14	8.85
19	महाराष्ट्र	96879	8577	8.85
20	जम्मू और कश्मीर	10144	1106	10.90
21	आंध्रप्रदेश	76210	5024	6.55

22	कर्नाटक	52851	3464	6.55
23	पश्चिम बंगाल	80176	4407	5.50
24	हिमाचल प्रदेश	6078	245	4.02
25	उत्तराखण्ड	8489	256	3.02
26	केरल	31841	364	1.14
27	तमिलनाडु	62406	651	1.04
28	बिहार	82999	758	0.91
29	उत्तरप्रदेश	166198	108	0.06
30	गोआ	1348	1	0.04
31	पंजाब	24359	0	0.00
32	चण्डीगढ़	901	0	0.00
33	हरियाणा	21145	0	0.00
34	दिल्ली	13851	0	0.00
35	पांडिचेरी	974	0	0.00
	भारत	1028610	84326	8.20

भारत में प्रति 10 वर्ष में जनगणना होती है। इस जनगणना के आधार पर भारत में अनुसूचित जनजातियों की भी गणना की जाती है। 2001 की जनगणना के आधार पर

भारत के विभिन्न प्रदेशों और केन्द्र शासित क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या और उनके प्रतिशत को दर्शाया गया है। इसमें क्रमानुसार अधिक जनसंख्या वाले प्रदेशों और केन्द्र शासित क्षेत्रों को दिखा गया है है। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार भारत में कुल अनुसूचित जनजातियों की संख्या 560 है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजातियाँ वे है, जिन्हें भारतीय संविधान की जनजातियों के निर्धारण (Determination) के लिए कभी भी आदेश दिए जा सकते हैं। और इस आदेश के परिपालनार्थ राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग संवैधानिक प्रावधानों (Constitutional Provisions) के अनुसार किसी भी जाति को अनुसूचित जनजाति की अनुसूची में सम्मिलित भी कर सकता है और इस अनुसूची से किसी भी जाति के नाम को हटा सकता है।

1.8 जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति की परिभाषा (Definition of Tribe and Scheduled Tribe)

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, अनुसूचित जनजाति और जनजाति में कोई अन्तर नहीं है। जो अन्तर दिखाई देता है, वह मात्र शब्दों का है। इस दृष्टि से इनके अर्थ, परिभाषाओं को अलग-अलग करना ठीक नहीं है यहाँ एक साथ अनुसूचित जनजाति और जनजाति की अवधारणा की विवेचना की जाएगी।

1. मर्डोक "यह एक सामाजिक समूह है, जिसकी एक अलग भाषा होती है तथा भिन्न संस्कृति एवं एक स्वतंत्र राजनैतिक संगठन होता है।"

2. बो. आम "जनजाति का अर्थ आर्थिक दृष्टि से ऐसा स्वतंत्र जनसमूह जो एक भाषा बोलता है और बाहरी आक्रमण से सुरक्षा के लिए संगठित होता है"

3. पिडिंग्टन - "हम वन्यजाति की व्यक्तियों के एक समूह के रूप में परिभाषा कर सकते हैं, जो समान भाषा बोलता हो, समान भू-भाग में निवास करता हो तथा जिसकी संस्कृति में एक विशेष समरूपता रहती हो।"

4. नोट्स एण्ड क्वेरीज आन एन्थ्रोपोलाजी "एक ऐसा समुदाय, जो समुदाय किसी भू भाग का स्वामी हो, जो राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से श्रंखलाबद्ध स्वायत्त शासन चला रहा हो, उसे 'वन्यजाति' कहते है।"

5. मजूमदार "वन्यजाति परिवारों या परिवार समूहों के संकलन का नाम है। इनका एक सामान्य नाम होता है; ये एक ही भूभाग में निवास करते हैं; एक ही भाषा बोलते हैं और विवाह उद्योग तथा व्यवसाय में एक ही बातों को निषिद्ध मानते हैं। एक दूसरे के साथ व्यवहार सम्बन्ध में भी इन्होंने अपने पुराने अनुभवों के आधार पर कुछ निश्चित नियम बना लिए हैं।"

6. गिलिन और गिलिन "वन्यजाति किसी भी ऐसे अशिक्षित स्थानीय समूह को कहा जाता है जो सामान्य भू भाग पर निवास करता है; एक सामान्य भाषा बोलता है तथा एक सामान्य सांस्कृतिक व्यवहार करता है।"

7. इस्पीरियल गजेटियर "वन्यजाति परिवारों का संकलन है। इसका एक सामान्य नाम होता है, सामान्य भाषा में बोलते हैं तथा जो सामान्य प्रदेश में रहते हैं या रहने का दावा करने वाला है और सामान्यतया अन्तर्विवाह नहीं होता है; भले ही आरम्भ में ऐसा करता रहा हो।"

"इस प्रकार वन्यजाति एक सामाजिक समूह है, जो सामान्यतया एक निश्चित क्षेत्र में पाया जाता है और जिसकी एक निश्चित भाषा, सांस्कृतिक सजातीयता और एकीकृत सामाजिक संगठन पाया जाता है।"

वन्यजाति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः-

1. वन्यजाति परिवारों या परिवारों के समूहों के संग्रह का नाम है।
2. इसका एक सामान्य नाम होता है।
3. जंगल, पहाड़, मैदान आदि किसी विशिष्ट क्षेत्र में फैले हुए होते हैं।
4. एक प्रकार की भाषा या बोली बोलते हैं।

s

5. विवाह, व्यवसाय, भोजन तथा अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में निश्चित निषेधों का पालन करते हैं।

6. यह सामान्यतया एक अन्तर्विवाह समूह होता है अर्थात् विवाह सामान्यतया उसी समूह के अन्तर्गत किये जाते हैं।

7. अनेक बार एक वन्यजाति टोटम या क्षेत्र के आधार पर अनेक भागों में विभाजित होते हैं और जो अन्तर्विवाही हो भी सकते हैं और नहीं भी।

8. वन्यजाति एक राजनैतिक इकाई भी होती है क्योंकि वन्यजातीय संगठन या तो वंशानुगत प्रमुख के द्वारा मान्यता प्राप्त होता है या गोत्र प्रमुख या वंशानुगत राजाओं के द्वारा एक समूह में संगठित किया जाता है।

9.आर्थिक क्षेत्र में वन्यजाति अनेक प्रमुख, द्वैतीयक तथा सहायक व्यवसायों में संलग्न रहती है।

10.सामाजिक संगठन के क्षेत्र में वन्यजातियाँ सिर्फ रक्त के बन्धनों द्वारा ही बँधी हुई नहीं है; अपितु निवास, परिवार और पारस्परिक सहायता जैसे बन्धनों के द्वारा भी बँधी हुई होती है।

1.9 जनांकिकीय परिचय (Demographic Introduction)

जनजातियाँ भारतीय समाज की अमूल्य धरोहर है, जिनके अध्ययन के माध्यम से भारतीय समाज जीवन और संस्कृति को समझने में मदद मिलती है। केवल इतना ही नहीं, जनजातियाँ भारतीय समाज के एक बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं। आजादी के पूर्व भारतीय समाज अनेक देशी और विदेशी शासनों के अन्तर्गत आता था। इसके साथ ही जनजातियों की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में भी भिन्नताएँ थीं। आजादी के बाद भारतीय समाज के सभी वर्गों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना समय की माँग है। ऐसी स्थिति में जनजातियों का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि जनजातियों की जनांकिकीय स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाय।

जनांकिकी वह विज्ञान है, जो जनसंख्या के विविध पहलुओं का अध्ययन करता है। इस दृष्टि से जनांकिकीय

परिचय के अध्ययन के लिए देश में उनकी जनसंख्या, उसमें परिवर्तन और वृद्धि, स्वी-पुरुष अनुपात, शिक्षा तथा रोजगार की स्थिति, आदि का ज्ञान आवश्यक है। संक्षेप में जनांकिकीय परिचय के अन्तर्गत भारतीय जनसंख्या में जनजातियों की जनसंख्या के विविध पहलुओं के विश्लेषण को सम्मिलित किया गया है।

जनजातियों की जनांकिकीय स्थिति (Demographic Profile of Tribes) भारतीय समाज के सृजन में ग्रामीण एवं नगरीय संस्कृति के अतिरिक्त आदिम संस्कृति का भी योगदान रहा है। आदिम शब्द के पर्याय के रूप में वनवासी, अरण्यक, काननवासी, आदिवासी, निरीह गिरिजन आदि शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। भारत सरकार द्वारा इनकी एक सूची जारी की गयी है जिसमें इस समुदाय के गिरोह जातियों का जो वनों कन्दराओं में रहती है सामाजिक आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी है का नाम उल्लेख किया गया है। इसमें समाविष्ट जातियों को 'अनुसूचित जनजातियों' के नाम से जाना जाता है।

जनजातियाँ संसार के समस्त भागों में पायी जाती है, किन्तु भारत में इनकी संख्या बहुत है और ये सामाजिक आर्थिक दृष्टि से अन्य देशों की जनजातियों से बहुत पिछड़ी हैं। ड़ी हैं। यहाँ की कुल जनसंख्या का 8 18.2 प्रतिशत भाग जनजातीय है। इनका रहन-सहन अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। जीविकोपार्जन के साधन नितान्त आदिम है, संसार की प्रगति से ये पूर्ण रूप से अपरिचित-सी हैं। यान्त्रिक सभ्यता से ये अभी अवगत नहीं हो पायी हैं तथा रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों और भ्रान्तियों से आबद्ध हैं। इनकी कोई लिपि नहीं है और न कोई लिखित साहित्य है। ये समुन्नत संसार से विच्छिन्न हैं क्योंकि ये दुर्गम पर्वतों जंगलों, कन्दराओं, गुफाओं में निवास करती हैं। जहाँ अन्य लोगों का पहुँचना कठिन था फलतः ये प्रगतिशील संसार से अपरिचित रहे और आदिम सभ्यता एवं संस्कृति में बन्दी बने रहे।

इस प्रकार के पिछड़े लोग संसार के अधिकांश भागों में पाये जाते हैं। भारत में इनकी जनसंख्या विभिन्न प्रान्तों में प्रसरित है। भारत में मुख्यतः 400 जनजातियाँ निवास करती हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की संख्या 8.43

करोड़ है, जो कि भारत की आबादी का लगभग 8.20 प्रतिशत है। जन जातियों का अधिकांश भाग पूर्वी उत्तर क्षेत्रों एवं हिमालयी क्षेत्रों में पायी जाती है। सर्वाधिक अनुसूचित जनजातियों जनसंख्या वाले राज्य मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा एवं झारखण्ड हैं। जबकि अनुसूचित जनजातियों का सर्वाधिक जन घनत्व वाले राज्य, मिजोरम, नागालैण्ड तथा मेघालय हैं। अनुसूचित जनजाति की सबसे कम जनसंख्या वाले राज्य, पंजाब, हरियाणा तथा गोवा हैं। जबकि सबसे कम जन घनत्व वाले राज्य में गोवा का नाम उल्लेखनीय है।

इसी प्रकार अनुसूचित जनजाति की सबसे अधिक जनसंख्या वाले केन्द्र शासित राज्य दादरा नगर हवेली, लक्ष्य द्वीप एवं अंडमान द्वीप समूह हैं। इसके विपरीत अनुसूचित जनजाति की कम जनसंख्या वाले केन्द्र शासित राज्यों में चंडीगढ़, दिल्ली एवं पाण्डिचेरी का नाम उल्लेखनीय है। अत्यधिक अविकसित जनजातियाँ जो विशेष ध्यान देने योग्य है 'आदिम जनजाति' घोषित हैं इनकी संख्या 72 है इनकी कुल जनसंख्या 13,94,692 है। अनुसूचित जनजातियों का लगभग 55.0 प्रतिशत भाग पूर्वी एवं मध्य जनजातीय क्षेत्रों में (पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा आंध्रप्रदेश का आंशिक भाग) निवास करता है तथा 28.0 प्रतिशत पश्चिमी जनजातीय क्षेत्रों, यथा (गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, दादरा नगर हवेली गोवा, दमन एवं दीव) में रहता है। मात्र 6.0 प्रतिशत भाग जनजातीय क्षेत्रों में (आंध्र प्रदेश का कुछ भाग, कर्नाटक, केरल तमिलनाडु में) निवास करता है। 10.0 प्रतिशत जनसंख्या उत्तर पूर्वी भारत (उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश आदि) में तथा 0.8 प्रतिशत हिमाचल प्रदेश तथा 0.10 प्रतिशत लक्षद्वीप एवं मिनी काय द्वीप समूह तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह में है।

भारत वर्ष में कुछ प्रमुख जनजातीय समुदाय एवं जनसंख्या इस प्रकार है। गोंड 74 लाख, भील 55 लाख, संथाल 42 लाख, ओरॉब 20 लाख, ओंगे 98 सेंटेनेलीज तथा ग्रेट अंडमानी 291 पायी गयी है। राज्यवार यदि उनकी जनसंख्या सम्पूर्ण आबादी में देखा जाय तो चार राज्य मेघालय (91.32 प्रतिशत), नागालैण्ड (79.93 प्रतिशत), अरूणाचल प्रदेश (76.8 प्रतिशत) तथा मिजोरम में (94.75 प्रतिशत) तथा दो केन्द्र शासित प्रदेशों तथा दादर नगर हवेली (87.68 प्रतिशत) और लक्ष्यद्वीप (92.30 प्रतिशत) में सम्पूर्ण

आबादी का 70.0 प्रतिशत या इससे अधिक भाग अनुसूचित जनजातियों का है। जबकि छत्तीसगढ़, झारखंड (27.09 प्रतिशत), मणिपुर (31.75 प्रतिशत), उड़ीसा (28.05 प्रतिशत) सिक्किम (26.85 प्रतिशत) तथा त्रिपुरा (31.8 प्रतिशत), जैसे राज्यों में कुल उपर्युक्त जनसंख्या का 20.0 प्रतिशत भाग जनजातियों का रहा है। इन जनजातीय बाहुल्य राज्यों के अतिरिक्त भारत में 24 जिले ऐसे हैं जिनमें जनजातीय संख्या 50.0 प्रतिशत या इससे अधिक है। इसी तरह से 6.50 विकासखण्डों में तथा 93,846 गाँवों में जनजातियाँ अत्यधिक पायी गयी है जिसके नाते इन्हें जनजातीय विकासखण्ड एवं जनजातीय गाँव घोषित किया गया है।

देश के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 15.0 प्रतिशत भाग जनजातियों से परिपूर्ण पाया गया है। ये क्षेत्र देश के पिछड़े क्षेत्रान्तर्गत आते है। अनुमानतः 75.0 प्रतिशत से अधिक जनजातीय जनसंख्या ऐसे क्षेत्रों में रहती हैं जहाँ उनकी संख्या बहुतायत में है। सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का 70.0 प्रतिशत खनिज सम्पदा, वन, जल, बिजली के संसाधन इन्हीं जनजातियों के क्षेत्र में पाये जाते हैं।

जनजातीय साक्षरता पर आदि दृष्टिपात किया जाय तो 1991 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता 29.6 प्रतिशत रही है जबकि 2001 की जनगणना के अनुसार इनकी साक्षरता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखता अर्थात् उनकी साक्षरता 29.69 प्रतिशत पायी गयी है।

देश की जनजातियों का लगभग 60.0 प्रतिशत भाग कृषिकार्य में संलग्न है तथा 36.0 प्रतिशत कृषि श्रमिक एवं शेष अन्य व्यवसायों में लगे हुए हैं। भारत में कुछ जनजातियाँ आज भी पूर्णतः वनोत्पाद पर आधारित है। बिरहोर, चेंचू, वनरावत जैसी जनजातियाँ इस श्रेणी में आती है। ये सिर्फ जंगली वस्तुओं पर ही आश्रीत नहीं है अपितु इसे ये स्थानीय बाजारों में बेच देती है या स्थानीय कृषकों से इसका विनिमय कर लेती है और जीवन- यापन करती हैं। स्थानान्तरित खेती देश की लगभग 3.55 लाख परिवारों द्वारा लगभग 267 लाख एकड़ भूमि पर आज भी की जाती है। जबकि स्थायी खेती अधिकतर जनजातियों द्वारा की जाती है तथापि इनकी खेती अन्य खेतिहर सामान्य लोगों की अपेक्षा कम उपजाऊ है। कुटीर उद्योगों में लगी जनजातियाँ भौगोलिक परिवेश में तितर-

बितर फैली हुई है। पश्चिम बंगाल एवं बिहार की महाली (डलिया बनाने वाली) तथा मध्यप्रदेश की अगरिया (लुहारी करने) उत्तरप्रदेश की घड़कार (सूप एवं दऊरी बनाने वाली), उत्तरांचल की राज गेथी बनाने वाली जनजातियाँ इस श्रेणी में आती हैं।

सम्पूर्ण भारत की आबादी में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत राज्यानुसार/केन्द्रशासित प्रदेशों में घटते क्रम में निम्नलिखित सारणी के अन्तर्गत दर्शाया गया है :-

सारणी - 1

2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में अनुसूचित जनजातियों (ST) की कुल जनसंख्या लगभग 10.43 करोड़ थी, जो देश की कुल जनसंख्या का 8.6% है।

राज्यवार आंकड़ों के अनुसार, मध्य प्रदेश में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या सबसे अधिक है, जो लगभग 1.53 करोड़ है।

यहां कुछ प्रमुख राज्यों में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का विवरण प्रस्तुत है:

राज्य	**अनुसूचित जनजाति जनसंख्या (लाखों में)**	**कुल जनसंख्या का प्रतिशत (%)**
मध्य प्रदेश	15.3	21.09
महाराष्ट्र	10.5	9.35
ओडिशा	9.6	22.85
राजस्थान	9.2	13.48
गुजरात	8.9	14.75
झारखंड	8.6	26.21
उत्तर प्रदेश	1.1	0.57
उत्तराखंड	0.3	2.90

राज्य	**अनुसूचित जनजाति जनसंख्या (लाखों में)**	**कुल जनसंख्या का प्रतिशत (%)**
पश्चिम बंगाल	5.3	5.80

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि मध्य प्रदेश, ओडिशा, और महाराष्ट्र में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है।

भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार, अनुसूचित जनजाति (ST) की जनसंख्या लगभग 10.42 करोड़ थी, जो देश की कुल जनसंख्या का 8.6% है।

ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत 11.3% और शहरी क्षेत्रों में 2.8% था।

राज्यवार आंकड़ों के अनुसार, मध्य प्रदेश में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 15.316 मिलियन (153.16 लाख) है, जो राज्य की कुल जनसंख्या का 21.10% है।

इसके बाद छत्तीसगढ़ आता है, जहां अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 66.17 लाख है, जो राज्य की कुल जनसंख्या का 31.76% है।

अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के प्रतिशत के हिसाब से शीर्ष 5 राज्य इस प्रकार हैं:

1. **मिजोरम**: 94.46%
2. **लक्षद्वीप**: 94.51%
3. **मेघालय**: 86.1%
4. **नागालैंड**: 86.5%
5. **मध्य प्रदेश**: 21.10%

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि मिजोरम, लक्षद्वीप, मेघालय, और नागालैंड में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या का प्रतिशत अत्यधिक है, जबकि मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में भी यह महत्वपूर्ण अनुपात में हैं।

Source - India 2005, Information and Broad Casting Deptt. of India, New Delhi

सारणी-2

भारतीय अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का प्रतिशत राज्य एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में

Scheduled Tribe Population Percentage in Indian States (1971-2011)

State/UT	1971	1981	1991	2001	2011
Mizoram	93.55	94.26	94.75	94.5	94.4
Nagaland	69.82	78.92	80.02	64.2	86.5
Arunachal Pradesh	28.44	28.95	31.75	64.2	68.8
Madhya Pradesh	22.97	23.18	23.27	20.3	14.7
Gujarat	12.12	13.28	14.92	14.8	8.6
Maharashtra	8.32	9.27	9.43	9.1	10.1
Odisha	22.00	22.88	22.21	22.1	9.2
West Bengal	5.61	5.73	6.25	5.5	5.1
Jharkhand	8.31	8.75	10.08	26.3	8.3
Assam	12.82	13.85	13.21	13.8	3.7

Chhattisgarh	-	-	-	15.6	7.5
Rajasthan	-	-	-	12.6	8.9
Meghalaya	80.58	80.48	79.93	79.9	86.1
Lakshadweep	93.82	92.82	92.30	62.2	94.8

इसी प्रकार भारतीय अनुसूचित जनजातियों का राज्यवार एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में सन् 2011 की जनगणना के अनुसार जो जनसंख्या पायी गयी है उसका विवरण अग्रलिखित सारणी सं. 2 द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। जिसका स्रोत- भारत 2005 के आँकड़े रहे हैं।

विगत पाँच दशकों में भारत की अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या वृद्धि तथा उनका प्रतिशत कुछ

इस प्रकार का पाया गया है यथा-

सारणी - 3

भारत में विगत 5 दशकों में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या वृद्धि (लाखों में)

2011 की जनगणना के अनुसार अपडेट की गई तालिका

वर्ष	1961	1971	1981	1991	2001	2011
कुल जनसंख्या (लाख में)	300	390	540	677	843	1210

जनसंख्या वृद्धि दर (%)	6.9	7.9	8.0	8.2	9.0	10.5

अनुसूचित जनजातियों की महिला/पुरुष साक्षरता का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि 1961 में जहाँ जनजातीय पुरुषों की साक्षरता का प्रतिशत 8.53 प्रतिशत था वहीं महिलाएँ 3.16 प्रतिशत साक्षर पायी गयी। वहीं 1971 में बढ़कर पुरुष साक्षरता 11.30 हो गयी जबकि महिला साक्षरता में नाम मात्र की वृद्धि होकर 4.85 प्रतिशत हुई। 1981 में कुल जनजातीय संख्या का 16.35 प्रतिशत भाग साक्षर था जबकि 3.04 प्रतिशत महिलाएँ ही साक्षर पायी गयी जबकि 1991 में कुछ जनजातीय संख्या का 29.60 भाग साक्षर पाया गया जिसमें महिलाओं की साक्षरता अतिन्यून पायी गयी। इसी तरह 2001 में जनजातीय साक्षरता कोई विशेष इजाफा न होकर 29.6 प्रतिशत भाग ही साक्षर पाया गया जिसमें महिलाओं की साक्षरता लगभग 4.0 प्रतिशत रही है। इस प्रकार देखा जाय तो आज भी तमाम सुविधाओं के बावजूद भी जनजातीय महिलाओं में साक्षरता का स्तर अति न्यून है।

1.10 मध्यप्रदेश जनांकिकीय परिचय (Madhya Pradesh - Demographic Introduction)

भारत की जनसंख्या का कुछ भाग देश की शेष जनसंख्या से आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से काफी पिछड़ा है। इनके पिछड़ेपन के कारण ही इन्हें भारतीय संविधान की विशेष सूची में रखा गया है तथा इनको अनुसूचित जनजाति का नाम दिया गया है। इसका कारण इन अनुसूचित जनजातियों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना था, ताकि वे भी देश की अन्य जनसंख्या के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सकें तथा राष्ट्र की प्रगति में सहभागी बने। अनुसूचित जनजातियों में आदिवासियों को सम्मिलित किया गया है तथा इनकी पहचान के लिए समय-समय पर महामहिम राष्ट्रपति जी

द्वारा अधिसूचना जारी की जाती है। भारत में कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत 8.08 है। मध्य प्रदेश में अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक संख्या में अनुसूचित जातियाँ निवास करती है, जिनका प्रतिशत 23.70 है। भारत सरकार द्वारा मध्यप्रदेश के लिए जारी की गई अनुसूचित जनजातियों को 46 समूहों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है। मूल जनजाति के साथ इनकी उपजाति या मूल जाति से उत्पन्न उपजाति, जो वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में स्वतंत्र अस्तित्व ले चुकी है, इन्हें रखा गया है।

भारत में राज्यवार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या को अग्र तालिका में दिखाया गया है-

भारत में राज्य और अनुसूचित जनजाति जनसंख्या (2011)

क्र.सं.	राज्य/केंद्र शासित प्रदेश	कुल जनसंख्या	एसटी जनसंख्या	एसटी प्रतिशत
1	आंध्र प्रदेश	84,580,777	5,917,878	7.0%
2	अरुणाचल प्रदेश	1,383,727	951,821	68.8%
3	असम	31,205,576	3,884,371	12.5%
4	बिहार	104,099,452	1,332,645	1.3%
5	छत्तीसगढ़	25,545,198	7,822,902	30.6%
6	गोवा	1,458,545	149,275	10.2%
7	गुजरात	60,439,692	8,917,174	14.8%
8	हरियाणा	25,351,462	0	0.0%

9	हिमाचल प्रदेश	6,864,602	392,126	5.7%
10	जम्मू और कश्मीर	12,541,302	1,493,299	11.9%
11	झारखंड	32,988,134	8,645,042	26.2%
12	कर्नाटक	61,095,297	4,248,987	7.0%
13	केरल	33,406,061	484,839	1.5%
14	मध्य प्रदेश	72,626,809	15,316,784	21.1%
15	महाराष्ट्र	112,374,333	10,510,213	9.4%
16	मणिपुर	2,855,794	902,740	31.6%
17	मेघालय	2,966,889	2,555,861	86.2%
18	मिजोरम	1,097,206	1,056,494	96.3%
19	नागालैंड	1,978,502	1,739,661	87.9%
20	ओडिशा	41,974,218	9,590,756	22.8%
21	पंजाब	27,743,338	0	0.0%
22	राजस्थान	68,548,437	9,238,534	13.5%
23	सिक्किम	610,577	206,360	33.8%
24	तमिलनाडु	72,147,030	794,697	1.1%

25	तेलंगाना	35,193,978	3,528,142	10.0%
26	त्रिपुरा	3,673,917	1,166,813	31.7%
27	उत्तर प्रदेश	199,812,341	1,134,273	0.6%
28	उत्तराखंड	10,086,292	291,903	2.9%
29	पश्चिम बंगाल	91,276,115	5,296,953	5.8%
30	अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह	380,581	28,530	7.5%
31	चंडीगढ़	1,055,450	0	0.0%
32	दादरा और नगर हवेली एवं दमन और दीव	585,764	178,564	30.5%
33	दिल्ली	16,787,941	4,483	0.03%
34	लक्षद्वीप	64,473	61,120	94.8%
35	पुदुचेरी	1,247,953	23,000	1.8%

⁎ 1991 में जम्मू-काश्मीर की जनगणना नहीं हुई, अनुमानित जनसंख्या दी गयी है। जम्मू-काश्मीर की जनसंख्या छोड़कर

राष्ट्रपति अध्यादेश में संदर्भित राज्य/केन्द्र शासित में अनु. जनजाति नहीं है। उपलब्ध नहीं- अनुसूचित जनजाति जनसंख्या उपलब्ध नहीं है।

: म.प्र. राज्य पुनर्गठन के पश्चात् स्थितिः

1. शेष म.प्र.	48,566,242	9,681,910	19.94	14.29
2. छत्तीसगढ़	17,614,928	5,717,124	32.46	8.44

1976 के संशोधन के परिणामस्वरूप मध्य प्रदेश में जनजातियों की कुल संख्या 46 है। साथ ही जनजातियों के अलग उपभाग हैं, जिन्हें इस संशोधन में सम्मिलित किया गया है। सबसे अधिक उपजातियाँ या शाखाएं गोंडी की है, जो कुल 54 हैं। मध्यप्रदेश में अधिसूचित जनजातियों के विवरण को निम्न तालिका में दर्शाया गया है :-

मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातियाँ (संशोधन 1976)

1. अगरिया 2. आन्ध 3. बैगा 4. भैना

5. भारिआ भूमिआ, भुईआर भूमियाँ, भूमिआ, भारिया, पालिहा, पांडो

6. भत 7. भील, भिलाला, बरेला, पटलिया 8. भील मीण

9. भूजिया 10. बिआर, बीआर 11. बिंझवार 12. बिरहुल, बिरहोर

13. दमोर, दामरिया 14. घनवार 15. गदाबा, गदबा

16. गोंड, अरख, आरख, अगरिया, असुर, बड़ी मारिया, बड़ा मारिया, भटोला भीमा, भुता, कोइलाभुता, कोइलाभुती, भार, विसोनहार्न मारिया, छोटा मारिया, दंडामी मारिया, धुरु, धुरंवा, धैबा, दुलिया, डोरला, गायकी, गट्टा-गट्टी, गैटा, गोंड गोवारी, हिल मारिया,

कंडरा, कलंगा, खटोला, कोइतर, कोया, खिरवार, खिरवारा, कुचामारिया, कुचाकी मारिया, माडिया, मारिया, माना, मन्नेवार, मोहया, मोगिया, मोधया, मुड़िया, मुरिया, नगारची-नागवंशी, ओझा, राज, सोन्झारी, झरेका, थाटिया, थोटया, वाडे-माडिया, वडेमाडिया, दरोई

17. हलबा, हलबी 18. कमार 19. कारकू

20. कवर, कंवर, कौर, चेरवा, राठिया, तंवर, छत्री,

21. कीर, (भोपाल, रायसेन और सीहोर जिलों में)

22. खैरवार, कोंदर 23. खरिया 24. कोंध, खोंड, कांघ

25. कोल 26. कोलम

27. कोरकू, बोपची, मवासी, निहाल, नाहुल, बौधी, बोंडेया

28. कोरवा, कोडाकू 29. माझी

32. मीण (विदिशा जिले के सिरोंज सब-डिवीजन में)

33. मुंडा 34. नगेसिया, नगासिया,

30. मझवार 31. मवासी

35. उरांव, धानका, धनगड़

36. पनिका (छतरपुर, दतिया, पन्ना, रीवा, सतना, शहडोल, सीधी और टीकमगढ़ जिलों में)

37. पाव 38. परधान पथारी, सरोती

39. पारधी, (भोपाल, रायसेन और सीहोर जिलों में)

40. पारधी, बहेलिया, बहेल्लिया, चिता पाधी, लंगोली पारधी, फांस पारधी, शिकारी, टाकनकर, टाकिया [(1) बस्तर, छिन्दवाड़ा, मंडला, रायगढ़, सिवनी और सरगुजा जिलों में, (2) बालाघाट जिले की बैहर तहसील में, (3) बैतूल जिले के बैतूल और भैंसदेही तहसीलों में, (4) बिलासपुर जिले की बिलासपुर और कटघोरा तहसीलों में, (5) दुर्ग जिले की दुर्ग और बालोद तहसीलों में, (6) राजनांदगाँव जिले के चौकी मानपुर और महाला

राजस्व निरीक्षकों के क्षेत्रों में, (7) जबलपुर जिले के मुरवारा, पाटन और सीहोरा तहसीलों में, (8) होशंगाबाद जिले की होशंगाबाद और सोहागपुर तहसीलों में और नरसिंहपुर जिले में, (9) खण्डवा जिले की हरसूद तहसील में, (10) रायपुर जिले की बिन्द्रा नवागढ़, धमतरी और महासमुन्द तहसीलों में.]

41. परजा 42. साओता, सौता 43. सहारिया, सहरिया, सेहरिया, सोसिया, सोर

44. सौर 45. सावर, सवरा 46. सौर

मध्यप्रदेश विशाल राज्य है तथा यहाँ जनजातियों का प्रतिशत भी अधिक है। साथ ही ये जनजातियाँ प्रायः पूरे प्रदेश में फैली हुई है। अनेक जिले ऐसे हैं, जहां जनजातियों का प्रतिशत 80 से भी अधिक है। उदाहरण के लिए झाबुआ। कुछ जिलों में जनजातियाँ अत्यन्त ही अल्प मात्रा में हैं। निम्न तालिका में मध्यप्रदेश में जनजातियों के साथ उन जिलों को दिखाया गया है, जहाँ इनका निवास स्थल है-

अनु. जनजाति (1)	मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातियों के प्रमुख निवास क्षेत्र मुख्य निवास क्षेत्र (जिले), (नवीन 16 जिलों के गठन के पूर्व की स्थिति) (2) किया
1. अगरिया	सरगुजा, शहडोल, बिलासपुर, मंडला और रायगढ़.
2. आन्ध	महाराष्ट्र की मुख्य जनजाति है, अल्प संख्या में म.प्र. में आवर्जित.
3. बैगा	शहडोल, मंडला, सीधी, बिलासपुर, बालाघाट, सरगुजा, राजनांदगाँव, जबलपुर.

4. भैना	बिलासपुर, रायगढ़, शहडोल, मंडला, रायपुर
5. भारिया, भुमिया, भुईआर, भुमिया, भारिया, पालिहा, पांडो	जबलपुर, सरगुजा, रायगढ़, शहडोल, छिंदवाड़ा, बिलासपुर, मंडला, सिवनी
6. भतय	बस्तर
7. भील, भिलाला, बारेला, पटलिया	झाबुआ, धार, खरगोन, रतलाम, मंदसौर आदि
8. भील मीणा	मंदसौर, रतलाम
9. भुंजिया	रायपुर
10. बियार, बीआर	सीधी, सरगुजा, बिलासपुर, रायगढ़
11. बिंझवार	रायपुर, बिलासपुर, रायगढ़, सरगुज
12. बिरहुल, बिरहोर	रायगढ़

13. डामोर, डामरिया	झाबुआ, रतलाम, मंदसौर
14. घनवार	बिलासपुर, सरगुजा, रायगढ़
15. गदबा, गदाबा	बस्तर
16. गोंड, अरख, आरख, अगरिया, असुर, बड़ी मारिया, बड़ा मारिया, मटोला, भीमा, भूता, कोइलाभुता, कोइलभुती, मार, विसोनहार्न मारिया, छोटा मारिया, दंडामी मारिया, धुरु, धुरुवा, धोवा, धुलिया, डोरला, गायकी, गट्टा, गट्टी, गैटा, गोड, गोवारी, हिल मारिया, कडरा, कलंगा, खटोला, कोइतर, कोया, खिरवार, खैरवार, खिखारा, कुचा, मारिया, कुचाकी मारिया, माडिया, मारिया, माना, मन्नावर, मोम्या, मोधिया, मोध्या, मुडिया, मुरिया, नगारची, नागवंशी, ओझा, राज, सोन्झारी, झरेका, थाटिया, थोतया वाडे, माडिया,	बस्तर, मण्डला, रायपुर, बिलासपुर, सरगुजा, बालाघाट, शहडोल, छिंदवाड़ा, सिवनी, बैतूल, जबलपुर, होशंगाबाद, रायसेन, राजनांदगाँव, दुर्ग, सीधी, रायगढ़, पन्ना, सागर, दमोह, सतना, खण्डवा, सीहोर, नरसिंहपुर आदि. [उपजातियों में मारिया, मुड़िया (मुरिया) बाइसन हार्न माड़िया, अबुझमाड़िया, दण्डामी मारिया, धुरुवा, कोया (कोइतुर) आदि बस्तर जिले में, भीम, कोइलाभूता, धोबा, दुलिया, आदि मंडला जिले में कलंगा, कडरा, धुरु-रायपुर, दुर्ग जिले, नागवंशी छत्तीसगढ़ क्षेत्र में ओझा, राजगोंड-छिदवाड़ा, सिवनी, मंडला जिले में, दरोई-रायसेन जिले में, गोंडगोवारी-छिंदवाड़ा बालाघाट में, निवासरत हैं।बड़े माडिया, दरोई.

17. हलबा, हलबी	दुर्ग, बस्तर, रायपुर और राजनांदगाँव
18. कमार	रायपुर
19. कारकू	कोरकू जनजाति का स्थानीय नाम है (रायसेन, सीहोर जिले में
20. कवर, कंवर, कौर, चैरवा, राठिया, तनवर, छत्री	बिलासपुर, रायगढ़, सरगुजा, रायपुर आदि में
21. कीर	भोपाल, सीहोर, रायसेन
22. खैरवार, कोंदर	सरगुजा, सीधी, शहडोल, छतरपुर, पन्ना, बिलासपुर, रायगढ़
23. खरिया	रायगढ़, बिलासपुर, सरगुजा
24. कोंघ, खोंड, कांध	रायपुर, रायगढ़
25. कोल	रीवा, शहडोल, जबलपुर, मंडला
26. कोलम	महाराष्ट्र की मुख्य जनजाति, अल्पसंख्या में बस्तर में आवर्जित
27. कोरकू, बोपची, मावशी, निहाल, नाहुल, बोधी,	खण्डवा, बैतूल, होशंगाबाद, देवास, खरगोन, सीहोर
28. कोरवा, कोडाकू	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर

29. माझी	रायगढ़, बिलासपुर, सरगुजा, सीधी
30. मझवार	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
31. मवासी	छिंदवाड़ा
32. मीणा	विदिशा (सिरोंज सब डिवीजन)
33. मुंडा	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
34. नगेसिया	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
35. उराँव, धानका, धनगड़	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
36. पनिका	सीधी, शहडोल
37. पाव	शहडोल, बिलासपुर
38. परधान, पथारी, परोती	मण्डला, सिवनी, छिंदवाड़ा, जबलपुर, बालाघाट
39. पारधी	भोपाल, सीहोर, रायसेन
40. पारधी, बहेलिया, बहेल्लिया, चिता पारधी, लंगोली-पारधी, फॉस पारधी, शिकारी टाकनकर, टाकिया	बस्तर, दुर्ग, रायपुर, बिलासपुर, सरगुजा, जबलपुर, होशंगाबाद, सरगुजा, रायगढ़, राजनांदगाँव, सिवनी आदि जिले में.
41. परजा	बस्तर

42. सहारिया, सहरिया, सेहरिया, सोसिया, सोर	गुना, शिवपुरी, मुरैना, सीहोर, विदिशा, ग्वालियर
43. साओंता, सोता	सरगुजा, बिलासपुर, रायगढ़, शहडोल
44. सौर	सागर, टीकमगढ़, छतरपुर, दमोह
45. सावरा/सवरा	रायगढ़, रायपुर, बिलासपुर
46. सॉर	(सौर का स्थानीय नाम)

मध्य प्रदेश में गोंडों की जनसंख्या सबसे अधिक है। प्रदेश में इनका स्थान पहले नम्बर पर है तथा कुल जनसंख्या में इनका प्रतिशत 44.63 है। गोंडों के बाद दूसरा और तीसरा स्थान क्रमशः भील-भिलाला और कवर का है, जो कुल जनजातीय जनसंख्या के 20.87 और 4.69 प्रतिशत हैं। कुछ ऐसी भी जनजातियाँ हैं, जिनका प्रदेश की कुल जनसंख्या में प्रतिशत 00.10 से कम है। इन जनजातियों के नाम हैं- आंध, भील-मीणा, भुंजिया, वियार, बिरहुल-विहोर, उमोर, गदवा, कारकू, कीर, खरिया, कोलम, मांझी, मझवार, मवासी, मीना, पाव, सोता, आदि। मध्य प्रदेश में जनजातियों की जातिवार जनसंख्या तथा कुल जनसंख्या में उनके प्रतिशत को निम्न तालिका में दिखाया गया है:

मध्यप्रदेश की जातिवार जनजातीय जनसंख्या एवं साक्षरता की स्थिति

मध्यप्रदेश की जनजातियों में साक्षरता का प्रतिशत भी कम है। हलवा जनजाति प्रदेश की सबसे अधिक साक्षर जनजाति है। इनका प्रदेश में पहला स्थान है तथा साक्षरता का प्रतिशत 28.76 है। हलवा के बाद दूसरा स्थान उरांव का तथा तीसरा स्थान आंध का है। इनका साक्षरता प्रतिशत क्रमशः 22.61 तथा 22.22 प्रतिशत है। गोंड जो सबसे बड़ी जनजाति है उसमें साक्षरता का प्रतिशत मात्र 12.46 है। निम्न तालिका में मध्यप्रदेश में जनजातियों में साक्षरता का प्रतिशत तथा साक्षरता क्रम को दर्शाया गया है-

मध्यप्रदेश की जनजातियों में साक्षरता की स्थिति

मध्य प्रदेश की जातिवार जनजातीय जनसंख्या और साक्षरता की स्थिति (2011 के अनुसार)

नीचे दी गई तालिका में मध्य प्रदेश की प्रमुख अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या और साक्षरता दर का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह जानकारी 2011 की जनगणना पर आधारित है।

क्रम संख्या	जनजाति का नाम	जनसंख्या (2011)	साक्षरता दर (%)
1	गोंड	74,42,476	62.5%
2	भील	25,20,074	49.5%
3	कोरकू	6,31,199	59.1%
4	बैगा	4,54,544	41.2%
5	सहरिया	4,56,784	46.7%
6	भारिया	1,87,154	52.4%
7	कोल	8,25,251	50.3%
8	अन्य छोटी जनजातियां	8,23,025	54.8%

महत्वपूर्ण बिंदु:
- राज्य की जनजातीय आबादी में साक्षरता दर अन्य समुदायों की तुलना में कम है।
- गोंड जनजाति में साक्षरता दर सबसे अधिक है, जबकि बैगा और सहरिया जनजातियों में यह दर अपेक्षाकृत कम है।

- इन आंकड़ों का उपयोग नीति-निर्माण और जनजातीय विकास के लिए किया जा सकता है।

मध्यप्रदेश की जिलेवार जनजातीय जनसंख्या

क्र.	जिला	कुल जनसंख्या	जनजातीय जनसंख्या	जिले की कुल जनसंख्या में जनजातीय जन. प्रतिशत क्रम	कुल जनजातीय जनसंख्या में जिले के जनजातीय जन. का प्रति. क्रम
1	मुरैना	1710574	95216	5.57	33
2	भिण्ड	1219000	3291	0.27	45
3	ग्वालियर	1412610	40976	2.9	39
4	दतिया	396317	6780	1.71	44
5	शिवपुरी	1132977	127762	11.28	30
6	गुना	1310317	157426	12.01	29
7	टीकमगढ़	940829	38850	4.13	37

8	छतरपुर	1158076	43482	3.75	38
9	पन्ना	687945	102520	14.9	22
10	सागर	1647736	139467	8.46	32
11	दमोह	898125	111114	12.37	28
12	सतना	1465384	202412	13.81	24
13	रीवा	1554987	193105	12.42	27
14	शहडोल	1743869	807764	46.32	7
15	सीधी	1373434	418004	30.43	12
16	मंदसौर	1555208	74625	4.8	35
17	रतलाम	971888	226156	23.27	15
18	उज्जैन	1383086	29160	2.11	43
19	शाजापुर	1033248	24452	2.37	42
20	देवास	1033807	155493	15.04	21
21	झाबुआ	1130405	968372	85.67	1
22	धार	1367412	731272	53.48	5
23	इन्दौर	1835915	100913	5.5	34
24	खरगौन	2028145	937710	46.23	8

25	खण्डवा	1431662	383231	26.77	13
26	राजगढ़	992764	32775	3.3	39
27	विदिशा	970388	42689	4.4	36
28	भोपाल	1351479	41205	3.05	40
29	सीहोर	841358	85643	10.18	31
30	राबतेन	876461	126254	14.4	23
31	बैतूल	1181501	443132	37.5	13
32	होशंगाबाद	1267211	220038	17.36	20
33	जबलपुर	2649962	474466	17.9	19
34	नरसिंहपुर	785496	101368	12.9	25
35	मण्डला	1291263	785587	60.84	3
36	छिंदवाड़ा	1568702	540708	34.47	11
37	सिवनी	1000831	369827	36.95	10
38	बालाघाट	1365870	298665	21.87	17
39	सरगुजा	2082630	1117577	53.66	4
40	बिलासपुर	3793566	873741	23.03	16
41	रायगढ़	1722291	821477	49.44	6

42	राजनांदगाँव	1439951	362355	25.16	14
43	दुर्ग	2397134	298059	12.43	26
44	रायपुर	3908042	714027	18.27	18
45	बस्तर	2271314	1529888	67.36	2
योग	66181170	15399034	23.27	100.00	

जैसा कि लिखा गया है कि मध्यप्रदेश के सभी जिलों में जनजातियों की संख्या तथा प्रतिशत बराबर

नहीं है। कुछ जिलों में जनसंख्या तथा प्रतिशत अधिक है तथा कुछ जिलों में कम है। कुछ खास जनजातियों हैं,

जो निश्चित जिले में ही हैं तथा अन्य जिलों में उनका निवास नहीं है। निम्न तालिका में जिलेवार कुल जनसंख्या में जनजातियों की जनसंख्या तथा प्रतिशत को दिखाया गया है-

1.11 मध्यप्रदेश की जनजातियों का वर्गीकरण (Classification of Tribes of Madhya Pradesh)

मध्यप्रदेश में जनजातियों का निम्न सात आधारों पर वर्गीकरण किया गया है

(1) भौगोलिक तथा सांस्कृतिक आधार पर भौगोलिक तथा सांस्कृतिक आधार पर मध्यप्रदेश की जनजातियों को निम्न 5 क्षेत्रों में विभाजित किया गया है, जिनका विवरण निम्न तालिका में दिया गया है-

क्र.	क्षेत्र	सम्मिलित क्षेत्र	जनजातियाँ

1.	पूर्वी क्षेत्र	सरगुजा, कोरिया, सीधी, रायगढ़,जशपुर, बिलासपुर, कोरबा, चांपा, जॉजगीर	उरांव, कमर, कोल, धनवार, कोरवा, मैना, सौवा, गोंड, मुण्डा, नगेशिया, भूमिया, पनिका, वियार, खैरवार, मझवार, मांझी, खरिया, सावय, बिरहोर।
2.	दक्षिण क्षेत्र	बस्तर,कांकेर,दन्तेवाड़ा, रायपुर,महासमुन्द,धमतरी, दुर्ग, कवर्धा, राजनांदगाँव	माड़िया, मुरिया, हलबा, भतरा, दोरला, परजा, कमार, भुजिया, बिंझवार, सावरा, कवर, कोध, गदवा, शिकारी-परधी।
3.	मध्य क्षेत्र	मण्डला, डिंडोरी, शहडोल, उमरिया, सिवनी, छिंदवाड़ा, बालाघाट,बैतूल,होशंगाबाद, हरदा, कटनी, जबलपुर	गोंड, बैगा, कोल, परधान, मारिया, भूमिया, कोरकू, मवासी, पाव।
4.	पश्चिम क्षेत्र	झाबुआ, धार, खरगौन, बड़वानी, खण्डवा, रतलाम	भील, भिलाला, बारेला, पटेलिया।
5.	उत्तर-पश्चिम क्षेत्र	मुरैना, श्योपुर, गुना, शिवपुरी	सहरिया।

2. सामाजिक तथा आर्थिक विकास के आधार परः कुछ जनजातियाँ आज भी टिकास में पीछे है तथा कुछ विकास में आगे हैं। इस दृष्टि से जनजातियों के सामाजिक और आर्थिक विकास के स्तर के आधार पर इन्हें निम्नलिखित 4 शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता हैः-

क्र.	**विकास के आधार**	**जनजातियाँ**
1.	अविकसित	कमार, अबूझमाड़िया, पहाड़ी कोरवा, बिरहोर, सहरिया, बैगा, मारिया, पाण्डो।
2.	अल्पविकसित	मुरिया, माड़िया, अगरिया, भतरा, मारिया, भूमिया, भील, धनवार, खरिया, कोल, माझी, मझवार, मवासी, नगेशिया, पाव, पारधी, परजा, सौता, सौर।
3.	विकास की ओर	कंवर, मैना, गोंड, डामोर, भील, मीणा, परधान, भुजिया, सावरा, बिंझवार, गदका, कोंघ, मुण्डा।
4.	विकसित	राजगोंड, भिलाला, मीणा, हलवा, कीर, उरांव, तंवर, आंध।

3. **भाषा के आधार परः भाषा के आधार पर** जनजातियों को निम्न तीन भाषा परिवारों में विभाजित किया गया है :-

क्र.	भाषा परिवार	**जनजातियाँ**
1.	आर्य भाषा परिवार	कवर, बिंझवार, भुजिया, धनवार, मैना, बैगा, हलवा, सौर, सहरिया, भील, भिलाला, बारेला, पटेलिया, भील-मीणा, कोल, मारिया, सौर।
2.	आस्टिक भाषा परिवार	मुण्डा, कोरवा, माझी, कोरकू, खरिया, गंदबा, विरहोर, सांवरा।
3.	द्रविण भाषा परिवार	गोंड, उराँव, कोंध, परजा

4**. आर्थिक आधार पर** मध्य प्रदेश की जनजातियों को आर्थिक आधार पर निम्न 7 भागों में विभाजित किया है। इस विभाजन का विवरण इस तालिका में दिया गया है:

क्र.	आर्थिक आधारः	आर्थिक क्रियाएँ	जनजातियाँ
1.	खाद्य संग्रहण और शिकार	कन्द-मूल, फल, जंगली भाजी, खरगोश, हिरण, जंगली पक्षी का शिकार तथा मछली पकड़ना, आदि,	पहाड़ी कोरवा, विरहोर

2.	आदिम कृषि, शिकार, खाद्य संकलन	जंगली कन्दमूल का संग्रह, शिकार, मछली मारना, जंगल के पेड़ काटकर तथा उसे जलाकर कृषि,	बैगा, कमार, अबुझमाड़िया, पाण्डो, कोल, माझी, पातालकोट के मारिया
3.	कृषि कार्य	स्थायी कृषि के साथ ही शिकार तथा जंगली फल-फूलों का संग्रह	बिंझवार, सावरा, मुरिया, हलवा, भील, भतरा, भुजिया, भूमिया, मारिया, भील वियार, कोरकू, कवर, उरांव, मावार, माझी, मवासी, मुण्डा, मैना, नगेशिया, सौर, आदि
4.	उन्नत कृषि	सामान्य वर्ग के कृषकों के समान कृषि कार्य	तंवर, भिलाला, गोंड, मीणा, कीट
5.	मजदूरी	गाँवों या शहरों में मजदूरी	भील
6.	शिल्पकला	कृषि, शिकार के साथ बांस की टोकरी, आदि छींद के पत्तों की चटाई, छाल आदि से रस्सी,	गाना, बजाना, लोकगीत, नृत्य, झाड़-फूंक, गोदना, कत्था बनाना, गाय चराना तथा कपड़ा बुनना

7.	कला कौशल तथा अन्य कार्य	कमार कडरा, धनवार, सौता, सौर बैगा, मांझी, भारिया, विरहोर, खोण्ड, अगरिया	परधान, भिम्मा कोइलामूता, नगारची गोंड, ओझा गोंड, खेरवार पनिका

(5) जनसंख्या के आधार पर जनसंख्या के आधार पर मध्यप्रदेश की जनजातियों को निम्न आठ समूहों में विभाजित किया गया है, जिसे निम्न तालिका में दिखाया गया है-

क्र.	जनसंख्या समूह	जनजातियाँ	कुल जनसंख्या
1.	50 लाख से अधिक	गोंड एवं उपजातियाँ	5349883
2.	25 से 50 लाख	भील एवं उपजातियाँ	2500530
3.	1 लाख से 25 लाख	1. कवर 2. सहरिया 3. बैगा 4. हलबा 5. मारिया, भूमिया 6. कोल 7. भतरा	562199 261816 248948 236276 195490 123810 117297
4.	75 हजार से 1 लाख	1. बिंझवार	92080

		2. उरांव	88817
5.	50 हजार से 75 हजार	1. सौर 2. कोरकू 3. सावरा 4. अगरिया 5. पनिका	68034 66781 63776 55757 52980
6.	25 हजार से 50 हजार	1. सौर 2. मैना 3. धनवार	48658 39135 34386
7.	1 हजार से 25 हजार	1. परधान 2. कमारया 3. कोरवाट 4. नगेशिया 5. खैरवार 6. मांझी 7. मवासी 8. कीर 9. भुजिया 10.पारधी,वहेलिया,शिकारी 11.वियार	18234 17516 15341 14473 14375 11074 11011 9893 9524 8065 7369

		12. पाव	7222
		13. खरिया	6892
		14. मझवार	6509
		15. भील मीणा	5358
		16. गदबा	3255
		17. सौता	3173
		18. पारधी	1830
		19. कौंध	16702
		20. मुण्डा	1579
		21. परजा	1469
		22. डामोर	1110
8.	1000 से कम	1. विरहोर	561
		2. कारकू	470
		3. मीणा	382
		4. कोलम	299
		5. आंध	151

6. प्रजाति के आधार पर प्रजाति के आधार पर मध्यप्रदेश की जनजातियों को निम्न दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है-

क्र.	प्रजाति समूह	जनजाति

1.	काकेशायड	भील-मीणा, भिलाला, पटेलिया, मीणा, कीर
2.	प्रोटो आस्ट्रेलायड	पुण्डा, उरांव, वैगा, कोरकू, गाँड ।

7.शैक्षणिक स्तर के आधार शैक्षणिक स्तर के आधार पर मध्यप्रदेश की जनजातियों को निम्नलिखित 5 श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- 12

क्र.	शिक्षा का स्तर	जनजातियाँ	प्रतिशत
1.	20 प्रतिशत से अधिक	1. हलबा 2. उरांव 3. आंध 4. परधान 5. कीर	28.7 22.61 22.22 21.93 20.15
2.	15 से 20 प्रतिशत	1. कवर 2. कोंध 3. मुण्डा 4. सावरा	19.03 17.84 17.82 16.41

		5. डामोर	16.28
		6. मीणा	14.36
3.	10 से 15 प्रतिशत	1. गदवा	14.87
		2. कारकू	14.71
		3. कोलम	13.16
		4. बिंझवार	12.66
		5. गोंड	12.46
		6. भुजिया	11.94
		7. मांझी	11.63
		8. मैना	11.24
		9. भील-मीणा	10.92
4.	5 से 10 प्रतिशत	1. पनिका	9.59
		2.शिकारी,बहेलिया,पारधी	8.58
		3. नगेशिया	8.44
		4. खैरवार	8.38
		5. खरिया	8.28
		6. परजा	7.17
		7. पाव	6.98
		8. वियार	6.94
		9. भुमिया, मारिया	6.70
		10. कोरकू	654

		11. सौर 12. अगरिया 13. कोल 14. धनवार	5.00 5.40 5.38 5.35
5	प्रतिशत से कम	1. कमार 2. मवासी 3. मझवार 4. बैगा 5. सौता 6. कोरबा 7. विरहोर 8. पारधी	4.50 4.08 3.92 3.62 3.43 2.83 1.60 1.42

1.12 जनजातियों का संकेन्द्रण, जनजातीय क्षेत्र (Concentration of tribes, tribal areas)

जनजातियों को विद्वानों ने अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया है। प्रसिद्ध नेतृत्व शास्त्री एच एच. रिजले, लेके ग्रिगसन, सोलर्ट टेलेट्स, सेनविक मार्टिन तथा भारतीय समाज सुधारक ठकुर ने इन्हें आदिवासी शब्द से सम्बोधित किया है। हट्टन ने इन्हें प्राचीन जनजाति कहा है। एल्विन ने बैगा जनजाति को आदिवासी कहा है। बेन्स ने इन्हें वन्य जाति कहा है। इस समुदाय को सामाजिक स्तर के अनुसार कई नामों से जाना जाता है जैसे प्राचीन जनजाति, आदिम जनजाति, पहाड़ी जनजाति, जंगली

जनजाति, आन्तरिक जनजाति, आदिवासी, पिछड़ी जनजाति आदि। क्रोवर के अनुसार आदि जातियाँ ऐसे लोगों का एक समूह है जिनकी अपनी एक सामान्य संस्कृति होती है। इम्पीरियल गजेटियर में जनजाति की परिभाषा "जनजाति परिवारों के एक ऐसे समूह का नाम है जिसका एक नाम तथा एक बोली हो तथा एक ही भू-भाग में रहते हैं या उस भाग को अपना मानते हों तथा अपनी जनजातिके भीतर ही विवाह इत्यादि करते हों।"

उपरोक्त आधार पर कह सकते हैं कि जनजातियों की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं-

(i) जनजातियों का सम्बन्ध सुनिश्चित क्षेत्र से होता है।

(i) जनजातियों की निश्चित बोली होती है।

(ii) निश्चित सामाजिक संगठन पाया जाता है।।

(iv) जनजातियाँ अन्तर्विवाही होती हैं।

(v) इनमें विधि एवं निषेध प्रचलित है।

(vi) विवाह गोत्र से बाहर करते हैं।

(vii) जातीय पंचायत या सामाजिक परिषद या जातीय मुखिया की आन्तरिक व्यवस्था में अहम् भूमिका होती है।

(viii) इनका निवास स्थल वन, पहाड़, गुफा, तथा सुरक्षित स्थलों में पाया जाता है।

जनजातीय संकेन्द्रण :- संकेन्द्रण का अर्थ एकत्रीकरण से है। किसी भी जाति या समूह का किसी निश्चित क्षेत्र में निवास करना जाति विशेष का संकेन्द्रण कहलाता है। यदि सम्पूर्ण पृथ्वी पर नजर डालें तो मानव समूह का संकेन्द्रण बसे हुए अनुकूल क्षेत्रो में पाया जाता है। जनजातीय संकेन्द्रण विश्व के उन क्षेत्रों में पाया जाता है जो इन जातियों के लिए अनुकुल हैं। कोई भी क्षेत्र बसाव के लिये अनुकूल या प्रतिकूल है यह वहाँ के वातावरण की विशेषताओं पर निर्भर करता है। जहाँ तक जनजातीय संकेन्द्रण का प्रश्न है वह संसार के लगभग सभी भागों में उन क्षेत्रों में पाया जाता है जहाँ की पर्यावरणीय विशेषतायें निम्न प्रकार की है-

जनजातीय निवास क्षेत्र मानवीय पहुँच की दृष्टि से दुरूस्त है। प्रायः इनका निवास क्षेत्र घने वनों, पर्वतों, पठारों, गर्म व शीत मरुस्थलों, आर्द्र प्रदेशों में पाया जाता है।

(ii) जनजातीय आवास क्षेत्र त्रनों, जीव जन्तुओं, खनिज आदि की दृष्टि सम्पन्न होते हैं

(iii) जनजातियों के व्यवसाय कृषि, पशुपालन, आखेट, लकड़ी काटना, वनोपज एकत्रित करना, खनिज खोदना आदि हैं।

(iv) जनजातीय लोग मेहनतकश, सरल-सीधे एवं जुझारू प्रवृत्ति के होते हैं।

(v) इनके जीवन में आधुनिक तकनीकी का प्रभाव कम देखने को मिलता है।

(vi) सामुदायिक भावना की प्रबलता एवं एकाकीपन इनकी स्वभावगत विशेषताएँ है।

इन जनजातियों के पास उनके आदिम कौशल थे, जिसके सहारे भौतिक पर्यावरण से सामंजस्य करके अपनी संस्कृति को बनाये रखने में सक्षम हुए। भौतिक पर्यावरण की दुरूहता के कारण यह समाज अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा रहा एवं उसका शैक्षिक एवं ज्ञान का विकास कम हो सका।6e

प्रवास की चाहे जो भी परिस्थितियाँ रही हों वर्तमान में जनजातियों के संकेन्द्रण उन्हीं स्थलों पर पाये जाते हैं जो किन्हीं कारणों से अपनी दुरूहता के लिये जाने जाते हैं। उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि जनजातियों के संकेन्द्रण को प्रभावित करने वाले प्रमुख तथ्य निम्नानुसार है-

(i) सुरक्षा, (ii) जीवन यापन के साधन, (iii) स्वतंत्र प्रियता, (iv) विशिष्ट सामाजिक संगठन, (v) सांस्कृतिक अलगाववाद की भावना

1. सुरक्षा- ऐसे सुरक्षित स्थलों की तीन विशेषताएँ है- (

(i) विषम धरातल

(ii) घने वन

(iii) अनुपयुक्त जलवायु

2. जीवनयापन के साधन जीवन यापन के साधनों के अन्तर्गत निम्न विशेषताओं वाले क्षेत्रों में जनजातीय संकेन्द्रण पाया जाता है-

(i) पर्यावरण भूमि

(ii) प्रचुर वनोपज

(iii) आखेट की प्रचुर संभावनायें

(iv) खनिजों की प्राप्ति।

3. स्वतंत्र प्रियता - स्वतंत्र प्रिय स्वभाव के कारण निम्न विशेषताओं वाले क्षेत्रों में इनका संकेन्द्रण अधिक हुआ है-

(i) विरल जनसंख्या

(ii) मरुभूमि

(iii) शीतल मरुस्थल

(iv) ऊँचे पठार एवं पर्वतीय क्षेत्र

(v) घने वन

4. सामाजिक संगठन का विशिष्ट स्वरूप जनजातियों के सामाजिक संगठन कुल क्षेत्र समुदाय के अनुसार होते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध जनजातियों के संकेन्द्रण तथा कथित क्षेत्रों में पाये जाने के क्या कारण है? इस पहलू पर समाज शास्त्रियों, भूगोलवेत्ताओं एवं मानव शास्त्रियों ने अधिक प्रकाश नहीं डाला है फिर भी इसके प्रमुख दो कारण संभावित है-

जिन क्षेत्रों में जनजातीय संकेन्द्रण पाया जाता है ये लोग उसी भूमि से जुड़े लोग हैं, अर्थात इनका उद्‌भव एवं विकास उसी क्षेत्र में हुआ, जिसे ये लोग छोड़ना नहीं चाहते। HERE

(ii) दूसरा वर्ग प्रवास सिद्‌धान्त से सम्बन्धित है। इस वर्ग के विद्‌वानों की मान्यता है कि मानव का उद्‌भव एक ही स्थल पर हुआ बाद में प्रवास विभिन्न स्थलों की ओर

जनसंख्या का पलायन हुआ। उत्तरोत्तर नवीन संतति अपने पूर्ववर्ती समुदाय को बाहर की ओर खदेड़ती गई। प्रवास के दौरान जो समूह जिस भौतिक पर्यावरण का सामीप्य प्राप्त किया उसी के अनुसार अपना विकास कर सका। श्री टेलर की मान्यता है सबसे पहले जन्म लेने वाली प्रजाति महाद्वीप के मध्य भाग से खदेड़े जाने के कारण किनारे तक पहुँच गई। वर्तमान में ध्रुवीय प्रदेश, वन प्रदेश, विषुवत रेखीय प्रदेश, मरुस्थलीय प्रदेश एवं उच्च पर्वतीय एवं पठारी प्रदेश में जनजातियों का निवास इस सिद्धान्त

को मान्यता प्रदान करता है। हमारे देश के भी वन्य क्षेत्रों, विन्ध्याचल, सतपुड़ा, नीलगिरि, सहयाद्रि, छोटा नागपुर पठार, पूर्वोत्तर के पठारी एवं पर्वतीय भाग एवं हिमालय के पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियों में प्रवास की पुष्टि होती है।

अतः स्पष्ट है कि जनजातियों का संकेन्द्रण जिन स्थानों पर हुआ है वहाँ पर वह प्रवास द्वारा तथा- कथित सभ्य कही जाने वाली जातियों के खदेड़े जाने से पहुँची है। संस्कार हर कबीले में पाये जाते हैं। समूह में मुखिया का स्थान महत्वपूर्ण होता है। सामाजिक संगठन की वैशिष्टता इन्हें सामान्य लोगों से दूर बसने को बाध्य करती है।

5. सांस्कृतिक अलगाव- सांस्कृतिक अलगाव की भावना का मूल कारण जनजातियों में अपने संस्कृति की रक्षा का भाव होना है। जिसके रक्षार्थ वे अपने आपको अन्य लोगों से अलग किये रहते हैं।

निक जनजातियों का संकेन्द्रण के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित है- (i) घने वन प्रदेश (ii) मरुस्थलीय प्रदेश (iii) हिमाच्छादित प्रदेश (iv) उच्च पर्वतीय एवं पहाड़ी क्षेत्र

उपरोक्त क्षेत्रों में जनजातीय जनसंख्या के संकेन्द्रण के निम्नलिखित कारण है-दूर क

(i) घने वनों में जनजातियों के लिये पर्याप्त जल की प्राप्ति।

(ii) वनों से कन्द-मूल एवं फलों की प्राप्ति। e f g

(iii) वस्त्र के लिये वृक्षों की छाल एवं पत्तियों की उपलब्धता।

(iv) आवास एवं घरेलू उपयोग हेतु पर्याप्त मात्रा में लकड़ी की प्राप्ति।

(v) कृषि हेतु विस्तृत भूमि।।

(vi) सुरक्षा एवं अनुकूल पर्यावरण।

(vii) पशुचारण एवं आखेट हेतु पर्याप्त जीव जन्तु एवं चारागाह।

(viii) शीत मरुस्थलों में समूह वाले जानवर एवं मछलियों की उपलब्धता।

(ix) ऊष्ण मरुस्थलों में मरुघानों से आवश्यकता की वस्तुओं की प्राप्ति।

(x) स्वतंत्र एवं एकाकी जीवन।

(xa) सांस्कृतिक सुरक्षा आदि कारणों से जनजातियों का संकेन्द्रण उपरोक्त क्षेत्रों में पाया जाता है।

म.प्र. में जनजातियों का संकेन्द्रण

Concentration of Tribes of Madhya Pradesh)

म.प्र. में देश की सर्वाधिक जनजातियाँ रहती हैं। अगर जनजातियों की उपजातियों को मुख्य जाति के साथ रखें तो भी यहाँ कुल 46 जनजातियों का संकेन्द्रण पाया जाता है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार इनकी कुल संख्या 120 लाख थी जो बढ़कर 1991 में 154 लाख हो गयी। यह जनसंख्या देश की कुल जनजातियों की जनसंख्या का एक चौथाई (22.7 प्रतिशत) से अधिक है और इस दृष्टि से यह राज्य देश में प्रथम स्थान पर है। जनजातियों की जनसंख्या इस राज्य की कुल जनसंख्या की भी लगभग एक-चौथाई (23.3%) है। सन् 1981 में यह हिस्सा केवल 22.97% था। कुल जनसंख्या में जनजातियों के हिस्से की दृष्टि से यह राज्य नौवें स्थान पर आता है। उससे अधिक अनुपात वाले राज्य एवं केन्द्र शासित क्षेत्र हैं। मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, अरूणाचल प्रदेश, दादरा नगर हवेली, लक्षद्वीप एवं मिजोरम।

अधिकांश अनुसूचित जनजातियाँ इस राज्य में बाहर से आयी हैं। शायद प्रारंभ में ये लोग समतल एवं उपजाऊ भू-भाग में रहते थे। बारहवीं शताब्दी तक जब राजपूतों ने मध्य भारत पर आधिपत्य जमाया तब इन आदिवासियों का ही यहाँ स्थायित्व था। यहाँ तक की सोलहवीं शताब्दी तक गोंड लोगों के राज्य महाकौशल क्षेत्र में विद्यमान थे। बाद में दिल्ली शासक मुगल बादशाहों ने इन पर आधिपत्य कर लिया। इन प्रक्रियाओं

के कारण जनजातियाँ स्वयं सुरक्षित स्थानों में चली गयीं अथवा आक्रामकों द्वारा कठिन एवं अगम्य क्षेत्रों में ढकेल दी गयीं। पहाड़ी और जंगली क्षेत्र न केवल सुरक्षा की दृष्टि से बल्कि संस्कृति के संरक्षण की दृष्टि से भी उपयुक्त थे। आज

भो उनजातियों और वन एवं पहाड़ी क्षेत्रों के घनिष्ठ संबंध है। इनका आधा भाग इन दुर्गम वनप्रांतों में रहता है जिसके कारण बनवासी की उपाधि भी इन्हें दी जाती है। ये क्षेत्र उबड़-खाबड़ है तथा यहाँ की मिट्‌टियों छिछली और कम उपजाऊ है जिन पर वन फैले रहे है। धरातल की इन विशेषताओं का प्रभाव न केवल इनके संकेन्द्रण पर पड़ा है बल्कि जनजातियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन के सभी पक्ष इसी का परिचय प्रतीत होते हैं।

तालिका-1.1

भारत के राज्यों एवं केन्द्र शासित क्षेत्रों में जनजातियों का संकेन्द्रण 1991

राज्य	जनजातीय जनसंख्या	राज्य की कुल जनसंख्या का प्रतिशत	देश की कुल जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत
भारत	67,758,380(+)	8.00	100.00
आन्ध्रप्रदेश	4,199,481	6.31	6.20
अरुणाचल प्रदेश	550,351	63.66	0.81
असम	2,474,441	11.04	3.65

बिहार	6,616,914	7.66	9.76
गुजरात	6,161,775	16.13	9.09
गोवा	376	0.03	-
हिमाचल प्रदेश	218,349	4.80	0.32
कर्नाटक	1,915,691	4.26	2.83
केरल	320,967	1.10	0.47
मध्यप्रदेश	15,399,034	23.27	22.73
महाराष्ट्र	7,318,281	9.27	10.80
मणिपुर	632,173	34.41	0.93
मेघालय	1,517,927	85.53	2.24
मिजोरम	653,565	94.57	0.96
नागालैण्ड	1,060,822	87.70	1.57
उड़ीसा	7,032,214	22.21	10.38
राजस्थान	5,474,881	12.44	8.08
सिक्किम	90,901	22.36	0.13
तमिलनाडु	574,194	1.03	0.85
त्रिपुरा	853,345	30.95	1.26

उत्तरप्रदेश	287,901	5.59	0.42
पश्चिम बंगाल	3,808,760	9.54	5.62
अंडमान निकोबार	26,770	78.99	0.16
दादरा नगर हवेली	109,380	11.54	0.02
दमन-द्वीप	11,724	-	-
लक्षद्वीप	48,163	93.15	0.07

(-) जम्मू कश्मीर को छोड़कर, क्योंकि वहीं 1991 में जनगणना नहीं की जा सकी।

जनजातीय जनसंख्या का संकेन्द्रण-

यद्यपि राज्य के सभी भागों में जनजातियों का संकेन्द्रण पाया जाता है, परन्तु उनके प्रधान क्षेत्र राज्य के पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र हैं। ऐसे क्षेत्रों में दक्षिणी भाग में छत्तीसगढ़ राज्य का बस्तर का पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र म.प्र. राज्य की सतपुड़ा की श्रृंखलाएँ, उत्तर पूर्वी भाग में बघेलखण्ड पठार तथा उससे लगा राजगढ़ का पहाड़ी क्षेत्र तथा पश्चिम में धार एवं झाबुआ के पहाड़ी क्षेत्र प्रमुख है। जनजातियों का इन क्षेत्रों में संकेन्द्रण निम्न विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है:-

जिलेवार जनजातियों की जनसंख्या का संकेन्द्रणा

जनजातियों का संकेन्द्रण म.प्र. एवं छत्तीसगढ़ राज्य में असमान है। उपरोक्त राज्यों की लगभग एक चौथाई जनजातीय जनसंख्या केवल तीन जिलों में संकेन्द्रित है और आधी से अधिक (50.92%) आठ जिलों में संकेन्द्रित हैं। बस्तर छत्तीसगढ़ राज्य का सबसे अधिक जनजाति संकेन्द्रण वाला जिला जहाँ 1991 में 15.3 लाख अनुसूचित जनजाति के लोग संकेन्द्रित थे जो राज्य की कुल जनजातीय जनसंख्या के 9.93 प्रतिशत है।

इसके अलावा सरगुजा जिले में भी 11.2 लाख (7.26 प्रतिशत) अनुसूचित जनजाति के लोग रहते हैं। राज्य के नौ ऐसे जिले हैं जहाँ अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 5.0 लाख से 10.0 लाख तक है। ये जिले क्रमशः है :- झाबुआ, खरगोन, बिलासपुर, राजगढ़, शहडोल, मंडला, धार, रायपुर और छिन्दवाड़ा। प्रत्येक जिले में राज्य की 3.5 प्रतिशत से लेकर 6.3 प्रतिशत तक जनजातीय जनसंख्या रहती है। कुल मिलाकर इन जिलों में राज्य के 64 प्रतिशत जनजातीय लोग रहते हैं।

अन्य छः जिलों (जबलपुर, बैतूल, सीधी, खण्डवा, सिवनी और राजनांदगाँव) में अनुसूचित जनजातियों

की संख्या 3 से 5 लाख व्यक्ति तक है। इन जिलों में राज्य की कुल आदिम जातीय जनसंख्या का 16 प्रतिशत है। कुल 15 ऐसे जिले हैं जिसमें प्रत्येक में एक से तीन लाख तक अनुसूचित जनजाति के लोग रहते हैं। ये जिले है :- बालाघाट, दुर्ग, रतलाम, होशंगाबाद, रीवा, सतना, गुना, देवास, सागर, शिवपुरी, रायसेन, दमोह, पन्ना, नरसिंहपुर एवं इन्दौर। इन जिलों में वहाँ की कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का अनुपात काफी कम है तथापि कुल मिलाकर राज्य के लगभग एक छठमांस (16.6%) जनजातीय लोगों का संकेन्द्रीण इन जिलों में पाया जाता है।

शेष 13 जिलों में से प्रत्येक में एक लाख व्यक्ति से कम अनुसूचित जनजाति के हैं इनमें से केवल तीन जिलों में 50 हजार से 1 लाख और 10 जिलों में 50 हजार से कम लोग जनजातीय समुदायों के हैं। ये जिले बुन्देलखण्ड, मालवा का पठार एवं मध्य भारत क्षेत्र के हैं। सबसे कम भिण्ड जिले में इन समुदायों के केवल 3291 व्यक्ति (1991) थे। इस प्रकार दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी भागों में ही जनजातियों का भारी संकेन्द्रण पाया जाता है।

उल्लेखनीय है कि प्रस्तावित छत्तीसगढ़ राज्य में सन् 1991 में राज्य के जिले आते थे जिनकी संख्या सन् 1998 में पुनर्गठन के बाद 16 हो गयी है। इन जिलों में सन् 1991 में कुल जनजातीय जनसंख्या 571724 है जो म.प्र. राज्य की 37.13 प्रतिशत थी। इन जिलों की कुल जनसंख्या 17614928 है। इस प्रकार प्रस्तावित प्रदेश की लगभग 1

तिहाई (32.46 प्रतिशत) जनसंख्या जनजातियों की है। यह अनुपात अविभाजित म.प्र. से काफी अधिक है।

संकेन्द्रण सूचकांक

(Concentration Index)

जनजातियों के वितरण का यह स्वरूप "संकेन्द्रण सूचकांक" के द्वारा भी समझा जा सकता है राज्य की कुल जनजातीय जनसंख्या में से जिले की जनजातियों की जनसंख्या के प्रतिशत हिस्से को "संकेन्द्रण सूचकांक" कहते हैं। जैसे कि बस्तर जिले में जनजातीय जनसंख्या 1529888 है जो राज्य की कुल जनजातीय जनसंख्या (15399034) का 9.93 प्रतिशत तक है। यही बस्तर जिले का संकेन्दरण सूचकांक होगा। जिलेवार सूचकांक भिण्ड में केवल 0.02 प्रतिशत से लेकर बस्तर में 9.93 प्रतिशत तक है। संकेन्द्रण के विभिन्न वर्गों में आने वाले जिलों की सूची निम्न तालिका में प्रस्तुत है

तालिका 1.2

म.प्र. की कुल जनजातीय जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार जिलों का विवरण, 1991

राज्य की कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या के प्रतिशत वर्गीकरण

राज्य की कुल अ.ज.जा. जनसंख्या के प्रतिशत वर्ग	जिलों की संख्या	कुल अ.ज.जा. का प्रतिशत	समुच्चयी प्रतिशत	जिलों के नाम
5.0 से अधिक	8	50.93	50.93	बस्तर, सरगुजा, झाबुआ, खरगौन, बिलासपुर,

				राजगढ़, शहडोल, मण्डला
30 से 50	4	15.74	66.67	धार, रायपुर, छिंदवाड़ा, जबलपुर
2.0 से 30	5	12.84	79.51	- बैतूल, सीधी, खण्डवा, सिवनी, राजनांदगाँव,
1.0 से 2.0	8	11.37	90.88	- बालाघाट, दुर्ग, रतलाम, होशंगाबाद
0.5 से 10	9	6.43	97.31	
0.25 से 0.50	6	1.83	99.14	मंदसौर, छतरपुर, विदिशा, भोपाल, ग्वालियर, टीकमगढ़
0.25 से कम	5	0.87	100.01	राजगढ़, उज्जैन,

				शाजापुर, दतिया, भिण्ड

इस प्रकार राज्य की सर्वाधिक जनजातीय जनसंख्या बस्तर (9.93 प्रतिशत) में रहती है। दूसरा स्थान सरगुजा जिले का (7.26 प्रतिशत) है। झाबुआ का (6.29 प्रतिशत) तीसरा और खरगौन (6.09 प्रतिशत) चौथे स्थान पर है। राज्य की कुल जनजातीय जनसंख्या का पाँच प्रतिशत से अधिक हिस्सा आठ जिलों में है इन आठ जिलों में राज्य की आधे से अधिक जनजातीय जनसंख्या रहती है। अगले चार जिलों में 3.0 से 5.0 प्रतिशत तक जनजातीय जनसंख्या है। इस तरह इन बारह जिलों में दो तिहाई से अधिक (66.7 प्रतिशत) आदिवासी रहते है। ये जिले राज्य के दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी भागों में स्थित हैं और देश के पूर्वी तथा पश्चिमी जनजातीय क्षेत्रों से जुड़े हैं। ऐसे पाँच जिले हैं जहाँ राज्य की दो से तीन प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या संकेन्द्रित है और राज्य के एक से दो प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या वाले अन्य आठ जिले हैं इन अन्य तेरह जिलों में कुल मिलाकर राज्य के एक चौथाई आदिवासी रहते हैं। इस तरह राज्य के 25 जिलों में 90.9 प्रतिशत आदिवासी संकेन्द्रित है। शेष 20 जिलों में केवल एक दशमांश (9.1%) आदिवासी है इससे स्पष्ट है कि जनजातियाँ केवल कुछ भागों में ही संकेन्द्रित है।

की - हे

तालिका 1.3

मध्यप्रदेश : दो लाख से अधिक जनजातीय जनसंख्या वाले जिलों में जनजातीय जनसंख्या, 1991

जिलेवार जनसंख्या विवरण

जिला	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
बस्तर	1,529,888	759,024	770,864

सरगुजा	1,117,577	565,719	551,858
झाबुआ	968,372	487,612	480,760
खरगौन	937,710	475,350	462,360
बिलासपुर	873,741	436,217	437,524
राजगढ़	821,477	407,056	414,421
शहडोल	807,764	408,578	399,186
मण्डला	785,587	390,581	395,006
धार	731,272	369,818	361,454
रायपुर	714,027	352,561	361,466
छिंदवाड़ा	540,708	270,685	270,023
जबलपुर	474,466	241,683	232,783
बैतूल	443,132	221,392	221,740
सीधी	418,004	214,925	203,079
खण्डवा	383,231	195,255	187,976
सिवनी	369,827	184,414	185,413
राजनांदगाँव	362,355	177,703	184,652
बालाघाट	298,665	147,810	150,855

दुर्ग	298,059	147,768	150,291
रतलाम	226,156	114,695	111,461
होशंगाबाद	220,038	113,673	106,365
सतना	202,412	104,692	97,720

जिले की कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का संकेन्द्रण (1991)

राज्य की कुल जनसंख्या में से लगभग एक चौथाई (23.3 प्रतिशत) जनजातियों की जनसंख्या संकेन्द्रित है। राज्य के 15 जिलों में जनजातियों का प्रतिशत राज्य के इस औसत से अधिक है। कुल जनसंख्या में जनजातियों का सर्वाधिक हिस्सा झाबुआ में (85.7 प्रतिशत) है। उल्लेखनीय है कि इन समुदायों की वास्तविक जनसंख्या की दृष्टि से यह जिला तीसरे स्थान पर है। अनुपात में दूसरा स्थान बस्तर (67.4 प्रतिशत) है। जहाँ अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या सबसे अधिक है। मण्डला तीसरे स्थान पर है जहाँ जिले की कुल जनसंख्या में (60.8 प्रतिशत) जनजातियाँ हैं। सरगुजा (53.79 प्रतिशत) और धार (53.5 प्रतिशत) में भी कुल जनसंख्या का आधे से अधिक हिस्सा जनजातियों का है जबकि रायगढ़ शहडोल और खरगौन जिलों की 40% से अधिक जनसंख्या इन्हीं की है। सिवनी, बैतूल, छिन्दवाड़ा और सीधी में 30-40 प्रतिशत तथा खण्डवा, राजनांदगाँव और रतलाम जिलों में 23.3 से 30 प्रतिशत लोग अनुसूचित जनजाति के हैं। इस प्रकार राज्य के उन सभी जिलों में जनजातियों का हिस्सा राज्य के औसत से अधिक है। जहाँ इनकी जनसंख्या 3 लाख व्यक्तियों से अधिक रही है। रायपुर, बिलासपुर, जबलपुर इसके अपवाद है। जहाँ तीन लाख से अधिक अनुसूचित जनजातियों के होते हुए भी इनका कुल जनसंख्या में हिस्सा 23.3% से कम है। यह जिलों के बड़े आकार के कारण है। नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण भी इन जिलों में गैर आदिवासी जनसंख्या का संकेन्द्रण अधिक है। तथापि इन जिलों के पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में जनजातियों का हिस्सा अधिक है।

संक्षेप में बस्तर पठार, बघेलखंड पठार, मैकल पठार, सतपुड़ा क्षेत्र, निमाड़ क्षेत्र तथा धार झाबुआ पहाड़ी क्षेत्र ही जनजातियों के संकेन्द्रण के मुख्य क्षेत्र है। मुख्य जनजातीय पेटियों से लगे जिलों में दस से 23.3 प्रतिशत तक लोग अनुसूचित जनजातियों के हैं। ऐसे जिले दो भागों में फैले है। इनकी महत्वपूर्ण पेटी पश्चिम में देवास से प्रारम्भ होकर मालवा के दक्षिणी सीमांत पर स्थित विंध्याचल पर्वत वाले एवं नर्मदा घाटी के जिलों से होकर रीवा पठार के पूर्वी भाग में स्थित रीवा जिले तक फैली है। इस पेटी में 10 जिले हैं। इन जिलों में से अकेले जबलपुर जिले में ही 4.74 लाख लोग अनुसूचित जनजाति वर्ग के है। परन्तु इनका कुल जनसंख्या में अनुपात केवल 17.9 प्रतिशत है। देवास, होशंगाबाद, रायसेन, सतना और रीवा में प्रत्येक जिले में 1.5 लाख से 2.20 लाख तक अनुसूचित जनजातियों की संख्या है। नरसिंहपुर, सीहोर, दमोह और पन्ना में इससे कम है।

छत्तीसगढ़ के केन्द्रीय जिलों बिलासपुर, रायपुर और दुर्ग में भी इनका अनुपात क्रमशः 23.0, 18.3 और 12.4 प्रतिशत है। इन जिलों में औद्योगिक विकास और नगरीकरण की तीव्र वृद्धि के कारण ही इनका अनुपात कम है। इन क्षेत्रों से बाहर बालाघाट (21.9 प्रतिशत), गुना (12 प्रतिशत), शिवपुरी (11.3 प्रतिशत) भी उल्लेखनीय है। अन्य जिलों में यह अनुपात 10% से कम है। ये जिले अल्प जनजातीय क्षेत्र हैं। वास्तव में, इन जिलों में अनुसूचित जातियों का प्रतिशत अपेक्षा से अधिक है।

विकासखण्ड वार जनजातीय जनसंख्या का संकेन्द्रण

कुल जनसंख्या में आदिवासी जनसंख्या के अनुपात में जिले के अंदर भी काफी अंतर है। जैसे कि झाबुआ जिले में ही जनजातियों का अनुपात पेटलावद में 75.2 प्रतिशत से लेकर उदयगढ़ विकासखण्ड में 94.5% तक है। जिले का औसत 85.7% है। यही स्थिति बस्तर जिले में भी है। यहाँ कोयलीबेडा विकासखण्ड की कुल जनसंख्या में केवल 32.5 प्रतिशत ही आदिवासी है तो दूसरी और ओरछा 6 ब्लाक में 95.1 प्रतिशत आदिवासी हैं। राज्य स्तर पर कुल जनसंख्या में आदिवासियों का प्रतिशत भिण्ड जिले के मिहौना और मुरैना के पोरसा विकासखण्ड में लगभग शून्य से लेकर बस्तर के ओरछा (अबुझमाड़) विकासखण्ड में 95.1 प्रतिशत तक है।

राज्य के कुल 459 विकासखण्डों में से 216 विकासखण्डों में जनजातियों का अनुपात राज्य के औसत से अधिक है। इनमें भी 142 विकास खण्डों में अनुपात राज्य के औसत से दो गुने से भी अधिक है। इनका संकेन्द्रण बस्तर के पठार, बघेलखण्ड पठार, सरगुजा-रायगढ़ की पहाड़ियाँ, सतपुड़ा-मैकल पठार तथा धार-झाबुआ के पहाड़ी क्षेत्रों में है। 149 विकासखण्डों में जनजातियों का हिस्सा 11.7% (राज्य के औसत का 1/4) से कम है। ऐसे विकासखण्ड मालवा के पठार, मध्य भारत पठार और बुन्देलखण्ड क्षेत्र में फैले हैं। इन क्षेत्रों को अत्यल्प आदिवासी वाले क्षेत्र कहा जा सकता है।

आदिमजातियों के संकेन्द्र के आधार पर आदिवासी विकासखण्ड बनाए गए है। राज्य में ऐसे 174 आदिवासी विकासखण्ड हैं। इनमें से 171 विकासखण्डों में ही आदिवासी जनसंख्या का अनुपात राज्य के औसत से अधिक है। इस प्रकार राज्य के औसत से अधिक आदिवासी जनसंख्या वाले 45 शेष विकासखण्ड आदिवासी विकासखण्ड नहीं बनाये जा सके। दूसरी और 3 ऐसे विकासखण्डों को आदिवासी घोषित किया गया जहाँ आदिवासी जनसंख्या का अनुपात राज्य के औसत से बहुत कम है। ये ब्लाक हैं: धार, खरगौन और नोगाँव। इन विकासखण्डों का विभिन्न वर्गों में वितरण सामान्य है। कुल 112 विकासखण्डों में 50 से 80 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासी है जबकि 31 विकासखण्ड में 50 से कम और 33 विकासखण्डों में 80 प्रतिशत से अधिक आदिवासी हैं।

अनुसूचित जनजातियों का संकेन्द्रण घनत्व

इस राज्य में 1981 में प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर औसत रूप से 118 व्यक्ति रहते थे जिनमें 27 व्यक्ति जनजाति समुदाय के थे। सन् 1991 में यह घनत्व क्रमशः 149 व्यक्ति और 35 जनजातीय व्यक्ति प्रति वर्ग कि०

मीटर हो गया। इस औसत घनत्व में काफी क्षेत्रीय अंतर है। यह भिण्ड में प्रति दस वर्ग किलोमीटर पर 3 व्यक्ति से लेकर झाबुआ में प्रति वर्ग किलोमीटर 143 व्यक्ति तक है। यह उल्लेखनीय है कि जनजाति बहुल अधिकांश जिले विरल जनसंख्या वाले जिले हैं। जनजातियों के घनत्व का संबंध जिले की जनजातीय जनसंख्या और जिले के क्षेत्रफल से है। राज्य के तीन जिलों-झाबुआ (143), धार (90) और खरगौन (70) जिलों में प्रति वर्ग किलोमीटर जनजातियों का घनत्व औसत के दोगुने से अधिक है। डेढ से

दो गुने घनत्व वाले तीन जिले हैं- रायगढ़ (64), मंडला (59) और शहडोल (58)। इनसे लगे हुए ग्यारह ऐसे जिले हैं जहाँ राज्य के औसत के डेढ़ गुने तक घनत्व है। इन अधिक जनजातीय घनत्व वाले जिलों में कुल जनसंख्या में इनका हिस्सा भी राज्य के औसत से अधिक है। केवल जबलपुर और दुर्ग में कम अनुपात होते हुए भी अधिक घनत्व है। यह इन जिलों में अनुसूचित जनजातियों की भारी जनसंख्या के कारण है। इसके विपरीत राजनांदगाँव में अधिक अनुपात होते हुए भी घनत्व का यह प्रतिरूप भी अनुसूचित जनजातियों के कुछ भागों में एकत्र होने के तथ्य को उजागर करता है।

जनजातीय संकेन्द्रण क्षेत्र

उपर्युक्त विश्लेषणों से जनजातियों का कुछ क्षेत्रों में संकेन्द्रण होना स्पष्ट हो जाता है। इन संकेन्द्रणों को जनजातीय क्षेत्र कहा जाता है राज्य में जनजातियों के संकेन्द्रण के निम्न पाँच क्षेत्र हैं। इन्ही क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति विकासखण्ड स्थापित किये गये हैं।

तालिका 1.5

मध्यप्रदेश: जनजातीय संकेन्द्रण क्षेत्रों का विस्तार (1991)

क्षेत्र	जिला	अनु.ज.जा. जनसंख्या	जिले की कुल जनसंख्या का प्रतिशत	राज्य की अ.ज.जा. जनसंख्या का प्रतिशत
दक्षिण	बस्तर	152988	67.36	9.93
	दुर्ग	298059	12.43	1.94
	राजनांदगाँव	362355	25.16	2.35
	रायपुर	714027	18.27	4.64
पूर्वी	सरगुजा	1117577	53.66	7.20

	बिलासपुर	873741	23.03	5.37
	रायगढ़	821477	47.70	5.33
उत्तरपूर्वी	शहडोल	807774	46.32	5.25
	सीधी	418004	30.43	2.71
दक्षिण मध्य	मंडला	785587	60.84	5.10
	बालाघाट	298665	21.87	1.94
	सिवनी	369827	36.95	2.40
	छिंदवाड़ा	540708	34.47	3.51
	बैतूल	443132	37.51	2.88
	होशंगाबाद	220038	17.36	1.43
पश्चिमी	खण्डवा	383231	26.77	2.49
	खरगौन	937710	46.23	6.09
	धार	711272	53.48	4.75
	झाबुआ	968372	85.67	6.29
	रतलाम	226156	23.27	1.47
कुल राज्य		15399034	23.27	100.00

प्रमुख जनजातियों का संकेन्द्रण (1981)

अनुसूचित जनजातीय जनसंख्या विविध समुदायों का समूह है। जनगणना के उद्देश्य से इन समुदायों को 46 समूहों में रखा जाता है। इन्हीं समूहों के अनुसार विभिन्न जनजातियों की जनसंख्या के आँकड़े मिलते हैं। इन जनजातीय समूहों में गोंड सदसे प्रमुख हैं। इस जनजाति में 66 से अधिक उपजातियाँ सम्मिलित की गई है। इन सभी को मिलाकर गोंड समुदाय की कुल जनसंख्या 1981 में 53.5 लाख थी। जो सभी जनजातीय जनसंख्या का 44.6 प्रतिशत है। दूसरा स्थान भील (भिलाला, बरेला, पटेलिया सहित) जनजाति का है जो कुल जनजातीय जनसंख्या का एक पंचमांश (20.9%) से अधिक है। इन दो समुदायों की तुलना में अन्य जनजातीय समुदाय काफी छोटे है। इनमें क्रमशः कंवर, सहरिया, बैगा, हलवा, भूरिया और कोल ऐसी जनजातियाँ है जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या कुल जनजातीय जनसंख्या की एक से पाँच प्रतिशत तक है। इसके अलावा भतरा, विंझवार, उरॉव, सौर, कुरक, सवर, अगरिया, पनिका, सोन, धनवार, परधान, कमर, कौरवा और खैरवार भी अपेक्षा से बड़े जनजातीय समुदाय हैं। शेष में से माँझी, मवासी, कीर, भुजिया, परधी, बियार, पाओ, खरिया और मझवार जनजातियाँ भी उल्लेखनीय है। अन्य जनजातियों की जनसंख्या पाँच हजार व्यक्ति से कम थी

मध्यप्रदेश - प्रमुख जनजातियाँ एवं उनके संकेन्द्रण के क्षेत्र

जनजातियों की जनसंख्या (1981)

जनजाति	जनसंख्या	प्रतिशत	संकेन्द्रण वाले जिले
गोंड	5349883	44.63	संपूर्ण मध्यप्रदेश। धार, झाबुआ, रतलाम, खरगौन, खण्डवा।
भील-भिलाला	2505888	20.00	धार, झाबुआ, खरगौन।
कवर	562200	4.69	रायगढ़, बिलासपुर, सरगुजा।

सहरिया	261816	2.18	शिवपुरी, मुरैना, ग्वालियर।
बैगा	248949	2.07	शहडोल, मंडला, सीधी।
हलबा	236375	1.97	दुर्ग, बस्तर, राजनांदगाँव।
भूरिया	195490	1.63	जबलपुर, मंडला।
बेल	123811	1.03	सतना, रीवा, शहडोल।
भतरा	117297	0.97	बालाघाट, बिलासपुर।
बिंझवार	92059	0.76	दुर्ग, बस्तर।
उराँव	88819	0.74	सरगुजा, रायगढ़।
सदर	68034	0.56	शहडोल, मंडला।
कोरकू	66781	0.55	सिवनी, छिंदवाड़ा।
सवर	63773	0.53	रायपुर।
अगरिया	55767	0.46	शहडोल, सीधी।
पनिका	52979	0.44	सागर, छतरपुर।
सौर	48654	0.40	शहडोल, सीधी।
धनवार	34386	0.30	सागर, छतरपुर।
परधान	18234	0.15	बिलासपुर, सरगुजा।

कमर	17517	0.15	सिवनी, छिंदवाड़ा।
कोरवा	15340	0.13	सरगुजा, रायगढ़।
खैरवार	14374	0.12	सरगुजा, सीधी।
कुल	11987031	100	

इनमें गोंड ही ऐसी जनजाति है जो सभी जनजातीय पेटियों में पाई जाती है। फिर भी दक्षिणपूर्वी म.प्र. इनका मुख्य क्षेत्र है। इनके अलावा अन्य जनजातियों के निवास के सीमित और निश्चित क्षेत्र हैं। जैसे कि भील और भिलाला पश्चिमी क्षेत्र में, कंवर छत्तीसगढ़ के सीमान्त पहाड़ी भागों में, सेहरिया उत्तर पश्चिमी म.प्र. और बैगा मंडला और बघेलखण्ड पठार में रहते हैं। कोलों का मुख्य क्षेत्र रीवा के आसपास वाला है। कोरकू मध्य सतपुड़ा क्षेत्र के वासी है। सउर और सौर बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जनजातियाँ हैं, परन्तु अन्य जनजातियाँ दक्षिणी और पूर्वी म.प्र. में रहती है, जैसे कि हलबा उत्तरीय बस्तर और दक्षिणी छत्तीसगढ़, भूरिया पूर्वी सतपुड़ा और बघेलखण्ड पठार, भतरा केवल बस्तर और उराँव सरगुजा और रायगढ़ के पंहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं। इस प्रकार पूर्वी भाग में बहुसंख्यक जनजातियाँ रहती है।

जनजातीय क्षेत्र

(Tribal Area)

भारत में आदिम जनजातियों की जनसंख्या विश्व में अफ्रीका को छोड़कर सर्वाधिक है। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में आदिम जनजातियों की संख्या 51.6 मिलियन हैं, जो देश की कुल जनसंख्या का 7.67 प्रतिशत है। जनजातियों का सर्वाधिक संकेन्द्रण ग्रामीण क्षेत्रों में 48.42 मिलियन तथा नगरीय क्षेत्र में 3.20 मिलियन जनसंख्या आदिम जनजातियों की है। इनमें लगभग 450 से अधिक समुदाय जनजातियों की सूची में

सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ समुदाय वृहद जनजातियों की उप जनजातियाँ हैं। देश में विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में जनजातियाँ असमान रूप से संकेन्द्रित है। सम्पूर्ण देश में 35 राज्य तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में जनजातियों का संकेन्द्रण कम या अधिक रूप में पाया जाता है। जम्मू एवं काश्मीर, सिक्किम तथा हरियाणा एवं केन्द्र प्रशासित दिल्ली, चण्डीगढ़ एवं पांडीचेरी में जनजाति नहीं है।

भारत वर्ष में अनुसूचित जनजातियों का वितरण धरातलीय विषमता के कारण असमान पाया जाता है। जनजातियों का सर्वाधिक संकेन्द्रण देश के उत्तरी-पूर्वी राज्यों आसाम, अरुणांचल प्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय तथा मिजोरम में सर्वाधिक है। नागालैण्ड तथा मिजोरम में 90 से 100 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासियों की है। उत्तरी-पूर्वी हिमाचल प्रदेश, उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत में जनजातीय जनसंख्या का संकेन्द्रण तुलनात्मक रूप से कम है। दक्षिण भारत में तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक राज्यों में तुलनात्मक रूप से आदिवासियों का संकेन्द्रण कम पाया जाता है। भारत के मध्यवर्ती तथा पूर्वी भाग इनमें पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा आन्ध्रप्रदेश में अपेक्षाकृत सघन संकेन्द्रण हैं। इसके अलावा देश के पश्चिमी राज्यों जिसमें राजस्थान, गोवा, दमन- द्वीव दादरा एवं नगर हवेली तथा महाराष्ट्र एवं अण्डमान निकोबार द्वीप समूह तथा लक्ष्यद्वीप में भी आदिवासी जनसंख्या का संकेन्द्रण अधिक देखने को मिलता है।

इसके अलावा देश में कुछ राज्यों के जिलों में इनका अभाव है। हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा, कुल्लू, शिमला मध्यप्रदेश में सागर, दमोह, महाराष्ट्र में बुलढाना, अकोला, वर्धा, नागपुर, भंडारा तथा उत्तरप्रदेश में हमीरपुर के कुछ क्षेत्रों में हैं। उत्तर प्रदेश के मैनपुरी, जालौन, बाराबांकी, प्रतापगढ़, फैजाबाद, सुल्तानपुर, जौनपुर में कुछ थोड़ी जनजातियाँ हैं तथा वे अस्थायी रूप से अप्रवासित हुई हैं। हिमाचल प्रदेश में अधिक जनजातियाँ उत्तरी- पूर्वी भागों में संकेन्द्रित है। इनमें चाम्बा जिले में पंगी तथा ब्रामपुर तहसील, लाहुल तथा स्पीति जिले में लाहुल तथा स्पीति हांगरांग पो मोरांग, कालपा, नाचेर तथा किन्नर जिले में संगाला हैं। ये सभी तहसीलें जम्मू-कश्मीर तथा चीन (तिब्बत) के उत्तरी-पश्चिमी तथा दक्षिणी पूर्वी सीमावर्ती क्षेत्रों में स्थित हैं। यहाँ जनजातियों का अधिक

संकेन्द्रण मुख्यतः 2400 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में है। यह हिमाचल प्रदेश की कुल भूमि का लगभग 50 प्रतिशत भाग में विस्तृत है तथा यह चीन तथा जम्मू कश्मीर की सीमा पर स्थित है। अतएव निम्न संकेन्द्रण मुख्यतः मध्यम धरातल जहाँ ऊँचाई 600 मीटर से 2400 मीटर के मध्य है एवं चिनाव, रावी तथा सतलज नदी घाटियों में स्थित हैं।

देश के कुछ भागों में अधिक जनजातियों के संकेन्द्रण वाले क्षेत्र फैले हुए है। इसमें प्रमुखतः उत्तरी-पूर्वी हिमाचल प्रदेश, बस्तर, रांची, पालामाऊ, सरगुजा (पूर्वी घाट के समीप) डॉग बल्साड पंचमहल (पश्चिमी समुद्र तटवर्ती भाग के निकट) सवाई माधोपुर, तांक, कोटा, जयपुर (राजपूत अग्रभूमि का पूर्वी भाग) तथा लक्षद्वीप अन्य प्रमुख क्षेत्र है। जहाँ सापेक्षित रूप से जनजातियों का अधिक संकेन्द्रण हुआ है। हिमाचल प्रदेश का उत्तरी- पूर्वी सीमावर्ती भाग देश का उत्तरी तथा उत्तरी-पश्चिमी भाग में जनजातीय जनसंख्या का निम्न संकेन्द्रण मिलता है।

भारत में पूर्वोत्तर क्षेत्र में जनजातियों का अधिक संकेन्द्रण हुआ है। इन क्षेत्रों में अधिक संख्या में मिजोरम

मंथ सूची

तथा नागालैण्ड में अधिकांश जनसंख्या जनजति का इन राज्यों में क्रमशः 93.55 तथा 8.3.90 प्रतिशत है। इसके अलावा लीग (93.22 प्रतिशत) नेपाल (80.58 प्रतिशत) दादरा एवं नगर हवेली (78.82 प्रतिशत) अरुणांचल प्रदेश (6932 प्रतिशत) प्रमुख है। हिमाचल पर्वत श्रृंखलाओं के दक्षिण के पर्वतीय एवं तराई क्षेत्र में 215 से भी अधिक आदिवासी जनजातियों पाई जाती है। अरुणाचल प्रदेश 110. असम में 23. मणिपुर में 28, त्रिपुरा में 18, मेघालय में 12, मिजोरम में 12, नागालैण्ड में 5 उत्लादेश के पर्वतीय (उत्तराखण्ड) में 5 एवं हिमाचल प्रदेश में 7 जनजातियों पाई जाती है।

मध्यप्रदेश में मध्य भारत के सभी आदिवासी समूहों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व है। 1981 में 119.87 लाख है। यह देश की कुल जनजाति का लगभग एक चौथाई है। प्रदेश की कुल जनसंख्या में 22.79 प्रतिशत जनजाति है तथा आदिवासी बहुल क्षेत्र लगभग 40

प्रतिशत है। प्रदेश की कुल जनजाति का लगभग 119.87 में 87.70 लाख जनजाति 4 जिलों में सम्पूर्ण भाग में और 31 जिलों के आंशिक भागों में रहती है, जिनमें जनजातियों की बहुलता है। इन जनजातियों की संख्या प्रदेश की कुल जनजाति का 73.16 प्रतिशत है। प्रदेश के 35 जिलों में जनजाति बहुल क्षेत्रों की कुल जनसंख्या 1981 की जनगणना के अनुसार 147.25 लाख है, जिनमें जनजातियों की जनसंख्या 87.70 लाख है, जो जनजाति बहुल क्षेत्रों की कुल जनसंख्या का 59.56 प्रतिशत है।

मध्यप्रदेश में जनजाति बहुल क्षेत्रों के बाहर रहने वाली जनजातियों की संख्या 32.17 लाख है। यह संख्या देश के कुछ प्रदेशों की कुल जनसंख्या से भी अधिक है। जैसे आन्ध्रप्रदेश की जनजाति 31.76 लाख, पश्चिम बंगाल में 30.71 लाख और कर्नाटक 18.25 लाख जनसंख्या है। वस्तुतः मध्यप्रदेश में छितरे हुए जनजातियों को जनसंख्या (32.17 लाख) देश के 6 अन्य प्रदेशों हिमाचल प्रदेश, केरल, मणिपुर, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु और त्रिपुरा की कुल जनजाति (21.83 लाख) की जनसंख्या में भी अधिक है। यहाँ 46 जनजातियों है, जो 161 से अधिक जातीय समुदाय में विभाजित है। प्रदेश में कुल 76,603 गाँवों में 29,042 अथवा 37.91 प्रतिशत गाँव जनजाति बहुलता वाले क्षेत्रों में है। प्रदेश की 7 अनुसूचित जातियाँ अबुझमाड़िया और सहरिया, बैगा, मारिया, बिरहारे, कमार, कोरबा, है। इसमें प्रदेश में प्रमुख जनजातियों में गोड, भील, कोल तथा उरांव हैं।

मध्यप्रदेश की जनजातीय जनसंख्या इसके सभी जिलों में समान रूप से नहीं है। झाबुआ जिले में आदिम अनजातियों की कुल जनसंख्या में 83.5 प्रतिशत है। 4 अन्य जिलों में जनजाति जनसंख्या 50 से 70 प्रतिशत है। 9 जिलों में यह 25.50 प्रतिशत, 15 जिलों में 10.25 प्रतिशत जनजाति जनसंख्या है। प्रदेश के 16 अन्य जिलों में जनजाति जनसंख्या की कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत से भी कम है।

मध्यप्रदेश में जनजातियों में पर्याप्त क्षेत्रीय भिन्नता है। जनजाति समूहों को सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से निम्न पाँच भू-क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है-

1. उत्तरी-पूर्वी जनजाति क्षेत्र इसके अन्तर्गत सरगुजा, रायगढ़, बिलासपुर, सीधी जिला सम्मिलित है। इस क्षेत्र में भौगोलिक विशेषताओं में पर्याप्त भिन्नता है। सरगुजा जिले

के अधिकांश भाग और रायगढ़ जिले की सम्पूर्ण जशपुर तहसील पहाड़ी क्षेत्र है, जबकि शहडोल जिले का अधिकांश भाग समतल क्षेत्र है। केवल पुष्पराजगढ़ तहसील पहाड़ी क्षेत्र है। यहाँ पहाड़ियों की ऊँचाई 1000-4000 फीट के मध्य है। प्रमुख चोटियों सरगुजा में मैलन (4024) परताधरसा (3804) और रायगढ़ जिले की जशपुर तहसील में भारामुरको चोटी है। इस क्षेत्र में जनजाति समूहों में उरांव, कोरवास, कोल, कमार, पनिका प्रमुख है। यह क्षेत्र अनेक जनजातियों का घर है। सरगुजा की पहाड़ी तथा जशपुर में कोरवास निवासी करते हैं, जो प्रदेश की सर्वाधिक जनजातियों में से एक है। ओरांव एवं कमार इन जिलों में अपेक्षाकृत समतल क्षेत्रों में रहते हैं। पुष्पराजगढ़ की अधिकांश जनजाति बैगा, कोरवास और मेना है। सीधी जिले एवं शहडोल जिले में पनिका जनजाति का अधिक संकेन्द्रण हुआ है।

2. मध्य जनजाति क्षेत्र : इस क्षेत्र में मण्डला, बैतूल, छिंदवाड़ा, सिवनी, बालाघाट, शहडोल एवं उनसे लगे हुए जिलों के क्षेत्र सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र अधिकांशतः पहाड़ी है तथा इनमें पर्याप्त क्षेत्रीय अंतराल है। छिंदवाड़ा तथा बैतूल जिलों में महादेव पहाड़ियों और पठारी भाग रायसेन मालवा की काली मिट्टी में सम्पन्न है। दक्षिण की और विध्यन पर्वन श्रृंखला की प्रमुख श्रेणी और नर्मदा की उपजाऊ घाटी स्थित है। यहाँ गोड, कोरकू, कोल और बैगा प्रमुख जनजातियों है।

3. दक्षिणा जनजाति क्षेत्र : इसमें बस्तर और रायपुर, दुर्ग और राजनांदगांव जिलों के दक्षिणी भाग सम्मिलित है। यह क्षेत्र धरातलीय बनावट की दृष्टि से असमान है। बस्तर में कठोर पहाड़ियों का पठार है। इन पहाड़ियों की कौंचाई लगभग 4000 फीट है। यहाँ प्रमुख जनजातियों में मारिया, मुड़िया, हलबा, दोदोती, मावरा और कमार

4. पश्चिम जनजाति क्षेत्र इस क्षेत्र में मध्यप्रदेश के पश्चिमी भाग, जिनमें झाबुआ, धार, खरगोन, खण्डवा, रतलाम और समीपवर्ती जिलों के क्षेत्र सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र मुख्यतः पहाड़ी और बंजर भूमि वाला है। यद्यपि क्षेत्र की सामान्य भू-रचना की दृष्टि से इसकी कुछ जनजातियाँ भिलाला और पातालिया है। भील एवं भिलाला जनजातियों का प्रमुख संकेन्द्रण झाबुआ जिले में है। इसके अलावा ये जातियाँ अलीराजपुर, धार एवं रतलाम जिले में भी है। झाबुआ जिले में चांदपुर एवं राजापुर में अधिकता है।

5. उत्तरी-पश्चिमी जनजाति क्षेत्र इस क्षेत्र में मुरैना, शिवपुरी, गुना एवं अन्य समीपवर्ती जिलों के क्षेत्र आते हैं। सहरिया इस क्षेत्र में रहने वाली प्रमुख जनजाति है। इस क्षेत्र में धरातल में पर्याप्त भिन्नता परिलक्षित होती है। इस प्रकार राज्य में जनजातियों के प्रमुख क्षेत्र बस्तर पठार, बघेलखण्ड पठार तथा रायगढ़ की पहाड़ियों, सतपुड़ा मेकल श्रेणी, धार उच्च क्षेत्र और नर्मदा घाटी में स्थित निमाड़ का मैदान है। इसमें निमाड़ को छोड़कर सभी भाग अत्यन्त कटे-फटे पहाड़ी सघन वन, छिछली अनुपजाऊ मिट्टी और अविकसित यातायात के भाग हैं।

उड़ीसा में जनजातियों का श्रम संकेन्द्रण हुआ है। उड़ीसा में मयूरभंज (57.67 प्रतिशत), सुन्दरगढ़ (51.25 प्रतिशत), समुद्री मैदानी भाग में स्थित पुरी में निम्नतम (3.45 प्रतिशत) है। इसके अलावा कटक (3.12 प्रतिशत) तथा बालासौर (6.84 प्रतिशत) में सभी जिले उड़ीसा समुद्र तटवर्ती मैदान में स्थित है। मयूरभंज (60.04 प्रतिशत) सुन्दरगढ़ (65.33 प्रतिशत) सम्बलपुर (29.89 प्रतिशत) तथा कोरापुट (6.02 प्रतिशत) सामान्यतः समुद्र तटवर्ती जिला पुरी में कम अनुपात है। इसके बाद कटक तथा बालासौर प्रमुख हैं। उड़ीसा के 13 जिले में 7 से अधिक प्रतिशत है। इनमें राज्य के औसत (22.4 प्रतिशत) से अधिक है। ये सभी जिले उड़ीसा जनजाति पट्टी में स्थित है, जो पूर्वी घाट से उत्तरी पूर्व से दक्षिण पश्चिम दिशा में फैला है। यह जनजाति पट्टी तीन भागों में विभक्त है। उत्तरपूर्व में मयूरभंज, उत्तर में सुन्दरगढ़ तथा उड़ीसा के दक्षिण पश्चिम में कोरापुट में है। इनमें मुख्य क्षेत्र में जनजाति जनसंख्या का 50 प्रतिशतसे अधिक है। जनजातीय क्षेत्र सीमित है। अधिक घनत्व वाले जनजाति क्षेत्रों में क्योंझर, उत्तर पूर्व में मयूरभंज से जुड़ा हुआ है। उत्तर में सुन्दरगढ़ से जुड़ा है। उड़ीसा में कुल जनसंख्या में 22.04 प्रतिशत जनजातियाँ, उत्तर में फुलबनी तथा कालाहांडी जिले उत्तरपूर्व के चारों ओर कोरापुट में केन्द्रीयकृत है। उड़ीसा में अधिक जनजातियों का संकेन्द्रण उत्तरी तथा दक्षिणी, दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र में निम्न जनजाति संकेन्द्रण महानदी की घाटी में हैं। निम्न जनजाति प्रदेश उड़ीसा के समुद्र तटवर्ती मैदान के आंतरिक भाग एवं निचले बेसिन में हैं। इन क्षेत्रों में निम्न जनजाति का संकेन्द्रण है। यह क्षेत्र मैदान डेल्टा का महत्वपूर्ण उपजाऊ भाग है। यहाँ सिंचाई सुविधाओं का पर्याप्त विकास हुआ है।

स्व प्रगति परीक्षण प्रश्न

हाँ या नहीं में उत्तर दीजिए। Answer in Yes or No:

1. मध्यप्रदेश में कुल जनसंख्या का जनजातीय प्रतिशत 20 से अधिक है।

2. प्रो. एस.सी. दुबे ने भारतीय जनजातियों के वितरण में हिमालय क्षेत्र शब्द का प्रयोग है।

3. मिजोरम में जनजातीय जनसंख्या 90 प्रतिशत से अधिक नहीं है।

4. पूर्वोत्तर भारत की तुलना में पश्चिमोत्तर भारत में जनजातियों का प्रतिशत अधिक है।

1.13 सार संक्षेप

अनुसूचित जनजातियां भारत के बहुसांस्कृतिक समाज का अभिन्न अंग हैं, जिनकी संस्कृति और परंपराएं विशिष्ट और मूल्यवान हैं। इस अध्याय में अनुसूचित जनजातियों की परिभाषा और विशेषताओं को समझाने के साथ-साथ उनके सामाजिक और भौगोलिक वितरण का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह स्पष्ट हुआ कि जनजातियां मुख्यतः आदिवासी क्षेत्रों में केंद्रित हैं, जो उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करते हैं।

भारत सरकार द्वारा जनजातीय समुदायों की भलाई के लिए विभिन्न संवैधानिक प्रावधान और नीतियां बनाई गई हैं। ये प्रावधान शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और महिला सशक्तिकरण जैसे क्षेत्रों में जनजातियों की स्थिति सुधारने का प्रयास करते हैं। विशेष रूप से जनजातीय महिलाओं को सशक्त करने और उनकी समस्याओं को हल करने के लिए कदम उठाए गए हैं। इस प्रकार, जनजातीय समुदायों की विशिष्टता को संरक्षित रखते हुए, उन्हें विकास की मुख्यधारा में लाने के प्रयास जारी हैं।

अध्याय एक अनुसूचित जनजाति अर्थ विशेषताएं जनजाती की परिचय आदिवासी क्षेत्र एवं जनजाति महिलाएं अनुसुची जनजाति से संबंधित प्रावधानों भारत में अनुसूचित

जनजातियों की परिभाषा व विशेषताओं को जनजाती की परिचय जनजाति का सकेंद्रण व जनजाति क्षेत्र का संपुर्ण वेवरा लिखा है

1.14 मुख्य शब्द

1. अनुसूचित जनजाति: भारत सरकार द्वारा संविधान की अनुसूची में शामिल जनजातियां, जिन्हें विशेष अधिकार और संरक्षण प्रदान किया गया है।

2. आदिवासी: भारत के मूल निवासी, जो अपनी प्राचीन परंपराओं, संस्कृति और रीति-रिवाजों के लिए जाने जाते हैं।

3. सकेंद्रण: किसी क्षेत्र विशेष में जनजातीय जनसंख्या का समूह के रूप में निवास।

4. जनजातीय महिलाएं: अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित महिलाएं, जिनकी भूमिका परिवार, समाज और संस्कृति में महत्वपूर्ण होती है।

5. संवैधानिक प्रावधान: संविधान में अनुसूचित जनजातियों के अधिकार और कल्याण के लिए दिए गए विशेष प्रावधान।

1.15 स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. (हाँ),2. (नही),3. (नहीं),4. (नहीं),

1.16 संदर्भ सूची

1. वर्मा, एस.सी. (2018). भारत की जनजातियां: संस्कृति और विकास. नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स.

2. शुक्ला, आर.के. (2016). आदिवासी समाज और उनके अधिकार. वाराणसी: काशी पब्लिकेशन.

3.भारतीय जनजाति भौगोलिक वितरण भाषा वर्गीकरण पृथक्करण आत्महत्या कारण एवं एकीकरण

1.17 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

(Essay Type Questions)

1. जनजाति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए।

Explain the concept of Tribe. Write its characteristics.

2. अनुसूचित जनजाति किसे कहते हैं इसकी क्या विशेषताएँ है।

Who is called Scheduled Tribes, what are its characteristics.

3. अनुसूचित से सम्बंधित विभिन्न शब्दावलियां क्या है? समझाइए।

What are the terminologies relating to Scheduled Tribes.

4.अनुसूचित जनजाति के निर्धारण के लिए संवैधानिक प्रावधानों की विवेचना कीजिए। Describe constitutional provisions relating to Scheduled Tribes. Explain.

5.अनुसूचित जनजाति की व्याख्या कीजिए। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत के विभिन्न क्षेत्रों की अनुसूचित जनजातियों को लिखिए।

Define Scheduled Tribe. According to Census 2001, write the Scheduled Tribes of different areas of India.

6. भारत में जनजातीय जनांकिकी पर एक लेख लिखिए।

Write an essay on tribal demographic in India.

7.भारतीय जनजातियों में महिला-पुरुष अनुपात की तुलनात्मक विवेचना कीजिए। Describe the Comperative ratio of male and female in Indian tribe.

8.मध्यप्रदेश में जनजातियों की जनांकिकीय विशेषताओं को लिखिए।

Write Characteristics of tribal demographic in Madhya Pradesh.

9.मध्यप्रदेश की जनजातीय जनसंख्या में शिक्षा एवं यौन अनुपात का विश्लेषण कीजिए।

Analysis sex ratio and education in tribal population of Madhya Pradesh.

10. जनजातीय संकेन्द्रण की अवधारणा को समझाइए।

Explain the concept of tribal Concentration.

11. भारत में जनजातियों के संकेन्द्रण पर एक लेख लिखिए।

Write an essay on concentration of tribes in India.

12.मध्यप्रदेश में जनजातीय संकेन्द्रण को समझाइए।

Explain tribal concentration in Madhya Pradesh.

13.जनजातीय क्षेत्र की अवधारणा को समझाइए।

Explain the concept of tribal areas.

14.राज्यानुसार भारत में जनजातीय वितरण को समझाइए।

Explain tribal distribution in India accorcding to state.

15. भारत में जनजातीय जनसंख्या के ग्रामीण-नगरीय वितरण की समीक्षा कीजिए। Examine rural-urban population of tribes of L.P. Vidyarthi.

16.संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (Write short notes on)

(a) हिमालय क्षेत्र की जनजातियाँ Geographical distribution of tribes of L.P.

(b) हिमालय क्षेत्र की जनजातियाँ Tribes of Himalayan Region.

(c) प्रो. एस.सी. दुबे द्वारा जनजातियों का भौगोलिक वितरण Geographical distribution of Tribes by Prof. S.C. Dube.

(आ) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

16.. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (Write short notes on)

a. जनजाति (Tribe)

b. अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribe)

c. जनजातियों की विशेषताएँ (Characteristics of Tribes)

d.आदिवासी (Primitives)

e.पिछड़े हिन्दू (Backward Hindu)

2. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में जनजातियाँ।

Tribes in Madhya Pradesh according to 2001 census.

3.2001 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश में जनजातियों में शिक्षा की स्थिति। Status of education in tribes of Madhya Pradesh according to census of 2001.

4. जनसंख्या की दृष्टि से मध्यप्रदेश की प्रमुख जनजातियाँ। Main tribes of Madhya Pradesh according to population.

5. मध्यप्रदेश में जनजातियाँ Tribes in Madhya Pradesh.

6. मध्यप्रदेश के प्रमुख जनजातीय क्षेत्र Main Tribal Areas of Madhya Pradesh.

7. मध्यप्रदेश की प्रमुख जनजातियाँ Main tribes of Madhya Pradesh.

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अनुसूचित जनजाति के निर्धारण के लिए राष्ट्रीय आयोग का गठन कौन करता है।

(अ) राष्ट्रपति (आ) उपराष्ट्रपति (इ) प्रधानमंत्री (ई) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश

2. राष्ट्रीय जनजाति आयोग अपना प्रतिवेदन किसे सौंपता है?

(अ) लोकसभा (आ) राज्यसभा (इ) राष्ट्रपति (ई) उपराष्ट्रपति

3. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत के किस राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या सबसे अधिक है?

(अ) मेघालय (आ) नागालैण्ड (इ) मिजोरम (ई) लक्षद्वीप

4. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत के किस राज्य / केन्द्र शासित प्रदेश में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या सबसे कम हैं?

(अ) पाण्डिचेरी (आ) गोवा (इ) उत्तर प्रदेश (ई) बिहार

5. 2001 की जनगणना के अनुसार भारतीय जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत कितना है?

(अ) 6.20 (आ) 7.20 (इ) 8.20 (ई) 9.20

6. किसने कहा "एक ऐसा समुदाय, जो किसी भूभाग का स्वामी हो, जो राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से श्रंखलाबद्ध स्वायत्त शासन चला रहा हो, उसे जनजाति कहते हैं।"

(अ) इम्पीरियल गजेटियर (आ) मजूमदार

(इ) नोट्स एण्ड क्वेरीय आन एन्थ्रापोलाजी (ई) गिलिन और गिलिन

7.अनुसूचित जनजाति के लिए (Primitive Tribe) शब्द का प्रयोग किसने किया - 7.

(अ) मजूमदार (आ) हरिशचन्द्र उत्प्रेती (इ) हट्टन (ई) जी.एस. घुरिए

8. अनुसूचित जनजाति के लिए (Aboriginals) शब्द का प्रयोग किसने किया।

(अ) एलाविन (आ) हट्टन (इ) मजूमदार (ई) नेल्सन

9.अनुसूचित जनजाति के लिए पिछड़े हिन्दू (Backward Hindus) शब्द का प्रयोग किसने किया-

(अ) जी.एस. घुरिए (आ) एलविन (इ) मजूमदार (ई) हट्टन

10. 2001 की जनगणना के अनुसार भारतीय जनसंख्या में जनजातियों का प्रतिशत कितना है?

(अ) 6.20 (ब) 7.20 (स) 8.20 (द) 9.20

11. भारत में कुल भौगोलिक क्षेत्र में जनजातियों का भौगोलिक क्षेत्र लगभग कितने प्रतिशत है।

(अ) 15.00 (ब)16.00 (स) 17.00 (द) 18.00

: 12. भारत की 2001 की जनगणना के अनुसार जनजातियों की साक्षरता का प्रतिशत कितना है?

(अ) 28.69 (ब) 29.69 (स) 32.69 (द) 33.69

उत्तर- 1.(अ) 2. (इ) 3. (ई)4.(अ) 5. (इ) 6. (इ) 7. (उ) 8.(अ)9. (अ),10. (स), 11. (अ),12. (ब),

इकाई -2

. भारतीय जनजाति भौगोलिक वितरण, भाषा, वर्गीकरण, पृथक्करण, आत्मसात्मीकरण एवं एकीकरण (Indian Tribes Geographical Distribution, Language, Classification, Isolation, Assimilation and Integration)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भारत में अनुसूचित जनजातियों का राज्य अनुसार प्रतिशत

2.4 भाषा और मानव समाज (Language and Human Society)

2.5 पृथकीकरण, आत्मसात्मीकरण एवं एकीकरण (Isolation, Assimilation And Integration)

2.6 सार संक्षेप

2.7 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

2.8 मुख्य शब्द

2.9 संदर्भ सूची

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारत में जनजातियां देश की सांस्कृतिक और सामाजिक विविधता को परिभाषित करती हैं। वे भौगोलिक रूप से पूरे देश में फैली हुई हैं और विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु, प्राकृतिक

संसाधनों और सांस्कृतिक प्रभावों से प्रभावित हैं। उनकी भाषाएं, रीति-रिवाज और परंपराएं अनूठी हैं, जो उनके जीवन के हर पहलू में झलकती हैं।

इस अध्याय के माध्यम से भारतीय जनजातियों के भौगोलिक वितरण, भाषा वर्गीकरण और उनके सांस्कृतिक पृथक्करण को समझने का प्रयास किया गया है। भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि समाज की संरचना और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके अलावा, जनजातियों के आत्मसात और एकीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है, जो समाज में उनकी पहचान और अस्तित्व को बनाए रखने में मदद करती है।

2.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. भाषा और मानव समाज को जान पाएंगे

2.भाषा की प्रकृति भाषा का उद्विकास भाषा का समाज में महत्व को जान पाएंगे

3.जनजाति अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को जानेंगे

4 आत्मसात की विशेषताओं से परिचित होंगे व एकीकरण को जानेंगे

2.3 भारत में अनुसूचित जनजातियों का राज्य अनुसार प्रतिशत

अफ्रीका को छोड़कर संपूर्ण भारत में भारत में अनुसूचित जनजातियों की संख्या सबसे अधिक है। जनगणना प्रतिवेदनों के अनुसार भारत में कुल जनसंख्या का 7.67 प्रतिशत भाग अनुसूचित जनजातियों का है। ये अनुसूचित जनजातियाँ अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। भारत में अनुसूचित जनजातियों की जो सूची है, उसमें 450 से अधिक इस समुदाय के नाम दर्ज है। इसमें कुछ मूल जनजातियाँ हैं तथा कुछ इनके उपविभाग हैं। भारत में जनजातियों का विवरण एक समान नहीं है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ जनजातियों का प्रतिशत 90.00 से अधिक है। इसके विपरीत कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ

जनजातियों की जनसंख्या बिल्कुल ही नहीं है। भारत में प्रायः सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में जनजातियों का अस्तित्व है, अन्तर केवल मात्रा का है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में जनजातियों के वितरण में समानता का अभाव है। कहीं इनका घनत्व अधिक है, तो कहीं कम। अनेक विद्वानों, समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने भारत में जनजातियों के भौगोलिक वितरण को रेखांकित किया है। इन विद्वानों में से कुछ के विचार निम्नलिखित हैं-

(1) बी.एस. गुहा गुहा (B.S. Guha, The Indian Aborigines and their administration' Journal of Asiatic Society, 1951, Vol. XVII) ने भारतीय जनजातियों की निम्न भौगोलिक क्षेत्र में विभाजित किया है-

(a) उत्तर एवं उत्तर पश्चिमी क्षेत्र जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है यह भारत का उत्तरी तथा उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र है, जो जम्मू कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, आसाम, सिक्किम आदि तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में जो प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं, उनके लाभ इस प्रकार है खासी, उफला, अका, रामा, मिरी, अपातानी, लेपचा, गैलांग, थारु, वैनसारी, लखा, कुकी, गोरा आदि।

(b) मध्यवर्ती क्षेत्र यह क्षेत्र भारत का हृदय स्थल है या मध्य का भाग है। इस क्षेत्र में मध्यप्रदेश, दक्षिणी उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, दक्षिणी राजस्थान तथा उत्तरी महाराष्ट्र को सम्मिलित किया जाता है। इस क्षेत्र में प्रमुख रूप से जो जनजातियाँ निवास करती हैं, उनके नाम हैं गौड़, बैगा, भील, भिलाला, संथाल, मुण्डा, उराँव, खोड़, भूमिज, लाघा, कारो,

(c) दक्षिण क्षेत्र यह दक्षिणी भारत का क्षेत्र है, जिसमें दक्षिणी महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल आदि को सम्मिलित किया जाता है। यहाँ जो जनजातियाँ निवास करती है, उनमें कोटा, पलयन, तोड़ा कादार, पनियन, इरुला, चेन्नु, आदि प्रमुख है।

(2) एल.पी. विद्यार्थी - एल.पी. विद्यार्थी (Vidyarthi, L.P.& Roy, B.K., The Tribal Culture of India 1976, New Delhi) ने भारतीय जनजातियों को निम्न भौगोलिक आधारों पर वर्गीकृत किया है -

(**a) हिमालय क्षेत्र** इसको तीन उपभागों में विभाजित किया है-

(i) उत्तर पूर्वी हिमालय- इसके अन्तर्गत आसाम, मेघालय, पश्चिम बंगाल की पहाड़ी क्षेत्र, दार्जिलिंग, अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम तथा त्रिपुरा को सम्मिलित किया गया है।

(ii) मध्यवर्ती हिमालय क्षेत्र- इसमें बिहार तथा उत्तरप्रदेश के तराई क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है।

(iii) उत्तरी-पश्चिमी हिमालय क्षेत्र इसमें जम्मू-काश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश को सम्मिलित किया गया है।

[b) मध्य भारतीय क्षेत्र इसमें मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार तथा पश्चिम बंगाल को सम्मिलित किया गया है।

(c) पश्चिम भारतीय क्षेत्र इसमें महाराष्ट्र, गोवा, दादर तथा नगर हवेली, गुजरात और राजस्थान को सम्मिलित किया गया है।

दीप समूह क्षेत्र इसमें लक्षदीप तथा अण्डमान और निकोबार द्वीप समूहों को सम्मिलित किया गया है।

(3) प्रो. एस.सी. दुबे प्रो. दुबे (S.C. Dube, Approaches of Tribal Problems, Indian Anthropology in Action Ranchi, 1960) ने भारतीय जनजातियों को निम्न प्रमुख क्षेत्रों में सम्मिलित किया है-

(a) उत्तरपूर्वी क्षेत्र, (b) मध्यवर्ती क्षेत्र,

(c) दक्षिणी क्षेत्र, (d) पश्चिमी क्षेत्र।

(4) योगेश अटल प्रो. योगेश अटल (Atal Yogesh, Adivasi Bharat, Delhi, 1965) ने भारत को चार प्रमुख जनजातीय क्षेत्रों में विभाजित किया है-

(a) उत्तर एवं उत्तर पूर्वी क्षेत्र, (b) पश्चिम एवं उत्तर पश्चिमी क्षेत्र,

(c) मध्यवर्ती क्षेत्र, (d) दक्षिण क्षेत्र।

(5) मजूमदार और मदन- मजूमदार और मदन (Majumdar, D.N. and Madan, T.N. 'An Introduction to Social Anthropology,' Bombay, 1996) ने भारत को तीन जनजातीय क्षेत्रों में विभाजित किया है -

(a) उत्तर एवं उत्तर पश्चिमी क्षेत्र, (b) मध्यवर्ती क्षेत्र,

(c) दक्षिण क्षेत्र।

(6) राय बर्मन - राय वर्मन (Roy Burman, B.K. Tribal Demography: A Preliminary Appraisel in Tribal Situation in India, Simla, 'p. 39) ने भारत की जनजातियों को निम्नलिखित सात क्षेत्रों में विभाजित किया गया है

(a) उत्तर में हिमालय प्रदेश तथा पश्चिमी भारत, उत्तरप्रदेश का पर्वतीय उपपर्वतीय भाग तथा हिमालय प्रदेश।

(b) उत्तरी पूर्वी भारत- मेघालय, मिजोरम, अरुणाचल, असम, नागालैण्ड तथा मणिपुर।

(c) मध्य-पूर्वी भारत आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार।

(d) दक्षिण भारत कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु।

(e) पश्चिम भारत गोवा, दमन दीव, दादरा तथा नगर हवेली, महाराष्ट्र तथा राजस्थान।

(f) अण्डमान निकोबार द्वीप समूह।

(g) लक्षद्वीप।

भारत में अनुसूचित जनजातियों के भौगोलिक विवरण में असमानता है। उत्तरपूर्वी राज्यों (मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश, आसाम) में जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत सबसे अधिक है। मिजोरम तथा नागालैण्ड में 90 में 100 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या निवास करती है। इसके विपरीत उत्तर पूर्वी हिमाचल प्रदेश, उत्तर तथा उत्तरी पश्चिमी भारत में इनकी जनसंख्या तुलनात्मक रूप से अत्यन्त ही कम है। दक्षिण भारत के राज्यों तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल में जनजातीय जनसंख्या कम है। भारत के मध्यवर्ती क्षेत्रों में जनजातीय जनसंख्या की सघनता है। इन राज्यों में आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल, आदि मुख्य है। इसके अलावा

पश्चिमी क्षेत्रों में भी जनजातीय जनसंख्या पाई जाती है। निम्न तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में जनजातीय जनसंख्या के प्रतिशत को दिखाया गया है

भारत में अनुसूचित जातियों का निवास ग्रामीण क्षेत्रों में है। नगरीय क्षेत्रों में अत्यन्त कम मात्रा में उनजीव निवास करती है। भारत में जनजातीय निवास को ग्रामीण और नगरीय आधार पर निम्न तालिका में दिखाया गया है

भारत में अनुसूचित जनजातियों का राज्यानुसार प्रति

क्रम संख्या	राज्य / केंद्र शासित प्रदेश	जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत
1.	राजस्थान	5.0
2.	सिक्किम	43
3.	तमिलनाडु	142
4.	त्रिपुरा	17
5.	उत्तरप्रदेश	
6.	पश्चिम बंगाल	121
7.	हिमाचल प्रदेश	02
8.	अण्डमान एवं निकोबार दीप समूह	56
9.	जम्मू एवं काश्मीर	6
10.	कर्नाटक	46
11.	अरुणाचल प्रदेश	

12.	केरल	24
13.	चण्डीगढ़	10
14.	मध्यप्रदेश	229
15.	दादरा एवं नगर हवेली	783
16.	महाराष्ट्र	9.1
17.	दिल्ली	
18.	मणिपुर	27.3
19.	गोवा, दमन, दीव	05
20.	मेघालय	805
21.	लक्षद्वीप	
22.	नागालैण्ड	839
23.	पाण्डिचेरी	
24.	उड़ीसा	224
25.	मिजोरम	950
26.	पंजाब	

भारत में अनुसूचित जातियों का निवास ग्रामीण क्षेत्रों में है। नगरीय क्षेत्रों में अत्यन्त कम मात्रा में जमा निवास करती है। भारत में जनजातीय निवास को ग्रामीण और नगरीय आधार पर निम्न तालिका में दिखाय

भारत के राज्य/केंद्र शासित प्रदेश में ग्रामीण और नगरीय प्रतिशत

क्रम संख्या	राज्य / केंद्र शासित प्रदेश	ग्रामीण प्रतिशत	नगरीय प्रतिशत
1.	भारत	93.80	6.20
2.	आन्ध्रप्रदेश	93.78	6.22
3.	बिहार	93.77	6.23
4.	गुजरात	92.68	7.32
5.	हरियाणा		
6.	हिमाचल प्रदेश	98.42	1.58
7.	जम्मू एवं काश्मीर		
8.	कर्नाटक	87.13	12.87
9.	केरल	98.9	1.91
10.	मध्यप्रदेश	96.38	3.62
11.	महाराष्ट्र	89.57	10.43
12.	मणिपुर	12.41	
13.	मेघालय	87.50	9.77

14.	नागालैण्ड	90.23	4.61
15.	उड़ीसा	95.39	
16.	पंजाब	96.27	3.73
17.	राजस्थान		
18.	सिक्किम	85.06	14.94
19.	तमिलनाडु	90.31	9.69
20.	त्रिपुरा	98.69	1.31
21.	उत्तर प्रदेश	95.28	4.72
22.	पश्चिम बंगाल	69.24	3.76
23.	अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह	98.79	1.21
24.	अरुणाचल प्रदेश	97.72	2.28
25.	चण्डीगढ़		
26.	दादरा एवं नगर हवेली	96.59	3.41
27.	दिल्ली		
28.	गोवा, दमन, दीव	76.78	23.22
29.	लक्षद्वीप	55.32	44.68
30.	मिजोरम	76.52	23.48

31.	पाण्डिचेरी		

लिंगानुपात की दृष्टि से अनुसूचित जनजातियों में सामान्य जनसंख्या की तुलना में अनेक असमानताएँ तथा भिन्नताएँ है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक राज्यों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। भारत के विभिन्न प्रान्तों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में लिंगानुपात को निम्न तालिका में दिखाया गया है

भारत के ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों में लिंगानुपात

क्र.	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	कुल	ग्रामीण	नगरीय
1	आन्ध्रप्रदेश	962	966	901
2	बिहार	993	998	908
3	गुजरात	976	982	894
4	हरियाणा	978	982	730
5	हिमाचल प्रदेश	970	973	948
6	जम्मू एवं काश्मीर	992	960	943
7	कर्नाटक	981	974	116
8	केरल	976	974	
9	मणिपुर	993	1002	1065
10	मेघालय	963	954	

11	नागालैण्ड	1015	1012	
12	उड़ीसा			
13	पंजाब	944	951	783
14	राजस्थान	926	933	
15	सिक्किम			
16	तमिलनाडु	968	967	978
17	त्रिपुरा	962	963	851
18	उत्तर प्रदेश	915	920	813
19	पश्चिम बंगाल	969	973	863
20	अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह	930	939	361
21	अरुणाचल प्रदेश	1004	1010	803
22	चण्डीगढ़			
23	दादरा एवं नगर हवेली	1018	1020	959
24	दिल्ली			
25	गोवा, दमन, दीव	945	950	927
26	लक्षद्वीप	1001	1004	997

27	मिजोरम	997	993	1010
28	पाण्डिचेरी			

मध्यप्रदेश में जनजातियों का भौगोलिक वितरण

(Geographical Distribution of Tribes in Madhya Pradesh)

एकाकृत मध्यप्रदेश में जनजातियों की संख्या 23 प्रतिशत से अधिक है। ये जनजातियाँ विशाल मध्यप्रदेश मे प्रायः सभी जिन्ना में निवास करता है। मध्यप्रदेश के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ जनजातियों का प्रतिशत 80 से भी ऊपर है, जबाक कुछ क्षेत्रों का प्रतिशन अत्यन्त कम है। मध्यप्रदेश में जनजातियों का भौगोलिक वितरण निम्न है-

1. उत्तर-पूर्वी क्षेत्र- इसके अन्तर्गत सीधी, बिलासपुर, रायगढ़ तथा अम्बिकापुर आदि जिलों को सम्मिलित किया जाता है। इन जिन्नों में जो जनजातियाँ निवास करती हैं उनके नाम इस प्रकार हैं ओराँव, कोरवा, कोल, कमार, पनिका तथा बैगा।

2. मध्य क्षेत्र- इस क्षेत्र के अन्तर्गत शहडोल, बालाघाट, सिवनी, छिंदवाड़ा, बैतूल, मंडला, आदि जिले आते हैं। इन जिलों में जो जनजातियों निवास करती है, उनके नाम इस प्रकार है गोंड, कोरकू, कोल, बैगा आदि।

3. दक्षिणी क्षेत्र- मध्यप्रदेश के दक्षिणी क्षेत्र के अन्तर्गत जो जिले सम्मिलित किए जाते है, वे इस प्रकार हैं- बस्तर, रायपुर, दुर्ग, राजनांदगाँव। इन जिलों में जो जनजातियाँ निवास करती हैं, उनके नाम हैं भारिया, मुड़िया, हलवा, दोदोती, मतरा, कमार आदि।

4. पश्चिमी क्षेत्र -पश्चिमी क्षेत्र में जिन जिलों को सम्मिलित किया गया है, उनके नाम है-धार, झाबुआ, खरगोन, खण्डवा, रतलाम आदि। इन जिलों में जो जनजातियाँ निवास करती हैं, उनके नाम है, भील, भिलाला, हो आदि।

5. उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र- इस क्षेत्र में जिन जिलों को सम्मिलित किया गया है, उनके नाम हैं- गुना, शिवपुरी, मुरैना आदि। इन जिलों में जो जनजातियों निवास करती है, उनके नाम है गौंड, सहरिया आदि।

2.4 भाषा और मानव समाज (Language and Human Society)

एक व्यक्ति जो किसी प्रकार का यन्त्र खरीदता है और इस यन्त्र का संचालन करना चाहता है। सामान्यतया यह जानने का प्रयास करता है कि यन्त्र किस प्रकार कार्य करता है। मोटर का ड्राइवर मोटर की मरम्मत और उसके पुर्जे के बारे में जानकारी रखता है। सामान्य व्यक्ति की मौलिक रुचि यह होती है कि अपने साथी के साथ संचार का सम्बन्ध स्थापित कर सके। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संचार जिस माध्यम से होता है उसे ही भाषा कहा जाता है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों को दूसरे व्यक्तियों तक पहुँचा सकता है। व्यावहारिक दृष्टि से भाषा सम्पूर्ण मानव को आगे बढ़ाती है, जीवन भर मानव समाज का साथ देती है और मानव को अनुसरण करने के योग्य बनाती है। यदि भाषा न होती तो 90 प्रतिशत से अधिक मानवीय क्रियायें ताले के अन्दर बन्द होतीं।

भाषा अंग्रेजी के लैंग्वेज (Language) शब्द का हिन्दी अनुवाद है। लैंग्वेज लैटिन भाषा के 'लिंगुआ' (Lingua) शब्द से बना है। लिंगुआ का अर्थ होता है 'जीभ' (Tongue), जिसका साधारण अर्थ भाषा या बोली से लगाया जाता है। मौलिक प्रश्न यह है कि भाषा क्या है? इस प्रकार का उत्तर देने के लिए भाषा के विभिन्न अर्थ और परिभाषाओं को देना होगा। जो निम्न हैं-

(1) भाषा का साधारण अर्थ प्रत्येक जीवधारी प्राणी के कुछ विचार या भावनाएँ होती है। वह इन विचारों को व्यक्त करना चाहता है। उसके विचार उसी जाति के जीवधारी प्राणी जिस माध्यम से समझते हैं, वही माध्यम उस प्राणी की भाषा है।

(2) भाषा का विशिष्ट अर्थ विशेष अर्थों में भाषा का तात्पर्य किसी विशेष काल में किसी देश-विदेश के मनुष्यों में उनकी बोलने की इन्द्रियों द्वारा अभिव्यक्त तथा सुनने की इन्द्रियों द्वारा ग्रहण की गई सार्थक ध्वनि समष्टि है, जो उस देश और काल की

परम्पराओं के अनुरूप होती है और साधारणतयाः स्वतः स्वीकार की जाती है। इसकी एक विशेष ध्वनि प्रणाली तथा रूप-साधना होती है।

(3) व्याकरण के अनुसार व्याकरण के आचार्यों ने भाषा की परिभाषा व्याकरण के तत्वों के आधार पर की है। उनके अनुसार भाषा मौलिक रूप से व्याकरण स्वरूपों की एक श्रृंखला है जिसमें ध्वनियों पदों, धातुओं, प्रत्ययों, वाक्यों एवं अर्थों आदि का समावेश होता है।

(4) साहित्यकार के अनुसार- "साहित्यकारों के अनुसार भाषा की मौलिक विशेषता उसकी प्रभाव- उत्पादकता है। भाषा कुछ शब्दों की व्यवस्थित श्रृंखला है जिनके प्रयोग से समन्वित प्रभाव उत्पन्न होता है।"

(5) शब्दकोषकार के अनुसार- भाषा मौलिक रूप से शब्दों की एक सूची है, जिसमे उत्पत्ति, इतिहास और अर्थ छिपा हुआ होता है।

भाषा की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने भाषा की विभिन्न परिभाषाएँ दी है। इन परिभाषाओं में कुछ निम्न है -

(1) ब्लाक और ट्रेगर "भाषा स्वेच्छाचारी वाक् प्रतीकों की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके माध्यम से सामाजिक समूह सहयोग करते हैं।"

(2) डॉ. मंगलदेव "भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं जिसमे वे अपने उच्चारणोपयोगी शारीरिक अवयवों द्वारा उच्चारण किये गये पूर्णात्मक शब्दों से अपने विचारों को प्रकट करते है।"

(3) मैरियो पेई - "भाषा नियमों के उस समूह को कहते हैं जिसे सभी बोलने वालों ने चुपचाप मान लिया हो और सम्मति से स्वीकार कर लिया हो।"

(4) भाषा-विज्ञान शब्दकोष "मनुष्यों के वर्ग विशेष में आपसी व्यवहार के लिए प्रयुक्त वे व्यक्त ध्वनि संकेतों जिनका अर्थ पूर्व-निर्धारित एवं परम्परागत है तथा जिनका आदान-प्रदान जिहा और कान के माध्यम से होता है।"

(5) गार्डीनर "विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।"

(6) हेनरी स्वीट "वाक् संकेतों के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति को भाषा कहकर परिभाषित किया जा सकता है।"

इस प्रकार भाषा एक माना हुआ प्रतीक है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाता है।

भाषा की प्रकृति

(Nature of Language)

भाषा की कुछ प्रकृति या विशेषताएँ होती हैं। इन विशेषताओं को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) प्रेषणीयता - भाषा की मौलिक विशेषता सम्प्रेषणशीलता है। भाषा की परिभाषा से ही स्पष्ट हो गया है कि शब्दों द्वारा अपने विचार या भावों को श्रोताओं तक सम्प्रेषित करना ही भाषा है। जो भाषा सहज ही सम्प्रेषित नहीं होती है। या वक्ता के विचारों से श्रोता को अवगत नहीं करती है उसे भाषा नहीं कहा जा सकता है।

(2) अपूर्णता - भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि इसकी प्रकृति अपूर्ण कोटि की होती हैं। भाषा का हमेशा विकास होता रहता है और इस विचार की परम्परा में भाषा कभी पूर्ण नहीं होती है। विकास के क्रम में भाषा के आकार-प्रकार में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, संशोधन होता रहता है, पूर्णता तो भाषा की मृत्यु का लक्षण है।

(3) परम्परात्मक भाषा हमारी परम्पराओं का एक अंग होती हैं। जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़्ढ़ों को हस्तान्तरित होती रहती है। भाषा का सम्बन्ध किसी विशेष देश और काल से होता है। इस देश और काल के व्यक्ति अपने विचार को दूसरों तक व्यक्त करना चाहते हैं। आगे आने वाली पीढ़ी भी कुछ संशोधन और परिवर्तनों के साथ साधन को अपना लेती है। इसलिए भाषा को मातृभाषा के नाम से संशोधित किया जाता है।

(4) भौतिकता - इसका तात्पर्य यह है कि भाषा का निर्माण ध्वनियों से होता है। ध्वनि शरीर के अवयवों से उत्पन्न होती है और शरीर के अवयव ही ध्वनि को ग्रहण करते हैं। यदि शरीर के अंग दोषपूर्ण होते हैं तो ध्वनियों भी दोषपूर्ण ही निकलती हैं। इन दोषपूर्ण ध्वनियों का सहज सम्प्रेषण असम्भव हो जाता है। सम्प्रेषण के अभाव में भाषा के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता।

(5) मानसिकता विचार और भाव भाषा के मूल में हैं। विचार और भाव मनोवैज्ञानिक तत्व हैं और इन्हें मनोविज्ञान की सहायता से ही आसानी से समझा जा सकता है। भाषा उत्पत्ति का प्रधान कारक मनोवैज्ञानिक है। भाषा के अभाव में मानसिक विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। जैसे-जैसे मनुष्य के विचार विकसित होते हैं, भाषा स्वतः विकसित होती जाती है। भाषा के अभाव में मानव विचार अस्पष्ट और ग्रहण करने के अयोग्य होते हैं।

(6) सामाजिकता भाषा किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर नहीं होती है, उसका जन्म, विकास और प्रयोग समाज में ही होता है। भाषा का निर्माण अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता है। भाषा का विकास होता है और यह विकास सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल होता है। ये सामाजिक परिस्थितियों परिवर्तित होती रहती है, अतः भाषा का आकार-प्रकार भी परिवर्तित होता रहता है।

(7) प्रजातन्त्रात्मकता - भाषा की उत्पत्ति और विकास प्रजातान्त्रिक आधारों पर होता है। भाषा की किसी व्यक्ति विशेष के शासन में कमी नहीं रहती है। भाषा में उन्हीं शब्दों, रूपों और मुहावरों को स्वीकार किया जाता है, जो कि सर्वसाधारण उसे स्वीकार कर लेता है। इसलिए कहा जाता है कि भाषा स्वीकृत परम्परा की एक विशिष्ट प्रणाली है।

भाषा का उद्विकास

(The Evolution of Language)

भाषा का विकास किस प्रकार हुआ? सृष्टि में आने के बाद मनुष्य ने किस प्रकार भाषा का आविष्कार किया? इन प्रश्नों का उत्तर हमें भाषा के विभिन्न सिद्धान्तों के द्वारा ज्ञात हो सकता है। भाषा की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं -

(1) दैवीय सिद्धान्त इस सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि भाषा की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा की गई है। जिस प्रकार भगवान ने इस विशाल सृष्टि की रचना की है, मानव का निर्माण किया है ठीक इसी प्रकार भाषा का भी निर्माण किया है। क्योंकि भाषा सम्पूर्ण सृष्टि का एक अंग मात्र है, उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म के अनुसार संस्कृत की आदि भाषा देववाणी है। इसे ईश्वर ने पहले ऋषियों को सिखाया और बाद में आने वाली पीढियाँ विरासत के रूप में इसका अनुसरण करती गई है।

(2) सांकेतिक सिद्धान्त इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा का विकास संकेत के माध्यम से हुआ है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब मनुष्य के पास भाषा नहीं थी, तो वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति, संकेत इशारों के माध्यम से करता था। धीरे-धीरे संकेतार्थ को स्पष्ट करने के लिए भाषा का जन्म हुआ है। जैसे मनुष्यों हाथों के माध्यम से संकेत करता है। अनेक अवसर ऐसे आते है जब संकेत देने के लिए हाथ खाली नहीं रहते हैं, ऐसी अवस्था में वाणी अपने आप मुख से फूट पड़ती है, जो बाद में भाषा के रूप में विकसित होती है।

(3) समझौतावादी सिद्धान्त रूसो इस सिद्धान्त का जनक है। इसके अनुसार आदिम मानव विचार विनिमय में संकेत का सहारा लेता था। कुछ समय पश्चात्, संकेत विचार विनिमय के लिए अपर्याप्त सिद्ध हुए। उसी अवस्था में एक जगह बैठकर सभी मनुष्यों ने समझौते के द्वारा भाषा का निर्माण किया।

(4) प्रकृतिवादी सिद्धान्त हर्डर महोदय इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। हर्डर के अनुसार भाषा का विकास समझौते के कारण हुआ। भाषा तो आवश्यकता के अनुसार मनुष्य की प्रकृति से अपने आप निकली है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु समय पूरा होने पर अपने आप ही स्वाभाविक रूप से बाहर आ जाता है। आगे चलकर विभिन्न आवश्यकताओं के अनुसार इसका विकास होता है। हर्डर कहता है कि पशुओं का शिशु प्रकृति के अनुसार अपने आप चलता है, पक्षी सहज ढंग से अपने आप उड़ना सीखता है ठीक उसी प्रकार मनुष्य भाषा का अर्जन भी स्वभाव के अनुसार करता है। आदिकाल में मनुष्य अनुकूल वातावरण में हँसता था और प्रतिकूल वातावरण में रोता था। उसके अन्दर जैसे भाव होते थे, वे प्राकृतिक रूप से बाहर आ जाते थे। बाद में उसके गले में

कुछ लोच आ गई और बोलने की प्रवृत्ति के कारण सैकड़ों ध्वनियों का जम्म हुआ जो आगे चलकर भाषा के रूप में विकसित हुआ।

(5) विकासवादी सिद्धान्त विकासवादी डार्विन इन सिद्धान्त का समर्थक है। इस सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के प्रत्येक तत्व का क्रमशः विकास हुआ है। मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ होती है, जैसे भोजन, वस्व, निवास, धर्म, व्यवसाय, भाषा आदि। भाषा भी उसकी विभिन्न आवश्यकताओं में से एक है और इसका विकास भी विभिन्न स्तरों के द्वारा हुआ है। प्रारम्भ में मनुष्य का वातावरण भिन्न-भिन्न था और वे अलग-अलग गिरोहों में रहते थे, अतः अनेक भाषाओं का जन्म हुआ।

भाषा का समाज में महत्व

(Importance of Language in Society)

समाज में भाषा का क्या महत्व है? समाज और भाषा का क्या सम्बन्ध है? क्या भाषा के बिना समाज की उन्नत्ति नहीं हो सकती? क्या भाषा के अभाव में सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना संभव है? क्या मनुष्य भाषा के अभाव में वास्तविक अर्थो में सामाजिक प्राणी हो सकता है? समाजशास्त्र में भाषा का अध्ययन क्यों किया जाता है। ऐसे ही अनेक प्रश्न हैं जिनका उत्तर देने के लिए हमें भाषा के सामाजिक कार्यों की विवेचना करना होगा।? भाषा के महत्व को संक्षेप में दो भागों में बाँटा जा सकता है-

(a) भाषा का वैयक्तिक महत्व वैयक्तिक महत्व का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जीवन में भाषा का क्या महत्व है? व्यक्ति के लिए भाषा के महत्व को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने मन की भावनाओं को दूसरों तक व्यक्त कर सकता है। ऐसा करने से वह अपने दुःख और सुख की अनुभूति दूसरों को कराने में समर्थ होता है।

(2) भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने अन्दर की साहित्यिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास कर सकता है।

(3) भाषा के द्वारा ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वोत्तम विकास कर सकता है।

(4) भाषा ही ऐसा साधन है जिसके माध्यम से वस्तुओं का नामकरण सम्भव हो सका है।

(5) भाषा के माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना हो सकती है जो कि सामाजिक प्रगति का आधार है

।6) भाषा के ही द्वारा हम परिवार के व्यक्तियों की भावनाओं को समझकर पारिवारिक सम्बन्धों को अधिक स्थाई और मधुर बना सकते हैं।

(7) भाषा के अभाव में हम अपने दैनिक जीवन में एक पग भी नहीं चल सकते हैं।

(8) भाषा के माध्यम से ही हम अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को अच्छी तरह पूरी कर सकते हैं।

(9) भाषा के द्वारा ही हम मनोरंजन प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

(10) भाषा के अभाव में कोई भी समाज उन्नत्ति नहीं कर सकता है।

(b) भाषा का सामाजिक महत्व सामाजिक महत्व का तात्पर्य यह है कि समाज के लिए भाषा का क्या महत्व है ? समाज में भाषा की उपयोगिता को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) भाषा के द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाते हैं। यदि समाज में भाषा न होती तो हम अपनी आवश्यकताओं से दूसरों को अवगत न करा पाते और उनकी पूर्ति होना असम्भव हो जाता।

(2) भाषा के अभाव में समाज में शिक्षा और समाजीकरण की प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाती।

(3) भाषा के कारण ही समाज में एकता और संगठन का विकास होता है।

(4) भाषा के माध्यम से ही प्रेम, सहिष्णुता, सामाजिक भावों तथा सहानुभूति का विकास हो सकता है।

(5) भाषा के माध्यम से हमारे सम्पर्कों में वृद्धि होती है और सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है।

(6) समाज के कार्यों के सम्पादन में भाषा का महत्वपूर्ण हाथ है।(7) भाषा के माध्यम से धर्म को सम्वृद्ध और स्पष्ट किया जा सकता है।

(8) भाषा के माध्यम से राजनैतिक सम्बन्धों की अच्छी तरह स्थापना की जा सकती है।

(9) भाषा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान का विकास किया जा सकता है।

भारत में जनजातियों का भाषायी वितरण

(Linguistic Distribution of Tribes In India)

भाषा समाज की आत्मा होती है, क्योंकि भाषा के माध्यम से ही आत्मा के उद्गारों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। अनुसूचित जनजातियों की भी अपनी भाषा है, जिसके माध्यम से वे अपने विचारों को अभिव्यक्त करते रहे है तथा इन विचारों को सामूहिक आदान-प्रदान करते रहे हैं। भाषाएँ संचार माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित भी होती रहती है। चूंकि जनजातियों की कोई लिखित भाषा नहीं है, अतः इनके भाषा की कोई लिपि भी नहीं है। वर्तमान में इनकी भाषा को लिपिबद्ध करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

1961 के भाषा सम्बन्धी सर्वेक्षण में मुण्डा शाखा की 31 भाषाओं का सत्यापन किया गया था तथा 20 भाषाओं का वर्गीकरण क्षेत्रीय भाषा के रूप में किया गया है। इसके साथ ही 7 भाषाएँ सत्यापित तो थीं किन्तु इनका पुनः वर्गीकरण किया गया था इन भाषाओं को निम्न तालिकाओं में दर्शाया गया हैं-

जो भाषाएँ सत्यापित थी

1.	कोकू	208165
2.	कोरवा	16268

3.	भूमिज	131258
4.	माहिली	19697
5.	माँझी	2206
6.	मुअसी	9829
7.	मुण्डारी	736524
8.	मुण्डा	167159
9.	जुआंग	15795
10.	करमेली	2300
11.	निहाली	1167
12.	खरिया	18325
13.	खेखारी	647
14.	कोदाल कोटा	13277
15.	कोल	64465
16.	कोरेकू	59
17.	संताली	3130829
18.	सोबरा	265721
19.	सिंगली	7

20	थार	15595
21	तुरी	1562

क्षेत्रीय रूप में वर्गीकृत भाषाएँ

क.	मातृ भाषाएँ	कुल जनसंख्या	क	मातृ भाषाएँ	कुल जनसंख्या
1.	गयारी	16	11.	मन्कारी	1081
2.	गोरा	1	12.	बाइती	5
3.	लाहरी संताली	130	13.	देलको	58
4.	मुरा	513	14.	लोधा	5
5.	मुङ्या	10	15.	मिरधा खरिया	5822
6.	लेरका	32	16.	आदिभाषा मुण्डा	13140 S
7.	राहिया	1029	17.	लोहारी मुण्डा	123

8.	मिरघा कोड़ा	76	18.	माहतो 7	7
9.	उदंगमुद्रिय	46	19.	प्यागो 767	767
10.	लौहारा	293	20.	परिहा	397

मातृ भाषाएँ जो सर्वे में दर्ज, किन्तु पुनवर्गीकृत हैं

क.	मातृ भाषाएँ	कुल जनसंख्या
1.	मामेरी सन्ताली	903
2.	किसन संताली	41
3.	किसन भूमिज	4560
4.	पारसी भूमिज	4754

5.	पढ़ड़ी विरजुआ	4
6.	जगली कोरवा	35
7.	माँझी मोरवा	1339

भाषा के आधार पर जनजातियों के विभिन्न परिवारों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं को निम विभाजित किया जा सकता है-

(1) अस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार (Austro-Asiatic Linguistic Family)- यह आस्ट्रिक परिवार की शाखा है। इसे मुण्डा अथवा कोल भाषा के नाम से भी जाना जाता है। इसको बोलने वाले भारत के ए और पूर्वी भागों में निवास करते हैं। इसके अलावा असम में खाली भाषा, बिहार में सन्याली भाषा औ तनिकोबार द्वीप समूह में निकोबार चा बोली जाती है। इस भाषा परिवार की जनजातियों की संख्य सबसे अधिक है। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में इस परिवार की भाषा बोलने वालों का प्रतिशत 1.5 है। आस्ट्रिक भाषा सबसे प्राचीन भाषा है, जो इस द्वीप समूह में बोली जाती है। इस भाषा की अनेक उपभाषाएँ है। इस परिकर को ऊंची भाषा समूहों की चर्चा की जाएगी, जिनके बोलने नालों की संख्या एक लाख से अधिक है।

(a) मुण्हारी इस भाषा का सम्बन्ध मुख्य रूप से मुण्डा जनजाति से है। इस भाषा को बोलने वाली जनजातियों की संख्या 7 लाख से अधिक है। यह भाषा बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और पश्चिमी बंगाल के 40 जिलों में बोली जाती है। इस भाषा को बोलने वाले कुल आस्ट्रिक भाषा को बोलने बालों के 13 प्रतिशत हैं। इसे 33 जनजातीय समूह

के लोग बोलते है। इसको तीन चौथाई जनसंख्या राँची और सिंहभूमि जिलों में निवास करती है।

(b) **संचाली** - संथाली भाषा को बोलने वाली जनजातियों की कुल जनसंख्या 32 लाख है। यह कुल आस्ट्रिक बोलने वालों का 52.3 प्रतिशत है। इसको 40 से अधिक जनजातियाँ अपनी मातृभाषा के रूप में बोलती है। यह बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल तथा मध्यप्रदेश के कुल 35 जिलों में बोली जाती है। यह संथाल परगना, मिदनापुर, सिंहभूमि आदि जिलों में जनजातियों की प्रमुख भाषा के रूप में बोली जाती है।

(c) **हो** - हो भाषा भी आस्ट्रिक परिवार की भाषा है। इसे सिंह भूमि जिले में बोला जाता है। इसको बोलने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत 11 है। इसे कुल 6.5 लाख व्यक्ति बोलते हैं, जो 18 जिलों में फैले हुए है।

(4) **भूमिज** यह भाषा मध्य भारत के 33 जिलों में बोली जाती है। इसको बोलने वाले व्यक्तियों की कुल जनसंख्या । 3 लाख है। मयूरभंज और सिंहभूमि के 90 प्रतिशत जनजाति व्यक्ति इस भाषा का प्रयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं। यह कुल आस्ट्रिक बोलने वालों का 2 प्रतिशत है।

(e) **खरिया इसे** 1.6 लाख जनजातियों बोलती है। यह बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल के 21 जिलों में बोली जाती है। यह कुल आस्ट्रिक परिवार का 2.7 प्रतिशत है। इस भाषा का प्रयोग 14 जनजातीय समूहों द्वारा किया जाता है। इसे बोलने वाले राँची और सुन्दरगढ़ से अधिक हैं।

(1) **सवारा** इसे बोलने वालों की संख्या 2.6 लाख है। यह 13 जनजातीय समुदायों द्वारा बोली जाती है। इसे बोलने वाले उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश और पश्चिम बंगाल में निवास करते हैं। उड़ीसा में इस भाषा को बोलने वालों का प्रतिशत 60 है।

(g) **कोरकू** इसे 1.5 लाख व्यक्ति बोलते है। यह 7 विभिन्न जनजातीय समूहों द्वारा बोली जाती है। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, बैतूल, अमरावती, पश्चिमी निमाड़ में देश के 90 प्रतिशत कोरकू निवास करते हैं, जो इस

भाषा को बोलते है।

(2) द्रविड़ भाषा परिवार (The Drawadian Linguistic Family)- इस भाषा के क्षेत्र के अन्तर्गत भारत के मध्यवर्ती क्षेत्रों तथा दक्षिण भारत को सम्मिलित किया जाता है। इस भाषा परिवार की सबसे महत्वपूर्ण भाषा गौड़ी है। इस भाषा की अनेक बोलियों भी हैं जो बिहार और उड़ीसा में बोली जाती है। बरार तथा आन्ध्रप्रदेश में भी यह भाषा बोली जाती है। अनेक जनजातियों द्वारा इस भाषा को बोला जाता है। इन जनजातियों के नाम है- मलार, पोलिया, सावरा, कोथा, पावियन, चेच, इरुल, कादर, मलसर, मालाकुखन आदि।

(3) तिब्बती चीनी भाषा परिवार (The Tibeto-Chinese Linguistic Family)-इस भाषा को बोलने वाले असम के उत्तरी और पूर्वी भागों में फैले हुए है। मंगोल प्रजाति में ज्यादातर इसी भाषा को बोला जाता है। इस भाषा परिवार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) तिब्बती

(b) चीनी

यह हिमालय के तराई क्षेत्रों, उत्तरी पंजा उत्तरी पंजाब, भूटान तथा उत्तरी एवं पश्चिमी बंगाल में यह भाषा बोली जाती है। नागा, कूकी, अबोर, उफला, माइरिस, खासी, मिकिर, आजि जनजातियों द्वारा यह भाषा बोली जाती है।

जनजातियों का वर्गीकरण 2.5

(Classification of Tribes)

5

जनजातियाँ भारतीय समाज और संस्कृति की जीवन धरोहर है, जो पुरे देश में उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम में निवास करती है। भारत भाषा और भौगोलिक दृष्टि से विविधता वाला विशाल देश है। इस विशाल देश की परिस्थितिशास्त्रीय परिस्थितियाँ (Ecological Conditions) भी भिन्न है। इस कारण से जनजातियों को भाषा, भौगोलिक तथा आर्थिक परस्थितियों में भिन्नता है। इस भिन्नता के कारण जनजातियों के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान और जीवन के तरीकों में भी भिन्नता है। इस भिन्नता ने

उनको अलग पहचान दी है। इस अलग पहचान के कारण भारतीय जनजातियों का वर्गीकरण किया जाता है। भारत में जनजातियों के वर्गीकरण के जो प्रमुख आधार है, उनमें आर्थिक, भौगोलिक और भाषायी मुख्य है।

मनुष्य निरन्तर आवश्यकताओं से घिरा रहता है। ये आवश्यकताएँ आज ही भर नहीं है, अपितु आदि काल से मनुष्य के सामने अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ रही है। इन आवश्यकताओं में भौतिक आवश्यकताओं की प्रकृति तो इस प्रकार की होती है कि इनके अभाव में मानव अपने अस्तित्व की रक्षा ही नहीं कर सकता है। आर्थिक व्यवस्था मानव जीवन का आधार है। ऐसा कोई भी समाज नहीं, जहाँ अर्थव्यवस्था के महत्व को स्वीकार न किया जाता हो।

वन्यजातीय समुदाय समाज का ही एक भाग है। इस दृष्टि से वन्यजातियो की आर्थिक व्यवस्था भी सम्पूर्ण समाज की आर्थिक व्यवस्था का एक भाग है। इस दृष्टि से हमारे अध्ययन का एक आकर्षक विषय है। इस कारण यह है कि वन्यजाति हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक है। यदि हम वन्यजातियों की अर्थ-व्यवस्था की तुलना आधुनिक समाज की अर्थ-व्यवस्था से करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी अर्थ-व्यवस्था ही पिछड़ी हुई है। इनका सम्पूर्ण आर्थिक जीवन आदिम है।

अर्थ-व्यवस्था की परिभाषा

(Definition of Economic System)

विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने अर्थ-व्यवस्था या आर्थिक संगठन की जो परिभाषाएँ की है, उनमे से कुछ निम्नलिखित हैं-

(1) वील्स तथा हाइजर 'आर्थिक संगठन व्यवहारों के प्रतिमान है तथा समाज का वह परिणामस्वरूप संगठन है जो कि समाज तथा सेवाओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग से सम्बन्धित है।'

(2) पिडिग्टन 'आर्थिक व्यवस्था लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए उत्पादन की व्यवस्था, वितरण पर नियन्त्रण तथा समुदाय में स्वामित्व के अधिकारों तथा दावों को निर्धारित करती है।'

इस प्रकार 'वन्यजातीय अर्थ-व्यवस्था वन्यजातीय स्रोतों के उपभोग, संरक्षण और संगठन के वास्तविक तथा ऐच्छिक साधनों की संरचना का अध्ययन है।"

वन्यजातीय अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ

(Characteristics of Tribal Economy)

भारतीय वन्यजातियों की आर्थिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) कृषि की प्रधानता भारतीय वन्यजातियों की भौतिक विशेषता कृषि की प्रधानता है। यदि हम मानव समाज के उद्विकास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव समाज का उद्विकास बर्बरता से हुआ है। आदि काल में मानव का जीवन शिकार पर आधारित था और विकास के क्रम में उसने बाद में कृषि को अपनाया। भारत की सम्पूर्ण वन्यजातियों में तीन चौथाई कृषि पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इनकी कृषि की विधियाँ अत्यन्त ही प्राचीन है।

वन्यजातियों में कृषि पद्धतियों में 'भूमि वृषि' (Shifting Cultivation) का महत्व अधिक है। प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष में विभिन्न नामों से भूमि कृषि की प्रथा पाई जाती है। इसे आसाम और त्रिपुरा में भूमि, मध्यप्रदेश में

बेबर अथवा दहिया ,आंध्र प्रदेश में पांडु उत्तर उड़ीसा में पामे, दही, कोमन अथवा ब्रिगना और दक्षिणी उड़ीसा में गुदिया अथवा डोंगर पास

भारतवर्ष में करीब 25 लाख वन्यतातिगाम कृषि करती है। कुछ प्रदेश ऐसे है जह ही गम्भीर है। इनमें आन्ध्रप्रदेश, आसाम, बिहार, उड़ीसा और केन्द्र शासित प्रदेश पुर प्रमुख है। आगे तालिम में भारतवर्ष में इस प्रकार की खेती करने वाले व्यक्तियों की संख्या और इसके धूम-कृषि के लिए प्रयुक्त भूमि को दिखाया गया है।

राज्य व केन्द्र शासित प्रदेशझूम-कृषि करने वाले व्यक्तियों और भूमि का विवरण

क्र.सं.	राज्य व केन्द्र शासित प्रदेश	झूम-कृषि करने वाले व्यक्तियों की संख्या	गतिविध झूम-कृषि प्रयोग भूमि (एकड़)

1.	आन्ध्रप्रदेश	200000	96000
2.	असम	699000	558800
3.	बिहार	115000	436
4.	उड़ीसा	935700	40000
5.	मणिपुर	183000	54000
6.	त्रिपुरा	134000	116900
7.	मध्यप्रदेश	44000	72300
8.	बंगाल	25000	14200
9.	मिज़ोरम	14000	3000
10.	मणिपुर	2200	54000
11.	केरल	2589401	1351938

इससे स्पष्ट होता है कि झूम-कृषि भारतीय वन्यजातियों की मौलिक विशेषता है। इसके अडिसन वन्यजातियाँ हल से भी खेती करती है, किन्तु इनके तरीके अत्यन्त ही प्राचीन और अविकसित है।

(2) अदला-बदली व्यवस्था (Barter System) भारतीय वन्यजातियों की दूसरी आर्थिक विशेषत बदली प्रथा है। इसका कारण यह है कि वन्यजातियों में रुपये का अभाव पाया जाता है। इसलिए आदम् के लिए वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। दो व्यक्तियों या दो परिवारों के बीच अदला-बदली का आधार बा होती है। इसलिए इन वन्यजातियों में

मूल्य-निर्धारण (Price determination) की कोई व्यवस्था नहें। बी ही शाखा व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की विकसित संस्था ही।

(3) प्रकृति पर आधारित भारतीय वन्यजातियों की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था प्रकृति पर आधारित है। अ पानी प्राकृतिक स्रोतों तथा नदी नालों से प्राप्त होता है। कृषि पूरी तरह पानी तथा अन्य प्राकृतिक शा आधारित होती है। ये अपनी खाद्य-सामग्री भी जंगली फल-फूल, जड़ और पत्तियों से प्राप्त करते है, जिनस प्रकृति होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सारी अर्थ-व्यवस्था प्रकृति पर आधारित होती है।

(4) आर्थिक संस्थाओं का अभाव वन्यजातियों में आर्थिक संस्थाओं का भी अभाव पाया बाह इसका कारण यह है कि वहाँ लाभकारी कृषि, उद्योग और व्यापारों का अभाव पाया जाता है। यही कार।। वन्यजातियों में विकसित आर्थिक संस्थाओं-बैंक, बाजार, स्टाक एक्सचेंज आदि का अभाव पाया जात

(5) सम्पत्ति का कम महत्व वन्यजातियों के जीवन में भी यद्यपि संपत्ति को स्थान दिया ज किन्तु सम्पत्ति को वे उतना महत्व प्रदान नहीं करते है, जितना कि आधुनिक समाजों में। वे अस्थायी जीवन ब करते है, इससे भूमि पर भी उनका स्वामित्व स्थायी नहीं रह पाता है। वे भूमिहीन होते है। जगली जान पालतू पशु ही उनकी सम्पत्ति है। सोना, चाँदी, यन्त्र, आदि का वे संग्रह नहीं करते है।

(6) अविकसित उद्योग - भारतीय वन्यजातियों के जीवन में उद्योग का भी महत्वपूर्ण स्थान है अनेक बन जनजातीय ऐसी है जो जीवो कोपार्जन के लिए उद्योगों का संपादन करते हैं किंतु इन उद्योगों की मौलिक विशेषता

यह है कि इन उद्योगों का स्वरूप अत्यन्त ही आदिम, परम्परात्मक और अविकसित होता है। वन्यजातीय क्षेत्रों में कुछ व्यक्तियों ने उद्योगों की स्थापना की है। इन उद्योगों में वन्यजाति के व्यक्ति श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं।

(7) सामूहिकता वन्यजातीय अर्थ-व्यवस्था की मौलिक विशेषता सदस्यों में पाई जाने वाली सामूहिकता की भावना है। वन्यजातियों में सामूहिक जीवन अत्यन्त ही दृढ़ होता है। इसका कारण यह है कि ये घोर जंगलों और पहाड़ों में निवास करते हैं, जंगली हिसक

पशुओं तथा अनेक प्राकृतिक विपदाओं से घिरे होते हैं। इससे इनके जीवन में सुरक्षा का महत्व सबसे अधिक होता है। इसके साथ ही अनेक ऐसे आर्थिक कार्य हैं, जिन्हें कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता है। इन कार्यों में आखेट करना, मछली मारना, खेती करना आदि प्रमुख है। इसका परिणाम यह होता है कि वन्यजातियों में सामूहिक अर्थ-व्यवस्था का जन्म होता है

(8) विशेषीकरण का अभाव वन्यजाति जो भी आर्थिक क्रियाएँ करते हैं, इन क्रियाओं का उद्देश्य लाभ कमाना न होकर जीवन-यापन करना होता है। इसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक क्रियाओं में श्रम-विभाजन (Division of Labour) और विशेषीकरण (Specialization) का अभाव पाया जाता है। सभी आर्थिक क्रियाएँ सामूहिक आधार पर संचालित की जाती हैं- जैसे शिकार करना, खेती करना, मछली मारना आदि ऐसी ही आर्थिक क्रियाएँ हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं।

(9) प्रथाओं पर आधारित वन्यजातीय अर्थ-व्यवस्था की अगली विशेषता यह है कि इसमें सांस्कृतिक

और सामाजिक प्रथाओं की छाप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सभी वन्यजातियाँ आर्थिक क्रियाओं का संचालन प्रथाओं के आधार पर करते हैं। इसीलिए आर्थिक संगठनों और आर्थिक क्रियाओं पर धर्म, देवी-देवता, प्रथाओं तथा परम्पराओं की छाप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

(10) अविकसित प्रौद्योगिकी वन्यजातीय समाजों में प्रौद्योगिकी (Technology) है, किन्तु इसका स्वरूप अत्यन्त ही अविकसित है। वन्यजातियों के उत्पादन और रहन-सहन की जो पद्धतियाँ हैं, वे अत्यन्त ही प्राचीन है। आधुनिक यन्त्रों का नितांत अभाव है। वे उद्योगों को संचालित करने वाली नवीन पद्धतियों के ज्ञान से

पूर्णतया अपरिचित है।

(11) मिश्रित अर्थ-व्यवस्था अन्त में भारतीय वन्यजातियों की अर्थ-व्यवस्था को मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनके जीवन के

आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पहलू परस्पर अन्तः सम्बन्धित है। इसके साथ ही अर्थ-व्यवस्था का स्वरूप मिश्रित है।

आर्थिक संस्थाए

(Economic Institutions)

मानव स्वभावतः सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे अनेक प्रकार की क्रियाओं का सम्पादन करना पड़ता है। ये क्रियाएँ जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित होती हैं, जिनमें सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रियाएँ प्रमुख हैं। मानव जीवन अनेक प्रकार की मूल प्रवृत्तियों (Instincts) द्वारा संचालित और निर्देशित होता है। सामाजिक क्रियाओं के सम्पादन में इन मूल प्रवृत्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भूख और प्यास मानव की सबसे आवश्यक मूल प्रवृत्ति है। इस मूल प्रवृत्ति को सन्तुष्ट किये बिना मनुष्य के जीवित रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

मानव समाज के ऐतिहासिक विकास की व्याख्या करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जन्म के साथ ही मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ थीं। इन आवश्यकताओं में भौतिक आवश्यकताएँ सर्वप्रथम थीं। इन आवश्यकताओं में भोजन, वस्त्र और निवास की आवश्यकताओं को सम्मिलित किया जा सकता है। मानव अस्तित्व की रक्षा के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है। अत्यन्त प्राचीनकाल से मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक साधनों का प्रयोग करता आया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनेक आवश्यकताओं में आर्थिक आवश्यकताएँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। मानव आर्थिक संस्थाओं के नाम से जाना जाता है।

आर्थिक संस्थाओं की परिभाषाएँ

(Definition of Economic Institutions)

आर्थिक संस्थाओं की प्रमुख परिभाषाओं में से कुछ निम्नलिखित हैं

(1) **जोन्स** 'आर्थिक संस्थाएँ विभिन्न विधियों, विचारों तथा प्रथाओं की जटिल समग्रता है, जिसका सम्बन्ध जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भौतिक पर्यावरण के शोषण से सम्बन्धित है।'

(2) एन्डरसन 'आर्थिक संस्थाएँ वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण के माध्यम से समाज के अस्तित्व की रक्षा करती है। यह पूँजी, श्रम, भूमि, कच्चे माल तथा व्यवस्था सम्बन्धी योग्यता के अधिकतम उपयोग द्वारा सम्भव होता है।'

(3) डेविस 'वे मौलिक विचार चाहे किसी समाज में अप्राप्त वस्तुओं के वितरण के लिए निर्देशित करते हैं, चाहे समाज आदिम हो या सभ्य, हम उन्हें उनकी आर्थिक संस्थाएँ कहते हैं।'

(4) ऑगवर्न तथा निमकॉफ (Ogburn and Nimkoff) 'भोजन और सम्पत्ति से सम्बन्धित मानवीय चेष्टायें संस्थाओं का निर्माण करती है।'

संक्षेप में, 'मानव जीवन और समाज की उन संस्थाओं को आर्थिक संस्थाओं के नाम से परिभाषित किया जा सकता है जो मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं और इनकी सन्तुष्टि के साधनों का ज्ञान कराती है।'

आर्थिक संस्थाओं की विशेषताएँ

(Characteristics of Economics Institutions)

उपर्युक्त परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए आर्थिक संस्थाओं की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती

हैं-

(1) आर्थिक संस्थाएँ प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करती है।

(2) आर्थिक संस्थाओं का उद्देश्य मनुष्य के आर्थिक जीवन को व्यवस्थित करना होता है।

(3) इनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से मानवीय आवश्यकताओं से होता है।

(4) आर्थिक संस्थाओं का जन्म मानवीय चेष्टा के परिणामस्वरूप होता है।

5) आर्थिक संस्थाएँ अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित उत्पादन और वितरण के नियमों की विवेचना करती है। (

आर्थिक संस्थाओं का ऐतिहासिक विकास

(Historical Development of Economic Institutions)

समाज की अनेक संस्थाओं का मनुष्य के साथ ही शनैः शनैः उद्भव और विकास हुआ है। आर्थिक संस्थाएँ भी सामाजिक उद्विकास की इसी प्रक्रिया से गुजरी है। संक्षेप में, आर्थिक संस्थाओं के उद्भव और विकास को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) भौतिक साधन एकत्रित करने तथा शिकारी अवस्था यह आर्थिक संस्थाओं के विकास की पहली अवस्था है। यदि हम डार्विन के शब्दों में मानव उद्विकास की विवेचना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य बन्दरों की भाँति था, जंगलों और पहाड़ों में निवास करता था तथा अपनी भूख शान्त करने के लिये कन्दमूल और फल एकत्रित करता था। वह पशुओं का शिकार करके भी अपनी भोजन सामग्री एकत्रित करता था। यह आर्थिक संस्थाओं के विकास की पहली अवस्था थी। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) इस अवस्था में श्रम विभाजन का अभाव था। पुरुष शिकार करते थे। इसी प्रकार के अन्य कठिन

कार्यों को सम्पादित करते थे तथा इसके विपरीत स्त्रियों का काम भोजन बनाना तथा परिवार के

लिए फल-फूल इकट्ठा करना और बच्चों की देखभाल करना था।

(b) इस युग की दूसरी विशेषता यह थी कि व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसी कोई वस्तु नहीं थी, जो भी फल- फूल या शिकार एकत्रित करते थे, वह समूह की सम्पत्ति मानी जाती थी।

(c) इस अवस्था की तीसरी विशेषता यह थी कि सम्पूर्ण समुदाय आत्म-निर्भर था। समुदाय के सभी सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने आप ही करते थे।

(2) पशुपालन एवं कृषि अवस्था समाज की प्रकृति गतिशील है। इस गतिशीलता के कारण मनुष्य समाज और आर्थिक संस्थाएँ निरन्तर परिवर्तित होती गई। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य ने आखेट अवस्था से कृषि और पशुपालन अवस्था में प्रवेश किया। कृषि और पशुपालन उत्पादन की दो ऐसी क्रियाएँ है जिन्होंने मनुष्य और समाज के जीवन को ही परिवर्तित कर दिया। इस अवस्था में मनुष्य ने कृषि करना सीख: लिया तथा जिन पशुओं का वह शिकार करता था उनका पालन करने लगा। आज भी ऐसे अनेक समाज हैं जो प्रारम्भिक अवस्था में ही कृषि करते हैं, इस कृषि को 'कुदाली खेती' के नाम से जाना जाता है। मध्यप्रदेश की अनेक वन्यजातियाँ 'स्थानांतरित कृषि' करती हैं। इस अवस्था की प्रमुख आर्थिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) भूमि को सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

(b) इस प्रकार सामूहिक सम्पत्ति के स्थान पर व्यक्तिगत सम्पत्ति का जन्म हुआ।

(c) इस युग में वस्तु विनिमय की प्रथा का भी प्रचलन हुआ।

(d) कृषि उत्पादन तथा कृषि से सम्बन्धित औजारों के विनिमय के लिये छोटी-छोटी मंडियों का विकास हुआ।

(e) इस युग में श्रम विभाजन का स्वरूप भी अधिक स्पष्ट हो गया।

(3) हस्तकला की अवस्था आर्थिक समस्याओं के विकास की तीसरी अवस्था का प्रारम्भ तब होता है जब मनुष्य हाथ से औजार बनाना सीख लेता है। कृषि कार्य को सम्पादित करने के लिये मनुष्य ने अनेक प्रकार के औजारों की आवश्यकता का अनुभव किया, हस्तकला के कारण सम्पत्ति का विकास तो हुआ ही इसके साथ ही मनुष्य के लिये अनेक क्षेत्र भी खुल गये। उसे अनेक धातुओं का ज्ञान हो गया। इस युग की प्रमुख आर्थिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है

(a) कृषि के लिये छोटे-छोटे औजारों का हाथ से निर्माण किया जाने लगा। (b) औजारों के आविष्कार के परिणामस्वरूप गृह उद्योगों का जन्म हुआ।

(c) कृषि युग में वस्तु विनिमय का स्वरूप स्पष्ट तथा व्यवस्थित हो गया।

(d) व्यापारियों और कारीगरों के संघों का निर्माण हुआ।

(e) चुंगी के महत्व की वृद्धि हुई।

(1) साझेदारी तथा पूँजीवादी व्यवस्था का जन्म हुआ।

आधुनिक आर्थिक व्यवस्थाएँ

(Modern Economic Systems)

औद्योगिक क्रान्ति आधुनिक आर्थिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप नये आविष्कार हुए और इन आविष्कारों ने समाज की अर्थव्यवस्था को ही परिवर्तित कर दिया। आधुनिक अर्थ- व्यवस्था को मिश्रित या जटिल अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था विश्व के प्रत्येक प्रगतिशील देश में पाई जाती है। प्रायः प्रत्येक देश में अर्थ-व्यवस्थाओं का एक मिश्रित स्वरूप रहता है; जैसे- औद्योगिक अर्थव्यवस्था प्रायः कृषि-प्रधान है। अनेक देश ऐसे भी हैं जहाँ अनेक प्रकार की अर्थव्यवस्थाएँ मिश्रित रूप में रहती हैं।

इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि प्रगति के क्रम में एक प्रकार की आर्थिक व्यवस्था इसी प्रकार की आर्थिक व्यवस्था को जन्म देती है जिससे समाज विकास के पथ पर अग्रसर होता है। आधुनिक युग की जो प्रमुख आर्थिक व्यवस्थाएँ हैं उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) पूँजीवाद (Capitalism), (2) समाजवाद (Socialism), तथा (3) साम्यवाद (Communism)।

भारत में जनजातियों का आर्थिक विभाजन

(Economic Division of Tribes in India)

अर्थव्यवस्था समाज की नींव हुआ करती है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज में अर्थव्यवस्था का अपना महत्व होता है। अर्थव्यवस्था के आधार पर ही समाज में आर्थिक गतिविधियों का संचालन होता है। जनजातियों का अपना समाज होता है, उनकी अपनी संस्कृति और परम्पराएँ होती हैं। इस संस्कृति और परम्परा के आधार में उनकी

अर्थव्यवस्था होती है। समाज की जैसी आर्थिक व्यवस्था होगी, इसी के आधार पर समाज की संस्कृति और परम्परा का निर्माण और विकास होगा। जब हम जनजातियों के आर्थिक विभाजन की बात करते हैं तो इसका

सीधा-सा तात्पर्य जनजातियों की उन विभिन्न आर्थिक अवस्थाओं से है, जिन अवस्थाओं से होकर मानव समाज का उद्विकास हुआ है। जनजातियों की अर्थव्यवस्था अपने आप में एक विशिष्टता लिए हुए है। इसी विशिष्टता के कारण जनजातीय समाज का आर्थिक विभाजन किया जाता है। विभिन्न विद्वानों ने भारतीय समाज की जनजातियों का जो आर्थिक विभाजन किया है, संक्षेप में वह इस प्रकार है

() टी.सी. दास - अप्रैल-मई 1957 में कोरापुत में चौथा जनजाति कल्याण सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में श्री टी.सी. दास ने एक शोध पत्र पढ़ा था, जिसमें उन्होंने आर्थिक स्तर के आधार पर जनजातियों को निम्न पाँच भागों में विभाजित किया था

(a) खानाबदोश, भोजन संग्रहक और चरवाहा,

(b) पहाड़ी ढालों में स्थानान्तरित खेती करने वाले कृषक,

(c) पठार और पहाड़ की तलहटी में हल से खेती करने वाले कृषक,

(d) हिन्दू आर्थिक व्यवस्था के साथ मिल जुलकर कार्य करने वाले और

(e) वे जनजातीय समूह, जो पूरी तरह से हिन्दुओं की उच्च स्थिति के साथ अपने को आत्मसात कर लिए हैं।

(2)मजूमदार और मदन मजूमदार और मदन ने अपनी पुस्तक Races and Cultures of India में भारत की जनजातियों को तीन स्तरों में विभाजित किया है, जिसे निम्न तालिका में दिखाया गया है

भारतीय जनजातियों का विवरण

निम्न तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में जनजातियों का विवरण दिया गया है:

क्रमांक	राज्य	शिकार करना तथा वन सम्पदा एकत्रित करना	स्थानान्तरण अथवा कृषि, लकड़ी काटना तथा काष्ठ आदि बनाना
1.	उत्तरप्रदेश	कोरवा, रबैया, मुंड़वा, खबरा	मांझी, विंद, खसिया, केलालास
2.	बिहार	खाड़िया, पाड़ास, बिंसाही	मुंडा, हो, तोरंगा, उरांव
3.	आसाम	खाड़िया, खड़सिया, बिंसाही	कोरबा
4.	पश्चिम बंगाल	कुंभी	गारी, माल, हारिया, पोलिया, सांथाल
5.	मध्यप्रदेश	हिलमालिया, भुइयां, डोंडामी, परजा	मटरा, बैगा, भारिया, गोंड, कोमार
6.	मद्रास तथा हैदराबाद	चेचू, कुरुम्बाकोया, पार्डिवान, कोड़िगरी	खोंड, कुरुम्बा, गोंड, सावर, मुंडवान
7.	उड़ीसा	जुआंग	सावर
8.	बम्बई तथा राजस्थान	भील	भील तथा गोंड

(3) हड्डून - हट्टन ने आर्थिक स्तर के आधार पर जनजातियों को निम्नलिखित तीन समूहों में विभाजित किया है।

(a) जनजातियाँ जो जंगलों से खाद्य सामग्री का संग्रहण करती है, b) जनजातियाँ, जो चरवाही की अवस्था में हैं तथा

(c) वे जनजातियाँ, जो कृषि कार्य, शिकार, मछली मारना तथा उद्योग, आदि क्षेत्रों में कार्य करती हैं।

(4) प्रो. एस.सी. दुबे प्रो. दुबे ने आर्थिक स्तर के आधार पर जनजातियों को निम्नलिखित भागों में

विभाजित किया है -

(a) महत्वपूर्ण

(i) खाद्य संग्रहण की अवस्था,

(ii) अव्यवस्थित प्राथमिक कृषि अवस्था,

(iii) व्यवस्थित प्राथमिक कृषि अवस्था।

(b) अर्द्धमहत्वपूर्ण

(i) काश्तकारी एवं उद्योग से जीवन यापन करने वाली,

(ii) पशुचारी अवस्था,

(iii) अपराधों के माध्यम से जीवन यापन करने वाली।

(5) श्री एल.पी. विद्यार्थी प्रो. विद्यार्थी ने 1978 में भारतीय जनजातियों को आठ समूहों में विभाजित किया है। उनके द्वारा विभाजित समूह निम्नलिखित है-

(a) वन आखेट,

(b) पहाड़ी कृषि

(c) मैदानी कृषि,

(d) साल कारीगर,

(e) पशुचारक,

(f) लोक कलाकार,

(g) कृषि कार्य एवं अन्य श्रमिक,

(h) कुशल, श्रमिक, नौकरी एवं व्यापारी।

(6) ग्रास ग्रास (Gross) ने लिखा है कि जनजातियों में निम्न चार प्रकार के अर्थतंत्र पाए जाते है-

(a) संग्रहणात्मक अर्थतंत्र,

(b) सांस्कृतिक तथा घुमक्कड़ अर्थतंत्र,

(c) व्यवस्थित ग्रामीण अर्थतंत्र,

(d) विशाल नगरीय अर्थतंत्र।

(2)

(7) थार्नवाल्ड (Tharnwald) ने जनजातियों को उनकी अर्थव्यवस्था के आधार पर निम्न सात भागों में विभाजित किया है -

(a) शिकार, पशु-पक्षी पकड़ने वाले तथा खाद्य सामग्री एकत्रित करने वाले समरूप समुदाय,

(b) शिकार, पशुपक्षी पकड़ने वाले तथा कृषिकों के समरूप समुदाय,

c) कृषक तथा कारीगरों के कोटिबद्ध समुदाय,

(d) शिकारी तथा चरवाहे,

(e) श्रेणीबद्ध पशुपालक तथा व्यापारिक समुदाय,

(0) समाज द्वारा कोटिबद्ध कारीगर, कृषक तथा शिकारी,

(g) राज्य जमींदारी तथा समाज द्वारा श्रेणीबद्ध समुदाय।

(8) फोर्ड तथा हर्सकोविट्स फोर्ड तथा हर्सकोविट्स (Forde and Herskovits) ने जनजातीय अर्थव्यवस्था के निम्नलिखित भाग किए हैं-

(a) संग्रहण की अर्थव्यवस्था,

(b) शिकारी अर्थव्यवस्था

(c) मत्स्य शिकारी अर्थव्यवस्था,

(d) कृषि तथा पशुपालन की अर्थव्यवस्था।

(9) जैकब्स तथा इस्टर्न जैकब्स तथा इस्टर्न (Jacobs and Eastern) ने जनजातीय अर्थव्यवस्था को म्न दो भागों में विभाजित किया है-

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

(a) शिकार, मछली तथा खाद्य सामग्री का संग्रहण करने वाला समुदाय। इसके दो स्वरूप हैं-

सरल तथा

(ii) विकसित ।

(b) कृषि तथा पशुपालक समुदाय। इसके दो स्वरूप हैं-

(i) सरल तथा

(ii) विकसित

जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

(Characteristics of Tribal Economy)

जनजातीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) धर्म प्रभावित अर्थव्यवस्था (Economy Influenced by Religion) जनजातीय अर्थव्यवस्था की पहली विशेषता यह है कि इस पर धर्म का प्रभाव अधिक रहता है। जनजातियों को पूरा भरोसा रहता है कि धर्म के माध्यम से समस्त आर्थिक कठिनाइयों का सरलता से समाधान किया जा सकता है। यही कारण है कि जनजातीय समाज में धर्म तथा जादू, टोना और टोटका को आजीविका का आधार माना जाता है। अनेक जनजातियों में कृषि की अच्छी उपज के लिए नरबलि दिए जाने का प्रावधान है।

(2) अदला बदली व्यवस्था (Barter System) जनजातीय अर्थव्यवस्था की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है- अदला-बदली। इसका तात्पर्य यह है कि एक वस्तु को लेकर दूसरी वस्तु देना। इसे ही अर्थशास्त्र में विनिमय सिद्धांत (Exchange Theory) के नाम से जाना जाता है। यह आदान प्रदान आन्तरिक समूह के साथ होता है। बाहरी समूह के साथ आदान प्रदान की प्रथा नहीं पाई जाती है।

(3) मान्यताओं पर आधारित (Based on Assumption) जनजातीय समाज की अर्थव्यवस्था मान्यताओं पर आधारित होती है। कोई भी जनजातीय समुदाय का व्यक्ति इन मान्यताओं की अवहेलना और उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता है।

(4) अस्तित्व के लिए उत्पादन (Production for Existence) जनजातियों में उत्पादन लाभ के लिए न किया जाकर अस्तित्व रक्षा के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में उत्पादन इसलिए किया जाता है कि ऐसा न करने से व्यक्ति और समुदाय का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि उत्पादन का आधार आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है।

(5) सरल व्यवस्था (Simple System) जनजातीय अर्थव्यवस्था सरल होती है। निम्न दो कारणों से जनजातियों की अर्थव्यवस्था सरल होती है

a.मुद्रा के प्रचलन का अभाव,

b. पूँजी संचय का महत्व नहीं।

(6) न हानि, न लाभ (No Profit, No Loss) जनजातीय अर्थव्यवस्था हानि और लाभ से मुक्त होती है। मुद्रा होती नहीं तथा मुद्रा का संचय भी नहीं किया जाता है। अर्थव्यवस्था केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तक आधारित होती है। अतः लाभ-हानि का प्रश्न नहीं रहता है।

(7) हम की भावना (We Feeling) जनजातीय अर्थव्यवस्था हम की भावना पर आधारित होती है। इसमें प्रतियोगिता का अभाव पाया जाता है। हानि और लाभ का भी कोई प्रश्न नहीं होता। ऐसी स्थिति में सभी जनजातीय समाज के व्यक्ति एक दूसरे के साथ हम की भावना के द्वारा बँधे होते हैं।

(8) प्रतियोगिता का अभाव (Lack of Competition) जनजातीय अर्थव्यवस्था में प्रतियोगिता का अभाव पाया जाता है। प्रतियोगिता के अभाव के कारण हैं- सदस्यों में हम की भावना, मुद्रा का अभाव, संचय की प्रवृत्ति का अभाव, लाभ का अभाव, आदि। उपर्युक्त कारणों से प्रतियोगिता का अभाव पाया जाता है।

(9) परम्परागत (Traditional) जनजातीय अर्थव्यवस्था परम्परा पर आधारित होती है। यही कारण है कि इसमें नवीनता का अभाव पाया जाता है।

(10) कार्यकुशलता का अभाव (Lack of Efficiency) चूँकि जनजातीय अर्थव्यवस्था परम्परागत होती है। यही कारण है कि

2.5 पृथकीकरण, आत्मसात्मीकरण एवं एकीकरण (Isolation, Assimilation And Integration)

भारत में आदिकाल से जनजातीय समाज का अस्तित्व रहा है। जनजातीय समाज भले ही पहाड़ों और जंगलों में निवास करता रहा है, किन्तु वह भारतीय समाज का अभिन्न अंग था। वे अपना स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करते थे तथा उनकी एक प्रशासकीय व्यवस्था थी, जिसके आधार पर वे अपने सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन को संचालित करते थे। भारत में अंग्रेजों के आगमन के बाद उनके जीवन में तब परिवर्तन आया, जब अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' (Divide and Rule) की नीति के तहत जनजातियों को सामान्य समाज से अलग करने की नीति को प्रशासन का अंग बनाया। इस दृष्टि से उनका पहला प्रयास यह रहा कि जनजातीय समाज को सामान्य समाज से पृथक कर दिया जाय। जनजातीय समाज को सामान्य समाज से पृथक करने की इसी प्रक्रिया को पृथकीकरण के नाम से जाना जाता है।

जनजातीय समाज में पृथकीकरण, आत्मसात्मीकरण और एकीकरण की प्रक्रिया को निम्न आधार पर समझने का प्रयास किया जाएगा-

1. स्वतन्त्रता से पहले अंग्रेजों ने जनजातीय समाज को समाज की मुख्य धारा से अलग करने का प्रयास किया। यह प्रयास जनजातीय समाज के पृथकीकरण के नाम से जाना गया।

2. स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने जनजातीय प्रशासन से सम्बन्धित नीति को समाप्त कर जनजातीय समाज को आत्मसात करने का प्रयास किया ताकि वे भारत के अभिन्न अंग बने और उन्हें भी वही अधिकार और सुविधाएँ प्रदान की, जो सामान्य भारतीयों को प्रदान की गईं। इससे जनजातियों में पृथकीकरण की भावना की भावना समाप्त हुई और उनमें आत्मसात्मीकरण की भावना का विकास हुआ।

3. आत्मसात्मीकरण की भावना को प्रबल बनाने के लिए जनजातीय समाज को अनेक संरक्षण और सुविधाएँ प्रदान की गईं। इन सुविधाओं और संरक्षण के कारण जनजातीय समाज का राष्ट्र की मुख्य धारा से एकीकरण हुआ।

पृथकीकरण के लिए प्रयास

(Efforts for Isolation)

अंग्रेजों ने जनजातीय समाज को भारत की मुख्य धारा से अलग करने के लिए अनेक प्रयास किए तथा इसके लिए कानूनों का निर्माण किया। इन प्रयासों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

अंग्रेजों ने कुछ जनजातीय क्षेत्रों 'वर्जित' (Excluded) तथा कुछ क्षेत्रों को 'आंशिक वर्जित' (Partially Excluded) घोषित कर दिया तथा उन्हें कुछ राजनैतिक प्रतिनिधित्व प्रदान कर दिया, जिससे अलगाववादी अल्पसंख्यकों को तैयार किया जा सके।

1782 में आगस्त क्लीवलैण्ड, जो राजमहल पहाड़ी क्षेत्र के प्रशासक थे, राजमहल पहाड़ी क्षेत्र को सामान्य प्रशासन के दायरे से अलग कर दिया तथा इस पहाड़ी क्षेत्र फौजदारी और दीवानी अधिकार स्थानीय लोगों को दे दिया। बाद में इस क्षेत्र में निवास करने वाली जनजातियों की एक सभा का भी गठन कर दिया गया तथा उन्हें प्रशासन के अधिकार दे दिए गए।

1870 में भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act, 1870) पारित कर जनजातियों का क्षेत्रवार बंटवारा कर इन क्षेत्रों को 'अनुसूचित क्षेत्र' (Scheduled Tracts) घोषित कर दिया गया।

1874 में अनुसूचित जिला अधिनियम (Scheduled District Act, 1874) पारित कर दिया गया। इस अधिनियम के पारित हो जाने से कुछ जिलों को अनुसूचित जनजाति के लिए घोषित कर दिया गया तथा इन जिलों के प्रशासकीय अधिकारियों को यह अधिकार प्रदान कर दिए गए कि किसी भी कानून का परिपालन सम्बन्धित जिले की जनजातीय जनसंख्या के संदर्भ में किया जाय।

1918 की मान्टेंगु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में पिछड़े क्षेत्रों (Back Ward Areas) के प्रशासन को अन्य क्षेत्रों के प्रशासन से न जोड़ा जाय तथा इन्हें अलग रखा जाय ।

1919 के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act, 1919) द्वारा पिछड़े क्षेत्रों को दो भागो में विभाजित कर दिया गया

(a)पूर्णतः निषिद्ध क्षेत्र (Wholly Excluded Area) और

(b) संसोधित निषिद्ध क्षेत्र (Modified Excluded Area)

इन क्षेत्रों को सामान्य कानूनों से बाहर कर जनजातीय समाज को राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग-अलग करने का प्रयास किया गया था।

1. 1935 के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act, 1935) की धारा 91 तथा 92 में पिछड़े क्षेत्रों को वर्जित (Excluded) तथा आंशिक वर्जित क्षेत्रों (Partially Excluded Area) में वर्गीकृत किया। इन क्षेत्रों में गवर्नर को विवेकानुसार कार्य करने के अधिकार दिए गए।

2. 1939 में बेरियर एल्विन ने जनजातियों के विकास के लिए 'नेशनल पार्क' की तरह क्षेत्रों को विकसित करने का सुझाव दिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वतंत्रता से पहले अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य भारत के अन्दर अनेक छोटे-छोटे समूहों को विकसित करना था, जिससे भारत की अखण्डता को आघात लगे और इसलिए अंग्रेजों ने अनेक कानूनों आदि को पारित किया तथा जनजातियों के पृथकीकरण का प्रयास किया।

(9) व्यवस्थापन व्यक्तियों को नवीन परिस्थितियों के अनुकूलन करने के योग्य बनाता है।

(10) अन्त में, व्यवस्थापन आत्मसात के लिए मार्ग प्रशस्त कर देता है।

आत्मसात

(Assimilation)

गाय हरी घास खाती है और इस हरी घास को दूध के रूप में परिवर्तित कर देती है। इसका अर्थ यह हुआ कि गाय हरी घास को आत्मसात कर गई और उसको दूध के रूप में बदल दिया। इसी प्रकार हम भोजन करते हैं। भोजन शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा पचाया जाता है। इस भोजन का शरीर में विद्यमान विभिन्न रसों से मेल होता है, अन्त में वह भोजन खून के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इससे शारीरिक और मानसिक शक्ति में वृद्धि होती है। स्त्री और पुरुष का पहले व्यवस्थापन होता है। बाद में यह व्यवस्थापन आत्मसात का रूप ले लेता है। इसी प्रकार जब दो संस्कृतियाँ आपस में मिलती हैं तो इन दोनों में संघर्ष होता है। संघर्ष जब काफी समय तक चलता है तो यह व्यवस्थापन के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जब व्यवस्थापन काफी दिनों तक चलता रहता है तो यह आत्मसात का रूप ले लेता है। आत्मसात का सीधा अर्थ है कि दो वस्तुओं को इस प्रकार घुला- मिला देना कि दोनों के बीच स्पष्ट अन्तर करना सम्भव न रह जाये। जब दो संस्कृतियाँ कुछ इस प्रकार घुल- मिल जाएँ कि दोनों की विशेषताएँ या दोनों के गुणों को अलग-अलग करना असम्भव हो जाये तो उसे आत्मसात कहेंगे। उदाहरण के लिये दूध और पानी को मिलाने की प्रक्रिया आत्मसात है, क्योंकि ऐसा करने से दोनों के अस्तित्व एक दूसरे से काफी घुल-मिल जाते हैं।

आत्मसात की परिभाषा

(Definition of Assimilation)

(1) **ऑगबर्न और निमकॉफ** - "आत्मसात एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा असमान व्यक्तियों का समूह समान हो जाते हैं अर्थात् वे अपने स्वार्थों और दृष्टिकोणों में समान हो जाते हैं।'

'अनेक व्यक्तियों के दृष्टिकोण एकीकृत हो जाते

(2) बोगार्ड्स - "आत्मसात एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनेक व्यि हैं और वे एक संयुक्त समूह के रूप में विकसित होते हैं।

(3) बीसेंज और बीसेंज- "आत्मसात सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति और समूह समान भावनाओं, मूल्यों और उद्देश्यों को स्वीकार कर लेते हैं । "

(4) पार्क और बर्जेज "आत्मसात अन्तर प्रवेश और एकता की वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति और समूह व्यक्तियों और समूहों की धारणाओं, भावनाओं और दृष्टिकोणों को अर्जित कर लेते हैं तथा उनके अनुभव एवं इतिहास के भागीदार बनकर उनके साथ एक सामान्य सांस्कृतिक जीवन में समाविष्ट हो जाते हैं।

(5) सदरलैण्ड और वुडवर्ड "आत्मसात दृष्टिकोणों और मूल्यों का सम्पूर्ण सम्मिश्रण है।

(6) फिचर - "दो या दो से अधिक व्यक्ति या समूह के एक दूसरे के व्यवहार और आदर्शों को स्वीकार कर लेने को ही आत्मसात कहते हैं।

(7) समाजशास्त्रीय शब्दकोष - "आत्मसात एक प्रक्रिया है, जिससे विभिन्न संस्कृतियाँ या संस्कृतियों के व्यक्ति या समूह एक समान इकाई के रूप में मिल जाते हैं।

संक्षेप में, "आत्मसात वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो व्यक्तियों या समूहों के दृष्टिकोणों और क्रियाओं में एकरूपता उत्पन्न हो जाती है। "

आत्मसात की विशेषताएँ

(Characteristics of Assimilation)

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर आत्मसात की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

i आत्मसात एक सामाजिक प्रक्रिया है।

ii इस सामाजिक प्रक्रिया के द्वारा दो व्यक्तियों या समूहों के दृष्टिकोणों में समानता आ जाती है।

iii आत्मसात की प्रक्रिया आन्तरिक होती है। इसके द्वारा आन्तरिक सन्तुलन का विकास होता है।

(iv) इस प्रक्रिया के द्वारा दो व्यक्ति या दो समूहों के विचारों, भावनाओं और मनोवृत्तियों में कोई अन्त नहीं रह पाता है।

(v)आत्मसात एक प्रक्रिया है जिसकी विशेषता 'निरन्तरता' होती है। इस प्रकार आत्मसात एकाएक न होकर कुछ अवस्थाओं (stages) में होती हैं।

(vi) आत्मसात का सम्बन्ध अभौतिक वस्तुओं से है।

आत्मसात के सहायक तत्व (Elements of Conductive to Assimilation)

आत्मसात की प्रक्रिया में कुछ तत्व सहायक होते हैं अर्थात् इन तत्वों के द्वारा आत्मसात अधिक प्रभाव ढंग से होता है। संक्षेप में ये तत्व निम्न हैं।

(1) सहिष्णुता (Toleration) - सहिष्णुता आत्मसात का आधार है। इसके द्वारा व्यक्तियों के दृष्टिकोणों, विचारों और भावनाओं से उदारता आती है। इस उदारता के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों में वृद्धि होती है। उदारता के द्वारा संघर्ष समाप्त हो जाता है और सभी व्यक्ति दूसरे की सांस्कृतिक विशेषताओं को से स्वीकार करते हैं जिससे आत्मसात की प्रक्रिया गतिशील होती है।

(2) समान आर्थिक दशाएँ (Same Economic Conditions) - आत्मसात की प्रक्रिया को आर्थिक अवसरों की समानता के कारण भी बल मिलता है। यदि आर्थिक दशाएँ समान होती हैं तो सामाजिक सम्बन्ध अधिक स्थायी होते हैं।

(3) सामाजिक और सांस्कृतिक समानताएँ (Social and Cultural Similarities) - जिस प्रकार आर्थिक दशाओं की समानता से आत्मसात की प्रक्रिया गतिशील होती है। ठीक इसी प्रकार यदि दो समूहों की सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताएँ समान होती हैं तब भी आत्मसात प्रभावशाली ढंग से होता है।

(4) सामाजिक सम्पर्क की समीपता (Close Social Contact)- समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। संबंधों की स्थापना प्रतयक्ष और अप्रत्यक्ष संपर्क द्वारा

होती है। यदि दो समूहों का सम्पर्क निकटता से होता है, तभी आत्मसात की सम्भावना अधिक रहती है। निकटता से सम्पर्क होने से एक दूसरे की भावनाओं और विचारों को समझने और उन्हें स्वीकार करने में सहायता मिलती है।

(5) सम्मिश्रण (Amalgamation) - मिश्रण, प्रजातीय, धार्मिक, सामाजिक तथा इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित हो सकता है। उदाहरण के लिए विवाह के द्वारा स्त्री और पुरुष आत्मसात हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रजातीय मिश्रण से भी आत्मसात को गति मिलती है।

(6) आवागमन और संदेशवाहन (Transport and Communication)- आधुनिक युग में आवागमन और सन्देशवाहन के साधनों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसके द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक दूरी समाप्त हो रही है। इससे भी आत्मसात होता है।

(7) समान समस्याएँ (Similar Problems)- जिन व्यक्तियों या समूहों की समान विशेषताएँ होती हैं उनमें आत्मसात अधिक होता है, क्योंकि इससे एकता का विकास होता है और एकता आत्मसात के लिए महत्वपूर्ण है।

आत्मसात के विरोधी तत्व (Factors against Assimilation)-

अभी उन तत्वों की व्याख्या की गई जिनसे आत्मसात की प्रक्रिया को गति मिलती है। अब उन तत्वों की व्याख्या की जाएगी जो आत्मसात की प्रक्रिया में बाधा डालते हैं। यह तत्व निम्न हैं :-

(1) पृथकता (Isolation)- पृथकता वह भावना है जिनके द्वारा व्यक्ति और समूह दूसरे से अलग रहना चाहते हैं। इससे सामाजिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाते हैं। सम्बन्ध स्थापित न होने से अन्तः क्रिया नहीं हो पाती है और आत्मसात की प्रक्रिया में बाधा आती है।

(2) सांस्कृतिक भिन्नता (Cultural Differences) - सांस्कृतिक भिन्नता होने के कारण भी आत्मसात नहीं हो पाता है। संस्कृति के भिन्न होने से विचार, भावनाएँ और दृष्टिकोणों में अन्तर होता है। इससे आत्मसात नहीं हो पाता है।

(3) वर्ग भिन्नता (Class differences) - वर्ग भिन्नता के कारण भी आत्मसात नहीं हो पाता है। प्रत्येक वर्ग का आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अवस्थाओं में भिन्नता और विशेषता होती है। इस भिन्नता के कारण भी आत्मसात नहीं हो पाता है।

(4) शारीरिक लक्षणों की भिन्नता (Differences of physical tratis) - प्रजाति का आधार व्यक्ति के शारीरिक लक्षण हैं। रंग और शारीरिक लक्षणों में भिन्नता के कारण व्यक्ति अपने को दूसरों से अलग समझते हैं। इन भिन्नताओं के कारण आत्मसात होने में कठिनाई आती है।

(5) उच्चता की भावना (Superiority Feeling)- जब कुछ व्यक्तियों में ऐसी भावना का विकास हो जाता है जिसके द्वारा वे अपने को दूसरों से उच्च समझते हैं तो अल्पमत वाले व्यक्ति उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। घृणा के कारण सामाजिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाते अतः आत्मसात नहीं हो पाता है।

(6) सामाजिक संपीड़न (Social Persecution)- जब एक समूह दूसरे समूह को कष्ट और पीड़ा पहुँचाता है तो पीड़ित व्यक्तियों द्वारा पीड़ा पहुँचाने वाले व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। यह घृणा कभी- कभी संघर्ष के रूप में परिणित हो जाती है। संघर्ष आत्मसात में बाधा पहुँचाता है।

(7) रूढ़िवाद (Mores) - रूढ़िवाद की भावना भी आत्मसात में बाधा पहुँचाती है। रूढ़िवाद व्यक्ति और समूह दूसरों से मिलना और सामाजिक सम्पर्क स्थापित करना नहीं चाहते। इससे पृथकता की भावना का विकास होता है जो आत्मसात में बाधा पहुँचाता है।

आत्मसात और व्यवस्थापना (Assimilation and Accommodation)- आत्मसात और व्यवस्थापन दोनों सामाजिक प्रक्रियाएँ हैं जिनसे एकता की भावना का विकास होता है। फिर भी इन दोनों में निम्न अन्तर है :-

(i)आत्मसात और व्यवस्थापन दोनों ही एकीकरण की प्रक्रियाएँ हैं, किन्तु इन प्रक्रियाओं में मात्रा का अन्तर है। आत्मसात में एकीकरण की मात्रा अधिक अंशों में होती है।

(ii)आत्मसात के द्वारा व्यक्ति या समूह के मूल्यों, विश्वासों, भावनाओं और विचारों को ग्रहण करता है, व्यवस्थापन के द्वारा व्यक्ति अपने ही वातावरण में अपने को उस वातावरण के अनुकूल बनाता है।

(iii)आत्मसात के द्वारा विभिन्न संस्कृतियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं, व्यवस्थापन के द्वारा मनुष्य व्यक्तिगत विचारों और दृष्टिकोणों में मौलिकता आती है।

(iv) आत्मसात में दो संस्कृतियाँ कुछ इस प्रकार घुल-मिल जाती हैं कि दोनों का पृथक अस्तित्व समाप्त हो जाता है, जबकि व्यवस्थापन परिस्थितियों के अनुकूल अपने को बनाना है।

आत्मसात और मिश्रण

(Assimilation and Amalgamation)

अनेक व्यक्ति आत्मसात और मिश्रण में कोई अन्तर नहीं मानते हैं और इन दोनों को एक ही सामाजिक प्रक्रिया कहते हैं। किन्तु यदि हम आत्मसात और मिश्रण की समाजशास्त्रीय विवेचना करें तो ऐसा स्पष्ट हो जाता कि इन दोनों में अन्तर है। आत्मसात और मिश्रण में जो प्रमुख अन्तर है, उसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

(1) आत्मसात वह सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ मिलती हैं। मिश्रण का तात्पर्थं रक्त सम्मिश्रण से है।

(2)आत्मसात सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, इसके विपरीत मिश्रण शारीरिक और जीवशास्त्रीय प्रक्रिया है।

(3)अन्त में, आत्मसात सामाजिक और सांस्कृतिक एकता उत्पन्न करता है। इसके विपरीत मिश्रण का तात्पर्य वर्णसंकर (Hybrid) से है।

आत्मसात्मीकरण के प्रयास

(Efforts for Assimilation)

अंग्रेजों ने अपनी नीति के तहत जनजातियों के भारतीय समाज से पृथकरण के प्रयास किए थे और ये पृथककरण के प्रयास आजादी के पूर्व तक जारी रहे। 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हो गया। आजादी के बाद भारत सरकार ने अंग्रेजों की नीति में परिवर्तन किया और जनजातियों के सात्मीकरण का प्रयास किया। इस प्रयास के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं-

1. 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया। स्वतंत्र भारत के लिए एक संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान की प्रस्तावना में ही देश के सभी नागरिकों को स्वतंत्रता, समानता, मातृत्व और न्याय की गारन्टी दी गई है।

2.भारतीय समाज में जनजातियों के आत्मसातीकरण के लिए ए.वी. ठक्कर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति के गठन का उद्देश्य भारतीय जनजातियों को आत्मसात करने के लिए . सुझाव देने से सम्बन्धित था। उन्होंने जो सुझाव दिए, वे इस प्रकार हैं-

(a) जनजातियों की कृषि योग्य जमीन के हरण को रोका जाय ।

THE TE FIF

(b) महाजनों और साहूकारों द्वारा जनजातियों के शोषण को रोकने के लिए प्रभावी उपाय किए जाएँ। (c) संवैधानिक संरक्षण के द्वारा जनजातियों को सुरक्षा और संरक्षण प्रदान किया जाय।

(d) जनजातियों को संरक्षण देने के लिए 'जनजातीय क्षेत्रों' की घोषणा की जाय। अनुसूचित क्षेत्र के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात दो अध्यादेश जारी किए-

(i)अनुसूचित क्षेत्र (भाग-क राज्य) आदेश 1950

(ii) अनुसूचित क्षेत्र (भाग-ख राज्य) आदेश 1950 (यथा संसोधित)

इन आदेशों द्वारा आन्ध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान तथा हिमाचल

प्रदेश के कुछ जनजातीय क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया।

(e) पांचवी अनुसूची के द्वारा जनजातियों को भारतीय समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है। पाँचवी अनुसूची की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(i) राज्यपाल को विशेष विधायकी सम्बन्धी अधिकार,

(ii) राष्ट्रपति को राज्यपाल का रिपोर्ट प्रस्तुत किया जाना,

(iii) जनजातीय सलाहकार परिषद का गठन।

किसी राज्य के राज्यपाल को जहाँ अनुसूचित क्षेत्र है, निम्न दो विधायी अधिकार प्रदान किए गए हैं-

(i) अधिसूचना द्वारा विधि का अधिकार

(ii) विनियमन (Regulation) द्वारा विधि निर्माण का अधिकार ।

3. जनजातीय समाज के आत्मसातीकरण के लिए जिला परिषदों और क्षेत्र परिषदों का भी गठन किया गया। इन परिषदों को अनेक मामलों में कानून बनाने के अधिकार दिए गए। इस प्रकार भारत सरकार द्वारा जनजातियों के आत्मसात्मीकरण के लिए अनेक प्रयास किए गए।

एकीकरण

(Integration)

एकीकरण सहयोगी सामाजिक प्रक्रियाओं का ही रूप है। इस एकीकरण को साधारण बोलचाल की भाषा में 'एकता' कहते हैं। यदि आत्मसात की प्रक्रिया में बाधा न पड़े, सभी तत्व इसके अनुकूल हों, तो इसी के परिणामस्वरूप सामाजिक और सांस्कृतिक एकीकरण होता है। प्रत्येक समाज के अस्तित्व की रक्षा के लिए कुछ न कुछ मात्रा में एकीकरण आवश्यक है। इस प्रकार एकीकरण की प्रक्रिया के द्वारा विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और विचारों वाले व्यक्तियों के बीच में एकता स्थापित हो जाती है। एकीकरण का सम्बन्ध विचारों और भावनाओं से है जिस प्रकार हमारे देश में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी तथा अन्य अनेक जाति और वर्ग के व्यक्ति निवास करते हैं किन्तु यदि

ये सभी व्यक्ति एक प्रकार की प्रेरणा और भावनाओं से ओत-प्रोत हो तो इसे एकीकरण कहेंगे।"

एकीकरण की परिभाषा

(Definition of Integration)

(i) गिलिन और गिलिन- “एकीकरण सजातीयता न होकर संगठन है । "

(ii) आगबर्न और निमकाफ- “एकीकरण उन बंधनों की ओर संकेत करता है जो सदस्यों में एक दूसरे के प्रति पाये जाते हैं'

संक्षेप में 'एकीकरण वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समय के सदस्यों में समान मनोवृत्तियाँ और प्रेरणाओं का विकास होता है।

एकीकरण के सहायक तत्व (Elements Conductive to Integration) एकीकरण के लिए कौन से तत्व आवश्यक हैं या एकीकरण की प्रक्रिया में कौन-कौन से तत्व सहायता करते हैं, यहाँ उन तत्वों की व्याख्या की जाएगी जिनसे किसी समाज में एकीकरण स्थापित किया जा सकता है जिनके है जिनके द्वारा उस समाज में एकीकरण को नापा जा सकता है- ये तत्व निम्न हैं-

(1) पर्याप्त समाजीकरण- समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनने में सहायता मिलती है। यदि समूह के सदस्यों का समाजीकरण कुछ इस प्रकार किया जाएगा कि वे अपने अधिकरों और कर्तव्यों का उचित आदर करेंगे, वे दूसरे की मनोवृत्तियों और विचारों को उदारता से स्वीकार करेंगे तो इससे एकीकरण में सहायता मिलेगी। एकीकरण की दृष्टि से भी भारत सरकार ने 'जनगणमन' और 'तिरंगा' झण्डा को प्रतीक के रूप में स्वीकार किया है। जब तक बालकों का उचित दिशा में समाजीकरण नहीं किया जाएगा, एकीकरण की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

(2) सामान्य उद्देश्य- उद्देश्य में विविधता होने से समाज में फूट पड़ती है। जब एक समूह के सभी व्यक्तियों के उद्देश्य एक समान रहते हैं तो इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समान मूल्यों, प्रथाओं और परम्पराओं का विकास करते हैं। उद्देश्यों की समानता

के कारण आर्थिक और राजनैतिक समानता भी आती है। इस प्रकार उद्देश्य समान होने से एकीकरण सरल हो जाता है।

(3) दृष्टिकोण और संस्कृति के तत्वों में परस्पर कार्यात्मक सम्बन्ध- प्रत्येक समाज में कुछ विभिन्नता के तत्व होते हैं। यदि विभिन्नता की मात्रा अधिक होती है तो एकीकरण में बाधा आती है। एकीकरण के लिये यह आवश्यक है कि समाज के रीति-रिवाज, प्रथाएँ, परम्पराएँ उद्देश्यों के अनुसार हों और इनमें कार्यात्मक सम्बन्ध हो ।

एकीकृत समूह की विशेषताएँ

(Characteristics of Integrated Group)

एकीकरण सामाजिक जीवन का आधार है । सदरलैण्ड और वुडवर्ड ने एकीकृत समूह की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है-

(1) एकीकृत समूह के सदस्य ऐसा अनुभव करते हैं कि उनके स्वयं के कल्याण के लिये सामाजिक सुरक्षा आवश्यक है,

(2) समूह के निश्चित उद्देश्य होते हैं। व्यक्ति ऐसा अनुभव करते हैं कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सदस्यों का स्वयं का अपना भाग होता है,

(3) एकीकृत समूह के सदस्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मिल-जुलकर प्रयत्न करते हैं। उनकी धारणा होती है कि सामूहिक प्रयासों के द्वारा ही उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

(4)एकीकृत समूह के सदस्यों में निकटता पाई जाती है,

(5) एकीकृत समूह के सदस्यों के सम्बन्ध व्यक्तिगत होते हैं,

(6) सदस्य समूह की परम्पराओं और रीति-रिवाजों के प्रति जागरूक होते हैं तथा इनका आदर करते हैं।

(7) इनमें घनिष्ठ सामुदायिक जीवन पाया जाता है।

आत्मसात और एकीकरण

(Assimilation and Integration)

आत्मसात और एकीकरण में निम्न अन्तर है-

(1)आत्मसात और एकीकरण दोनों ही सहयोगी प्रक्रियाएँ हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं में मात्रा का अन्तर है। एकीकरण की दिशा निश्चित होती है जबकि आत्मसात की कोई दिशा निश्चित नहीं होती है।

(2) एकीकरण का निश्चित उद्देश्य होता है। आत्मसात का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता है। आत्मसात एकीकरण में सहायक प्रक्रिया है।

(3) एकीकरण चेतन प्रक्रिया है जबकि आत्मसात अचेतन प्रक्रिया है ।

(4) एकीकरण का आकार विशाल होता है। इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण सामाजिक संगठन से होता है।

एकीकरण के प्रयास

(Efforts for Integration)

जनजातियाँ भारतीय समाज की अभिन्न अंग हैं। आजादी के बाद इन जनजातीय समूहों को राष्ट्र की मुख्य धारा में जोड़ने का प्रयास किया था। इन प्रयासों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. पाँच आधारभूत सिद्धान्त :- भारत सरकार द्वारा जनजातियों के उत्थान के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। इन प्रयासों में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान है। जवाहर लाल नेहरू ने जनजातियों के एकीकरण के लिए नई नीति का निर्माण किया था। इस नई नीति का नाम ग2 T। पाँच आधारभूत सिद्धान्त या पंचशील था । ये पाँच सिद्धान्त इस प्रकार हैं-

(a)जनजातियों का विकास उनकी विशिष्टता के आधार पर होना चाहिए। जनजातियों पर कुछ लादने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। उनकी परम्परा और संस्कृति को प्रोत्साहित करने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए।

(b) जमीन और जंगल जनजातियों के जीवन का आधार हैं तथा वे इसे अपना अधिकार भी मानते हैं । अतः इस अधिकार को आदर दिया जाना चाहिए।

(c) जनजातीय प्रशासन तथा अन्य विकास कार्यक्रमों में जनजातीय समुदाय के व्यक्तियों को ही प्रशिक्षित किया जाना चाहिए तथा उन्हीं को कार्य के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

(d) जनजातीय क्षेत्रों को जटिल प्रशासन तंत्र के ढांचे के अन्तर्गत नहीं लाना चाहिए। साथ ही इन क्षेत्रों में इतनी अधिक योजनाएँ भी न हों, जिनका एक साथ कार्यान्वयन न हो सके। जो योजनाएँ और कार्यक्रम हों, वे उनकी अपनी संस्कृति और सामाजिक संस्थाओं से मेल खाती हों।

(e) जनजातीय क्षेत्रों में हुए विकास के परिणामों का निर्णय आंकड़ों के आधार पर या खर्च के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसका आधार विकसित मानव मूल्यों को होना चाहिए।

2. जनजातीय प्रशासन :- जनजातियों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए प्रशासन निम्न नीतियों

के अनुसार कार्य का सम्पादन करेगा-

(a) एकरेखीय प्रशासन

(b) संचार तथा यातायात की सुविधाओं के अभाव के कारण छोटे-छोटे जिलों का गठन और

(c) क्षेत्र विकास नीति, जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण क्षेत्र के विकास पर जोर देना।

इस प्रकार के कार्यों के माध्यम से जनजातियों को क्षेत्रीय और राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना था, जिससे राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकीकरण की भावना प्रबल हो ।

स्वप्रगति परीक्षण

1. अदला बदली की व्यवस्था किस समाज में पाई जाती है ?

(अ) औद्योगिक समाज (ब) जनजातीय समाज(स) नगरीय समाज (द)सर्वत्र समाज में

2.किसने कहा- 'भोजन और सम्पत्ति से सम्बन्धित मानवीय चेष्टाएँ संस्थाओं का निर्माण करती हैं।'

(अ) जोन्स (ब)डेविस (स) एण्डरसन (द)आगबर्न एवं निमकॉफ

3.मानव समाज के उद्विकास की पहली अवस्था कौन-सी है ?

(अ) पशुपालन अवस्था (ब) आखेट अवस्था (स) कृषि अवस्था(द)औद्योगिक अवस्था

4. An Introduction to Social Anthropology के लेखक हैं -

(अ) एल. पी. विद्यार्थी (ब) मजूमदार और मदन(स) हट्टन (द)एस.सी. दुबे

2.6 सार संक्षेप

भारत की जनजातियाँ देश की सामाजिक संरचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति, भाषा, और परंपराएँ हैं। जनजातियों का अध्ययन भौगोलिक वितरण, भाषा, वर्गीकरण, और उनके सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक बदलावों के संदर्भ में किया जाता है।भारतीय जनजातियाँ देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में फैली हुई हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में नागा, मिज़ो, गारो, खासी; मध्य भारत में गोंड, भील, संथाल; दक्षिण भारत में टोडा, कोरगा, इरुला और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में ओंग, जारवा, सेंटिनली जनजातियाँ पाई जाती हैं। भाषाई दृष्टि से भारतीय जनजातियाँ ऑस्ट्रो-एशियाटिक (संथाली, मुंडा), द्रविड़ियन (गोंडी, तेलुगु), तिब्बती-बर्मन (नागा, मिज़ो) और इंडो-आर्यन भाषाई परिवारों से संबंधित हैं।

इन जनजातियों को आर्थिक, सांस्कृतिक और भाषाई आधारों पर वर्गीकृत किया गया है, जैसे शिकारी, कृषि-आधारित, उद्योगशील, प्रकृति-पूजक, पशु-पूजक और भाषाई परिवारों के अनुसार। जनजातियाँ परंपरागत रूप से मुख्यधारा के समाज से अलग रही हैं, जिसका मुख्य कारण भौगोलिक अलगाव, आर्थिक और शैक्षिक पिछड़ापन, तथा सामाजिक-सांस्कृतिक अंतर है।

मुख्यधारा के समाज में आत्मसात्रीकरण की प्रक्रिया में जनजातियों ने शिक्षा, रोजगार और धार्मिक परिवर्तन के माध्यम से कदम बढ़ाए हैं। भारतीय संविधान और सरकार ने इनके एकीकरण के लिए आरक्षण नीति, विशेष विकास योजनाएँ, और पंचायती राज व्यवस्था जैसे कदम उठाए हैं।

2.7 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. (ब), 2. (द), 3. (ब), 4. (ब)।

2.8 मुख्य शब्द

- **पृथक्करण:** समाज से अलग-थलग रहना।
- **आत्मसात्रीकरण:** मुख्यधारा में समाहित होने की प्रक्रिया।
- **एकीकरण:** समाज में सभी वर्गों को एकजुट करने की प्रक्रिया।
- **आरक्षण:** सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए विशेषाधिकार।
- **भाषाई परिवार:** भाषाओं का समूह जो समान उत्पत्ति साझा करते हैं।

2.9 संदर्भ सूची

- वर्मा, आर. सी. (2002). इंडियन ट्राइब्स एंड थियर इकोलॉजी।
- हांडा, आर. एम. (1998). जनजातीय जीवन और संस्कृति।
- भारत सरकार। (2021). जनजातीय मामलों का मंत्रालय रिपोर्ट।
- नेहरू, जे. (1956). डिस्कवरी ऑफ इंडिया।
- लोकसभा सचिवालय। (2019). भारतीय जनजातियों की स्थिति।

2.10 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

(Important Questions for Examinations)

(अ) निबन्धात्मक तथा लघु उत्तरीय प्रश्न (Essay Type and Short Answer Questions)

1. भारत में जनजातीय जनसंख्या के ग्रामीण-नगरीय वितरण की समीक्षा कीजिए ।

Examine rural-urban population of tribes of L.P. Vidyarthi

2. भाषा की व्याख्या कीजिए। भाषा के सामाजिक कार्यों को लिखिए।

Define language. Write functions of language.

3. भाषा क्या है? समाज में भाषा का क्या महत्व है?

What is Language. What is important of language in society.

4.भारत में जनजातियों के भाषायी वितरण को लिखिए।

Write Linguistic distribution of tribes in India.

5. जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को लिखिए।

Write characteristics of tribal economy.

6. अर्थव्यवस्था के आधार पर भारतीय जनजातियों का वर्गीकरण कीजिए ।

Classify Indian tribes on basis of economy.

7.भारतीय जनजातियों का आर्थिक विभाजन लिखिए।

Write economic division of Indian tribes.

8.आर्थिक संस्था पर एक लेख लिखिए।

Write an essay on economic cristitution.

9.मजूमदार का जनजातीय अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण ।

Classification of tribal economy of Majumdar.

10. जैकब्स का वर्गीकरण लिखिए।

Write classification of Jacobs.

11.जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ लिखिए ।

Write characteristics of tribal economy.

12.भारत में जनजातियों के भौगोलिक वितरण पर एक निबन्ध लिखिए।

Write in essay on Geographical distribution of tribes in India.

Think

13.राज्यानुसार भारत में जनजातीय वितरण को समझाइए ।

Explain tribal distribution in India according to state.

14.भारत में जनजातीय जनसंख्या के ग्रामीण-नगरीय वितरण की समीक्षा कीजिए ।

Examine rural-urban population of tribes in India.

15 भाषा क्या है? समाज में भाषा का क्या महत्व है?

What is language. What is importance of language in society.

16 भारत में जनजातियों के भाषायी वितरण को लिखिए।

Write Linguistic distribution of tribes in India.

17 विदेशियों की जनजातीय पृथककरण की नीति की विवेचना कीजिए ।

Discuss tribal Isolation policy of foreigners.

18.भारत सरकार द्वारा जनजातियों के आत्मसातीकरण और एकीकरण के प्रयासों को लिखिए। Write efforts of government of India for assimilation and integration of tribals.

(आ) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. प्रो. एस. सी. दुबे द्वारा जनजातियों का भौगोलिक वितरण

Geographical distribution of Tribes by Prof. S.C. Dube.

2. द्रविड़ भाषा परिवार।

The Drawadina Language Family.

3.तिब्बती चीनी भाषा परिवार।

The Tibeto- Chines Linguistic Family.

4. स्थानान्तरित कृषि ।

Shifting Cultivation.

5. अदला-बदली की व्यवस्था ।

Barter System.

6.आर्थिक वर्गीकरण का अर्थ ।

Meaning of economic destribution.

7.भौगोलिक वर्गीकरण को समझाइए |

Explain Geographical classification.

8 प्रो. एस. सी. दुबे द्वारा जनजातियों का भौगोलिक वर्गीकरण ।

Geographical distribution of tribes by Prof. S.C. Dube.

9 द्रविण भाषा परिवार ।

The Drawadian Language Family.

10.तिब्बती चीनी भाषा परिवार।

The Tibeto-Chines Linguistic Family.

11. पृथकीकरण |

Isolation.

12. आत्मसात्मीकरण।

Assimilation.

13. एकीकरण |

Integration.

14. पाँच आधारभूत सिद्धान्त ।

Five Basic Principles.

(आ) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

हाँ या नहीं में उत्तर दीजिए ।

Answer in Yes or No -

1.मध्यप्रदेश में कुल जनसंख्या का जनजातीय प्रतिशत 20 से अधिक है। हाँ / नहीं

2.मिजोरम में जनजातीय जनसंख्या 90 प्रतिशत से अधिक नहीं है। हाँ / नहीं

3. प्रो. एस. सी. दुबे ने भारतीय जनजातियों के वितरण में हिमालय क्षेत्र शब्द का प्रयोग किया है। हाँ / नहीं

4. पूर्वोत्तर भारत की तुलना में पश्चिमोत्तर भारत में जनजातियों का प्रतिशत अधिक है। हाँ / नहीं

उत्तर 1. (हाँ), 2. (नहीं), 3. (नहीं), 4. (नही),

इकाई - 3

जनजातीय महिलाओं की प्रस्थिति-स्थिति, पंचायती राज व्यवस्था में सहभागिता, अधिकार एवं सामाजिक सुरक्षा

(Status of tribal women, participation in Panchayati Raj system, rights and social security)

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारत में महिलाओं की स्थिति

3.4 विभिन्न क्षेत्रों में जनजाति महिलाओं की स्थिति

3.5 सार संक्षेप

3.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.7 मुख्य शब्द

3.8 संदर्भ सूची

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

जनजातियों के अध्ययन में जनजातीय समाज (Tribal Society) का अध्ययन ही महत्वपूर्ण स्थान है। जनजातीय समाज, समाज का एक महत्वपूर्ण भाग है। समाजशास्त्र के अध्ययन की महत्वपूर्ण विषय-वस्तु समाज है। समाज एक अमूर्त अवधारणा है तथा इसका तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों से है। इसीलिए समाज को सामाजिक सम्बन्धों का ज्ञान कहा जाता है। समाज और एक समाज दो अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। समाज जहाँ एक ओर सम्पूर्णता का बोध कराता है, वहीं दूसरी ओर एक समाज समाज के एक

विशिष्ट भाग का बोध कराता है। क्षेत्रीयता के आधार पर समाज को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- ग्रामीण समाज (Rural Society) और नगरीय समाज (Urban Society) इसके अतिरिक्त अनेक समाज हैं, जिन्हें एक समाज की संज्ञा दी जा सकती है। इन एक समाजों में जनजातीय समाज भी एक है।

भारतीय संदर्भ में जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति और जनजातियों में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने से पहले समाज में महिलाओं की सामान्य स्थिति का अध्ययन महत्वपूर्ण है। इसलिए भारत में महिलाओं की समाज में क्या स्थिति है, इसका बोध अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि समाज एक वृद्ध अवधारणा है। इस वृद्ध अवधारणा में महिलाओं की स्थिति क्या है।

3.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1.इस इकाई को पढ़ने के पश्चात हम भारतीय समाज के विभिन्न युगों में महिलाओं की स्थिति से परिचित होंगे।

2. स्वतंत्र भारत में स्त्री की स्थिति में परिवर्तन के कारण को जान पाएंगे।

3. जनजाति महिलाओं की स्थिति से रूबरू होंगे।

3.3 भारत में महिलाओं की स्थिति(Status of Women in India)

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्र एतस्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।"

जहाँ महिलाओं का सम्मान होता है, वहाँ देवताओं का निवास होता है। जहाँ पर इसकी प्रतिष्ठा नहीं होती, वहाँ समस्त क्रियाएँ विफल हो जाती हैं।

भारतवर्ष में स्त्रियों की स्थिति (Status of women) के अध्ययन से पूर्व हमारे मस्तिष्क में निम्न प्रश्न उत्पन्न होते हैं- भारत में स्त्रियों की स्थिति के अध्ययन की क्या

आवश्यकता है? भारतीय स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाएँ क्या हैं? क्या धारणाएँ भ्रान्त हैं या इनकी अपनी सत्यता भी है? यदि समाज में प्रचलित धारणाएँ गलत हैं तो समाज में उनकी वास्तविक स्थिति क्या है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमें भारतीय इतिहास का अध्ययन करना होगा। इसी के माध्यम से भारतवर्ष में स्त्रियों की स्थिति का सही मूल्यांकन किया जा सकेगा।

भारतीय समाज के विभिन्न युगों में महिलाओं की स्थिति

(Status of Women in Different Periods of Indian Society)

L सिन्धु घाटी सभ्यता (The Indian Valley Civilization)- काल में महिलाओं की स्थिति- सिन्धु घाटी की खुदाई से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनसे ऐसा ज्ञात होता है कि यह सभ्यता अत्यन्त ही प्राचीन है। इस सभ्यता का विकास तब हुआ था, जब दुनिया पूर्णतया असभ्य थी। यह सभ्यता ऋग्वैदिक काल की सभ्यता से शताब्दियों पहले की है। इस सभ्यता का जन्म ईसा से लगभग 5,000 वर्ष पूर्व हुआ होगा। सिन्धुघाटी काल की सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। थामस ने लिखा है, "धर्म में मातृ-पूजाजनजातीय समाज का समाजशास्त्र

का महत्व, महँगे आभूषणों से स्त्री अलंकारिता को अधिकता, पुरुषों का तुलनात्मक कम महत्व आदि से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन सिन्धुघाटी की सभ्यता पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को अधिक महत्व देती थी।'

II. वैदिक युग (The Vedic Period) में महिलाओं की स्थिति- वेद विश्व का आदि ग्रन्थ है और इसकी रचना भारत में हुई भी। इन ग्रंथों की रचना भारतीय ऋषियों ने की थी। वेदों में स्त्रियों की स्थिति का जो वर्णन है, उसे निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

1. विवाह (Marriage)- विवाह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है जिसके द्वारा किसी भी समाज की स्त्रियों की स्थिति का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। वैदिक विवाह की प्रमुख विशेषताएँ निम्न थीं।

(i) विद्वानों का मत है कि विवाह संस्था का विकास, 'यौन-ईर्ष्या' (Sexual jealousy) है, किन्तु वेदों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह के विकास का आधार यौन- ईर्ष्या न होकर स्त्री का सम्पत्ति अधिकार है।

(ii) विधवा विवाह प्रचलित थे और विधवाएँ अपने पति की मृत्यु के बाद देवर से विवाह कर सकती थीं।

(iii) ऋग्वैदिक परिवार पितृ-सत्तात्मक थे, किन्तु इसके बावजूद स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी।

(iv) विवाह के बाद लड़की अपने पति के घर में निवास करती थी।

(v) वधू पूर्ण विकसित युवती होती थी।

(वि) विवाह के दो उद्देश्य थे- (a) धार्मिक, (b) सांस्कारिक।

(vii) वैदिक युग में सप्तपदी प्रथा नहीं थी। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे का हाथ अच्छे भविष्य के लिए ग्रहण करके एकाकार होते थे।

(viii) विवाह त्यौहार का अन्त पति और पत्नी की संयुक्त पूजा से होता था, जिसमें दीर्घायु और संवृद्धि की कामना की जाती थी।

(ix) वैदिक विवाह के दो स्वरूप थे- (a) स्वयंवर (b) बलपूर्वक विवाह (Marriage by capture)।बहुपत्नी विवाह राजाओं आदि को छोड़कर प्रायः नहीं था।

(xi)स्त्रियों को गृह की संज्ञा (The wife is the home) दी जाती थी।

(xil)मृतकों को जलाया जाता था।

वैदिक विवाहों के बारे में थामस ने लिखा है- "ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों के लिए विवाह अनिवार्य नहीं था, बिना लोकनिन्दा के लड़कियाँ अपने माता-पिता के घर में प्रौढ़ावस्था को प्राप्त कर सकतीं थीं। यदि किसी व्यक्ति के सिर्फ पुत्री ही होती थी तो वह पुत्र की भाँति ही अच्छी समझी जाती थी और विवाह के द्वारा उसे दूसरे घर में दूर नहीं रखा जाता था।।

शिक्षा- शिक्षा के क्षेत्र में भी स्त्रियों को स्वतन्त्रता तथा समानता प्राप्त थी। स्त्रियों के द्वारा ही ऋग्वेद के कुछ पदों की रचना की गयी थी। इन स्त्रियों में विश्ववर, अपाला, लोपमुद्रा शशियासी, इन्द्राणी और रुचि का नाम मुख्य है। स्त्रियाँ समुदाय में और बौद्धिक तथा आध्यात्मिक कार्यों में समान रूप से भाग लेती थीं।

III. उत्तर-वैदिक युग (Later Vedic Period) में महिलाओं की स्थिति ऋग्वेद में निश्चित रूप से समाज में स्त्रियों की प्रतिष्ठा थी। उत्तर-वैदिक युग में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का पता लगाने के लिए सामवेद, यजुर्वेद और अर्थवेद का सहारा लेना होगा। इन ग्रंथों में मुख्य रूप से संस्कार, बलिदान, जादू और मन्त्रों का उल्लेख है। इन वेदों के बहुत से पद ऋग्वेद से लिये गये हैं। उत्तर-वैदिक युग ब्राह्मणों की महान प्रतिष्ठा का युग था। साथ ही यह ब्राह्मणों और क्षत्रियों के संघर्ष का युग था। इस कारण इस युग में रित्रयों की स्थिति अच्छी नहीं थी। थामस ने लिखा है, "प्रत्येक पग पर पुत्रों के महत्व का प्रतिपादन किया जाता था। पुत्र मोक्ष प्राप्ति में नाव की तरह है, स्वर्ग में प्रकाश पुन्ज की भाँति है। पत्नी मित्र और साथी थी, किन्तु पुत्री दुःख का प्रतीक।"

ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषदों का भी स्त्रियों की स्थिति स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान है। सम्पूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ स्त्रियों की प्रतिष्ठा के खिलाफ थे। स्त्रियों को धार्मिक और सांस्कारिक कार्यों में महत्व नहीं दिया जाता था। इसके परिणामस्वरूप अनेक समाजों में पुत्रियों की हत्या का भी प्रचलन प्रारम्भ हो गया था।

बन्ध्यापन (Sterility) स्त्रियों का महान दोष माना जाता था और लगातार लड़कियों का पैदा होना भी दोष समझा जाता था। इसलिए पुत्र-प्राप्ति के लिए पुरुष को दूसरा विवाह करने का अधिकार था। थामस का विचार है, "इस सबके बावजूद, इस बात को स्वीकार किया जायेगा कि मध्य युगों की अपेक्षा उत्तर-वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी।"

IV. स्मृति-युग (Smriti Age) में महिलाओं की स्थिति- भारतीय साहित्य में गृह-सूत्र का अत्यधिक महत्व है। इनके द्वाय उस समय की गृह सम्बन्धी (Domestic) और सामाजिक (Social) जीवन का अनुमान होता है। जहाँ तक गृह-सूत्रों के समय का प्रश्न है, ऐतिहासिक दृष्टि से गृह-सूत्रों का समय छठीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है और तीसरी

शताब्दी ईसा से पूर्व तक चलता है। गृह-सूत्रों के प्रमुख लेखकों में आश्वलायन, आपस्तम्भ, सांख्यायन, भारद्वाज आदि हैं। इन सभी विद्वानों ने विभिन्न युगों में अपने गृह-सूत्रों का निर्माण किया था। इन सूत्रों में स्त्रियों की स्थिति का विवेचन निम्न है-

(i) जहां तक विवाह के स्वरूपों का प्रश्न है, अश्वलायन ने विवाह के आठ स्वरूप बताए हैं- (ए) ब्रह्म विवाह, (बी) देव विवाह, (सी) प्रजापत्य विवाह, (डी) आर्ष विवाह, (ई) गंधर्व विवाह , (च) असुर विवाह, (छ) पैशाच विवाह, और (ज) राक्षस विवाह।

इन विवाहों में पहले 4 प्रकार के विवाहों को धार्मिक और अन्तिम 4 प्रकार के विवाहों को अधार्मिक करार दिया गया था।

(ii) विवाह से पूर्व स्त्री-पुरुष को मिलने की पूरी स्वतन्त्रता थी, ताकि वे अपनी इच्छानुसार जीवनसाथी का चुनाव कर सकें।

(iii) सांख्यायन ने विवाह के योग्य लड़कियों की निम्न विशेषताएँ बतलायी हैं-

(a) ओंठ औसतन बराबर होने चाहिए।

(b) बाल चिकने और चौरस होने चाहिए।

(c) गर्दन में दो घुमावदार रेखाएँ दाहिनी ओर होनी चाहिए।

(त) इन विशेषताओं वाली औरत 6 पुत्रों को जन्म देगी।

(iv) आधुनिक युग में विवाह कुन्डली (Horoscope) के द्वारा होते हैं। गृह-सूत्र में ज्योतिष का पूर्ण विकास नहीं हुआ था। इसके बावजूद इस सम्बन्ध में कुछ पूछताछ की जाती थी।

V मुस्लिम युग (The Muslim Period) में महिलाओं की स्थिति- मुसलमानों के लिए विवाह पवित्र बन्धन न होकर मात्र समझौता है। इस युग में स्त्रियों की स्थिति निम्न थी-

(i) बहुपत्नी विवाह का प्रचलन था।

(ii) विवाह में दहेज की प्रथा भी प्रचलित थी।

(iii)तलाक कुछ खास परिस्थितियों में प्रचलित था।

(iv) उत्तराधिकार में पुरुषों को अधिक अधिकार था।

(v) पर्दा-प्रथा प्रचलित थी।

(vi) सती प्रथा का भी प्रचलन था।

VI. ब्रिटिश युग (The British Period) में महिलाओं की स्थिति ब्रिटिश युग में स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार हुए। इन सुधारों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(i) सती-प्रथा पर रोक लगा दी गयी।

(ii) विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहन मिला।

(iii) स्त्री-शिक्षा का प्रसार हुआ।

(iv) बहुपत्नी विवाह पुराना हो गया और यह कुछ खास व्यक्तियों तक ही सीमित रह गया।

(v) उच्च परिवारों से पर्दा प्रथा समाप्त होने लगी।

(vi) संयुक्त परिवार की प्रथा में परिवर्तन की प्रक्रिया या सूत्रपात हुआ।

(vii) नये परिवारों के जन्म के साथ ही सामाजिक ढाँचे में पारेवर्तन प्रारम्भ हो गया।

(viii) व्यवसायों में वृद्धि के साथ ही जाति व्यवस्था समाप्त होने लगी।

(ix) स्त्री-संगठनों का विकास हुआ, जैसे- (a) स्त्रियों की राष्ट्रीय परिषद्, (b) अखिल भारतीय स्त्री सम्मेलन, (c) विश्वविद्यालयीन स्त्री संगठन।

भारतीय समाज में स्त्रियों की निम्न स्थिति के कारण

(Causes of Backward Position of Women in Indian Society)

भारतीय समाज में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति की विवेचना करने से यह स्पष्ट हो गया है कि सैद्धान्तिक रूप से चाहे समाज में उनका जो भी स्थान रहा हो, व्यावहारिक जीवन में उनकी स्थिति अत्यन्त ही निम्न थी। वैदिक काल को छोड़कर भारत में निरन्तर स्त्रियों की स्थिति का पतन होता गया। यह पतन भी इस सीमा तक हुआ कि

स्त्रियाँ पुरुषों की दासी बनकर रह गयीं। भारत में स्त्रियों की निम्न स्थिति के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-

1. धार्मिकता और रूढ़िवाद- भारत में स्त्रियों की निम्न स्थिति का सबसे बड़ा कारण भारतीय सभ्यता का धर्मभीरु और रूढ़िवादी होना है। भारत में धर्मकाल से ही स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आयी, जब मनु ने घोषणा की कि 'स्त्री स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है।' फिर तो स्त्रियों की निम्न स्थिति की विवेचना करने की धार्मिक होड़ लग गयी। बाद के प्रायः सभी धर्म-ग्रन्थों ने स्त्रियों की निम्न स्थिति की विवेचना की है। पतिव्रता और सतीत्व की अवधारणाओं ने स्त्रियों की स्थिति को नीचे गिरा दिया। अज्ञानता और अशिक्षा ने इस प्रकार की विचारधारा को प्रोत्साहित किया। भारतीय जनता का धार्मिक और रूढ़िवादी प्रचार भी स्त्रियों की निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी है।

2. कन्यादान - वैदिककालीन कन्यादान (योग्य वर की तलाश) की अवधारणा कालान्तर में कलुषित हो गयी और कन्या को दान करने की वस्तु माना जाने लगा। कालान्तर में कन्यादान के उच्च आदर्श ने सामूहिक अयोग्यताओं को जन्म दिया। कन्यादान ने समाज में दो बुरे आदर्शों को जन्म दिया- (i) माता-पिता या संरक्षक द्वारा कन्या का मनमानी विवाह। (ii) दान में प्राप्त कन्या को अधिकारों का अभाव। इस तरह कन्यादान के आदर्श ने एक सजीव स्त्री (कन्या) को निर्जीव वस्तु में परिवर्तित कर दिया।

3. संयुक्त परिवार प्रथा- भारत में संयुक्त परिवार की प्रथा को आदर्श माना गया है। संयुक्त परिवार की प्रथा ने मुखिया की तानाशाही को जन्म दिया। इस तानाशाही प्रवृत्ति ने स्त्री की विचारधारा को प्रभावित किया और उसे यह मानने के लिए बाध्य किया कि पति परमेश्वर है और उसकी सेवा करना स्त्री का परम धर्म है, जिससे उसे मोक्ष मिल सकता है। संयुक्त परिवार ने स्त्रियों की चेतना को विकसित करने के स्थान पर उसे कुण्ठित किया। इससे स्त्रियों को अधिकारों से वंचित करके उनका मनमानी शोषण किया। इस प्रकार संयुक्त परिवार के चाहे कितने ही लाभ क्यों न रहे हों, इसने स्त्रियों की स्थिति को गिराने में सहायता की है।

4. वैवाहिक दशाएँ - भारतीय समाज की वैवाहिक दशाएँ भी स्त्रियों की निम्न सामाजिक स्थिति के लिए उत्तरदायी हैं। इन वैवाहिक दशाओं में निम्न प्रमुख है- (i) बाल-विवाह

की प्रथा, (ii) अन्तर्विवाह, (iii) कुलीन विवाह, (iv) विधवा विवाह निषेध, (v) दहेज प्रथा, (vi) माता-पिता के वैवाहिक अधिकार, (vii) कन्या के प्रति माता-पिता और समाज का दृष्टिकोण।

विवाह की इन प्रथाओं ने भारतीय समाज में स्त्रियों की निम्न स्थिति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

5. अशिक्षा एवं अज्ञानता- भारतीय समाज में व्याप्त अशिक्षा और अज्ञानता को भी स्त्रियों की निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। शिक्षा के अभाव के कारण स्त्रियाँ परिवार की चहारदीवारी के अन्दर सिमट कर रह गयी हैं। स्वार्थपूर्ण और रूढ़िगत उपदेशों को प्रभावशाली बनाने में स्त्रियों की अज्ञानता ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्त्रियों की नैतिकता को पतिव्रता और सतीत्व के परम्परागत दायरों में सीमित कर दिया गया है। इन सबके कारण भी भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति नीची हुई है।

6. विदेशियों के आक्रमण सिकन्दर महान से लेकर भारत में विदेशियों के आक्रमण का जो सिलसिला चला, वह कई शताब्दियों तक निरन्तर रहा। प्रारम्भिक समाज में अधिकांश आक्रमण स्त्रियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से किए जाते थे। इसके साथ ही विदेशी स्त्रियों की कमी के कारण हिन्दू स्त्रियों आदि से विवाह का प्रयत्न करते थे। इन परिस्थितियों ने सामाजिक व्यवस्था को इतना कठोर बना दिया कि परिणामस्वरूप स्त्रियों की समस्त स्वतंत्रताएँ अपने आप ही समाप्त हो गयीं। अशिक्षा, पर्दा-प्रथा, आर्थिक निर्भरता, घर से निकलने पर प्रतिबन्ध आदि परिस्थितियों ने समाज में स्त्रियों की स्थिति को निम्न बना दिया।

भारतीय समाज के विभिन्न युगों में स्त्रियों की स्थिति में भिन्नता रही है और इस भिन्नता के लिए अलग- अलग परिस्थितियां उत्तरदायी रही हैं। फिर भी मौलिक कारण समाज पर पुरुषों का एकाधिकार और कर्मकाण्डों की जटिलता का महत्व सबसे अधिक है। इन कर्मकाण्डों और रूढ़ियों ने स्त्रियों की स्थिति को इतना उलझा दिया कि इससे अलग होना असम्भव हो गया।

स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन के कारक

(Factors Responsible for Change in Status of Women in Independant India)

भारत में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन के लिए जो प्रमुख कारक उत्तरदायी हैं, उनमें से कुछ निम्न हैं-

1. भारतीय स्वतन्त्रता- भारत में स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए भारतीय स्वतन्त्रता का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद अनेक कानूनों का निर्माण हुआ, स्त्रियों में शिक्षा और जागरूकता का प्रसार हुआ, उनमें आर्थिक स्वनिर्भरता की भावना विकसित हुई और उन्हें राजनैतिक जीवन में सहभागिता के अवसर मिले। इन परिस्थितियों ने स्त्रियों की परम्परागत स्थिति को परिवर्तित किया।

2. भारतीय संविधान - स्वतन्त्रता के बाद भारत में नए संविधान की रचना हुई, जो समस्त भारत में 26 जनवरी, 1950 से लागू किया गया। इस संविधान की प्रस्तावना में ही इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि लिंग, धर्म और वंश के आधार पर नागरिकों में किसी प्रकार भेदभाव नहीं किया जायेगा। भारतीय संविधान ने स्त्री-पुरुषों के बीच समानता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। समानता के इन सिद्धान्तों के प्रतिपादन के परिणामस्वरूप भी समाज में स्त्रियों की स्थिति ऊँची हुई है।

3. प्रौद्योगिक प्रगति - विज्ञान ने समाज को नवीन प्रौद्योगिकी (Technology) प्रदान की है। इस नवीन प्रौद्योगिकी ने जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं, उदाहरण के लिए, मोटरगाड़ियों में सेल्फ (Self) का आविष्कार। सेल्फ स्टार्टर के आविष्कार के पहले स्त्रियों में मोटर चलाने का रिवाज नहीं था किन्तु सेल्फ स्टार्टर के आ जाने से स्त्रियाँ भी मोटर चलाने का कार्य करने लगी हैं। इस प्रकार उनके सामाजिक दायरे और कार्य की क्षमताओं में वृद्धि हुई है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति ने कुछ ऐसे नवीन आविष्कारों को जन्म दिया है, जहाँ सिर्फ स्त्रियाँ ही काम कर सकती हैं, जैसे हवाई जहाजों में परिचारिकाएँ, चिकित्सालयों में नर्स, घड़ी, इलेक्ट्रानिक तथा कुछ रसायन

उद्योग आदि। इस प्रकार विज्ञान और तकनीकी प्रगति ने भी स्त्रियों के जीवन में परिवर्तन को प्रोत्साहित किया है।

4. स्त्री-शिक्षा - स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों की स्थिति को परिवर्तित करने में स्त्री-शिक्षा का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। शिक्षा ने स्त्रियों की स्थिति को उन्नत करने में दो क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं।

(i) स्त्रियों को घर की चहारदीवारी से बाहर लाकर खड़ा किया है। (ii) उन्हें राजनैतिक, आर्थिक क्षेत्र में पुरुषों के समान स्तर पर लाया है।

डॉ. कारमाक ने लिखा है, "अकेली महिला को शिक्षा और व्यवसाय से परे रखकर उसके बारे में सोचना भी असम्भव है। अगर भारत में अकेली महिलाओं का कोई अस्तित्व है तो केवल शिक्षा और व्यवसाय के कारण।" वास्तव में शिक्षा ही वह महत्वपूर्ण कारक है, जो स्त्रियों को घर की चहारदीवारी से बाहर करने में सहायक है। कपाडिया ने लिखा है, "शिक्षा ने भारतीय स्त्री को घर की चहारदीवारी से बाहर निकालकर पाश्चात्य स्वतन्त्रता और प्रजातंत्र के आदर्शों के नजदीक लाकर खड़ा कर दिया है।"

5. सामाजिक विधान- स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में स्त्रियों के हितों की रक्षा के लिए अनेक अधिनियमों का निर्माण किया गया है। इन अधिनियमों ने स्त्रियों की स्थिति को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। इनमें से प्रमुख अधिनियम इस प्रकार हैं- (i) महिलाओं का अनैतिक व्यापार, अवरोधक अधिनियम, 1952, (ii) उत्तराधिकार अधिनियम, 1956, (iii) मातृत्व हित लाभ अधिनियम, 1961, (iv) गर्भपात अधिनियम, 19701

6. औद्योगीकरण तथा नगरीकरण भारतीय सामाजिक जीवन को परिवर्तित करने में औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की भूमिका महत्वपूर्ण है। औद्योगीकरण और नगरीकरण की परिस्थितियों ने भारत में स्त्रियों और पुरुषों को समान धरातल पर लाकर खड़ा किया है। वे साथ-साथ काम, शिक्षा और राजनैतिक जीवन में भाग लेती हैं। औद्योगिक नगरों में पुरुषों की मनोवृत्तियों में भी कांफी अन्तर आया है। वे पर्दाप्रथा और बाल विवाह का विरोध करते हैं।

7. पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि- स्वतन्त्रता के बाद पारिवारिक क्षेत्र में भी स्त्रियों की स्थिति ऊँची हुई है। निम्न तथ्य स्त्रियों की ऊँची स्थिति को सिद्ध करते हैं- (i) स्त्री की अवधारणा में अन्तर पाया आज वह पुरुष की दासी न होकर उसकी सहयोगी और मित्र है। (ii) परिवार में उसकी स्थिति याचिका को न होकर प्रबन्धक की है। (iii) अपने अधिकारों से वंचित निरीह अबला न होकर वह जागरूक महिला (iv) अन्तर्जातीय और प्रेम विवाहों की मात्रा में वृद्धि। (v) विलम्ब विवाहों को प्रोत्साहन ।

8. आर्थिक निर्भरता - स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज में स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता में वृद्धि हुई है। अब जीविका-उपार्जन को अनैतिक दृष्टि से नहीं देखा जाता है। विभिन्न उद्योग, व्यवसायों, जीवन हर क्षेत्र, व्यक्तिगत प्रतिष्ठानों और प्रौद्योगिक केन्द्रों में भी स्त्रियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। वे स्त्रियाँ जो जीविका-उपार्जन का कार्य करती हैं, अन्य स्त्रियों के समक्ष उदाहरण और अनुकरण करती हैं।

उपर्युक्त परिस्थितियों और कारकों ने भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और भारत

(International Women's Year and India)

संसार भर की महिलाओं की स्थिति को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने वर्ष 1975 को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया था। इसका कारण यह है कि मानव समाज में महिलाओं की समस्या एक अहम् सवाल है। मैक्सिको में महिला वर्ष का आरम्भ करते हुए राष्ट्र के महासचिव डॉ. कुर्त वाल्दहाइन ने कहा था- "महिलाओं के प्रति भेदभाव की नीति उतनी ही गंभीर समस्या है जितनी कि अनाज की कमी और बढ़ती हुई जनसंख्या की है।"

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष पर दिये गये अपने सन्देश में श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा था, "यदि हम सुन्दर भविष्य प्राप्त कर सके तो यह न केवल महिलाओं के लिए बल्कि विश्व की सभी महिलाओं और पुरुषों के लिए होगा। अतः हमें इस आन्दोलन में और

अपने कामों में इस बात का ध्यान रखना है कि हमें सिर्फ महिलाओं के लिए नहीं, बल्कि एक बेहतर विश्व के लिए काम करना है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिला वर्ष की घोषणा निम्न तीन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की थी- (i) समानता का संचार, (ii) विकास में महिलाओं की साझेदारी, (iii) विश्व शान्ति में महिलाओं का योगदान। विश्व में महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। महिलाएँ संसार की समस्त श्रम-शक्ति की 1/3 हैं।

संसार की लगभग 40 प्रतिशत महिलाएँ उत्पादन कार्य में लगी हुई हैं। दक्षिणी अमेरिका में उनका प्रतिशत 20, अफ्रीका में 30 और यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में 35 प्रतिशत है। इनमें से अधिकांश महिलाएँ अकुशल हैं।

अशिक्षा विकासशील देश की महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या है। अफ्रीका में 80 प्रतिशत, एशिया में 50 प्रतिशत और दक्षिणी अमेरिका में 27 प्रतिशत महिलाएँ निरक्षर हैं। भारत में 26.4 करोड़ में से 3.4 करोड़ (13 प्रतिशत) औरतें श्रम-कार्यों का सम्पादन करती हैं। इन 3.4 करोड़ महिलाओं में से 3 करोड़ महिलाएँ गाँवों में और कृषि-क्षेत्रों में कार्य करती हैं। 90 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ खेतिहर मजदूर हैं। 20 लाख से कम महिलाएँ शहरी क्षेत्रों में नौकरी और दूसरे व्यवसायों में लगी हुई हैं। 30 लाख महिलाएँ स्वैच्छिक संस्थाओं में लगी हुई हैं।

भारत में 1975 में देश के विभिन्न भागों में प्रतियोगिताएँ, भाषण, सांस्कृतिक कार्यक्रम, सेमीनार, प्रभात फेरी और नारी-शक्ति जागरण के कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। यद्यपि ये समस्त कार्यक्रम नगरीय अंचलों

तक ही सिमट कर रह गये हैं और ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी उसी स्थिति में हैं, जहाँ पहले थीं, किन्तु इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रभाव ग्रामीण अंचलों पर भी पड़ रहा है, भले ही इस प्रभाव की गति मन्द हो। वर्तमान परिस्थितियों में 'सारी मानव जाति को जहाँ तक स्त्रियों का सम्बन्ध है, न्याय और मर्यादा के सन्दर्भ में सोचना सीख लेना चाहिए।'

जनजातीय महिलाओं की स्थिति

(Status of Tribal Women)

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त यह जानना आवश्यक है कि जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति क्या है। जनजातियाँ भारतीय समाज और संस्कृति के जीवन्त उदाहरण हैं। इनका भारतीय सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान हैं। भारतीय समाज में जनजातियों में अनेक विविधता और भिन्नता पाई जाती है। इस विविधता और भिन्नता के कारण उनके जीवन में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। क्षेत्रीय विशालता के कारण जनजातियों में अनेक भिन्नताएँ हैं। ये भिन्नताएँ जहाँ एक ओर अनेक सामाजिक जीवन में परिलक्षित हो रही हैं, वहीं दूसरी ओर आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य क्षेत्रों में भी परिलक्षित हो रही है। भारत पितृप्रधान देश है, जहाँ समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का महत्व अधिक है। यही बात जनजातीय समाजों पर भी लागू होती है। कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश जनजातीय समाज पितृप्रधान है। और जैसा कि होता है, इनके परिवार भी पितृस्थानी और पितृवंशी हैं। ऐसे परिवारों में स्त्रियों की तुलना में पुरुष की ही प्रधानता को स्वीकार किया जाता है। किसी भी समाज में जहाँ जिस लिंग की प्रधानता होती है वहाँ उसका समाज में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस दृष्टि से भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस दृष्टि से भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

3.4 विभिन्न क्षेत्रों में जनजातीय महिलाओं की स्थिति

जीवन के विभिन्न पहलू होते हैं। इन विभिन्न पहलुओं में किसी भी समाज और व्यक्ति की स्थिति एक समान नहीं होती है। किसी क्षेत्र में स्थित अच्छी होती है, तो किसी क्षेत्र में स्थिति सामान्य और किसी क्षेत्र में स्थिति खराब होती है। यही बात जनजातीय स्त्रियों की भी है। भारतीय संदर्भ में विभिन्न क्षेत्रों में जनजातीय महिलाओं की स्थिति संक्षेप में इस प्रकार है-

1. परिवार समाज की मूल इकाई है और यह सार्वभौमिक संस्था है। समाज में परिवार के स्वरूप और इसके प्रकार भिन्न-भिन्न होते हैं। इस भिन्नता के कारण महिलाओं की स्थिति में भी भिन्नता रहती है। जहाँ तक जनजातियों का प्रश्न है, जनजातीय अधिकांश

परिवार पितृसत्तात्मक (Patriarchal) है। पितृसत्तात्मक परिवारों के कारण में पितृस्थानी (Patrilocal) और पितृवंशी (Patrillineal) है। इन परिवारों में पिता की प्रधानता होती है तथा वंशपरम्परा भी पिता के नाम से ही चलती है। इन जनजातियों में महिलाओं की स्थिति पुरुषों से निम्न होती है।

2. विवाह इसकी महत्वपूर्ण संस्था है। विवाह संस्था के द्वारा भी समाज में महिलाओं की स्थिति का निर्धारण किया जाता है। पितृवंशी परिवार होने के कारण जनजातीय महिलाओं को वधू बनकर ससुराल जाना होता है तथा वहाँ की मान्यताओं और रीतिरिवाजों के अनुसार अपने को ढ़ालना होता है। इस दृष्टि से भी इन परिवारों में पुरुषों की स्थिति महिलाओं की तुलना में अच्छी होती है।

3. भारत में अनेक जनजातीय समूह हैं। ये जनजातीय समूह विशाल क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इस विशालता के कारण इनके जीवन यापन के तरीकों में विविधता है। इस विविधता के कारण भी जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति में भिन्नता है।

4. अर्थव्यवस्था जीवन का महत्वपूर्ण पहलू है। जनजातीय समाज की अर्थव्यवस्था का आधार जंगल और जमीन है। सारी अर्थव्यवस्था जंगल और जमीन पर केन्द्रित है। इस अर्थव्यवस्था का नियमन परिवार के किसी एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है। इसके लिए परिवार के सभी सदस्यों की बराबर की भागीदारी होती है। अर्थव्यवस्था के दो आधार बिन्दु हैं- आमदनी (Income) और खर्च (Expenditure) जहाँ तक आमदनी का सवाल है, इसमें परिवार के सभी सदस्य सहयोग करते हैं। किन्तु खर्चे आवश्यकताओं के अनुसार होते हैं। फिर भी खर्चों में पुरुषों की प्रधानता होती है। क्योंकि परिवार में पुरुषों का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

5.सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में पुरुषों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसका कारण यह है कि सामाजिक जीवन परिवार का बाहरी क्षेत्र है और परिवार के बाहरी क्षेत्र में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों को अधिक महत्व दिया जाता है।

6. जनजातियों का धार्मिक जीवन भी महत्वपूर्ण होता है। यह परिस्थिति और पर्यावरण पर आधारित होता है। सभी धार्मिक क्रियाएं सामान्य रूप से संचालित होती हैं। इसमें

भी पुरुषों तथा स्त्रियों के कार्यों में विविधताएं और भिन्नताएँ हैं। कुछ धार्मिक कार्य पुरुषों द्वारा सम्पादित किए जाते हैं, जब कि कुछ धार्मिक कार्यों का सम्पादन स्त्रियों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार धार्मिक जीवन में पुरुषों को स्त्रियों से अधिक महत्व दिया जाता है।

7. राजनैतिक जीवन में पुरुषों की प्रधानता होती है। पहले जातीय पंचायतें होती हैं। यद्यपि अब जातीय पंचायतें पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं, फिर भी इनके महत्व में कमी आई है। अब इनका स्थान ग्राम पंचायतों, तथा अन्य न्यायिक और सुरक्षा संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। फिर भी इनका महत्व समाप्त नहीं हुआ है। राजनैतिक जीवन में पुरुषों की ही प्रधानता है।

8. पहले जातीय पंचायतों में सिर्फ पुरुषों को ही स्थान दिया जाता था, किन्तु नई पंचायती राज व्यवस्था के कारण पंचायतों में महिलाओं के लिए स्थान सुरक्षित कर दिए गए हैं। इस कारण जनजातीय महिलाएँ पंचायतों में महत्वपूर्ण सहभागिता कर रही हैं। इसके राजनैतिक क्षेत्र में जनजातीय महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन हो रहा है और समाज में इनका स्थान ऊँचा हो रहा है।

9. शिक्षा के क्षेत्र में भी पहले महिलाओं को स्थान नहीं दिया जाता था। भारत सरकार की 2001 की जनगणना से यह स्पष्ट निकाला जा सकता है कि जनजातीय समाज में पुरुषों की तुलना में महिलाओं का प्रतिशत कम है। किन्तु सरकारी प्रयासों तथा जागरुकता के कारण शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाओं की समाज में स्थिति ऊँची रही है।

10. प्रशासकीय क्षेत्रों में भी पुरुषों का ही आधिपत्य था। महिलाओं को सरकारी नौकरियों में अधिक स्थान नहीं दिया जाता था। इसका कारण यह है कि समाज में महिलाओं की स्थिति अच्छी नही थी, किन्तु अब आरक्षण के कारण जनजातीय महिलाओं को भी नौकरी मिलने लगी है।

जनजातीय महिलाओं की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। प्रजातंत्रीकरण तथा महिला सशक्तीकरण के कारण जनजातीय समाज की महिलाओं में भी परिवर्तन हो रहे हैं तथा निकट भविष्य में इसके सार्थक परिणाम सामने आएंगे। जनजातीय समाज में

महिलाओं की निम्न स्थिति के जो कारण हैं, वे सभी समाजों में सामान्य हैं। इन कारणों के निवारण के द्वारा भारतीय समाज में सामान्य महिलाओं तथा जनजातीय महिलाओं की स्थिति में सुधार किया जा सकता है।

जनजातियों में महिलाओं की स्थिति

(Status of women in tribes)

इसके पूर्व जनजातीय महिलाओं की स्थिति की चर्चा की गई। इसके अन्तर्गत जनजातीय समाज की जो महिलाएँ हैं, उनकी सामान्य समाज में क्या स्थिति है। इस शीर्षक के अन्तर्गत जनजातीय समाज जो है, उस समाज में महिलाओं की क्या स्थिति है। जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति का निर्धारण परिवार आधारित होता है। परिवार मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं- पितृसत्ता और मातृसत्ता। परिवारों में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं होती, जबकि मातृसत्ता परिवारों में महिलाओं की स्थिति अच्छी होती है। इस शीर्षक के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट जनजातीय समूहों के महिलाओं की स्थिति की विवेचना की जाएगी।

जौनसार बाबर की खस राजपूतों में बहुपतित्व प्रथा की विशिष्टता को द्रोपदी प्रथा की संज्ञा दी जाती है। क्योंकि अधिकतर एक माँ से उत्पन्न सगे भाई ही एक से अधिक स्त्री से सम्मिलित रूप से विवाह करते हैं। यदि छोटा भाई अपनी इच्छानुसार किसी लड़की से विवाह करना चाहता है तो उसका बड़ा भाई उस लड़की से विवाह करके उसे अपने छोटे भाई के हवाले कर देता है। खस लोगों में यौन सम्बन्धों की नैतिकता दोहरी है। इनकी विवाहित स्त्रियाँ जब मायके में होती हैं तो इन्हें पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की स्वतंत्रता होती है, और जब ससुराल में होती है तो पतियों तक ही उनका यौन सम्बन्ध स्थापित होता है। योगेश अटल' (1968) ने लिखा है कि "यौन सम्बन्धों की इस दोहरी नैतिकता के कारण यहाँ एक ही स्त्री

दो भिन्न संज्ञाओं से सम्बोधित की जाती हैं। गाँव की लड़कियों को 'ध्यान्टी' कहा जाता है और गाँव की बहुओं को 'राँटी'। 'ध्यांटी' के साथ कोई भी अपरिचित मजाक कर

सकता है। वह उसे निःसंकोच बीड़ी या सिगरेट पीने को दे सकता है। पर 'रान्टी' को सिगरेट लेने की स्थिति में पहले वह अपने पति की ओर देखेगी उसकी अनुमति मिलने पर ही उसे स्वीकार करेगी। ध्यांटी गाँव में आने पर बहुत नाचती-गाती है। गाँव में एक नई चहल-पहल दिखने लगती है। विशेष अवसर पर परिवार के अतिथियों का सत्कार करने के लिए ध्यांटियां रात में उनकी सैय्या की शोभा बढ़ाती हैं। ऐसे अवसरों पर पति भी रान्टी की अनुपस्थिति में परिवर्तन के लिए गाँव की ध्यान्टियों के साथ आनन्द मनाते हैं।"

यद्यपि खस जनजाति में बहुपति विवाह प्रचलित है फिर भी एक विवाह का प्रचलन प्रारम्भ हो चुका है, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, विवाह विच्छेद की प्रथा प्रचलित है। किन्तु विवाह विच्छेद बहुत कठिन है। तलाक प्रथा के बारे में अटल कहते हैं कि "स्त्रियाँ जब अपने पिता के घर जाती हैं और विशेषकर जब ये माँ बन चुकी होती हैं और रूपवती होती हैं तो उनके प्रशंसक उन्हें छूट के लिए प्रेरित करते हैं। किन्तु छूट की शर्तों तथा मूल्य का निर्धारण औरतों के भाई या माता-पिता करते हैं। पति लोग भी उस स्थिति में पत्नी का परित्याग कर देते हैं। जबकि पर्याप्त समय बीत जाने पर भी वह माता बनने में असमर्थ होती है। किन्तु एक स्त्री जो अपनी उर्वरता सिद्ध कर चुकी है परित्याग लेना काफी कठिन होता है। परिवार के कर्ता को 'सयाना' कहा जाता है, सम्पत्ति में स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं होता है।

गारो मातृ सत्तात्मक सामाजिक संगठन की जनजातियाँ है अतः परिवार में औरतों का स्थान श्रेष्ठ है। परिवार में पति-पत्नी तथा उनकी पुत्री संतानों को मिलाकर होता है। उनके लड़के 'नक पाण्टे' नामक युवा गृहों में रहते हैं। दोनों समय का भोजन माता-पिता के साथ करते हैं और रहते हैं युवागृहों में। अविवाहित लड़कियाँ परिवार में रहती हैं उत्तराधिकारिणी लड़की को 'नोकना' कहा जाता है। जो माता की मृत्यु के बाद परिवार की मालकिन होती है। यदि किसी नोकना को पुत्री नहीं होती है तो अपनी किसी बहन की पुत्री को गोद ले लेती है। यदि कोई नोकना पुत्री हीन रही और गोद नहीं ले सकी तो सम्पत्ति विवाहित बहनों के बीच बंट जाती है। नोकना के पति को 'नोकरोम' कहा जाता है जो पत्नी के घर में रहता है और सम्पत्ति की देख-रेख करता है। गारो अपनी

लड़की का फुफेरा भाई से शादी करना आवश्यक मानता है। फुफेरे भाई के अभाव में उसका इसी परिवार के अन्य सदस्यों से शादी करना अच्छा मानता है।

मध्यप्रदेश के दक्षिण पश्चिम सीमा पर स्थित भीलांचल झाबुआ जिले के विंध्य पर्वत के छोटे-मोटे पठारों से आच्छादित है यहाँ निवास करने वाले भील, भिलाले पटलिए हैं। जो अपनी विशिष्ट अस्मिता के लिए विश्वविख्यात हैं। यहाँ के निवासी भोले-भाले, वचन के पक्के तथा रूढ़िवादी परम्पराओं से बँधे होते हैं, प्रमुख अवसर पर सामूहिक भोज, मद्यपान, कपड़ों एवं गहनों का आदान-प्रदान इनकी रोचक परम्पराएँ हैं। इनके 'भगोरिया' पर्व जिसे प्रणयपर्व के रूप में जाना जाता है के लिए ये प्रसिद्ध हैं। भगोरिया पर्व वाले दिन अंचल के सभी स्त्री-पुरुष अपनी पारम्परिक वेश-भूषा सिर पर सफेद, पीला, गुलाबी साफा आधी बाहों की काली झुलड़ी सफेद ऊँची धोती पहन कर हाथों में चाँदी या कथिर के कड़े कानों में मुरकी, कमर में करधनी पहने, हाथों में तीन-कामठी लिए माथे पर गुलाल लगाए गबरु जवान नवयुवक मुँह में पान की गिलोरिया चबाए रंगीले नवयुवक एवं युवतियाँ माथे के बीच में बोर, आस- पास सहकलियाँ कानों में झेले-झूमके गले में तामिली साकल, हाथों में कड़े, बाहों में बीरिटया, पैरों में कड़े बिंदिया अंगुलियों में मुंदरी आदि आभूषण लादे रंगीन घेरेदार घाघर चुनरी छींटदार चोली पहनकर गालों व ठोड़ी में गोदने गुदाये नव यौवनायें पुरुषों से होड़करती हुई बंसी की धुन में मस्त होकर ढोल, मादर की थाप पर समूह में नृत्य गान करती हैं।

बुक्शा उत्तरांचल की एक विशिष्ट जनजाति है जिसकी भाषा हिन्दी कुमायूँनी है। जिसमें क्रम विवाह प्रचलित है। ये अन्तर्जातीय बहिर्गोत्रीय विवाह करते हैं। इनमें दहेज प्रथा भी प्रचलित है तथा विवाह-विच्छेद की सुविधा पायी जाती है। विधवा पुनर्विवाह की प्रथा भी पायी जाती है। कन्या-धन को 'माल गति' कहा जाता है, जिसका प्रचलन समस्त परिवारों में पाया जाता है। ये पित्रवंशीय है। संयुक्त परिवार इनकी विशिष्टता है। अशिक्षित होते हुए भी बुक्शा जनजाति में स्त्रियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनमें पर्दा प्रथा नाम मात्र की है। ये न तो पुरुषों की दासी हैं न स्वामिनी बल्कि वह साथी के रूप में समतुल स्थान प्राप्त किए हैं। इनके यहाँ नातेदारी सम्बन्धी प्रथा बहुत प्रचलित है। पुत्र- वधू अपने ससुर व जेठ को न देख सकती हैं और न मुँह खोलकर बात कर

सकती है। ननद के माध्यम से ये जेठ व ससूर से बात कर सकती है। जीजा-साली, देवर-भाभी परिहास सम्बन्ध प्रचलित है। पति की मृत्यु के बाद स्त्रियाँ देवर से विवाह कर लेती हैं।

राजी उत्तरांचल की अल्पविकसित जनजाति है। जो पिथौरागढ़ जनपद की पहाड़ियों की चोटी पर बिखरी हुई हैं। इन्हें 'वनरावत' 'वन कन्हैया' भी कहा जाता है। यह एक विवाही जनजाति है जो गोत्र छोड़कर विवाह करती है। वधू मूल्य इनके यहाँ पाया जाता है जो नाम मात्र का होता है पहले यह 30 रुपये तक होता था अब 300 रुपये तक है। विवाह की पद्धति सरल है एक कपड़े का टुकड़ा बिछाकर कन्या वर के माथे पर तिलक लगाती है और वर-वधू एक दूसरे को गुड़ या मिश्री खिलाते हैं। पुरोहितों का प्रभाव अब इनके यहाँ बढ़ने लगा है तथा ये भी बैण्ड-बाजों एवं गाड़ियों के साथ विवाह करना आरम्भ कर दिए हैं। विवाह-विच्छेद कठिन है, विधवा पुनर्विवाह नाम मात्र के पाये जाते हैं।

गुजरात की जनजातियों में नायक जाति का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। नायक अनेक क्षेत्रों में पूरब में पंचमहल, उत्तर में सम्भवतः बनासकांठा, दक्षिण में सूरत, भड़ोच, राजा पीपला एवं सौराष्ट्र तथा कच्छ में फैले हुए हैं। ये तीन शाखाओं-ऊँचा, नीचा और चोलीवाला में विभक्त हैं। ऊँचा नायक चोलीवाला नायक नीचा से वधू ले सकता है किन्तु किसी ऊँचा नायक से नहीं। नायक प्रायः भूमिहीन मजदूर होते हैं। इनकी आर्थिक अवस्था बहुत निम्न है अतः इनमें गरीबी बहुत अधिक पायी जाती है। नायकों के यहाँ सभी का स्थान बहुत ऊँचा है। आर्थिक व्यवस्था में इनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। विवाह के समय लड़कियों की इच्छा को महत्व दिया जाता है। वे अपनी इच्छा से शादी कर सकती हैं। वे तलाक भी दे सकती हैं और उन्हें दूसरी शादी करने की भी स्वतंत्रता है। विवाह के समय वधू मूल्य देना पड़ता है जिसका दर गिरता जा रहा है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. भारत में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना कब की गयी ?

(ए)1992 ई. (ब)1994 ई. (स) 1995 ई. (द) 1996 ई.

2. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में महिलाओं की संख्या है-

(अ) 48.65 करोड़ (ब)49.65 करोड़ (स)50.65 करोड़(द)51.65 करोड़

3. किस वर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया था?

(अ)1980 (ब)1995 (स)1975 (द)1990

4. निम्न में से कौन-सी समस्या महिला उद्यमिता के मार्ग में बाधक है?

(अ) पुरुषों का हस्तक्षेप (ब) वित्तीय कठिनाइयाँ

(स) परम्परागत मूल्य (द) उपर्युक्त में से सभी

5. 'दि पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन' पुस्तक के लेखक कौन है?

(अ) पी. एन. प्रभु (ब) डॉ. नगेन्द्र (स) अल्तेकर (द) राधाकमल मुखर्जी

6. महिलाओं और कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम भारत में कब लागू हुआ?

(अ) 1955 में (ब) 1950 में (स) 1958 में (द) 1956 में

7. भारतीय नारी की स्थिति में सुधार किस उपाय से होगा?

(अ) बाल विवाह से (ब) आश्रम व्यवस्था से (स) पाश्चात्य शिक्षा से (द) समानता के अधिकार से

3.5 सार संक्षेप

महिलाएं किसी भी समाज की आधारशिला होती हैं, और उनकी स्थिति उस समाज की प्रगति और विकास का प्रतिबिंब होती है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति ऐतिहासिक रूप से बदलती रही है। प्राचीन युग में उन्हें उच्च स्थान प्राप्त था, जबकि मध्यकाल में उनकी स्थिति में गिरावट आई। स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए व्यापक प्रयास किए गए।

इस अध्याय में विशेष रूप से जनजाति महिलाओं की स्थिति पर चर्चा की गई है। जनजातीय समाज में महिलाएं पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती हैं, लेकिन वे भी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों का सामना करती हैं। पंचायती राज व्यवस्था में उनकी भागीदारी, अधिकारों की प्राप्ति और सामाजिक सुरक्षा के प्रयास इस इकाई के मुख्य बिंदु हैं। यह अध्ययन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और उनके सशक्तिकरण के लिए की गई पहलों को समझने में सहायक होगा।

3.6 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1. (अ), 2. (ब), 3. (स), 4. (द), 5. (द), 6. (स), 7. (अ)

3.7 मुख्य शब्द

1. जनजाति महिलाएं: आदिवासी समाज की वे महिलाएं जो अपनी पारंपरिक संस्कृति, रीति-रिवाजों और सामाजिक संरचना के साथ समाज में अपनी भूमिका निभाती हैं।

2 पंचायती राज व्यवस्था: ग्राम स्तर पर शासन का एक तंत्र, जो ग्रामीण विकास और जनसहभागिता को बढ़ावा देने के लिए संविधान द्वारा स्थापित किया गया है।

3. सामाजिक सुरक्षा: जनजातीय महिलाओं के लिए सरकारी योजनाएं और नीतियां, जो उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने और उन्हें सुरक्षित रखने के लिए बनाई गई हैं।

4. अधिकार: कानूनी, सामाजिक और आर्थिक अधिकार जो महिलाओं को समानता और सशक्तिकरण प्रदान करते हैं।

5. सहभागिता: राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी।

3.8 संदर्भ सूची

1. चौधरी, एम. (2019). भारत में पंचायती राज और महिलाओं की भागीदारी. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स।

2. मजूमदार, डी.एन. (2018). आदिवासी समाज और महिलाओं की स्थिति. कोलकाता: ओरिएंट ब्लैकस्वान।

3. शुक्ला, आर.के. (2020). भारतीय जनजातीय समाज: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. भोपाल: मप्र प्रकाशन।

4. सिंह, के.एस. (2017). जनजाति महिलाओं के अधिकार और सशक्तिकरण. जयपुर: राष्ट्रीय प्रकाशन।

5. वर्मा, एस.सी. (2021). महिला सामाजिक सुरक्षा योजनाएं और उनकी प्रभावशीलता. वाराणसी: काशी बुक्स।

3.9 अभ्यास प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.भारत में महिलाओं की स्थिति पर एक निबन्ध लिखिए।

2. भारत में महिलाओं की निम्न स्थिति के कारणों की विवेचना कीजिए।

3. जनजातीय महिलाओं की स्थिति को समझाइए।

4. जनजातियों में महिलाओं की स्थिति पर एक निबन्ध लिखिए।

(आ) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer type Questions)

1 अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष

2.आदिवासी महिलाओं की स्थिति

3. पितृसत्ता और मातृसत्ता समाज और महिलाएँ।

4.पितृसत्तात्मक एवं मातृसत्तात्मक समाज एवं महिलाएँ।

ब्लॉक - II

इकाई -4

सामाजिक-सांस्कृतिक परिचय, परिवार, विवाह, नेतृत्व एवं सांस्कृतिक विविधताएँ (Socio-cultural introduction-family, marriage, leadership and cultural diversities)

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 परिवार की परिभाषा

4.4 परिवार का महत्व

4.5 विवाह

4.6 भारत की वन्यजातियाँ और विवाह

4.7 नेतृत्व

4.8 दल

4.9 सार संक्षेप

4.10 मुख्य शब्द

4.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

4.12 सन्दर्भ सूची

4.13 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

परिवार शब्द अंग्रेजी के Family का हिन्दी रूपान्तर है। Family लैटिन भाषा के Famulus शब्द से निकला है जिसका अर्थ होता है 'नौकर'। इस प्रकार परिवार के अन्तर्गत माता-पिता, बच्चे, नौकर और यहाँ तक कि गुलामों को भी सम्मिलित किया

जाता था। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूपों में परिवर्तन होते रहे हैं। परिवार बिना बच्चों के भी हो सकते हैं या माता-पिता और बच्चों को मिलाकर हो सकते हैं। परिवार व्यक्ति पर जबरन लादी गई संस्था नहीं है, बल्कि सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति जन्म से ही स्वेच्छा से इसकी सदस्यता स्वीकार करता है।

4.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- परिवार की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांतों को जान पाएंगे ।
- परिवार के प्रकार से परिचित होंगे तथा परिवार के कार्य क्या होते हैं इस विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे ।
- समाज में परिवार का क्या महत्व होता है,भारतीय बन जातियों के परिवार से परिचित होंगे।
- विवाह का अर्थ परिभाषा एवं उत्पत्ति के सिद्धांत को जान पाएंगे।
- विवाह के समान स्वरूप से परिचित होंगे साथ ही विभिन्न जनजातियों में विवाह साथी के चुनाव की विधियों को जान पाएंगे , नेतृत्व को जान पाएंगे।

4.3 परिवार की परिभाषा

परिवार की सार्वभौमिक और सर्वसम्मत परिभाषा देना असम्भव है। इसका कारण यह है, देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी कुछ विद्वानों ने परिवार की परिभाषा दी हैं, जिससे परिवार शब्द की आत्मा का बोध लगाया जा सकता है। परिवार की कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं-

(1) मैकाइवर और पेज- "परिवार वह समूह है जिसके अन्तर्गत स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और उनका सम्बन्ध ऐसा हो जिससे संतान उत्पन्न हो और उनका पालन-पोषण भी किया जाये।"

(2) इलियट और मेरिल "परिवार पति-पत्नी तथा बच्चों की एक जैवकीय सामाजिक संस्था है। यह एक सामाजिक संगठन है जिसके द्वारा कुछ मानवीय आवश्यकताएँ पूर्ण की जाती है।"

(3) डी.एन. मजूमदार- "परिवार व्यक्तियों का समूह है जो कि एक ही छत के नीचे रहते हैं, मूल और रुधिर सम्बन्धी गाँठों से बँधे होते हैं तथा स्थान, स्वार्थ एवं कृतज्ञता की अन्योन्याश्रिता के आधार पर जाति की. जागरूकता रखते हैं।"

(4) बर्जेस और लॉक- "परिवार व्यक्तियों का एक समूह है जिससे व्यक्ति विवाह, पैतृक, रक्त अथवा अनुकूलन के द्वारा एक दूसरे से बँधे रहते हैं, एक साथ एक घर में रहते हैं तथा उनके पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, आदि रूपों में अपने सामाजिक कर्त्तव्यों के अनुसार एक दूसरे के प्रति अपनी अन्तः क्रियाएँ एवं विचार संचारित करते रहते हैं और उनकी रक्षा करते हैं।"

(5) आगबर्न और निमकॉफ- "परिवार पति-पत्नी का थोड़ा बहुत स्थायी संघ है, जिनके बच्चे हों या न हों या एक पुरुष या एक स्त्री का अकेले ही अपने बच्चों के साथ वाला संघ हो।"

इस प्रकार "परिवार में केवल माता-पिता एवं बच्चे आदि ही नहीं आते, परन्तु वह सब ही व्यक्ति आते हैं, जो रक्त सम्बन्धी हों, गोद लिए हुए हों तथा जिन्हें परिवार या समाज ने परिवार में रहने की स्वीकृति दे दी हो।"

परिवार की विशेषताएँ

मैकाइवर और पेज ने परिवार की आठ विशेषताएँ बतलायी हैं। ये विशेषताएँ हरेक समाज में पाई जाती हैं, ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

(1) सार्वभौमिकता - परिवार निम्न कारणों से सार्वभौमिक संस्था है-

(a) परिवार हर एक युग और समाजों में पाया जाता है, चाहे वह समाज आदिम हो या आधुनिक।

(b) भविष्य में भी परिवार का अस्तित्व बना रहेगा।

(c) दूसरी संस्थायें परिवार की तुलना में इतनी सार्वभौमिक नहीं है।

(d) परिवार की इस सार्वभौमिकता के दो मूल कारण हैं।

(i) परिवार के माध्यम से व्यक्ति अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(ii) इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कार्य परिवार के ही माध्यम से सम्पादित किये जाते हैं।

(2) भावनात्मक आधार- समाज में जितनी संस्थायें हैं वे किसी न किसी आधार पर हुई हैं। परिवार का भी इसी प्रकार एक निश्चित आधार है। परिवार जिस आधार पर टिका हुआ है, उसका सम्बन्ध भावनाओं से है कानून या नींव से नहीं, जैसे पति-पत्नी के मानसिक सम्बन्ध, माँ का बच्चों के प्रति स्नेह, पालन-पोषण की व्यवस्था, सहायता और सुरक्षा आदि ऐसी अनेक भावनाएँ हैं, जिन भावनाओं के आधार पर परिवार टिका हुआ है।

(3) रचनात्मक प्रभाव- अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसके साथ ही परिवार को शिशु के समाजीकरण की पहली पाठशाला कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। परिवार के क्रियात्मक प्रभाव के दो कारण हैं-

(a) परिवार के सदस्यों के व्यवहारों में दिखावटीपन नहीं रहता।

(b) परिवार के सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर ध्यान न देकर सामूहिक स्वार्थों की ओर ध्यान देते

(4) सीमित आकार- परिवार प्राणिशास्त्रीय दशाओं पर आधारित होते हैं। इसलिये परिवार का सदस्य सिर्फ वही व्यक्ति हो सकता है-

(a) जिसने परिवार में जन्म लिया हो।

(b) जिसने उस परिवार के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए हों।

(c) जो अन्य सामाजिक सम्बन्धों या रक्त सम्बन्धों के माध्यम से परिवार से जुड़े हुए हों।

इन सबके अतिरिक्त यदि हम अन्य समाजों से परिवार की तुलना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसका आकार अत्यन्त ही सीमित और छोटा होता है।

(5) सामाजिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थिति- यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु के अनुसार समुदाय परिवारों का एक यंत्र मात्र है। सामाजिक ढाँचे का निर्माण अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं के माध्यम से होता है। ये सभी संस्थायें समाज के ढाँचे में भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थाई रहती है। परिवार भी इस प्रकार की एक सामाजिक संस्था है किन्तु इस सामाजिक संस्था की मौलिक विशेषता यह है कि इसकी स्थिति सामाजिक ढाँचे में है।

यही कारण है कि अन्य संस्थाओं की तुलना में परिवार का महत्व सबसे अधिक है।

(6) सदस्यों का असीमित उत्तरदायित्व- परिवार के संगठन का आधार कानून न होकर मानवीय भावना और मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं। यही कारण है कि व्यक्ति पारस्परिक सहायता और सुरक्षा से प्रेरित रहते हैं। परिवार के सदस्यों में व्यक्तिवाद की भावना नहीं पाई जाती। इसका परिणाम यह है कि सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों से परे होकर सामूहिक स्वार्थ का अनुसरण करते हैं। भावनाओं के आधार पर परिवार का निर्माण होने के कारण इसके सदस्यों का उत्तरदायित्व असीमित रहता है।

(7) सामाजिक विधान- सामाजिक नियंत्रण परिवार की मौलिक इकाई है। प्रत्येक समाज में सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखकर कुछ विशिष्ट प्रकार के नियमों का निर्माण किया जाता है। इसी प्रकार के नियम परिवार में भी होते हैं। परिवार में नियंत्रण का यह आधार कानून पर आधारित न होकर मानवीय नियंत्रण पर आधारित होता है। प्रत्येक परिवार में पारिवारिक निषेध पाये जाते हैं और प्रत्येक सदस्य इन निषेधों का पालन करता है। इस प्रकार परिवार में नियंत्रण बना रहता है।

(8) परिवार की स्थाई एवं अस्थाई प्रकृति- परिवार के दो स्वरूप हैं- पहला स्वरूप संस्था के रूप में जबकि दूसरा स्वरूप समिति के रूप में है। समिति के रूप में परिवार पति-पत्नी तथा बच्चों तथा अन्य सदस्यों का समूह है। इस अवस्था में परिवार अस्थाई है। विवाह विच्छेद जन्म और मृत्यु के कारण होती रहती है। यह परिवार का समिति का रूप है। संस्था के रूप में परिवार नियमों और कार्य-प्रणालियों का समूह है। व्यक्तियों के बदलने के बावजूद भी परिवार के नियम सदैव स्थायी रहते हैं। इस प्रकार संस्था के परिवार स्थायी हैं, जबकि समिति के रूप में परिवार अस्थायी है। इसलिए परिवार की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा जाता है कि परिवार स्थायी भी है और अस्थाई भी है।

मैकाइवर और पेज के द्वारा बतलायी हुई उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि परिवार-मात्र

(1) मानव की मूलभूत यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति के लिए निर्मित हुआ।

(2) मानव की यौन सम्बन्धी इच्छाओं को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए विवाह नामक संस्था का विकास हुआ। विवाह की यह संस्था भी समाजों में किसी न किसी रूप में अवश्य पाई जाती है।

(3) विवाह के बाद वंश नाम परिवार की तीसरी मौलिक विशेषता है। प्रत्येक परिवार में उत्तराधिकार की एक व्यवस्था होती है।

वंश नाम की दृष्टि से परिवार दो प्रकार के हैं-

(a) मातृवंशीय परिवार,

(b) पुत्रवंशीय परिवार

(4) विवाह के परिणामस्वरूप माँ की असहाय अवस्था में परिवार के लिए अर्थ-व्यवस्था को अनिवार्य बना दिया। प्रत्येक परिवार में पालन-पोषण के लिए एक निश्चित. आर्थिक व्यवस्था पाई जाती है।

(5) प्रत्येक परिवार का एक सामान्य निवास-स्थान होता है। इस निवास स्थान का परिवार के सदस्य अपना घर कहकर सम्बोधित करते हैं।

परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त (Theories of Origin of Family)

प्रसिद्ध समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि समाज का उद्विकास हुआ है। यह उद्विकास सरल से जटिल की ओर हुआ है। समाज में जितनी भी संस्थाएँ और संगठन हैं वे सभी सामाजिक उद्विकास के परिणाम हैं। परिवार भी एक सामाजिक संस्था है। अतः इसका भी उद्विकास होना स्वाभाविक है।

परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों में विवाद है किसी भी संस्था का उद्भव सदैव ही अस्पष्ट और अनिश्चित होता है। परिवार किस तरह विकसित हुआ? इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो प्रमुख सिद्धान्त हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) शास्त्रीय सिद्धान्त- परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त की व्याख्या करने वाला शास्त्रीय सिद्धान्त सबसे प्राचीन है। इस सिद्धान्त के प्रवर्तकों में यूनान के प्रमुख दार्शनिक प्लेटो और अरस्तु का नाम प्रमुख है। इन विद्वानों के अनुसार परिवार की उत्पत्ति पुरुष की शक्ति के परिणाम से हुई है। आदिकाल में परिवार पुत्र सन्तात्मक, पुत्रवंशी और पुत्र स्थानीय होते थे। इन विचारकों का कहना है कि शक्ति के परिणामस्वरूप पुरुष का स्त्री पर पूर्ण अधिकार होता था और यही कारण है कि परिवारों का जन्म हुआ। 16

इन विचारकों के अनुसार अठारहवीं शताब्दी तक पुरुष की पूर्ण सत्ता के कारण इस प्रकार के परिवार स्थायी रहे, बाद में अन्य परिवर्तनों से परिवार के स्वरूप में परिवर्तन प्रारम्भ हो गये, इसके साथ ही अनेक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पुरुष की शक्ति का ह्रास होने लगा और अन्य प्रकार के परिवारों का जन्म हुआ। प्रसिद्ध मानवशास्त्री मार्गन ने भी इन्हीं तथ्यों का समर्थन किया है।

(2) यौन साम्यवाद का सिद्धान्त (The Theory of Sex Communism)- परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसे यौन साम्यवाद के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का जन्म समाज में प्रचलित यौन साम्यवाद के कारण हुआ है। इस सिद्धान्त के समर्थकों में मार्गन, लूबाक, फेजर और ब्रीफाल प्रमुख हैं।

इन विद्वानों के अनुसार अत्यन्त प्राचीनकाल में न तो परिवार का अस्तित्व था और न ही विवाह का। मनुष्य जानवरों की भाँति अनियमित यौन सम्बन्ध स्थापित करते थे। उस समय न कोई किसी का पति होता था, न ही पत्नी। मार्गन ने आदिवासियों के त्यौहारों और सामाजिक उत्सवों के समय का कुछ ऐसा उदाहरण दिया है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि स्त्रियों को किसी भी पुरुष के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने की पूरी छूट होती थी, आज भी अनेक समाजों में विवाह से पूर्व यौन सम्बन्ध की स्वतंत्रता है। मध्य आस्ट्रेलिया के अनेक आदिवासी यौन सम्बन्धों की स्वतंत्रता के कारण अपने पिता को नहीं जान पाते हैं।णीए के नोट की

यौन साम्यवाद की इस परम्परा के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याओं का जाम हुआ। इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिये मानव-समाज ने परिवार नामक संस्था को विकसित किया।

(3) उद्विकासवादी सिद्धान्त (Evolutionary Theory)- परिवार की उत्पत्ति का तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त उद्विकासवादी सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का अन्य संस्थाओं की भाँति उद्विकास हुआ है। इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थकों में स्पेन्सर, टेलर, मार्गन और बैक्रोफन प्रमुख हैं। इन विचारकों के अनुसार परिवार की उत्पत्ति किसी भी एक निश्चित समय में नही हुई है, बल्कि परिवार का देश या काल के अनुसार क्रमिक विकास हुआ है। बैक्रोफन के अनुसार परिवार की उत्पत्ति किसी समझौते के अधीन नहीं हुई है, बल्कि इसका विकास कुछ स्तरों से होकर हुआ है। बैक्रोफन ने परिवार के विकास के स्तरों को मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा है-

(a) प्रथम अवस्था (First Stage)- परिवार के विकास की प्रारम्भिक अवस्था स्त्री और पुरुषों के बीच पशुओं की भाँति यौन साम्यवाद था जो कुछ पारिवारिक यौन सम्बन्ध के चिन्ह थे वे अत्यन्त ही शिथिल थे। इस अवस्था में बालक का सम्बन्ध माँ से होता था पिता के बारे में उसे किसी प्रकार की जानकारी नहीं रहती थी।

(b) द्वितीय अवस्था (Second Stage) - बैक्रोफन के अनुसार समाज और परिवार का निरन्तर विकास होता गया। इस विकास के परिणामस्वरूप जीवन संघर्षों की मात्रा में वृद्धि होने लगी। आर्थिक कठिनाइयों के परिणामस्वरूप समाज में बहुपति विवाह का प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार बैक्रोफन के अनुसार दूसरी अवस्था में बहुपत्नी विवाह परिवार का जन्म हुआ।

(c) तृतीय अवस्था (Third Stage) - बैक्रोफन के अनुसार परिवारों के उद्विकास की तीसरी अवस्था तब से प्रारम्भ होती है, जब से मानव समाज ने व्यवसाय के रूप में कृषि का सूत्रपात किया। कृषि के प्रारम्भ हो जाने से मानव समाजों की जीविका सरल हो गई, साथ ही कृषि कार्यों में स्त्रियों का महत्व बढ़ने लगा, बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई। इन सबका परिणाम यह हुआ कि पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने लगा। इस प्रकार तीसरी अवस्था में बहुपत्नी विवाही परिवारों की स्थापना हुई।

(d) चतुर्थ अवस्था (Fourth Stage) - उद्विकास की परम्पराओं के साथ ही मानव मस्तिष्क में नैतिक विचारों का जन्म हुआ। इस नैतिकता के परिणामस्वरूप विवाह को एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया जाने लगा। साथ ही स्त्रियों के अधिकारों में भी वृद्धि हुई। इन सबका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक परिवार जिसे हम एक विवाही परिवार कहते हैं, का जन्म हुआ।

बैक्रोफन के विचारों से प्रभावित होकर मार्गन ने परिवार के उद्विकास की निम्न पाँच अवस्थाएँ बतलायी हैं-

(i) रक्त सम्बन्धी परिवार (Consanguine Family)- परिवारों के उद्विकास की पहली अवस्था रक्त सम्बन्धी परिवारों की थी। परिवार में एक ही रक्त से सम्बन्धित व्यक्ति

रहते थे और उसी परिवार के रक्त सम्बन्धियों से विवाह करते थे। आज भी अनेक समाजों में रक्त सम्बन्धी विवाह के उदाहरण मिलते हैं।

(ii) समूह विवाह (Penalaun Family)- परिवारों के उद्विकास की दूसरी अवस्था समूह विवाह की है। समूह विवाहों का जन्म तब हुआ जब रक्त सम्बन्ध विवाह को अनुचित समझा जाने लगा। विवाह के पहले स्वरूप में एक पुरुष अपने रक्त सम्बन्ध की एक समूह की स्त्री से विवाह करता था। इस अवस्था में आकर एक स्त्री और एक पुरुष का विवाह, एक समूह की स्त्रियों और दूसरे समूह के पुरुषों के रूप में बदल गया। इस प्रकार एक समूह के सभी पुरुष दूसरे समूह की सभी स्त्रियों के साथ विवाह करने लगे। ये सभी स्त्री पुरुष स्वतंत्र रूप से यौन सम्बन्ध स्थापित करते थे।

(iii) सिण्डेस्मियन परिवार (Syndasmian Family)- मार्गन ने सिण्डेस्मियन परिवार को पारिवारिक उद्विकास की तीसरी अवस्था बतलाया है। इस अवस्था में आकर समूह विवाह एक विवाह के रूप में बदल गया।

एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करने लगे। इन परिवारों की मौलिक विशेषता यह थी कि विवाह के बाद एक परिवार में आने वाली स्त्रियों से कोई भी पुरुष यौन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्वतंत्र रहता था। समूह में पिता की स्थिति अस्पष्ट रहती थी। सिण्डेस्मियन परिवार में पिता की स्थिति स्पष्ट हो गई। मार

(iv) पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family)- इन परिवारों का जन्म पिता की सत्ता के परिणामस्वरूप हुआ। परिवार में पुरुष की सत्ता को स्वीकार किया गया। इसके साथ पुरुष को अपनी इच्छानुसार अधिकार प्रदान किया गया। इस अधिकार के परिणामस्वरूप पुत्र सत्तात्मक परिवार का जन्म हुआ और अन्त में एक विवाही परिवार अन्तिम अवस्था में एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करने लगा और इस प्रकार आधुनिक एक-विवाही परिवार का जन्म हुआ।

(v) मातृसत्तात्मक सिद्धान्त (Matriarchal Family)- इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक बैक्रोफन और ब्रिगफाल्ट हैं। इस सिद्धान्त की मूल आत्मा यह है कि परिवारों का जन्म माता की सत्ता के कारण हुआ है। ब्रिगफाल्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस सिद्धान्त

का प्रतिपादन किया है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बच्चे अपने पिता के प्रति जानकारी नहीं रखते थे। इसे वह पैतृक अज्ञानता के नाम से सम्बोधित करता है। समाज में बच्चे को पिता का ज्ञान न होने से माता को सत्ता ही प्रधान होती थी, इसलिए परिवार मातृ स्थानीय और मातृवंशीय हुआ करते थे, परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही माता की सत्ता का ह्रास होने लगा।

(vi) एक विवाही सिद्धान्त (The Theory of Monogamy) - इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक वेस्टरमार्क हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है कि परिवारों की उत्पत्ति एक विवाह के परिणामस्वरूप हुई है। एक विवाही परिवार वह है जहाँ पर एक पुरुष एक स्त्री से विवाह करता है। वेस्टरमार्क ने एक ही स्त्री से विवाह करने के दो कारण बतलाये हैं- के प्रकार

(a) स्त्री की तुलना में पुरुष शक्तिशाली होने के कारण उस पर अधिकार रखता है।

(b) साथ ही, पुरुष में ईर्ष्या की भावना होती है। इन दोनों कारणों से एक विवाही परिवारों का जन्म हुआ, जो आज भी है।

परिवार के प्रकार (Types of family)

परिवार सार्वभौमिक संस्था है, किन्तु देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवार के स्वरूपों में भिन्नता पाई जाती है। किन्हीं समाजों में मातृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं, तो किन्हीं समाजों में पुत्र सत्तात्मक परिवार। इसके अतिरिक्त संयुक्त विस्तृत और व्यक्तिगत तथा अन्य अनेक प्रकार के परिवार भिन्न-भिन्न समाजों में पाये जाते हैं। परिवार के स्वरूपों में भिन्नताओं को देखते हुए समाजशास्त्रियों ने इसका वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। संक्षेप में परिवार के प्रमुख स्वरूपों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सदस्यों की संख्या और संगठन के आधार पर परिवार का पहला वर्गीकरण दो आधारों पर किया जाता है-

(a) सदस्यों की संख्या की दृष्टि से।

(b) परिवार के संगठन की दृष्टि से।

इन दोनों आधारों को सामने रखकर समाजशास्त्रियों ने परिवार को प्रमुख रूप से निम्न तीन भागों में विभाजित किया है-

(i) व्यक्तिगत परिवार- यह परिवार का वह स्वरूप है जिसमें पति-पत्नी और उनके बच्चे सम्मिलित रहते हैं। व्यक्तिगत परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, एक व्यक्ति के परिवार को कहते हैं। आधुनिक सभ्यता और नगरीकरण के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत परिवारों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

(ii) विवाह सम्बन्धी परिवार- विवाह सम्बन्धी परिवार को संक्षेप में दो परिवारों का मिलन कहा जा सकता है। यूरोप और अन्य पश्चिमी देशों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। विवाह सम्बन्धी परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, इस परिवार में विवाह सम्बन्धों में बँधने वाले दोनों परिवारों के कुछ सदस्य सम्मिलित होते हैं।

(iii) संयुक्त परिवार- संयुक्त परिवार कई परिवारों का मिला-जुला स्वरूप है। इसमें अनेक व्यक्तिगत परिवार सम्मिलित रहते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन में संयुक्त परिवारों के सबसे अधिक उदाहरण देखने को मिलते है। इन परिवारों में पति-पत्नी तथा उनके बच्चों के अतिरिक्त अनेक पीढ़ियों के सदस्य तथा सम्बन्ध सम्मिलित रहते हैं। संयुक्त परिवारों के साथ ही साथ आज इसका स्वरूप विस्तृत परिवार के रूप में बदलता जा रहा है।

(2) सत्ता, स्थान तथा वंश परम्परा के आधार पर विद्वानों ने परिवारों का जो दूसरा वर्गीकरण किया है, उसके आधार पर मुख्य रूप से तीन तत्व सम्मिलित हैं-

(ए) सत्ता या शक्ति का केंद्रीकरण,

(b) स्थान का महत्व

(c) वंश परम्परा या वंश नाम का आधार।

इन तीनों दृष्टिकोणों को सामने रखकर प्रमुख रूप से परिवारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) मातृ सत्तात्मक परिवार- मातृ सत्तात्मक परिवार जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है कि परिवार का वह रूप स्वरूप है जिसमें परिवार की पूरी सत्ता माता या पत्नी के हाथों में होती है। इन परिवारों की वंश परम्परा ही माता के नाम पर चलती है। सम्पत्ति का उत्तराधिकार माता से पुत्री को हस्तांतरित होता है। विवाह के उपरान्त पति को अपनी पत्नी के घर में रहना पड़ता है। संक्षेप में ये वे परिवार हैं जिनमें आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य प्रकार की सत्ता पति के हाथों में न रहकर पत्नी के हाथों में होती है। मातृसत्तात्मक समाज विकास की प्रारम्भिक अवस्था से भले ही रहे हों, आज ये अत्यन्त ही कम समाजों में देखने को मिलते हैं। भारतवर्ष में खासी, गारो, नायर और कदार आदि वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं।

(ii) पितृ सत्तात्मक परिवार- आधुनिक युग में सभ्य कहे जाने वाले सभी समाजों में पितृ सत्तात्मक

परिवार पाये जाते हैं। पितृ सत्तात्मक परिवार मातृ सत्तात्मक परिवारों की उल्टी स्थिति वाले होते हैं। इन परिवारों में वंश परम्परा पुरुष के नाम से चलती है। विवाह के पश्चात पत्नी को पति के घर में रहना पड़ता है। परिवार की पूरी सत्ता पुरुष के हाथों में होती है। परिवार का उत्तराधिकारी भी पुरुष ही होता है। कि नीड (१)

(3) विवाह के आधार पर विवाह के आधार पर सबसे पहले यह सिद्ध किया गया है कि परिवार एक समिति भी है और एक संस्था भी। यह इस प्रकार की समिति है, जिसका निर्माण वैवाहिक बन्धनों के आधार पर होता है। प्रत्येक समाजों में वैवाहिक बन्धनों में भिन्न-भिन्न आधार होते हैं। जब विवाह भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि परिवार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होंगे इसी दृष्टि को सामने रखकर विवाह के आधार परिवारों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) एक विवाही परिवार- जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है इस प्रकार के परिवारों में पुरुष को केवल एक स्त्री से विवाह करने का अधिकार प्रदान किया जाता है। यदि हम सामाजिक उद्विकास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के परिवार आधुनिक सभ्यता के परिणाम हैं। वर्तमान समाज अत्यधिक जटिल और तनावपूर्ण होता

जा रहा है। इस तनाव और जटिलता को मुक्त पाने के लिए इसे एक साधन के रूप में चुना जा रहा है। एक-विवाही-परिवार को साधन के रूप में चुना जा रहा है।

(ii) बहु विवाही परिवार- ये वे परिवार हैं जिनमें पुरुष या स्त्री एक से अधिक स्त्रियों या पुरुषों के साथ विवाह करते हैं। बहुविवाही परिवारों को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है- (1)

(a) बहुपति विवाही परिवार- वे परिवार हैं जिनमें परिवार की एक स्त्री का विवाह अनेक पुरुषों के साथ होता है। इन परिवारों में माता की प्रधानता होता है। इसके साथ ही साथ ये परिवार मातृवंशीय और मातृस्थानीय भी होते हैं। इस प्रकार के विवाह का मुख्य कारण विषय आर्थिक परिस्थितियाँ हैं। बहुपति विवाह के प्रमुख दो प्रकार हैं-

(i) भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाही परिवार- इसमें एक पत्नी के जो अनेक पति होते हैं वे सभी भाई होते हैं।

(ii) अभ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाही परिवार- इन परिवारों में एक पत्नी के अनेक पतियों का भाई होना अनिवार्य नहीं है। देहरादून के जोनसारबावर जाति और मालाबार के नायक जाति तथा टोडा जोतियों में इस प्रकार के विवाह पाये जाते हैं।

(b) बहुपत्नी विवाही परिवार- बहुपत्नी विवाह, विवाह का वह स्वरूप है, जिससे एक पुरुष अनेक पत्नियों से विवाह करता है। इस प्रकार के परिवार पितृ सत्तात्मक स्थानीय और पितृ वंशीय होते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार के परिवारों के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

परिवार के कार्य (Functions of Family)

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु ने इस प्रकार के विचार व्यक्त किये थे कि 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाना है तो इसके लिए समाज अनिवार्य है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में समाज को अनेक संस्थाओं का योगदान रहता है। इन संस्थाओं में परिवार, पड़ोस, शिक्षा संस्थायें तथा राजनैतिक संस्थायें आदि हैं।

इन सभी संस्थाओं की तुलना में परिवार का महत्व सबसे अधिक है। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि परिवार शिशु के समाजीकरण की पहली पाठशाला है। समाजीकरण का अर्थ है व्यक्तित्व का विकास करना, मानव व्यक्तित्व के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति के लिए परिवार अनेक कार्यों का सम्पादन करता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मोरेल ने परिवार के कार्यों को निम्न भागों में विभाजित किया है-

(1) प्राणिशास्त्रीय कार्य - इससे यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति, सन्तानोत्पत्ति और उपभोग के कार्य सम्मिलित हैं।

(2) आर्थिक कार्य- इसमें उत्पत्ति और उपभोग के कार्य सम्मिलित हैं।

(3) शिक्षा सम्बन्धी कार्य।

(4) व्यक्ति के सामाजिक पद का निर्धारण।

(5) व्यक्ति को धार्मिक मार्गदर्शन प्रदान करना।

(6) मनोरंजन सम्बन्धी कार्य।

(7) पारिवारिक स्नेह तथा सहानुभूति के कार्य।

बीरस्टीड ने परिवार के कार्यों को निम्न दो भागों में बाँटा है जिसे निम्न तालिका के द्वारा दिखलाया जा सकता है-

परिवार के कार्य (बीस्टिडी के अनुसार)

परिवार के कार्य

↓

बीस्टिडी के अनुसार

↓

व्यक्ति के लिये कार्य **समाज के लिये कार्य**

↓ ↓

1) जीवन और अति-जीवन **1) प्राणियों का प्रजनन करना**

2) यौन-संबंधी अवसर देना **2) यौन-संबंधों पर नियंत्रण स्थापित करना**

3) संरक्षण और समर्थन देना **3) देख-रेख करना**

4) सामाजिकरण **4) संस्कृति का प्रसार करना**

5) सामाजिक एकता स्थापित करना **5) पद प्रदान करना**

उपर्युक्त विद्वानों ने परिवारों के कार्यों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए परिवार के सामान्य कार्यों को आगे के पृष्ठ पर्व दी गयी तालिका में दिखाया दिखाया जा रहा है।

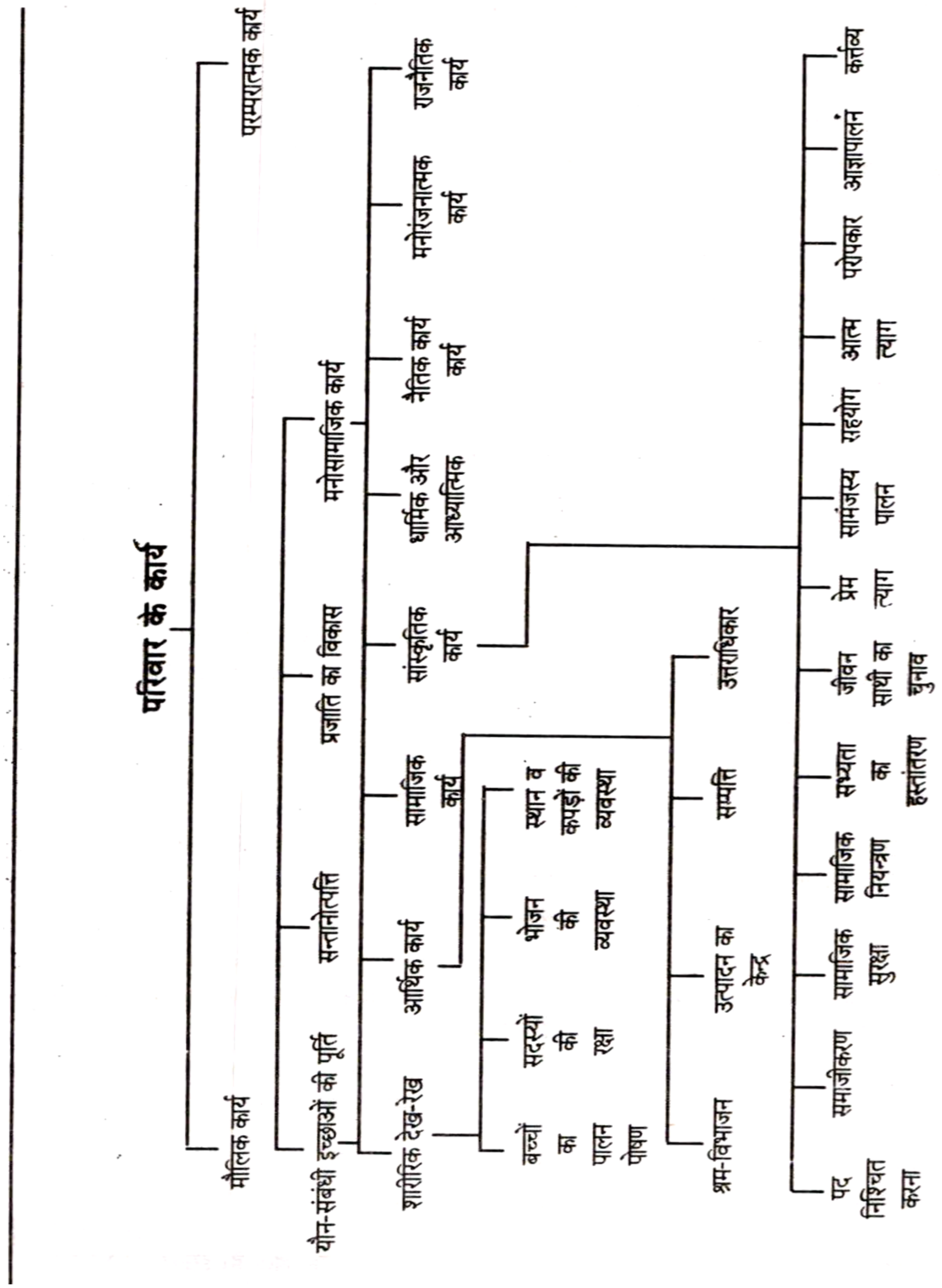

कार्यों का तात्पर्य उन कार्यों से है जिनके अभाव में परिवार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। मौलिक कार्य सभी कालों और सभी समाजों में समान रूप से पाए जाते हैं।

इन कार्यों का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं से है। परिवार के प्रमुख मौलिक कार्य निम्न हैं-

(1) यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति- परिवार का सबसे महत्वपूर्ण प्राणिशास्त्रीय कार्य यह है कि स्त्री पुरुष के विवाह संस्कार के बाद उन्हें यौन सम्बन्धों की पूर्ण आजादी और अवसर दें। यौन सम्बन्धी इच्छा मनुष्य की मूलभूत इच्छा है और इस इच्छा की स्थायी पूर्ति परिवार में ही सम्भव हो सकती है परिवार के बिना यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति वेश्यालयों के अलावा और कहीं भी नहीं हो सकती। वेश्याओं द्वारा भी यौन इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती। वेश्याएँ तो पैसे के लिए दूसरे पुरुषों की यौन इच्छाओं की पूर्ति करती हैं। वहाँ प्रेम और उद्वेग जैसी भावनाओं का अभाव होता है। जिन आदिम समाजों में परिवार के बाहर यौन सम्बन्ध स्थापित करने पर दण्ड दिया जाता है, वहाँ भी इस कार्य में निरन्तर सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है, इसका मुख्य कारण यह है कि कोई भी व्यक्ति स्त्री के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करता है। परिवार ही एक संस्था है जो मनुष्य के यौन इच्छाओं को पूर्ण करती है।

(2) सन्तानोत्पत्ति - कामेच्छा की पूर्ति का अन्तिम परिणाम सन्तानोत्पत्ति होता है। स्त्री और पुरुष में भी माँ-बाप बनने की एक स्वाभाविक मूल प्रवृत्ति पाई जाती है, परिवार ही एक ऐसा साधन है जो इस मूल प्रवृत्ति को पूर्ण करता है। यह जरूरी नहीं कि सन्तानोत्पत्ति परिवार के अन्दर ही हो। परिवार के बाहर भी सन्तान उत्पन्न हो सकती है, परन्तु समाज इन अवैध सन्तानों को स्वीकार नहीं करता है। केवल परिवार के अन्दर, विवाह के बाद, कुछ नियमों के अन्तर्गत, माता-पिता के सन्तानों के प्रति कर्त्तव्यों को स्वीकार किया जाता है।

(3) प्रजाति का विकास- मानव शरीर क्षणभंगुर है, इसका नाश अवश्य होता है, अगर परिवार उत्पादन का कार्य न करे तो एक समय ऐसा आ सकता है, जब परिवार और मानव जाति पूरी तरह समाप्त हो जाए। परिवार ही एक ऐसा माध्यम है जो मानव प्रजाति को नष्ट होने से बचाता है।

(4) मनो-सामाजिक कार्य मनुष्य जन्म से न तो मनुष्य होता है और न सामाजिक होता है। ये दोनों गुण वह परिवार के द्वारा ही सीखता है। परिवार सांस्कृतिक आदान-प्रदान

का केन्द्र होता है। व्यक्तित्व के विकास की पहली पाठशाला परिवार ही है, परिवार से ही व्यक्ति बनता या बिगड़ता है। बच्चा केवल सांस्कृतिक इकाई के रूप में ही नहीं पैदा होता है, परन्तु व्यक्तित्व की अन्तः क्रिया के एक पर्यावरण में भी पैदा होता है। बालर और हिल ने इसीलिये परिवार को व्यक्तित्व की अन्तः क्रिया का अखाड़ा कहा है। डॉ. पी.एन. प्रभु का विचार है कि परिवार यौन भावनाओं और इच्छाओं को एक अस्थायी, सुव्यवस्थित और अनुशासित रूप है।

परम्परात्मक कार्य

(1) शारीरिक देख-रेख का कार्य-

(i) बच्चों का पालन-पोषण- यौन सम्बन्ध का परिणाम सन्तानोत्पादन होता है। बच्चा जब पैदा होता है तो यह अवस्था बड़ी नाजुक होती है। अगर परिवार बच्चे का लालन-पालन न करे, तो असहाय बालक वहीं समाप्त हो जाता है। बच्चों का पालन-पोषण का कार्य परिवार का महत्वपूर्ण कार्य है।

(ii) सदस्यों की शारीरिक रक्षा- सहायता तथा रक्षा परिवार के मुख्य कार्य है। परिवार वृद्धावस्था में व्यक्ति को सहायता प्रदान करता है और आपत्तियों से सुरक्षा प्रदान करता है। परिवार ही एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति को सहायता और सुरक्षा का बीमा प्रदान करता है। इस कार्य के अन्दर शारीरिक चोट व बीमारी से रक्षा, घायल व अपाहिजों की सेवा और जन्म के समय और बाद में माँ और नवजात शिशु की देखभाल सम्मिलित हैं।

(iii) भोजन की व्यवस्था- भोजन की व्यवस्था करना परिवार का कार्य है, परिवार अपने सदस्यों के लिए भोजन का प्रबन्ध करतां है। परिवार सामूहिक उत्पादन का केन्द्र होता है, साथ ही एक चूल्हा का पका भोजन सभी सदस्य करते हैं।

(iv) स्थान तथा कपड़ों की व्यवस्था- सदस्यों के रहने के लिए एक सामान्य मकान की व्यवस्था करना भी परिवार कार्य है, जिससे गर्मी, वर्षा और ठण्डी से इसके सदस्यों की शारीरिक रक्षा हो सके। मकान के साथ ही आवश्यकताओं के अनुसार वस्त्रों की व्यवस्था करना भी परिवार का कार्य है।

(2) आर्थिक कार्य

परिवार सिर्फ प्राणिशास्त्रीय और सामाजिक इकाई ही नहीं, यह एक आर्थिक इकाई भी है। परिवार के सभी सदस्य सामूहिक रूप से धनोपार्जन करते हैं और वह धन सामूहिक रूप से व्यय किया जाता है। परिवार के सदस्य केवल व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण ही धनोपार्जन नहीं करते बल्कि उनमें सामाजिकता की भावना पाई जाती है। संक्षेप में परिवार के आर्थिक कार्य निम्न हैं-

(i) श्रम-विभाजन- ऐसा कोई भी परिवार नहीं है जिसमें श्रम-विभाजन न पाया जाता हो। स्त्रियों के कार्य पुरुषों के कार्यों से बिल्कुल भिन्न होते हैं और इसी प्रकार वृद्ध, युवकों और बच्चों के कार्यों में भिन्नता पाई जाती है। इस श्रम विभाजन के मुख्य आधार दो हैं- यौन और आयु।

(ii) उत्पादन का केन्द्र- आय के बिना परिवार के सदस्यों के भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है। इन्ही आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार के सदस्य मिलकर उत्पादन करते हैं।

(iii) सम्पत्ति- प्रत्येक परिवार में कुछ सम्पत्ति होती है जिस पर परिवार का नियंत्रण होता है। चाहे सम्पत्ति मकान, जमीन, आभूषण या अन्य किसी रूप में हो। इस सम्पत्ति का प्रबन्ध करना परिवार का कार्य है।

(iv) उत्तराधिकार- प्रत्येक परिवार में उत्तराधिकार की प्रथा पाई जाती है। परिवार मातृवंशीय और पितृवंशीय मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं, मातृवंशीय परिवारों में उत्तराधिकार पुत्रियों को मिलता है और पितृवंशीय परिवारों में उत्तराधिकारी पुत्र होते हैं। व्यक्तियों को उचित उत्तराधिकार प्रदान करना परिवार का मुख्य कार्य हैं।

(3) सामाजिक कार्य -

(i) पद निश्चित करना- परिवार का सदस्य होने पर ही व्यक्ति अपना पद निश्चित करता है। यदि परिवार प्रतिष्ठित है, तो समाज में व्यक्ति की स्थिति ऊँची होगी और अगर परिवार बदनाम होगा। तो इसी के अनुसार व्यक्ति का पद भी होगा। इसीलिए परिवार को सामाजिक स्थिति प्रदान करने वाला प्रतिनिधि कहा जाता है।

(ii) समाजीकरण- परिवार समाजीकरण की पहली इकाई है। परिवार जैसा होगा उसी के आधार पर व्यक्ति का नियंत्रण होता है। सामाजिक नियमों, व्यवहार, परम्पराओं और रीति-रिवाजों का व्यक्ति के व्यक्तितत्वं पर अमिट छाप पड़ती है। इसलिए कहा जाता है कि परिवार की छाप व्यक्तित्व पर अमिट होती है।

(iii) सामाजिक सुरक्षा- अनेक सामाजिक दुर्घटनाओं से परिवार व्यक्ति की रक्षा करता है। किसी सदस्य को दिवालिया होना, बदनाम होना, अपमानित होना, परिवार की प्रतिष्ठा पर आक्रमण समझा जाता है। व्यक्ति को परिवार इस प्रकार की सामाजिक सुरक्षायें प्रदान करता है।

(iv) सामाजिक नियंत्रण- परिवार प्राथमिक समूह है, अतः इसका नियंत्रण सदस्यों पर अत्यधिक कठोर होता है। कोई भी सदस्य पारिवारिक नियंत्रण की अवहेलना नहीं कर सकता है। परिवार को एक संगठित इकाई बनाये रखने में नियंत्रण का अत्यधिक महत्व है।

(v) सभ्यता का हस्तान्तरण- परिवार आने वाली पीढ़ी को सभ्यता का हस्तान्तरण करता है। परिवार ही एक ऐसी संस्था है, जो सभ्यता और संस्कृति की रक्षा, उसका सम्वर्धन और उसे आने वाले पीढ़ियों को हस्तान्तरित करती है। Frasi g

(vi) जीवन साथी का चुनाव- परिवार जीवन साथी के चुनाव में सहायता प्रदान करने वाली संस्था

है। परिवार की प्रतिष्ठा के आधार पर ही जीवन साथी का चुनाव संभव होता है। परिवार विहीन व्यक्तियों को, जीवन साथी के चुनाव में काफी अड़चनें आती हैं। वैसे शिक्षा के विकास के साथ ही और कम ध्यान दिया जाने लगा है।

(vii) प्रेम- बच्चे से माँ और परिवार के अन्य सदस्य प्रेम करते हैं। मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है, अतः बालक इसका अनुकरण कर प्रेम की भावना को सीख जाता है। आगे चलकर उसका यह प्रेम परिवार, ग्राम, राष्ट्र से बढ़ते-बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है। परिवार के प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह विशुद्ध और स्वार्थ रहित

होता है। प्रेम का यह रूप सामाजिक प्रेम में परिणत होकर समाज की शान्ति और व्यवस्था ठीक करने में सहायता करता है।

(viii) सामंजस्य - परिवार में एक दूसरे के सुख-दुःख का ध्यान रखा जाता है। पति-पत्नी के सम्बन्ध सामंजस्य का एक उदाहरण है। बालक सामूहिक जीवन सीख जाता है, और अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेता है।

(ix) सहयोग- सहयोग पारिवारिक संगठन का आधार है। अगर सहयोग समाप्त हो जाये तो परिवार विघटित हो जाता है। बाल्यावस्था से ही बालक सहयोग की भावना का अनुकरण करता है, और परिवार से सीखे हुए इस सहयोग का प्रयोग बालक समाज पर करता है, जो शान्ति और व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

(x) आत्म-त्याग- परिवार में माँ-बाप अपने बच्चों के लिए अपने प्राणों का भी त्याग कर सकते हैं। यही आत्म-त्याग की भावना बच्चे के मन में घर कर जाती है, और बालक सिर्फ परिवार के लिए ही नहीं, बल्कि देश और मानवता की रक्षा के लिए आत्म-त्याग करना सीख जाता है। बाबर ने हुमायूँ के लिए अपने प्राण त्याग दिए।

(xi) परोपकार- परिवार के सदस्य परोपकार की भावना से ओत-प्रोत रहते हैं। परिवार में अनेक सदस्य ऐसे होते हैं जो शारीरिक या मानसिक कमियों के कारण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते हैं, परिवार के अन्य सदस्य इसका उत्तरदायित्व लेते हैं और यही भावना बालक सीख जाता है। यह समिि

(xii) आज्ञा पालन- बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है, वह देखता है कि लोग किस प्रकार अपने बड़ों की आज्ञा का पालन करते हैं, और बालक स्वयं आज्ञा पालन करना सीख जाता है।

(xiii) कर्त्तव्य पालन- परिवार एक ऐसी संस्था है जो हर एक सदस्य के सुख और सुविधा का ख्याल रखता है। इसके बदले लोग कर्तव्य पालन सीख जाते हैं। यह कर्त्तव्य पालन की भावना व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनने में सहायता करती है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवार अपने सदस्यों को अनेक सामाजिक गुण प्रदान करता है जो आदर्श नागरिक के लिए आवश्यक हैं। बालक नागरिकता का प्रथम पाठ माता के चुम्बन तथा पिता के आलिंगन से ही सीखता है।

(4) सांस्कृतिक कार्य - संस्कृति शब्द संस्कार से बना है और संस्कार व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित होते हैं। शिष्टाचार का प्रभाव बच्चे के जीवन पर अमिट रूप से पड़ता है। परिवार संस्कृति के सम्बन्ध मुख्य रूप से दो कार्य करता है, पहला संस्कृति की रक्षा और संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण करता है। लोक-रीतियों और रूढ़ियाँ संस्कृति की रक्षा करते हैं और सन्तानें उसे अपनाते हैं। परिवार का यह महत्वपूर्ण कार्य है।

(5) धार्मिक और आध्यात्मिक कार्य परिवार अनेक धार्मिक उत्सवों और विधियों का केन्द्र होता है। सभी धार्मिक कार्य परिवार के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं और सामूहिक उत्सव में परिवार के सभी व्यक्ति भाग लेते है। परिवार के सभी सदस्य एक ही देवता की पूजा करते हैं और समान धार्मिक कार्यों में भाग लेते हैं। एक ही प्रकार से व्रत और त्यौहारों में भाग लेते हैं। परिवार में रहकर ही बच्चों में आध्यात्मिक गुणों का विकास होता है। माता-पिता के धार्मिक आचरण बालक के सामने आदर्श होते हैं। बालक इन समस्त गुणों को परिवार से सीखते हैं।

(6) नैतिक कार्य- नैतिकता मानक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। जिस मनुष्य में नैतिक गुणों का अभाव होता है, वह मनुष्य नहीं है। सभ्य और सुसांस्कृतिक जीवन के लिये नैतिकता आवश्यक है। परिवार इन गुणों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(7) मनोरंजनात्मक कार्य काम, आराम और मनोरंजन मानव जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। यदि मनुष्य को आराम और मनोरंजन न मिले और वह निरन्तर परिश्रम करता रहे तों उसका शरीर शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा। मनोरंजन एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर लेता है और उसमें नई उमंग आ जाती है। परिवार मनोरंजन का ऐसा केन्द्र है जो बिना पैसे के ही स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन प्रदान करता है। जब व्यक्ति दिन भर के कार्य से थका हारा

अपने घर लौटता है तो वह मनमोहक बच्चों को देख और उससे खेलकर प्रसन्न हो जाता है। परिवार में होने वाले उत्सव, त्यौहार आदि भी मनोरंजन करते हैं।

(8) राजनैतिक कार्य - परिवार एक प्रशासकीय इकाई है। इसलिए इसका राजनैतिक महत्व भी किसी हालत में कम नहीं है। परिवार में अनुशासन के रूप में मुखिया होता है, परिवार के सदस्य की जनसंख्या, निवास-स्थान, भूमि होते हैं। राज्य के तत्व परिवार में भी पाए जाते हैं। परिवार राजनैतिक कार्यों में महत्वपूर्ण योग देता है।

4.4 परिवार का महत्व (Significance of Family)

परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है और समाजीकरण के क्षेत्र में इसका योगदान सबसे अधिक है। परिवार समाज की मूलभूत संस्था है और इसी के चारों ओर सभी संस्थाएँ केन्द्रित और अन्तः सम्बन्धित हैं। इस दृष्टि से परिवार समाज की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण संस्था है। सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में परिवार के योगदान या इसके महत्व को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) समाजीकरण का केन्द्र (Centre of Socialization)- जान्सन ने लिखा है कि परिवार विशेष रूप में इस प्रकार संगठित रहता है जो समाजीकरण को सम्भव बनाता है। इसका तात्पर्य यह है कि पारिवारिक संगठन शिशु के समाजीकरण का आधारभूत तत्व है। अरस्तु ने इसीलिए परिवार को शिशु के समाजीकरण की आधारभूत संस्था कहकर सम्बोधित किया था। शिशु का सम्पूर्ण जीवन परिवार में बीतता है। वह परिवार में जन्म लेता है और समाजीकरण प्रक्रिया के द्वारा समाज में रहने के योग्य बनता है। परिवार ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्मित करता है। यहीं से प्राणिशास्त्रीय जीव सामाजिक जीव में परिवर्तित हो जाता है। परिवार ही व्यक्ति को सामाजिक बनाता है और इसमें अनेक गुणों का विकास करता है। इस प्रकार परिवार व्यक्ति का समाजीकरण करके उसे सामाजिक नियंत्रण में रखता है।

(2) सामाजिक गुणों का विकास (Development of Social Qualities) परिवार सामाजिक गुणों को विकसित करता है। ये सामाजिक गुण व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज के सभी व्यक्ति नियंत्रण में रहते हैं।

इन सामाजिक गुणों में मातृत्व, स्नेह, सहयोग, परोपकार, त्याग, सेवा, कर्तव्य पालन, अनुकूलन, आज्ञा पालन आदि प्रमुख हैं। ये सभी सामाजिक गुण व्यक्ति को समाज में नियंत्रण की स्थापना में सहायता करते हैं। किए है कि

(3) व्यवस्थित यौन सम्बन्ध (Systematic Sex relations) - परिवार अपने सदस्यों के यौन सम्बन्धी व्यवहारों का निगमन और नियंत्रण रखता है। भूख और प्यास जैसे ही यौन क्षुधा की पूर्ति भी व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। परिवार विवाह को कानूनी आधार प्रदान करके व्यक्ति की यौन सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करता है। परिवार का जन्म भी मानव की यौन सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हुआ है। इस प्रकार परिवार व्यक्ति के यौन व्यवहारों को नियंत्रित करके सामाजिक जीवन में नियंत्रण स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

(4) वैवाहिक नियंत्रण (Marital Control)- परिवार अपने सदस्यों पर अनेक प्रकार के विवाह सम्बन्धी नियंत्रण लगाता है। परिवार अपने सदस्यों के विवाह के बारे में सम्पूर्ण व्यवस्था करता है तथा यह निश्चित करता है कि विवाह का सम्पादन कब और कहाँ किया जाये? वैवाहिक आयु और वैवाहिक कार्यों का निर्धारण भी परिवार के द्वारा ही होता है। परिवार विवाह की पद्धतियों का भी निर्धारण करता है। इस प्रकार परिवार अनेक प्रकार से व्यक्ति के कार्यों और व्यवहारों को निश्चित करके समाज में नियंत्रण स्थापित करने में योग देता है। चीड क

(5) आर्थिक व्यवस्था का निर्धारण (Determination of Economic System) - आर्थिक क्रियाएँ मानव जीवन का आधार हैं। अर्थ-व्यवस्था के आधार पर ही समाज की व्यवस्था निर्धारित होती है। परिवार व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं और व्यवहारों को निर्देशित तथा संचालित करता है। परिवार ही सम्पत्ति की व्यवस्था करता है तथा उत्तराधिकार के नियमों का निर्धारण करता है। प्रत्येक परिवार में श्रम विभाजन (Division of Labour) पाया जाता है और आयु तथा पद के आधार पर सदस्यों की आर्थिक क्रियाएँ निश्चित की जाती हैं। परिवार की आर्थिक क्रियाएँ अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि परिवार के सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना पाई जाती है। परिवार के परम्परागत व्यवसाय होते हैं सदस्य इन्हीं व्यवसायों को पीढ़ी दर पीढ़ी अपनाते रहते हैं। इसका परिणाम यह

होता है कि बेरोजगारी की समस्या का भी समाज को सामना नहीं करना पड़ता है। ाि

(6) सम्बन्धों और भावनाओं का विकास (Development of Relations and Emotions) - परिवार समाज की वह सामाजिक संस्था है जो अपने सदस्यों में स्वस्थ सामाजिक सम्बन्धों और भावनाओं को विकसित करता है। जन्म से ही बालक परिवार के सम्बन्धों में अपने अहं को पराए में परिवर्तित कर देता है। विकास के साथ ही वह अनुभव करता है कि माता की निःस्वार्थ सेवा तथा परिवार के सदस्यों की स्वास्थ्य और कल्याणकारी भावनाएँ उसके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। परिवार के सदस्यों में पाई जाने वाली भावनाएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करती हैं। परिवार में सदस्यों के साथ व्यक्ति जिस प्रकार का व्यवहार करता है, इसी प्रकार का व्यवहार वह समाज के सदस्यों के साथ भी करता है और इसका परिणाम यह होता है कि सामाजिक सदस्यों में भावनात्मक एकता स्थापित होती है। यह भावनात्मक एकता सामाजिक नियंत्रण में योग देती है।

(7) संस्कृति का ज्ञान (Knowledge of Culture) - परिवार अपने सदस्यों को संस्कृति का भीः ज्ञान कराता है। संस्कृति समाज की आधारवस्तु होती है और इसी के आधार पर सामाजिक प्राणी अपने व्यवहारों को संचालित तथा निर्देशित करते हैं। यदि हम सामाजिक उद्विकास की विवेचना करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ही जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ है, परिवार के स्वरूप और कार्यों में भी परिवर्तन हुआ है। समाज और परिवार इस प्रकार से अन्तः सम्बन्धित हैं कि उन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। समाज का लघु आकार परिवार है और परिवार का वृहद् आकार समाज है। इसीलिए भारतीय समाजशास्त्रियों ने सम्पूर्ण विश्व को परिवार मानकर 'वसुधैव कुटुम्ब' की अवधारणा को व्यक्त किया था। यही कारण है कि श्री पी.एन. प्रभु ने परिवार को सामाजिक नियंत्रण की महत्वपूर्ण संस्था माना था।

(8) अनुशासनात्मक कार्य (Desciplinary Functions) - परिवार अनुशासन की आधारशिला प्रस्तुत करता है। परिवार का यही अनुशासन सामाजिक और राष्ट्रीय

अनुशासन में परिवर्तित हो जाता है। परिवार में रहकर बालक माता-पिता की आज्ञा का पालन करता है और इस प्रकार अपने जीवन को अनुशासन में ढालने का प्रयास करता है। परिवार से बड़ा होकर जब व्यक्ति समाज में आता है, तो सामाजिक प्रशासन और अनुशासन को स्वीकार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में एकता और नियंत्रण की स्थापना होती है।

(9) मनोवैज्ञानिक भूमिका (Psychological Role) - मनोविज्ञान मानव जाति को सर्वाधिक प्रभावित करता है। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की मनः स्थिति या मनोदशा का अध्ययन करते हैं और अनुरूप व्यवहारों और क्रियाओं को सम्पादित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसी मनोवैज्ञानिक लालसाएँ होती हैं, जिनकी पूर्ति परिवार में ही सम्भव है। उदाहरण के लिए दाम्पत्य स्नेह, पिता-पुत्र का स्नेह, माँ और पुत्री का स्नेह आदि इनकी पूर्ति परिवार से अलग होकर सम्भव नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि परिवार मनोवैज्ञानिक तरीकों से व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँधता है, जिससे जीवन में एकता का विकास होता है। यही एकता सामाजिक नियंत्रण के लिए आधार प्रस्तुत करती है।

इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक नियंत्रण की स्थापना में अन्य संस्थाओं की तुलना में परिवार का स्थान मौलिक है।

भारतीय वन्यजातियाँ और परिवार (Indian Tribes and Family)

समाज अत्यन्त ही विस्तृत संरचना है। इसकी संरचना का निर्माण अनेक संस्थाओं और समूहों के द्वारा होता है। सामाजिक संरचना में परिवार सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। इसके साथ परिवार की मौलिक विशेषता यह है कि परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। परिवार संस्था का अस्तित्व सभी समाजों में समान रूप से है। परिवार का अस्तित्व आदिम और आधुनिक, शिक्षित और अशिक्षित, संगठित और विघटित सभी समाजों में समान रूप से है। इतना निश्चित है कि अलग-अलग समाजों में परिवार के स्वरूप में विविधता पाई जाती है। परिवार के कुछ निश्चित सामान्य लक्षण होते हैं जो कम या अधिक मात्रा में विश्व के प्रत्येक परिवार में होते हैं। इन्हीं लक्षणों के आधार पर परिवार

को अन्य संस्थाओं से पृथक् किया जाता है। मैकाइवर और पेज ने इसी दृष्टि से सामने रखकर परिवार की निम्न परिभाषा की हैः-

"परिवार उस समूह का नाम है, जिसका स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और ये इतनी देर तक साथ रहें जिससे सन्तान उत्पन्न हो जाए और उनका पालन-पोषण भी किया जाए।"

वन्यजातियों (Tribe) में भी परिवार पाया जाता है। वन्यजातियों के सामाजिक संगठन में परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है। वन्यजातीय समाजों में पारिवारिक संगठन के भिन्न-भिन्न रूप पाए जाते हैं। भारतवर्ष में वन्यजातियों में परिवार के जो स्वरूप मिलते हैं, उनकी संक्षिप्त विवेचना निम्नलिखित है-

(1) मातृसत्तात्मक परिवार (Matriarchal Family)- यदि हम परिवार और विवाह संस्था की प्रारम्भिक अवस्थाओं पर विचार करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक काल में परिवार मातृसत्तात्मक होते थे। इन परिवारों में माता की सत्ता ही प्रधान होती थी। ये मातृसत्तात्मक परिवार मातृस्थानी (Matrilocoal) और मातृवंशी (Matrilineal) होते थे। इस प्रकार के मातृसत्तात्मक परिवारों का अस्तित्व आज भी भारतीय वन्यजातियों में है। भारत की निम्न वन्यजातियों में मातृसत्तात्मक परिवार पाए जाते हैं-

(a) खासी- भारत में खासी वन्यजाति का निवास-स्थान आसाम में ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी तट पर है। ये मातृसत्ता परिवारों के सबसे ज्वलन्त उदाहरण हैं। मातृसत्ता के साथ ही खासियों में परिवार मातृस्थानी और मातृवंशी भी होते हैं। मातृसत्तात्मक खासी परिवार में विवाह के बाद पति अपनी पत्नी के घर में रहता है। वह अपनी सम्पूर्ण कमाई अपनी सास को सौंप देता है। पति स्थायी तौर से सास के घर में नहीं रहता है। सिटेंग खासी जाति के अतिरिक्त जब नव विवाहित खासी दम्पत्ति के बच्चे पैदा होते हैं, तो वे पृथक् घर का निर्माण कर लेते हैं। वंश परम्परा तो माँ के नाम से चलती ही है, सम्पत्ति उत्तराधिकार भी लड़कों को न मिलकर लड़कियों को मिलता है। खासी की खिरिम जाति में पति का काम सिर्फ सन्तान पैदा करना होता है। पुरोहिताई से लेकर सभी

प्रकार के कार्यों का सम्पादन स्त्री करती है। खासी वन्यजाति में ऐसा नियम है कि परिवार की अधिकांश सम्पत्ति उत्तराधिकार के रूप में छोटी लड़की को मिलती है।

(b) गारो- भारतवर्ष की दूसरी वन्यजाति जिसमें मातृसत्तात्मक परिवार पाए जाते हैं, गारो है। यह वन्यजाति केरल में निवास करती है। परिवार में प्रमुख स्थान माँ का होता है और लड़की ही सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है। गारो वन्यजाति के परिवार भी मातृस्थानी और मातृवंशी होते हैं।

(c) नायर- तीसरा मातृसत्तात्मक परिवार नायर जातियों में पाया जाता है। ये लोग आदिवासियों के अन्तर्गत नहीं आते हैं, किन्तु इनमें भी परिवार का स्वरूप मातृसत्तात्मक ही होता है। को

(2) पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family)- पितृसत्तात्मक परिवार जैसा कि इसके नाम से

स्पष्ट होता है, यह वह परिवार है जिसमें परिवार की सत्ता पिता के हाथ में रहती है। साथ ही इस प्रकार के परिवार पितृ-वंशी और पितृस्थानी होते हैं। इन परिवारों से उत्तराधिकार पिता से पुत्र को प्राप्त होता है। वंश पिता के नाम पर ही चलता है। ये वे परिवार हैं, जिनमें स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की प्रधानता होती है। इन परिवारों में विवाह के पश्चात् स्त्रियाँ आकर पति के घर में निवास करती हैं। काना कि गाЯP

भारतवर्ष की प्रायः सभी वन्यजातियों में पितृसत्तात्मक परिवार पाए जाते हैं। इन परिवारों में विवाह के पश्चात् पुत्र प्रायः अलग घर बनाते हैं और पुत्रियाँ अपने पति के घर चली जाती है।

भारतवर्ष में जिन वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार पाए जाते हैं उनमें गोंड, कोल, बैगा, जौनसार बावर, नीलगिरि के टीडा, उत्तरप्रदेश की तराइयों में रहने वाले थारू, भील, सन्थाल, कोरवा, पनिका, अगरिया आदि प्रमुख हैं। इन वन्यजातियों में पिता की प्रधानता होती है। पिता की भूमिका परिवार के संचालन में महत्वपूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त इन परिवारों में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों का पद भी ऊँचा होता है। निर

(3) एक विवाही परिवार (Monogamous Family) - एक विवाही जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, यह वह परिवार है जिसमें स्त्री और पुरुष केवल एक ही विवाह करते हैं। भारत की अधिकांश वन्यजातियों में इसी प्रकार का परिवार पाया जाता है। भारतवर्ष में जिन वन्यजातियों में एक विवाह का प्रचलन है, उनमें बम्बई की महादेव कोली, दक्षिण की कादर, बिहार के संथाल, आसाम के खासी और केरल के काडर प्रमुख हैं।

(4) बहुविवाही परिवार (Polygamous Family)- बहुविवाही परिवार को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- कान

(a)बहुपत्नी विवाही परिवार- बहुपत्नी विवाह वह है जिसमें एक पुरुष अनेक स्त्रियों के साथ विवाह करता है। भारत के वन्यजातियों में अधिकांश रूप से बहुपत्नी विवाह पाए जाते हैं। अधिकांशतः बहुपत्नी विवाह उन आदिवासियों में पाया जाता है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं। अधिकांशतः वही व्यक्ति अनेक पत्नियों से विवाह करते हैं जो या तो मुखिया होते हैं या अपनी जाति के सरदार होते हैं। मध्यप्रदेश के बस्तर जिले में आदिवासी बहुतायत में बहुपत्नी विवाह करते हैं। छत्तीसगढ़ के सरगुजा, रायगढ़ और बिलासपुर जिलों तथा उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले में पहाड़ी कोरवा (Korwa) वन्यजाति के व्यक्ति बहुपत्नी विवाह करते हैं। मैंने सरगुजा जिले के मेनपाट ब्लाक के कोरवा वन्यजातियों के सर्वेक्षण के दौरान यह पाया कि कोरवाओं के सरदार 4-5 पत्नियों से विवाह करते हैं और ऐसा करना वे अपनी प्रतिष्ठा का प्रतीक समझते हैं। इसके अतिरिक्त टोडा, बैगा, नागा, गोंड, कील, पनिका, अगरिया आदि जाति के सम्पन्न व्यक्ति भी एक से अधिक पत्नियों से विवाह करते हैं। आदिवासियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है अतः सिर्फ वही व्यक्ति एक से अधिक पत्नियों से विवाह करते हैं, जो आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त ही सम्पन्न होते हैं।

(b) बहुपति विवाही परिवार- बहुपति विवाह का वह स्वरूप है जिसमें एक स्त्री अनेक पतियों के साथ विवाह करती है। इस प्रकार का विवाह भारत के बिरले वन्यजातियों में

ही पाया जाता है। भारतवर्ष के जिन वन्यजातियों में इस प्रकार के विवाह पाए जाते हैं, उनका विवरण निम्नलिखित है-

(i) नीलगिरि के टोडा वन्यजातियों में बहुपति विवाह पाया जाता है। इनमें भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह पाया जाता है। पत्नी जब किसी व्यक्ति से विवाह करती है, तो उस व्यक्ति के सभी भाई अपने आप ही उसके पति हो जाते हैं। यदि किसी टोडा परिवार में 6 भाई हैं और उनमें से दो का विवाह दो स्त्रियों से होता है तो ये दोनों ही स्त्रियाँ छः भाइयों की स्त्रियाँ कहलाएँगी।

(ii) मध्यप्रदेश के जौनसार बावर जातियों में भी बहुपति विवाह की प्रथा का प्रचलन है। जौनसार बावर की खस जाति में इस प्रकार का विवाह पाया जाता है। इस जाति में एक परिवार के सिर्फ बड़े भाई का विवाह होता है और उसके सभी छोटे भाई उसके पति मान लिए जाते हैं। इस पत्नी पर बड़े भाई का विशेषाधिकार होता है और वंश परम्परा भी बड़े भाई के नाम पर ही चलता है। इस जाति में यद्यपि छोटा भाई भी दूसरा विवाह करने का अधिकारी होता है किन्तु उसकी पत्नी पर बड़े भाई का भी अधिकार होता है।

(iii) मालाबार के नायर जाति में भी बहुपति विवाह पाया जाता है। इस जाति में परिवार का संगठन शिथिल रहता है। इसका कारण यह है कि विवाह के बाद पत्नी अपनी माँ के घर रहती है और पति अपने पिता के घर

(5) संयुक्त परिवार (Joint Family)- उस परिवार को संयुक्त परिवार कहा जाता है जिसमें माता- पिता, पुत्र-पुत्री, पौत्र-पौत्री तथा अन्य अनेक सम्बन्धी एक ही छत के नीचे निवास करते हैं। अधिकांश वन्यजातियों में संयुक्त परिवार प्रणाली नहीं पाई जाती है। इसका कारण यह है कि वन्यजातियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है। इस कारण वे संयुक्त परिवार को अधिक महत्व नहीं देते हैं। भारतवर्ष की जिन वन्यजातियों में संयुक्त परिवार पाये जाते है, उनमें जौनसार बावर के खस, भील, गोंड, सन्थाल, थारू आदि हैं। जिन संयुक्त परिवारों में किसी पति के एक से अधिक पत्नियाँ होती हैं, उसमें सम्पत्ति का विभाजन पत्नियों के आधार पर होता है। संयुक्त परिवारों में भोजन, उद्योग, व्यवसाय तथा सम्पत्ति का स्वरूप संयुक्त होता है। बच्चों का पालन-पोषण भी

संयुक्त रूप से ही किया जाता है। संयुक्त परिवारों में परिवार का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति परिवार का मुखिया होता है। वि

(6) व्यक्तिगत परिवार (Nuclear Family) - उस परिवार को व्यक्तिगत कहा जाता है जिसका निर्माण पति-पत्नी तथा उनके बच्चों से होता है। भारत की अधिकांश वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। इन परिवारों में जब बच्चे बड़े हो जाते हैं, तो उनका विवाह कर दिया जाता है और विवाह के बाद नवदम्पत्ति नए परिवार की आधारशिला रखते हैं। भारत की अधिकांश वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। भारत में जिन वन्यजातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं, उनमें महादेव कोली, सन्थाल, थारू, कादार, भील आदि प्रमुख हैं। कं पहि

भारत में वन्यजातियों में पाए जाने वाले परिवारों के स्वरूपों की यह एक संक्षिप्त रूपरेखा है। भारत वन्यजातियों का अजायबघर है। यहाँ अनेक प्रकार की वन्यजातियाँ और उनकी उपशाखाएँ पाई जाती हैं। इन सभी वन्यजातियों में पाये जाने वाले परिवारों की विवेचना यहाँ सम्भव नहीं है। ऊपर जो वर्णन किया गया है, उससे भारतीय वन्यजातियों के परिवारों की एक सामान्य झलक मिलती है।

4.5 विवाह (शादी)

नर नारी और नारी सृष्टि के सफल संचालन के आधार हैं। शरीर की रचना कुछ ऐसी है कि ये दोनों एक दूसरे से भिन्न है और सृष्टि के संचालन के लिए दोनों अपने में अपूर्ण हैं। इस अपूर्णता को समाप्त करने के लिए स्त्री-पुरुष-संसर्ग स्थापित करते हैं और सृष्टि का क्रम निरन्तर चलता रहता है।

जैवकीय परिपक्वता (Biological Maturity) प्राप्त करने पर नर और नारी विपरीत लिंगीय एक साथी की आवश्यकता को अनुभव करते हैं। हर परिपक्व जोड़ा अपनी काम-व्यवस्था चाहता है। आदिकाल में मानव अपनी लैंगिक आवश्यकताओं की पूर्ति पशुओं

की भाँति करता था। सभ्यता का उदय हुआ, यह सहसूस किया गया कि पशुवत् लैंगिकता पर नियन्त्रण होना चाहिये, फलस्वरूप विवाह जैसी संस्था का विकास हुआ।

कमा भारतीय विचारकों ने व्यक्ति के जीवन में चार भागों में विभाजित किया है- ब्रहमचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इस गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को विवाह करना पड़ता है। जब तक विवाह नहीं किया जाता, गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ नहीं हो सकता है।কতীয় চারু। কিছু ক্লি দীলের ঢিক

पुरुष और नारी दोनों में सामाजिक प्राणी होने के नाते कुछ मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) होती है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन मानव समाज की मौलिक आवश्यकताएँ हैं। यौन सम्बन्ध (Sex Relations) नर और नारी की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। इसकी पूर्ति होना अनिवार्य है। मौलिक प्रश्न यह कि ऐसे कौन से माध्यम हैं, जिनकी सहायता से नर और नारी के यौन सम्बन्धों को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया जाय? विवाह (Marriage) ऐसी संस्था है, जिसकी सहायता से नर और नारी के यौन सम्बन्धों को व्यवस्थित रूप दिया जाता है। इस प्रकार विवाह वह मान्यता प्राप्त संस्था है, जो नर-नारी की यौन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। विवाह की संस्था का प्रत्येक समाज में महत्व है। इतना अवश्य है कि विभिन्न समाजों में विवाह के स्वरूपों में भिन्नता पाई जाती है।

विवाह की परिभाषा

विवाह की परिभाषा (विवाह की परिभाषा)

विभिन्न विद्वानों ने विवाह की जो परिभाषाएँ दी हैं, वे निम्नलिखित हैं

पिक (1) बोगार्डस - "विवाह स्त्री और पुरुष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करवाने की एक संस्था है।"

(2) वेस्टरमार्क - "विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह यौन सम्बन्ध है, जो प्रथा या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त होता है तथा जिस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों तथा उनके बच्चों के अधिकार व कर्त्तव्यों का समावेश होता है।"

(3) लाबी - "विवाह स्पष्टतः उन स्वीकृत संगठनों को प्रकट करता है जो इन्द्रिय सम्बन्धी सन्तोष के उपरान्त भी स्थिर रहते हैं और पारिवारिक जीवन की आधारशिला बनाते हैं।

(4) हावेल - "विवाह सामाजिक नियमों का जाल है, जो वैवाहिक जोड़े के पारस्परिक रक्षा सम्बन्धी तथा बाल-बच्चों व समाज के प्रति उनसे सम्बन्धों को नियंत्रित एवं परिभाषित करता है।"

(5) एलिस - "विवाह उन दो व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध को कहते हैं, जो एक से यौन सम्बन्ध एवं सामाजिक सहानुभूति के बन्धनों से आपस में बँधे रहते हैं और यदि संभव हो, तो वे इन बन्धनों को अनन्तकाल तक चलाने के लिए इच्छुक हों।"

संक्षेप में "विवाह समाज की वह मान्यता प्राप्त संस्था है, जो स्त्री और पुरुष के यौन सम्बन्धों को व्यवस्थित करती है तथा जिसका उद्देश्य परिवार का स्थायी निर्माण करना तथा बच्चों का लालन-पालन करना होता है।"

विवाह की उत्पत्ति (*Origin of marriage*)

विवाह जैसी पवित्र संस्था की उत्पत्ति कैसे हुई? इस सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं है। काम-भावना पुरुष में स्त्री से अधिक होती है, ऐसा विद्वानों का मत है। अब एक ओर तो एक स्त्री और दूसरी ओर अनेक पुरुष और दूसरी ओर इन अनेकों पुरुषों में स्त्रियों से अधिक कामुकता। स्त्री को साधन बन गई काम-वासना की पूर्ति की। वह इस अनियमित कामवासना से ऊब गई और इसके परिणामस्वरूप यह सोचा गया होगा कि स्त्री के साथ एक ही पुरुष यौन सम्बन्ध स्थापित करे। यौन सम्बन्धों की इस व्यवस्था से विवाह जैसी पवित्र संस्था का जन्म हुआ होगा।

भारत में वैदिक युग के बाद महाभारत, जातक कथाओं आदि से स्पष्ट होता था कि स्त्रियों के साथ स्वच्छन्द रूप से यौन सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। जातक कथा में एक वर्णन है कि किसी राजा के रनिवास को किसी अमात्य ने दूषित कर दिया। जब राजा को इस बात का पता चला तो उसने दूसरे पण्डित अमात्य से पूछा 'पर्वत की गोद में एक सुरम्य तालाब है, सिंह ने पानी पीने के लिये उसे सुरक्षित रखा है, यह जानते

हुये भी गीदड़ ने उस तालाब में मुँह कैसे डाल दिया।' पण्डित अमात्य को सारी कथा मालूम थी, वह बोलाकिन अर्थात्, "महाराज, महानदी में सभी जल पीते हैं, उससे नदी अनदी नहीं होती है। यदि वह आपकी प्रिय है, तो क्षमा करें।" यह था उस युग की नारी का जीवन। ऐसा विश्वास था यौन सम्बन्ध स्थापित करने से स्त्री अपवित्र नहीं होती है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से अधिक सभ्य कहलाता है, क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता में भी यौन सम्बन्ध को एक छोटी-सी सामाजिक त्रुटि (Social wrong) के रूप में स्वीकार किया गया है। कुछ भी हो इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्य सदैव चिन्तनशील प्राणी रहा है। अतः यौन सम्बन्ध के अपराध करार देकर एक पुरुष को एक स्त्री से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा दी और विवाह जैसी पवित्र संस्था का जन्म हुआ।

कामवासना मानव की ही नहीं प्राणि जगत की मूल प्रवृत्ति है। कामवासना की पूर्ति स्त्री अर्थात् और पुरुष के संसर्ग के दो परिणाम हो सकते हैं (1) कामवासना के परिणामस्वरूप संतान उत्पन्न हो जाय, और (2) कामवासना से संतान उत्पन्न न हो। जहाँ तक दूसरी दशा का सम्बन्ध है जब कामवासना से सन्तान उत्पन्न नहीं होते हैं तो समाज में आगे कोई समस्या ही पैदा नहीं होती है। लेकिन जहाँ तक कामवासना का सम्बन्ध है जब कामवासना से सन्तान पैदा हो जाती है तो समाज और उस असहाय स्त्री तथा नवजात शिशु के सामने एक समस्या खड़ी हो जाती है। समस्या यह खड़ी हो जाती है कि इस असहाय स्त्री और नवजात शिशु की देखभाल कौन करे। क्योंकि उत्पन्न शिशु किसी एक पुरुष का नहीं है, अनेक पुरुषों का है। पुरुष अपनी जिम्मेदारी से मुकर भी सकते हैं। यह भी कह सकते हैं कि उत्पन्न शिशु हमारा नहीं है। अब इस समस्या का समाधान कैसे किया जाय? चिन्तनशील मानव ने यह सोचा कि समस्या सामूहिक यौन सम्बन्ध के कारण उत्पन्न हुई है, अतः इस समस्या को उत्पन्न करने वाले कारणों का निराकरण कर देने से समस्या का भी अन्त हो जायेगा। अतः उन्होंने सामूहिक यौन सम्बन्ध को अपराध करार दिया और व्यक्तिगत यौन सम्बन्ध की व्यवस्था की। इस व्यक्तिगत यौन सम्बन्ध के परिणामस्वरूप विवाह जैसी पवित्र संस्था का जन्म हुआ होगा। अतः स्पष्ट है कि विवाह का जन्म मानव की आदिम प्रवृत्तियों पर आधारित है जिसका

समर्थन वेस्टरमार्क ने यह कहकर किया है कि "विवाह की उत्पत्ति के लिए मैं सोचता हूँ कि यह सम्भवतः आदिकालीन व्यवहार से ही विकसित हुआ है।"

विवाह का समाजशास्त्रीय महत्व (*Sociological Importance of Marriage)*

विवाह की उत्पत्ति से यह स्पष्ट होता है कि अत्यन्त ही प्राचीन काल में जब मानव जंगली जानवरों की भाँति रहता था, विवाह जैसी किसी भी प्रकार की संस्था नहीं थी। विवाह नामक संस्था का बाद में विकास हुआ। मौलिक प्रश्न यह है कि विवाह की संस्था का विकास क्यों हुआ? इसके उत्तर में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि समाज की प्रत्येक संस्था के विकास के पीछे कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं। विवाह संस्था का विकास भी मानव समाज के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हुआ है। समय और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न देशों में विवाह के उद्देश्यों में भिन्नता पाई जाती है। फिर भी प्रत्येक समाज में विवाह से इन उद्देश्यों में समानता है कि इससे समाज विशेष के मूल्यों, धारणाओं, रीतिरिवाजों व आदर्शों का निर्धारण होता है। संक्षेप में विवाह के समाजशास्त्रीय उद्देश्यों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) व्यवस्थित यौन सम्बन्ध विवाह का मौलिक उद्देश्य इसमें निहित है कि इसकी सहायता से यौन सम्बन्धों को व्यवस्थित किया जाता है। लैंगिक व्यवस्था विवाह का मूल उद्देश्य है। यदि विवाह की उत्पत्ति पर विचार करें तो ऐसा स्पष्ट होता है कि इसकी उत्पत्ति का आधार भी यौन सम्बन्धी व्यवस्था ही है। विवाह एक ऐसी संस्था है, जो समाज में लैंगिक स्वेच्छाचारिता को समाप्त करती है। इसके साथ ही विवाह संस्था का दूसरा उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा स्त्री पुरुष के यौन सम्बन्धों को सामाजिक और कानूनी स्वीकृति प्रदान की जाती है। विवाह के द्वारा मानव को बर्बर प्रवृत्तियों से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है।

(2) शास्त्रीय सिद्धांत विवाह का उद्देश्य संप्रदाय के सिद्धांत को बनाए रखना है यदि विवाह संस्था को यह नहीं करना है, तो संप्रदाय का क्रम ही समाप्त हो जाएगा।

(3) बच्चों की देखभाल विवाह के अलावा भी स्त्री पुरुष के यौन संबंधों से प्रजाति की निरन्तरता को स्थायी रखा जा सकता था। किन्तु पशुओं की भाँति यौन सम्बन्ध

स्थापित करने से समाज के सामने यह समस्या पैदा होती थी कि इन बच्चों के लालन-पालन या उत्तरदायित्व कौन पुरुष ले। विवाह के बाद जो संतानें पैदा होती हैं, उनके लालन-पालन का उत्तरदायित्व निश्चित व्यक्ति पर रहता है। लालन-पालन से संबंधित इस समस्या को समाप्त करने के लिए विवाह की संस्था का जन्म हुआ।

(4) मानसिक सन्तोष विवाह ऐसी संस्था है जो व्यक्ति को मनमानी सन्तानोत्पत्ति और यौन सम्बन्धों की अनुमति प्रदान करता है। विवाह व्यक्ति को लैंगिक सन्तोष प्रदान करता है। सामुदायिक लैंगिकता से व्यक्ति को सन्तोष नहीं मिलता है, अन्यथा वेश्यालय ही यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति करके व्यक्ति को सन्तोष प्रदान करते हैं। आदिम युग की सामुदायिक लैंगिकता से ऊबकर ही मानव समाज में विवाह नामक संस्था का विकास हुआ।

(5) आर्थिक सहयोग - आर्थिक सहयोग के कारण भी विवाह नामक संस्था का विकास हुआ। इससे व्यक्ति को पारिवारिक उत्तरदायित्वों का ज्ञान होता है। विवाह से परिवार की आर्थिक दशा भी मजबूत होती है। इसका कारण यह है कि पुरुष परिवार के बाहर का काम करता है, जबकि स्त्री परिवार के अन्दर का काम करती है। इससे परिवार की अर्थ-व्यवस्था को स्थायित्व प्राप्त होता है।

(6) सम्बन्धों को स्थायित्व विवाह के द्वारा स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों को स्थायित्व प्राप्त होता है।

(7) अन्य कार्य - ऊपर जिन कार्यों की विवेचना की गई है, इनके अतिरिक्त भी विवाह का समाज मेंमहत्व निम्न कारणों से है -

(a) विवाह के द्वारा व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक सन्तोष प्राप्त होता है। इसके साथ ही विवाह के द्वारा आर्थिक,सामाजिक, शैक्षणिक कर्त्तव्यों की पूर्ति की जाती है, और

(b) विवाह समाज के मूल्यों और आदर्शों को निर्धारित करता है तथा इनकी रक्षा करता है।

(8) भारतीय दृष्टिकोण भारतीय आदर्शों के अनुसार विवाह के पश्चात् गृहस्थ आश्रम का प्रारम्भ होता है। अभी तक व्यक्ति 'अपूर्ण' रहता है। इस आश्रम में आकर वह विवाह

करता है, पत्नी प्राप्त करता है, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है और जीवन की पूर्णता प्राप्त कर लेता है। इस आश्रम के मुख्य तीन उद्देश्य होते हैं-

(i) प्रजाति की निरन्तरता को बनाए रखना,

(ii) अपने पूर्वजों के ऋण को अदा करना, और

(iii) आने वाली सन्तति और सभ्यता का हस्तान्तरण करना।

संक्षेप में हिन्दुओं में विवाह का जो समाजशास्त्रीय महत्व है, उसे निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) धर्म का पालन करना,

(ii) पुत्र प्राप्त करना, तथा

(iii) यौन सम्बन्ध स्थापित करना।

विवाह के सामान्य स्वरूप

(General Forms of Marriage)

विवाह ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसका अस्तित्व सभी समाजों में समान रूप से पाया जाता है। सामान्यतया विवाह के जो सामान्य स्वरूप हैं, उन्हें आगे तालिका में दिखाया जा सकता है -

4.6 भारत की वन्यजातियाँ और विवाह(Indian Tribes and Marriage)

विवाह प्रत्येक समाज, चाहे वह समाज आदि हो या आधुनिक, संस्कृति की मौलिक विशेषता है। इसका मौलिक कारण यह है कि विवाह वह साधन है जिसके माध्यम से समाज की मौलिक इकाई 'परिवार' का निर्माण होता है। प्रत्येक देश और काल की परिस्थितियों में भिन्नता होती है। इसका परिणाम यह होता है कि विवाह के स्वरूपों में भिन्नता आ जाती है। यौन सम्बन्ध स्त्री और पुरुष की मौलिक आवश्यकता है। इस आवश्यकता को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए विवाह की संस्था का समाज में

जन्म हुआ। यौन सम्बन्धों में स्थिरता और निश्चितता लाने के लिए विवाह नामक संस्था का विकास नोट्स एन्ड क्वेरीज ऑन एन्थ्रापोलाजी नामक पुस्तक में विवाह की जो परिभाषा दी गई है, वह निम्नलिखित है -

"स्त्री तथा पुरुष का ऐसा सम्बन्ध जिससे इन दोनों सहयोगियों की इस सम्बन्ध द्वारा उत्पन्न संतान वैध मानी जाय, विवाह कहलाता है।"

विवाह (Marriage)

विवाह का प्रकार	विवरण
एकविवाह (Monogamy)	जोड़ा विवाह (Pair Marriage)
	मोनोजिनी (Monogyny)
	अस्थायी एक विवाह (Monandry)
बहुविवाह (Polygamy)	द्विपत्नी विवाह (द्विविवाह)
	बहुपत्नी विवाह (Polygyny)
बहुपत्नी विवाह (Polygyny)	असीमित (Un-restricted)
	सीमित (Restricted)
रक्तसंबंधीविवाह (Affineal Marriage)	देवर या भाभी विवाह (Levirate)
	साली विवाह (सोरोरेट)

साली विवाह (सोरोरेट)	सीमित साली विवाह (Restricted Sororate)
	समकालिक साली विवाह
	अप्रतिबंधित साली विवाह (Un-restricted Sororate)
	कनिष्ठ देवर विवाह (Junior Levirate)
	ज्येष्ठ देवर विवाह (Senior Levirate)
	पूर्वतः देवर विवाह (प्रत्याशित लेविरेट)
बहुपति विवाह (Polyandry)	समूह विवाह (Genogamy)
	अभ्रतासंबंधी (गैर-फ्रैक्टर्नल)
	भ्राता सम्बन्धी (Fraternal)

विवाह स्त्री और पुरुषों का वह संगठन है, जिसके माध्यम से दोनों सामाजिक बन्धन में बंध जाते हैं। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार विवाह के स्वरूपों में भिन्नता पाई जाती है। विवाह संस्था के निश्चित उद्देश्य होते हैं। इन उद्देश्यों (Aims) को सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) विवाह समाज की वह संस्था है जिसके माध्यम से मानव की मूलभूत इच्छा यौन सम्बन्ध को नियमित और नियंत्रित किया जाता है,

(2) सन्तानोत्पत्ति एक सामाजिक कार्य है और इसकी पूर्ति के लिए विवाह आवश्यक होता है,

(3) विवाह से परिवार नामक संस्था का जन्म होता है। इस परिवार के माध्यम से बच्चों का पालन- पोषण किया जाता है,

(4) मानसिक शान्ति और संतोष की दृष्टि से भी विवाह समाज की अनिवार्य संस्था है।

(5) विवाह संस्कृति की भी आधारशिला है, इसके माध्यम से वंश परम्परा चलती है, और

(6) आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी विवाह अनिवार्य है।

वन्यजातीय विवाह

(Tribal Marriage)

विवाह में जितने भी प्रचलित स्वरूप हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) एक विवाह (Monogamy),

(2) बहु-विवाह (Polygamy)

(a) बहुपत्नी विवाह (Polygamy)

(b). बहुपति विवाह (Polyandry)

(c) द्विविवाह (Bigamy)

भारत की वन्यजातियों में जो इस प्रकार के विवाह पाए जाते हैं, वे इस प्रकार हैं -

(1) **एक विवाह** भारतीय वन्यजातियों में एक विवाह का प्रचलन बहुत कम है। फिर भी ऐसा नहीं है कि भारतीय वन्यजातियों में एक विवाह का प्रचलन नहीं है। भारत में जिन वन्यजातियों में एक विवाह का प्रचलन है उनमें केरल के कादर, आसाम केखासी, बिहार के संथाल आदि प्रमुख हैं।

(2) **बहुविवाह -** बहुविवाह के प्रमुख प्रकारों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(A) **बहुपत्नी विवाह** - भारत की अधिकांश वन्यजातियों में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है। फिर भी वन्यजातियाँ व्यवहारिक रूप से अनेक पत्नियों के साथ विवाह करने में असमर्थ होते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है। वन्यजातियों में जो सरदार या मुखिया होते हैं, उनमें विशेष रूप से इस प्रकार का विवाह पाया जाता है। भारत में पहाड़ी कोरवा, गोंड़, बैगा, कोल, अगरिया, पनिका, टोडा, नागा, निषाद आदि वन्यजातियों में बहुपत्नी विवाह पाया जाता है।

(B) **बहुपति विवाह** - बहुपति विवाह को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) **भ्राता संबन्धी बहुपति विवाह** भ्राता संबन्धी बहुपति विवाह वह है जिसमें एक स्त्री के अनेक पति समता भ्राता होते हैं। (2)

(ii) **अभ्रता-संबंधी बहुपति विवाह** अभ्रता-संबंधी बहुपति विवाह जिसमें एक ही स्त्री के अनेक पति-संगति भाई नहीं होते हैं। छी (१)

भारतवर्ष में जिन वन्यजातियों में बहुपति विवाह पाया जाता है, वे इस प्रकार हैं -

(a) तिब्बत, उत्तरी भारत, आसाम और काश्मीर में इस प्रकार का विवाह पाया जाता है। यहाँ जौनसार बाबर जाति में यह प्रथा प्रचलित है।

(b) नीलगिरि की पहाड़ियों में निवास करने वाले टीडा जाति के परिवारों में भी बहुपति बिवाह का प्रचलन है।

(c) कोचीन, मालाबार और ट्रावनकोर के नायर जाति के परिवारों में भी यह प्रथा पाई जाती है।

(C) द्विविवाह - द्विविवाह में एक पति दो पत्नियों से वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना करता है। भारतवर्ष में अनेक वन्यजातियों के पति दो पत्नियाँ रखते हैं किन्तु जहाँ तक प्रथा के रूप में इस विवाह के अस्तित्व का प्रश्न है, भारतवर्ष में ऐसा विवाह नहीं पाया जाता है।

भारत की वन्यजातियों में विवाह-साथी के चुनाव की विधियाँ (Methods of Mate Selection in Indian Tribes).

प्रत्येक समाजों में विवाह के साथी चुनाव करने की अलग-अलग विधियाँ होती हैं। भारत विभिन्न वन्यजातियों में जीवन साथी के चुनाव की अलग पद्धतियाँ हैं। संक्षेप में भारतीय वन्यजातियों की विधियों को आगे तालिका में दिखाया जा सकता है -

विवाह-साथी के चुनाव की विधियाँ

क्र.सं.	विवाह का नाम	विवाह की विधियाँ	जनजातियों के नाम जिनमें यह प्रचलित है
1	क्रय-विक्रय (Marriage by Purchase)	1. इसमें जो लड़का विवाह करने को इच्छुक रहता है, उसे लड़की के पिता को वधू-मूल्य (Bride Price) देना पड़ता है। 2. इसे लड़की का मूल्य न समझा जाकर उसका सम्मान समझा जाता है।	भारत की प्रायः सभी वन्यजातियों में इस प्रकार का विवाह प्रचलित है।
2	सेवा विवाह (Marriage by Service)	1. सेवा विवाह उन व्यक्तियों के लिए है जो कन्या मूल्य देने में असमर्थ रहते हैं। 2. इस विवाह के अनुसार होने वाले वर को एक निश्चित समय तक अपने ससुर के घर में रहकर सेवा करना होता है। 3. यह सेवा दो प्रकार की होती है: (a) विवाह से पहले, (b) विवाह के बाद।	गोंड, बैगा, बिरहोर, गूजर, खस, रंगखोल, कूकी आदि।

		4. मध्यप्रदेश में 'घोटुल' परम्परा इसी प्रकार के विवाह का आधार है।	
3	परिवीक्षा विवाह (Probationary Marriage)	1. इस विवाह में युगल को साथ रहने का अवसर दिया जाता है। 2. परिवीक्षा के दौरान यौन सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। 3. यदि स्त्री में गर्भधारण क्षमता होती है, तो विवाह हो जाता है। 4. यदि विवाह नहीं होता है, तो लड़के को लड़की को हर्जाना देना पड़ता है।	नागा, हो, भील, गोंड, संथाल, भूमिज, चिन्दा, बोरे।
4	अपहरण विवाह (Marriage by Capture)	1. वर अपनी मनचाही कन्या को माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध जबरन विवाह कर लेता है। 2. हरण के अन्तर्गत, मारपीट, रस्साकशी और प्रतिद्वन्द्विता सम्मिलित होती हैं।	नागा, हो, भील, गोंड, संथाल।
5	परीक्षा विवाह (Trial Marriage)	1. इस विवाह का मुख्य उद्देश्य नायक के साहस और शक्ति की परीक्षा	गुजरात के भील और अन्य वन्यजातियाँ।

		करना होता है। 2. परीक्षा की विधियाँ जैसे खम्भे पर चढ़ना और नारियल प्राप्त करना।	
6	हठ विवाह (Marriage by Intrusion)	1. लड़की जिस व्यक्ति से विवाह चाहती है, उसके घर में हठपूर्वक प्रवेश करती है। 2. लड़की को निकालने के प्रयासों के बावजूद यदि वह रहती है, तो विवाह हो जाता है।	हो, बिरहोर, कमार, ओरांव, मुण्डा।
7	विनिमय विवाह (Exchange Marriage)	1. इस विवाह के माध्यम से वधू मूल्य से बचा जाता है। 2. दोनों परिवार की लड़कियों और लड़कों का आपस में विवाह।	आसाम की खासा वन्यजाति और अन्य भारतीय वन्यजातियाँ।
8	सहमति विवाह (Marriage by Mutual Consent)	1. सामाजिक बन्धनों की अवहेलना कर युवक-युवती विवाह कर लेते हैं। 2. प्रेम के कारण या भागकर विवाह।	राजस्थान के भील, बिहार के हो और अन्य वन्यजातियाँ।

विवाह निषेध (Marriage Restrictions)

प्रत्येक समाजों में विवाह से सम्बन्धित निषेध पाए जाते हैं। भारत वन्यजातियों में भी इसी प्रकार के वैवाहिक निषेध पाए जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से इन निषेधों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) बहिर्विवाह (Exogamy) बहिर्विवाह विवाह का वह निषेध है जिसमें विवाह वर्ग या समूह के बाहर किया जाता है। बर्हिविवाह के जो प्रमुख स्वरूप हैं उन्हें निम्न तालिका में दिखाया गया है -

बहिर्विवाह के स्वरूप (Forms of Exogamy)

क्र.सं.	बहिर्विवाह के स्वरूप	भारतीय जनजातियाँ
1.	पाल बहिर्विवाह	राजस्थान के भील।
2.	वर्ग बहिर्विवाह	आसाम के नागा, दक्षिण भारत के इरुला।
3.	ग्राम बहिर्विवाह	छोटा नागपुर के मुण्डा, उड़ीसा के जुआंग और कोड़।
4.	गोत्र बहिर्विवाह	खासी वन्यजाति के अतिरिक्त प्रायः सभी वन्यजातियों में।
5.	टोटम बहिर्विवाह प्रायः	सभी भारतीय वन्यजातियों में।

(2) अन्तर्विवाह (Endogamy) यह विवाह का वह स्वरूप है जिसके द्वारा अपने समूह के अन्दर ही विवाह करने की इजाजत रहती है। भारत की प्रायः सभी वन्यजातियाँ अपनी ही जाति के अन्दर विवाह करती हैं। कोई भी वन्यजाति अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं करती है।

विवाह विच्छेद (Divorce)

प्रत्येक समाज ऐसा प्रयास करता है कि वैवाहिक बन्धन अधिक शक्तिशाली बनें। किन्तु अनेक ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं, जो वैवाहिक बन्धनों को शिथिल बना देती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विवाह तलाक के रूप में परिवर्तित हो जाता है। प्रत्येक समाजों में तलाक की इस प्रथा का प्रचलन है। भारत की प्रायः सभी वन्यजातियों में तलाक की प्रथा है। किन्तु इतना अवश्य है कि वन्यजातियों में तलाक देने की अलग-अलग प्रक्रियाएँ हैं।

भारतीय वन्यजातियों में पति निम्न दशाओं के आधार पर तलाक दे सकता है -

(i) यदि पत्नी सदैव ही अपने पिता के घर रहती है,

(ii) यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो,

(iii) यदि पत्नी पति की आज्ञा का पालन न करती हो, और

(iv) यदि पत्नी जादूगरनी सिद्ध हो जाय।

पत्नी अपने पति को निम्न अवस्थाओं में तलाक दे सकती है -

(i) यदि पति नपुंसक हो,

(ii) यदि पति पत्नी के साथ क्रूरता का व्यवहार करता हो,

(iii) यदि पति निकम्मा हो और पत्नी तथा बच्चों का उचित पालन-पोषण न कर सकता हो, आदि।

नेतृत्व एवं सांस्कृतिक भिन्नताएँ (Leadership and Cultural Diversities)

भारत में जनजातीय समाज का एक लम्बा इतिहास रहा है। अनेक मानवशास्त्रियों ने इस तथ्य को रेखांकित किया है। इन मानवशास्त्रियों का यह रेखांकन जनजातियों के सामाजिक सांस्कृतिक संगठनों के विविध पहलुओं के अद्घाटन पर आधारित रहा है। एम. जे. हर्सकोविट्स ने लिखा है 'जनजातीय समाजों के संदर्भ में सामाजिक

संगठन का तात्पर्य उन समस्त संस्थाओं के संकुल से है, जो समाज में स्त्रियों और पुरुषों की स्थिति का निर्धारण करती है तथा समाज में अन्तवैयक्तिक सम्बन्धों को एक दिशा प्रदान करती हैं।'

जनजातीय समाजों में सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन का मजबूत आधार रहा है। इसी मजबूत आधार का परिणाम है कि आज भी जनजातीय समाज अपनी संस्कृति को संजोए हुए है। किसी भी समाज का परिचय उसके संगठन और उसके व्यवहार से होता है। जनजातियों की एक संस्कृति, कला तथा मान्यताएँ और विश्वास है, जिनका वे पालन करते हैं तथा आगे आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित करते हैं। इसी हस्तान्तरण का परिणाम है कि जनजातियों का समाज और उनकी संस्कृति आज भी जीवन्त है।

4.7 नेतृत्व (Leadership)

समाज में अनेक प्रकार के व्यक्ति होते हैं। कुछ व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से शक्तिशाली होते हैं तो कुछ निर्बल। कुछ व्यक्ति मानसिक दृष्टि से बुद्धिमान होते हैं, तो कुछ मूर्ख। यह भिन्नता इतिहास में आदिकाल से पाई जाती है और भविष्य में भी पाई जाती रहेगी। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य अपनी प्रशंसा चाहता है। वह चाहता है कि समाज के अन्य व्यक्ति उस व्यक्ति के पीछे-पीछे चलें और उसकी बात मानें। यही मनोवैज्ञानिक तथ्य नेतृत्व को जन्म देते हैं।

नेतृत्व का तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा एक व्यक्ति को सामाजिक स्तरण में अग्रगण्य स्थान प्राप्त होता है और सभी व्यक्ति उसका अनुसरण करते हैं।

नेतृत्व की परिभाषा (Definition of Leadership)

विभिन्न विद्वानों ने नेतृत्व की जो परिभाषायें दी हैं, वे निम्नलिखित है-

(1) पीगोर्स - "नेतृत्व व्यक्तिगत पर्यावरण की परिस्थिति का वर्णन करने के लिए एक सामान्य विचारधारा है, जब एक व्यक्ति पर्यावरण में इस प्रकार स्थित हो कि उसकी इच्छा, संवेदना एवं अन्तर्वृष्टि एक सामान्य कारण का अनुगमन करने के अन्तर्गत दूसरों को नियन्त्रित एवं निर्देशित करती हैं।" जमली तो निक

(2) लैपियर और फ्रान्सवर्थ- "नेतृत्व वह व्यवहार है, जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है जितना कि उन दूसरे लोगों का व्यवहार नेता को प्रभावित करता है।"

(3) ओ. टीड- "नेतृत्व किसी लक्ष्य की प्राप्ति में जिसे वे चाहते हैं, सहयोग करने के लिए लोगों को प्रभावित करने की क्रिया है।"

(4) मैकाइवर और पेज- "नेतृत्व से हमारा तात्पर्य लोगों को प्रोत्साहित करने अथवा निर्देशित करने की वह योग्यता है, जो कि पद के अलावा व्यक्तिगत गुणों से आती है।"

इस प्रकार "नेतृत्व की परिभाषा नेता और उसके अनुयायियों के रूप में की जा सकती है, जो अन्तः क्रियाओं के परिणामस्वरूप एक दूसरे के व्यवहारों से प्रभावित होते हैं और स्वयं को प्रभावित करते हैं।"

नेतृत्व की विशेषताएँ (Characteristics of Leadership)

(1) नेतृत्व एक प्रकार की ऐसी अन्तः क्रिया है जिसमें नेता और उसके अनुयायी एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं और स्वयं को प्रभावित करते हैं,

(2) नेतृत्व में 'प्रभुत्व' (Dominance) का तत्व पाया जाता है,

(3) नेता और उसके अनुयायियों के बीच एक विशिष्ट व्यवहार प्रतिमान (Behaviour Pattern) पाये जाते हैं,

(4) नेतृत्व का एक विशिष्ट उद्देश्य होता है,

(5) नेता सुझाव देता है और अनुयायी इसे ग्रहण करते हैं,

(6) नेतृत्व एक ऐसा शब्द है, जो श्रेष्ठता का बोध कराता है,

(7) नेतृत्व का जन्म एक विशिष्ट परिस्थिति में होता है। चूँकि परिस्थितियों में भिन्नताएँ रहती हैं, इसलिए नेतृत्व में भी भिन्नताओं का होना स्वाभाविक है।

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

नेतृत्व के सामान्य लक्षण (Common Traits of Leadership)

विभिन्न विद्वानों ने नेतृत्व के गुणों या लक्षणों की विवेचना की है। कुछ ने तो नेतृत्व के 50 लक्षण तक बतलाये हैं।

विद्वानों ने नेतृत्व के जो लक्षण या गुण निर्धारित किये हैं, इनके आधार पर नेतृत्व के सामान्य लक्षणों की विवेचना की जा सकती है। ये सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं-

(1) शारीरिक लक्षण- नेतृत्व प्राप्त करने में शारीरिक लक्षण या गुणों का महत्वपूर्ण स्थान है। नेतृत्व के शारीरिक लक्षणों या गुणों में निम्न शारीरिक विशेषताओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

(a) ऊँचाई- ऊँचाई नेतृत्व का एक आवश्यक गुण है और इससे व्यक्ति को असाधारणता प्राप्त होती है। ऊँचाई व्यक्ति को आकर्षक बनाती है और इससे व्यक्ति शीघ्र ही नेता को पहचान लेते हैं। जो विभिन्न अध्ययन किये गये हैं उनसे ऐसा स्पष्ट होता है कि सामान्यतया नेताओं की ऊँचाई अधिक होती है। वैसे भूतपूर्व भारतीय प्रधानमन्त्री स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री इसके अपवाद रहे हैं।

(b) वजन- यद्यपि वजन का नेतृत्व से कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी इस आशय के जो अध्ययन किये गये हैं उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि नेता भारी शरीर और अधिक वजन के होते हैं। महात्मा गाँधी इसके अपवाद थे।

(c) स्वास्थ्य - जो अध्ययन किये गये हैं उनसे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नेताओं का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अच्छा स्वास्थ्य एक अच्छे नेतृत्व का गुण है।

(d) आकर्षकता- नेतृत्व के लिये सिर्फ ऊँचाई, भारी वजन और भारी शरीर ही आवश्यक नहीं है, अपितु उसके शरीर का गठन कुछ इस प्रकार हो कि वह आकर्षक दिखे। आकर्षक शरीर व्यक्तियों को शीघ्र ही अपनी ओर खींच लेता है।

(2) मानसिक लक्षण- कुशल नेतृत्व के लिये शारीरिक लक्षणों की अपेक्षा मानसिक लक्षणों का महत्व अत्यधिक है। इन मानसिक लक्षणों को बौद्धिक योग्यता या बुद्धि (Intelligence) कह कर सम्बोधित किया जा सकता है। बुद्धि के अभाव में न तो सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान ही प्राप्त किया जा सकेगा और न इन्हें दूर करने के लिए मानसिक योग्यता ही रहेगी। मानसिक लक्षण के अन्तर्गत निम्न विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है-

(a) बुद्धि; (b) दूरदर्शिता, (c) चातुर्य, (d) तीक्ष्ण दृष्टि।

(3) सामाजिकता - आधुनिक युग में सामाजिकता को नेतृत्व का महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। नेतृत्व और सामाजिकता एक दूसरे से अन्तः सम्बन्धित हैं और इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। सामाजिकता का परिणाम यह होता है कि नेता और अनुयायियों के बीच शीघ्र ही अनुकूलन हो जाता है। सामाजिकता के अभाव में वह न तो जनता में घुल-मिल सकेगा और न ही उनकी समस्याओं को ही समझ सकेगा। इसलिए नेता को सामाजिक और मिलनसार होना चाहिए।

(4) दूरदर्शिता- नेता को दूरदर्शी भी होना चाहिए। नेतृत्व की यह दूरदर्शिता स्वयं नेता के लिए, जनता के लिए और राष्ट्र के लिए अत्यन्त ही उपयोगी होती है। इस दूरदर्शिता का परिणाम यह होता है कि उसे राष्ट्र के भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में जानकारी रहती है। समय के अनुरूप राष्ट्र के लिए अनेक ऐसे कदम उठा सकता है, जिसमें राष्ट्र की उन्नति और उसकी सुरक्षा निहित होती है।

(5) संयम- नेता को संयमप्रिय होना चाहिए। इससे आत्म-नियन्त्रण बना रहता है। आत्म-नियन्त्रण का परिणाम यह होता है कि नेता हर समस्या को धैर्य और साहस के साथ सुलझाता है तथा उसके अनुकूल व्यवहार करता है।

(6) आत्म-निर्भरता- नेता में आत्म-निर्भरता भी होना चाहिए। नेता की इस आत्म-निर्भरता का परिणाम यह होता है कि उसमें आत्म-विश्वास की भावना का विकास होता है। आत्म-विश्वास से निर्णय करने की क्षमता और उद्देश्य का ज्ञान आदि प्राप्त होता है। a

(7) उत्तरदायित्व- नेता में उत्तरदायित्व की भावना का होना भी आवश्यक है। इससे नेतृत्व में स्थायित्व, एकाग्रता, उद्देश्य-प्रेम और कर्त्तव्यनिष्ठा का विकास होता है। इसका परिणाम यह होता है कि नेता जटिल समस्याओं को भी कुशलता के साथ सुलझा लेता है।

(8) इच्छा शक्ति- नेतृत्व को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उसके व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं। इन सभी परिस्थितियों में नेता में प्रबल इच्छा-शक्ति का होना नितान्त आवश्यक है। संकल्प शक्ति ही वह साधन है जिससे वह कठिन से कठिन परिस्थितियों का कुशलतापूर्वक सामना कर सकता है।

(9) परिवर्तनशीलता समय और परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं। परिस्थितियों से चिपके रहना, भविष्य की चिन्ता न करना और भूत का गुणगान करना नेतृत्व का सबसे बड़ा दुर्गुण है। अच्छे नेता को चाहिए कि उसके विचार और दृष्टिकोण प्रगतिशील होने चाहिए तथा उसमें परिवर्तित परिस्थितियों से अनुकूलन की क्षमता होनी चाहिए। इसी आधार पर उसे सफलता प्राप्त हो सकती है।

(10) परिश्रमशीलता - नेता को परिश्रमी भी होना चाहिए। आधुनिक युग में यद्यपि 'Means' का नेतृत्व का आधार माना जाता है किन्तु ऐसे अनेक नेताओं के उदाहरण हैं जो साधनहीन परिवारों में पैदा हुए थे और उन्होंने कठोर परिश्रम के द्वारा सफल नेतृत्व करने में सफलता प्राप्त की।

(11) उद्दीपकता - उद्दीपन और नेतृत्व का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत किसी नेता में निम्नलिखित गुणों का होना अनिवार्य है-

(a) उत्साह, (b) सिद्धांत, (c) प्रसन्नचित (d) स्पष्टता,

(e) लाशाख़ और लाजवाबता, (f) स्फूर्ति, (g) बातचीत करने की कुशलता।

(12) योग्य सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता- कुशल नेतृत्व में ऐसी क्षमता का होना आवश्यक है जिससे वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ कुशल सम्बन्धों की स्थापना कर सके। इसके लिए नेता में निम्न गुणों का होना आवश्यक है-

(a) मानव प्रकृति का ज्ञान, (b) सहयोग की भावना, (c) दया भाव,

(d) तार्किकता और (e) सहानुभूति ।

(13) क्रियाशीलता - एक सफल नेतृत्व के लिए क्रियाशीलता का होना आवश्यक है। उसे सामाजिक परिस्थितियों, जनता और राष्ट्र के प्रति निरन्तर क्रियाशील होना चाहिए।

नेतृत्व का वर्गीकरण (Classification of Leadership)

(1) बोगार्डस के अनुसार बोगार्डस ने नेतृत्व को अग्रलिखित भागों में विभाजित किया है-

(a) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नेतृत्व (Direct and Indirect Leadership)

(b) सामाजिक, अधिशासी और मानसिक नेतृत्व (Social, Executive and Mental Leadership)

(c) स्वेच्छाचारी, करिश्माई, पैतृक और प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व

(Autocratic, Charismatic, Patriarchal and Democratic Leadership)

(d) पैगम्बर, सन्त, विशेषज्ञ व मालिक (Prophets, Saints, Experts and Boss)

(2) किम्बाल यंग के अनुसार- किम्बाल यंग ने नेतृत्व को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है-

(a) राजनैतिक नेतृत्व (Political Leadership)

(b) प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व (Democratic Leadership)

(c) नौकरशाही नेतृत्व (Bureaucratic)

(d) कूटनीतिज्ञ (Diplomatic)

(e) सुधारक नेतृत्व (Reformer)

(f) आन्दोलनकारी (Agitator)

(g) सिद्धान्तवादी (Theorist)

नेता सभी प्रकार की नीतियों का प्रयोग अपनी नेतागिरी की रक्षा के लिए करते हैं। इन नेताओं का ग्राम- कल्याण की तुलना में अपना अधिक महत्व दीखता है।

(i) निष्क्रिय नेता- जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है, इस प्रकार के नेता आदर्श व्यक्ति होते हैं। समुदाय इन्हें आदर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता है। किन्तु ये नेता ग्रामीण जीवन के नेतृत्व में क्रियाशील रूप में भाग नहीं लेते हैं। दूसरे शब्दों में ये नेता यह नहीं बतलाना चाहते हैं कि 'हम नेता हैं।'

(ii) अस्वीकृति प्राप्त नेता- गाँवों में कुछ ऐसे नेता होते हैं जिन्हें ग्रामीण समुदाय नहीं मानता है। गाँवों में एक कहावत भी प्रचलित है कि 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस।' ये लोग शक्ति के बल पर अपनी नेतागिरी कायम रखते हैं। ये लाठी के बल पर अपनी नेतागिरी रखते हैं।

महत्व या कार्यों के आधार पर ग्रामीण नेताओं को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

(i) छोटे नेता- जिनका प्रभाव अपने परिवार, रिश्तेदारी या पड़ोस तक ही सीमित रहता है।

(ii) मध्यम नेता- ये नेता गाँव में कुछ प्रभाव रखते हैं तथा पंचायत आदि के सदस्य होते हैं।

(iii) बड़े नेता- ये गाँवों के महत्वपूर्ण नेता होते हैं तथा इनके बिना गाँवों का कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सकता है।

जनजातीय नेता की विशेषतायें (Characteristics of Tribal Leader)

(i) जनजातीय नेता में कुछ व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएँ होती हैं, जिसके द्वारा वह दूसरों को प्रभावित करता है।

(ii) जनजाति के लिए कुछ परम्परात्मक आधार होते हैं, जो नेतृत्व को प्रभावित करते हैं।

(iii) उसमें समदर्शी होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

(iv) उसे सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष के अनुभव होते हैं।

(v) उसमें समुदाय के प्रति भक्ति की भावना पाई जाती है।

(vi) उसमें कुछ ऐसी योग्यताएँ होती हैं जिनके द्वारा वह किसी समस्या का नियोजन और निर्देशन कर सकता है।

जनजातीय नेतृत्व के आधार (Basis of Tribal Leadership)

मौलिक प्रश्न यह है कि जनजातियों में नेतृत्व का क्या आधार है? वे कौन से तत्व हैं जो जनजातीय नेतृत्व में सहायक होते हैं या दूसरे शब्दों में जनजातीय नेतृत्व के लिए भूमिका का निर्माण करते हैं? संक्षेप में जनजातीय नेतृत्व को निम्न परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं-

(i) आर्थिक स्थिति अच्छी होने से जनजातीय नेतृत्व प्रभावित होता है। यदि गाँव में एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ होता है और जनजातीय लोगों की आर्थिक सहायता करता है तो जनजातीय व्यक्ति इस एहसान से दबे होने के कारण उसे नेता मान लेते हैं।

(ii) परिवार का आकार भी जनजातीय नेतृत्व को प्रभावित करता है। यदि परिवार बड़ा होता है, तो इससे भी जनजातीय नेतृत्व प्रभावित होता है। (b)

(iii) अधिक आयु भी जनजातीय नेतृत्व पर आधार है। अधिकांशतः ऐसा देखा गया है कि जनजातियों में बुजुर्ग व्यक्तियों को अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

(iv) भूमि का स्वामित्व या किसी व्यक्ति के पास अधिक जमीन का होना भी जनजातीय नेतृत्व का आधार होता है।

(v) व्यक्ति के कुछ विशिष्ट गुण भी जनजातीय नेतृत्व को प्रभावित करते हैं।

(vi) शिक्षा भी जनजातीय जीवन में नेतृत्व का आधार होती है।

(vii) जनजातियों में उस व्यक्ति को भी नेता मान लिया जाता है, जिन्हें कोर्ट, कचहरी का ज्ञान होता है तथा उसका परिचय सरकारी उच्च अधिकारियों से होता है।

जनजातीय नेतृत्व में परिवर्तन (Change in Tribal Leadership)

आधुनिक युग में जनजातीय नेतृत्व में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। भारतीय स्वतन्त्रता के बाद जनजातीय नेतृत्व के परम्परात्मक स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। प्राचीन भारत में जनजातीय नेतृत्व परम्परा के आधार पर चलता था। इसलिए नेतृत्व पर कुछ विशेष व्यक्तियों का अधिकार हो गया था। स्वतन्त्र भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। भारतीय पंचायतें जो परम्परा के आधार पर चली आ रही थीं और काफी जर्जर हो गई थीं, उन्हें नये सन्दर्भ में समझने का प्रयास किया गया। जनजातीय नेतृत्व में जो परिवर्तन हो रहे हैं उन्हें संक्षेप में सुविधा के लिए निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) जनजातीय नेतृत्व में जो स्थिरता थी वह समाप्त होती जा रही है। नेतृत्व का परम्परात्मक आधार समाप्त हो रहा है। नेतृत्व आज परम्परा पद नहीं रह गया है बल्कि नेतृत्व का निर्णय वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है।

(2) जनजातीय नेतृत्व में स्त्रियों का महत्व नहीं था, किन्तु अब उनके पद सुरक्षित हैं- इसलिए उनमें भी नेतृत्व भी भावना का विकास होता जा रहा है।

(3) पंचायतों का नेतृत्व जो पहले एक या दो परिवारों तक सीमित था, आज वह विस्तृत हो गया है।

(4) जनजातीय नेतृत्व में अल्पसंख्यक, तथा अन्य जनजातियों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने लगा है।

(5) गाँवों में जो जनजातीय पंचायतें थीं, उनका महत्व भी समाप्त होता जा रहा है।

(6) जनजातीय नेतृत्व शिक्षा के कारण से भी प्रभावित हो रहा है।

(7) जनजातीय नेतृत्व का आधार अनेक सहकारी संस्थाओं की क्रियाशील सदस्यता के कारण भी प्रभावित हो रहा है।

(8) जनजातीय नेतृत्व में आयु का महत्व भी समाप्त होता जा रहा है। वर्तमान चुनाव इस बात के प्रमाण हैं जिनमें पंच और सरपंच वे व्यक्ति भी हैं जिनकी आयु 30 वर्ष से कम है। गोर (६)

(9) आज धन का महत्व भी समाप्त होता जा रहा है। धन और भूस्वामित्व जनजातीय नेतृत्व के आधार नहीं रह गये हैं।

(10) जनजातीय नेतृत्व के निर्धारण में परिवार का महत्व भी धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। इसका कारण यह है कि संयुक्त परिवार समाप्त होते जा रहे हैं। साथ ही परिवारों में नित्य नये झगड़ों का जन्म होता जा रहा है।

(11) जनजातीय नेतृत्व के अधिकार व कर्तव्य में भी परिवर्तन हुए हैं। आज ग्रामीण नेताओं को असीमित कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है।

(12) ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में भी जनजातीय नेतृत्व का महत्व पहले की अपेक्षा अधिक हो गया है। क्योंकि शासकीय योजनाएँ ग्रामोन्मुखी बनाई जा रही हैं।

4.8 दल (Faction)

प्रारम्भिक समय में व्यक्तियों के उद्देश्य पर्याप्त निश्चित होते थे। वे इस उद्देश्य की प्राप्ति का प्रयास करते थे। इसके साथ ही व्यक्तियों के परम्परागत निश्चित पद और कार्य होते थे। सभी व्यक्ति अपने इन पदों और कार्यों के निर्वाह का प्रयास करते थे। व्यक्ति धर्म और परिवार में बँधा होता था। किन्तु आज की परिस्थितियों में काफी अन्तर है। आज का भारतीय नागरिक अनेक स्वार्थों और उद्देश्यों की आँधी में बह रहा है। उसके जीवन का कोई भी परम्परात्मक आधार नहीं है। धर्म और परिवार का उसके ऊपर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं है। आज अनेक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तरह-तरह की गुटबन्दी या दलबन्दी (Factionalism) देखने को मिलती है।

दल क्या है? (What is Faction?)

दल या गुट (Faction) का साधारण अर्थ होता है 'धड़', इसका शाब्दिक अर्थ शरीर के ऊपर का भाग होता है। इस प्रकार के समूह को धड़ इसलिए कहा जाता है कि इसमें समान भौतिक एकता पाई जाती है।

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

जे.टी. प्लैट्स (J.T.Plaits) ने 'हिन्दुस्तानी शब्दकोष' में धड़ का अर्थ शरीर बतलाया है। उन्होंने लिखा है कि उत्तरी भारत में इसका सामान्य अर्थ दल होता है।

लुइस (Lewis) ने रामपुर गाँव का अध्ययन किया था उसके अनुसार धड़ राजनैतिक समूह नहीं है। उसके अनुसार हिन्दी के धड़ शब्द का समानार्थी अंग्रेजी का 'Faction' शब्द हो सकता है। लुइस का विचार है कि 'फैक्शन' से परस्पर विरोधी लोगों के समूहों का बोध होता है, परन्तु धड़ में परस्पर विरोध या संघर्ष का स्थान नहीं होता है।

हरिवन्त सिंह ढिल्लन ने दक्षिण भारत के हरिपुर गाँव का अध्ययन किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Leadership and Groups in a South India village' में लिखा है कि 'जब कि अन्य समूहों के प्रति बेरफेक्सन का एक सामान्य लक्षण है और झगड़ों तथा विरोधों के परिणामस्वरूप नये फैक्शन बनते जा रहे हैं, परन्तु फैक्शनों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने में यह एकमात्र अथवा सबसे बड़ी शक्ति नहीं है।'

दल की संरचना (Structure of Faction)

एक जाति में अनेक दल समूहों का होना स्वाभाविक है। हर एक दल समूह में अनेक परिवार पाये जाते हैं। एक दल समूह में एक से अधिक जाति समूह के व्यक्ति भी पाये जाते हैं दल समूहों के लिए यह भी आवश्यक नहीं है कि इसमें सम्मिलित सभी व्यक्ति और परिवार पड़ोसी हों। इस समूह के सदस्यों की संख्या भी सीमित नहीं होती है। संक्षेप में दल समूह की संरचना विभिन्न गाँवों, जातियों, धर्मों और व्यक्तियों में फैली हुई होती है।

आवश्यक दशाएँ (Necessary Conditions)

दलबन्दी के लिए कुछ आवश्यक दशाएँ होती हैं। ये आवश्यक दशाएँ दलबन्दी का निर्धारण करती हैं। इनमें से कुछ निम्न हैं-

(1) समूह का इकाई के रूप में संगठित होना,

(2) समूहों को आत्मनिर्भर होना चाहिए,

(3) पर्याप्त आर्थिक अवसर।

दलबन्दी के कारण (Causes of Factionalism)

दलबन्दी या गुटबन्दी क्यों पाई जाती है? भारतीय सामाजिक जीवन में दलों का अस्तित्व क्यों है? दलबन्दी या गुट समूह के अनन्त कारण हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध स्थानीय परिस्थितियों और दशाओं में होता है। भारत में दलबन्दी या गुट समूहों के जो प्रमुख कारण हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार है-

(1) राजनैतिक कारण- गुटों के निर्माण में राजनैतिक कारणों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। चुनाव के समय विभिन्न राजनैतिक पार्टियाँ जनता में दलबन्दी के विष का बीज बो देती हैं, जो कालान्तर में पनप कर भयंकर रूप धारण कर लेता है।

(2) धार्मिक भावनाएँ- भारत में विभिन्न धार्मिक विश्वास और मतमतान्तर हैं। इन धार्मिक मत-मतान्तरों को मानने वाले व्यक्ति एक-दूसरे को अपने से अलग मानते हैं। इस अलगाव की प्रवृत्ति के कारण भी दलबन्दी का विकास होता है।

(3) जातीय झगड़े- भारत जातियों का अजायबघर है। यहाँ अनेक जातियाँ और उप-जातियाँ पाई जाती

हैं। वर्तमान भारत में जातिवाद की भावना विकसित हो रही है। इस जातिवाद, जातीय तनाव और संघर्षों के कारण भी दलबन्दी का विकास होता है। (4) यौन अपराध यौन अपराध भी दलबन्दी के कारण होते हैं। खासकर ऐसे यौन अपराध जो विभिन्न जातियों, वर्गों, धर्मों के बीच में होते हैं।

दलबन्दी के कारण इस प्रकार हैं-

(5) पुत्र को गोद लेने से उत्पन्न झगड़े,

(6) सम्पत्ति सम्बन्धी झगड़े,

(7) भूमि सम्बन्धी झगड़े

(8) मकान की भूमि से सम्बन्धित झगड़े,

(9) सिंचाई के अधिकार सम्बन्धी झगड़े

(10) बिजली सम्बन्धी झगड़े।

दलबन्दी के आधार (Basis of Factionalism)

(1) जाति के आधार पर गाँव में प्रायः जाति का बोलबाला रहता है और यहाँ जाति के अलग-अलग गुट बन जाते हैं और जिस जाति के लोगों की संख्या अधिक होती है, वे दूसरी जातियों पर अपना अधिकार जमा लेती हैं।

(2) वैवाहिक सम्बन्धों के आधार पर जिन परिवारों में परस्पर विवाह सम्बन्धी हो जाते हैं वे मिलकर अपना एक गुट बना लेते हैं और अपनी शक्ति बढ़ा लेते हैं और अपनी शक्ति के बल पर रोब दिखाते हैं।

(3) परम्परागत शत्रु के आधार पर कई बार कुछ समूहों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी, शत्रुता चली आती है या किसी शत्रुता का बदला लेना होता है तो परस्पर गुट बन जाता है और एक दूसरे से शत्रुता, ईर्ष्या-द्वेष आदि रखते हैं।

(4) परिवार के आधार पर कभी कोई परिवार विद्वान होता है और शक्तिशाली होता है तो अन्य कुछ परिवार भी मिल जाते हैं और इनका अपना एक गुट बन जाता है।

(5) वंश के आधार पर- एक ही वंश के लोग आस-पास रहते हैं या पास ही किसी गाँव में रहते हैं तो वे अपना गुट बनाकर अपने वंश को शक्तिशाली बना लेते हैं।

(6) गाँवों के आधार पर कभी-कभी कई गाँवों के अलग-अलग गुट बन जाते हैं और वे दूसरे गाँवों से ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं। 15 स

(7) उत्तराधिकार के आधार पर जब उत्तराधिकार सम्बन्धी बात आती है तो प्रायः दो गुट बन जाते हैं, एक पक्ष में और दूसरा विपक्ष में।

(8) भूस्वामित्व के आधार पर कभी-कभी इस सम्बन्ध के झगड़े उत्पन्न होने लगते हैं कि किसी भूमि का स्वामी कौन है? तो सम्बन्धों में दो मत हो जाते हैं और गुट बन जाते हैं।

(9) सिंचाई सम्बन्धी झगड़े- सिंचाई के हेतु पानी के लिए प्रायः दो गुट बन जाते हैं। दोनों अपने खेत की सिंचाई पहले करना चाहते हैं और परस्पर झगड़े हो जाते हैं।

(10) गोद लेने के आधार पर जब किसी परिवार में किसी बालक के गोद लेने की बात आती है तो एक गोद लेने के पक्ष में तथा दूसरा गोद न लेने के पक्ष में हो जाता है। इस प्रकार के दो गुट बन जाते हैं।

(11) यौन सम्बन्धी झगड़े- जब कोई व्यक्ति किसी लड़की को भगा ले जाता है या अन्य कोई यौन सम्बन्धी अपराध कर देता है तो गाँव में इसके सम्बन्ध में दो मत वाले लोग उत्पन्न हो जाते हैं, एक उसका पक्ष लेते हैं और दूसरा विपक्ष का ।

(12) नैतिकता का आधार इस सम्बन्ध में दो गुट बन जाते हैं एक वयोवृद्ध का, दूसरा नवयुवकों का। वयोवृद्ध नैतिकता के पक्ष में रहते हैं और नवयुवकों का प्रायः विपक्ष में।

(13) चुनाव का आधार चुनाव के आधार पर भी दो या अधिक गुट बन जाते हैं जो एक-दूसरे के विपक्ष पर वार करते हैं।

(14) हत्यायें- जब गाँव में किसी व्यक्ति की हत्या कर दी जाती है तो इस सम्बन्ध में गुट बन जाता है। एक हत्यारे के पक्ष में दूसरा विपक्ष में।

(15) अन्य गुट अन्य अनेक समस्याओं के अवधारणा पर गुट बन जाता है जो परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं। उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि गाँवों में गुटों की बहुलता पाई जाती है, और प्रायः इनका आधार यही होता है। कहने में है दि

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

दलबन्दी के लाभ (Advantage of Factionalism)

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि दलबन्दी का निर्माण निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है। इस दृष्टि से दलबन्दी के निम्नलिखित लाभ हैं-

(1) दल की आवश्यकताओं की पूर्ति,

(2) हितों और उद्देश्यों की पूर्ति,

(3) हम की भावना का विकास,

(4) अहम् की सन्तुष्टि,

(5) व्यक्तिवादिता की सन्तुष्टि,

(6) कुशलता में वृद्धि।

दलबन्दी के दोष (Demerits of Factionalism)

दलबन्दी से लाभ की अपेक्षा हानियाँ अधिक हैं। इस दृष्टि से दलबन्दी के प्रमुख दोष निम्न है-

(1) परस्पर द्वेष और ईर्ष्या की भावना का विकास,

(2) प्रतिस्पर्धा और संघर्ष की भावना का विकास,

(3) हम की भावना का अभाव,

(4) सामूहिक स्वार्थपरता।

अंतर्संबंध संबंध (इंटरफैक्शन संबंध)

धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा अन्य परिस्थितियों के कारण अनेक प्रकार के गुटों या दलों का निर्माण हो जाता है। जब एक दल दूसरे दल के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, तो इस सम्बन्ध को अन्तर्गुट सम्बन्ध के नाम से जाना जाता है। अन्तर्गुट सम्बन्ध उन्हीं गुटों के बीच होते हैं, जिनके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण होते हैं। इन मित्र गुटों के बीच धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक आधारों पर सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। वे एक दूसरे के उत्सवों और निमंत्रणों में भाग लेते हैं। मित्र गुटों के बीच जो सम्बन्ध पाये जाते हैं, सामान्य असामान्य अवस्था में वे पुरुषों तक ही सीमित होते हैं, स्त्रियाँ उनमें भाग नहीं लेती हैं। पुरुषों में भी सामान्यतया परिवार के सभी लोग भाग नहीं लेते हैं। शत्रु गुटों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि उनका आधार तनाव और संघर्षपूर्ण होता है।

अन्तर्गुट सम्बन्ध का अर्थ है- एक ही गुट के सदस्यों में पाये जाने वाले आन्तरिक सम्बन्ध। अन्तर्गुट सम्बन्धों में निम्न विशेषतायें पाई जाती हैं-

(i) सम्बन्धों का प्रत्यक्ष स्वरूप,

(ii) आखरी संबंधित,

(iii) सम्बन्धों की पारिवारिक प्रकृति,

(iv) स्त्रियों द्वारा एक दूसरे के उत्सव में सहभागिता,

(v) सुख और दुख के बराबर सहभागिता।

जनजातीय समाजों में दलबन्दी (Factionalism in tribal society)

प्रजातंत्रीकरण, नगरीकरण, आवागमन और सन्देशवाहन के साधनों ने जनजातीय समाज को बाहरी दुनिया के सम्पर्क में ला दिया है। बाहरी दुनिया से सम्पर्क के कारण आज जनजातीय समाज परम्परात्मक नहीं रह गया है। इस परिवर्तन के कारण आज जनजातीय समाज परिवर्तित हो रहा है। इस परिवर्तन के कारण जनजातियों में छोटे-छोटे गुटों और दलों का विकास होता जा रहा है।

जनजातीय जीवन के तरीके (Ways of tribal life)

प्रत्येक समुदाय अपने सदस्यों के अस्तित्व को कायम रखने के लिए, उनकी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपने-अपने तरीके अपनाते हैं। जनजातियाँ चूँकि प्रकृति के अधिक सन्निकट रही हैं इसलिए उनकी जीवन पद्धतियाँ काफी स्तर तक प्रकृति पर आधारीत रही हैं। प्रकृति जो उनकी प्रथा, परम्परा एवं जनांकिकी गठन पर निर्भर करती है, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती है। अतः उन लोगों द्वारा अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु एक ही प्राकृतिक वातावरण में भी विभिन्न आर्थिक सांस्कृतिक विधियों का विकास हुआ है। बहुत से विद्वानों ने उनके जीवन के तरीकों को जीविका चलाने के आधार पर वर्गीकृत किया है। साधारणतः प्रत्येक

अर्थव्यवस्था पर निर्भर है। क्योंकि किसी भी भारतीय जनजाति की अर्थव्यवस्था को किसी विशेष वर्ग के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है। एक जनजाति के लोग जीविकोपार्जन के लिए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त अनेक साधनों का

उपयोग करते हैं। वे जंगल में पैदा होने वाली विभिन्न वस्तुओं के संग्रह को कृषि या स्थानान्तर कृषि के साथ समाविष्ट करते हैं।

तक भारत की जनजातीय आबादी का बहुत बड़ा भाग जंगलियों की तरह जीवन- यापन करता था। वे लोग शिकार या मछली पकड़ने, पशु पालन अथवा एक प्रकार की अनुन्नत खेती के द्वारा जीवन-यापन का प्रयास करते थे। जीवन-यापन तथा रहन-सहन की दृष्टि से भारतीय जनजातियों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

भारतीय सामाजिक- सांस्कृतिक स्तर पर जनजातियों के जीवन के तरीके पृथक-पृथक पाये गये हैं। क्योंकि इस देश में प्रत्येक जाति की एक विशेष अस्मिता है, जो प्रत्येक जाति को चैतन्य बनाए रखकर अन्य समाज एवं समूह से विशेषीकृत कर अलग श्रेणी प्रदान करती है। यही वजह है कि जाति अपनी विशेष सभ्यता संस्कृति एवं परम्पराओं के कारण आज भी अपने मूल भाव को अक्षुण्ण बनाए रखे हुए हैं। प्रत्येक जाति को सुरक्षित बनाये रखने में महत्वपूर्ण इस विशिष्टता की विशेष भूमिका है।

इनके सांस्कृतिक संदर्भ में मूलतः भाव का सम्बन्ध प्रेम से है, इस प्रेम, लगाव, प्रेम शक्ति का सीधा सम्बन्ध उनके दैनंदिनी जीवन के उतार-चढ़ाव, सफलता, असफलता जैसी अनेकानेक गतिविधियों से है। कर्म, संस्कार, नैतिकता, संस्कृति, परम्परा सभी इस प्रेम के वशीभूत हैं। किन्तु प्रेम का भाव सीधे हृदय में बसता है और आधुनिक भारत के पाश्चात्य विकासवादी समाज में निरन्तर आ रही आधुनिकता के चलते प्रेम में भाव की प्रधानता का ह्रास वर्तमान समय की बड़ी चुनौती है। सामाजिक संस्कृति में पर्वों का महत्व भी उसमें निहित भाव की नींव पर ही खड़ा

अधिकांश जनजातियाँ संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवन-यापन करती हैं। चूँकि ये सामान्यतः क्षेत्रीय समूहों में रहती हैं, इसलिए उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से स्वयं पूर्ण रहती है। इन संस्कृतियों में ऐतिहासिक जिज्ञासा का अभाव रहता है तथा ऊपर की थोड़ी-सी पीढ़ियों का यथार्थ इतिहास क्रमशः किंवदन्तियों और पौराणिक कथाओं में घुल-मिल जाता है। सीमित परिधि और लघु जनसंख्या के कारण इन संस्कृतियों में स्थिरता रहती है। किसी एक काल में होने वाले सांस्कृतिक परिवर्तन अपने प्रभाव एवं व्यापकता में अपेक्षाकृत सीमित होते हैं। परम्परा केन्द्रित आदिवासी संस्कृतियाँ इसी कारण अपने

अनेक पक्षों में रूढ़िवादी-सी दिखायी देती हैं। उत्तर और दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, एशिया तथा अनेक द्वीपों, द्वीप समूहों में आज भी आदिवासी संस्कृतियों के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। भारत में आदिवासी समूहों की संख्या 292 है।

नृतत्व वेत्ताओं ने इन समूहों में से अनेक समूहों का विशद शारीरिक, सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के आधार पर भौतिक संस्कृति तथा जीवन-यापन के साधन, सामाजिक संरचना, धर्म, बाह्य संस्कृति तथा प्रभाव आदि की दृष्टि से आदिवासी भारत के विभिन्न वर्गीकरण करने के अनेक वैज्ञानिक प्रयास किये गये हैं।

प्राचीन काल में जनजातियों ने भारतीय परम्परा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया था, जिनके कतिपय रीति-रिवाज और विश्वास आज भी थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में आधुनिक हिन्दू समाज में देखे जा सकते हैं। यद्यपि यह निश्चित है कि वे बहुत पहले ही भारतीय समाज और संस्कृति के विकास की मुख्य धारा से पृथक हो गये थे।

जनजातियों की सांस्कृतिक भिन्नता को बनाये रखने में कई कारणों का योगदान रहा है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर उनमें प्रबल जनजाति की भावना है। सामाजिक सांस्कृतिक धरातल पर उनकी संस्कृतियों में अनेक ऐसी संस्थायें हैं जो हिन्दू समाज की संस्थाओं से भिन्न है, किन्तु जिनका आदिवासियों की संस्कृतियों के गठन में महत्वपूर्ण स्थान है। असम के 'नागा' आदिवासियों की 'नरमुण्ड प्राप्ति' तथा बस्तर के मुरियों की 'गोतुल' संस्था, रोडा में 'बहुपतित्व' 'कोया' समूह में 'गोबलि' की प्रथा आदि का उन समूहों की संस्कृति में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म के क्षेत्र में 'जीववाद' पितृ पूजा आदि हिन्दू धर्म के समीप लाकर भी उन्हें उस समाज से पृथक रखती है।

आज के आदिवासी भारत में पर संस्कृति प्रभावों की दृष्टि से जनजातियों के चार प्रमुख वर्ग दिखायी देते हैं। प्रथम वर्ग में पर संस्कृति प्रभावहीन समूह है। दूसरे वर्ग में पर संस्कृतियों द्वारा अल्प प्रभावित समूह, तीसरे वर्ग में पर संस्कृतियों से प्रभावित किन्तु स्वतंत्र सांस्कृतिक अस्तित्व वाले समूह और चौथे वर्ग में ऐसे

आदिवासी समूह आते हैं जिन्होंने पर संस्कृतियों का स्वीकरण इस मात्रा में कर लिया है कि अब वे नाम मात्र के लिए ही आदिवासी रह गये हैं। इन जनजातियों के संस्कृति के अध्ययन के आधार पर इनके जीवन के तरीके के बारे में नृतत्व वेत्ताओं के गवेषणात्मक निष्कर्ष कुछ इस प्रकार के पाये गये हैं। जैसे, हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले के कोठी ग्राम का चन्द्र कुमार (1963) का अध्ययन 7000 से 9000 फीट की ऊँचाई पर स्थित एक आदर्श भूत किन्नौरी गाँव की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। यह गाँव अनुसूचित जनजाति के किन्नौरों से आच्छादित है जिसकी मुख्य वृत्ति कृषि है तथा भेड़-पालन, बुनाई, चाँदी तथा लौहारी से ये अपनी आवश्यकताएँ पूरी करती हैं। यह अध्ययन गाँव की बुनाई, जूता बनाने, टोकरी बनाने, मिट्टी के बर्तन बनाने, वाद्य संगीत यंत्र बनाने तथा गहना बनाने की शिल्प कला की प्रभुता को व्यक्त करता है, जिससे इस क्षेत्र में वृहत रूप से भौतिक संस्कृति के अध्ययन की सम्भावना व्यक्त होती है।

डब्ल्यू.एच. नेवेल (1960) द्वारा किया गया गोशुम (एक गद्दी गाँव) गाँव का अध्ययन यह दर्शाता है कि किस प्रकार गद्दी जनजाति समाज जाति स्तर की ओर अग्रसरित हुआ। उन्होंने निष्कर्ष ज्ञापित किया कि धन अर्जन करने के नये सुअवसरों के परिणामस्वरूप, राजपूत ब्राह्मण या राणा जैसे समूहों का जातीय रूप में सजग हो जाना प्रायः अनिवार्य है तथा ऐसी आशा की जाती है कि इसके उपरान्त होने वाले प्रकाशन में यह दर्शाया जा सकता है कि सम्पूर्ण रावी घाटी एक विलम्बित आकार के अनुरूप परिवर्तित होती जा रही है। नये सुअवसरों का परिणाम गद्दी जिस दिशा में बढ़ रहे थे उसे परिवर्तित करना ही नहीं वरन् उन लोगों की वर्तमान विधि को और गतिशील कर देना है, नेवेल (1967)।

कुल्लू के एक गाँव मलायना को कोलीनरोजर (1960) ने अध्ययन करके निष्कर्ष ज्ञापित किया कि इस गाँव में गहरी धर्म अभिमुखता एवं समुदाय सम्पृक्ति का अद्भूत समन्वय दिखता है। लोगों को घाटी के देवी देवताओं के साथ सामन्जस्य तथा उनकी गहरी धार्मिक एवं परम्परागत अभिभूतता का रोजर द्वारा किया गया विश्लेषण उक्त हिमालयी गाँव के समक्ष आने वाली आधुनिकता की चुनौती पर विशेष प्रकाश डालता है।

स्व -प्रगति परिक्षण

1.किसने कहा- 'परिवार वह समूह है, जिसके अन्तर्गत स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और उनका सम्बन्ध ऐसा हो, जिससे सन्तान उत्पन्न हो और उनका पालन-पोषण भी किया जाये।'

(अ) आगबर्न एवं निमकॉफ (आ) गिलिन एवं गिलिन

(इ) मैकाइबर एवं पेज (ई) मजूमदार एवं मदन ।

2. हाँ या नहीं में उत्तर दीजिए।

I. खासी जनजाति आसाम में रहती है।

II. खासी परिवार मातृवंशी होते हैं।

Iii टोडा जनजाति में बहुपति विवाह पाया जाता है।

IV. बहुपति विवाह में वंश परम्परा बड़े भाई के नाम से चलती है।

3. 'स्त्री तथा पुरुष का ऐसा सम्बन्ध जिसमें इन दोनों सहयोगियों की इस सम्बन्ध द्वारा संतान वैध मानी जाय, विवाह कहलाता है।' किस पुस्तक में लिखा है।

(अ) भारत की जातियाँ एवं संस्कृतियाँ। (अ) बैगा.

(इ) मानव विज्ञान पर नोट्स और प्रश्न। (ई) सेक्स और विवाह.

4. वह सामाजिक व्यवस्था जिसके द्वारा एक व्यक्ति को सामाजिक स्तरण में अग्रगण्य स्थान प्राप्त होता है और दूसरे सभी व्यक्ति उसका अनुसरण करते हैं उसे कहते हैं-

(अ) जनमत (ब) नेतृत्व (स) प्रसार (द) फैशन

5. नेतृत्व की प्रमुख विशेषता है-

(अ) नेतृत्व में प्रभुत्व का तत्व पाया जाता है,

(ब) नेतृत्व का एक विशिष्ट उद्देश्य होता है,

(स) नेतृत्व का जन्म एक विशिष्ट परिस्थिति में होता है,

(द) उपर्युक्त सभी विशेषताएँ नेतृत्व की हैं।

6. निम्न में से कौन-सा लक्षण नेतृत्व का नहीं है-

(अ) दूरदर्शिता (ब) संयम (स) आत्म-निर्भरता (द) अपरिवर्तनशीलता

7. कोफिन ने नेतृत्व के किन सामान्य लक्षणों का उल्लेख किया है-

(अ) बौद्धिक योग्यता (ब) नैतिकता (स) कल्पनाशक्ति (द) उपर्युक्त सभी

8. पैट्रिज ने नेतृत्व के कोन-कौन से लक्षण बतलाये हैं-

(अ) शारीरिक पराक्रम (ब) अवलम्बन योग्यता (स) आकृति तथा बुद्धि (द) उपर्युक्त सभी

9.ऊँचाई, वजन, स्वास्थ्य एवं आकर्षकता नेतृत्व का कौन-सा लक्षण है-

(अ) शारीरिक (ब) मानसिक (स) सामाजिक (द) उद्दीपकता

10. किम्बाल यंग ने नेतृत्व को विभाजित किया है-

(ए) राजनीतिक एवं लोकतांत्रिक नेतृत्व (ब) नौकरशाही नेतृत्व

(स) कूटनीतिक एवं सुधारक नेतृत्व (द) उपर्युक्त सभी

11. जो व्यक्ति ग्रामीण जीवन का नेतृत्व करते हैं, उन्हें जाना जाता है-

(अ) महापुरुष के नाम से (ब) नेता के नाम से

(स) मुखिया के नाम से(द) सरपंच के नाम से

4.9 सार संक्षेप

परिवार, विवाह, और नेतृत्व समाज की सामाजिक संरचना के अभिन्न अंग हैं। परिवार की परिभाषा और विशेषताएं इसे एक महत्वपूर्ण सामाजिक इकाई बनाती हैं, जो व्यक्ति के सामाजिक और भावनात्मक विकास में योगदान देती हैं। परिवार के उत्पत्ति के सिद्धांत हमें इसकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास यात्रा को समझने में मदद करते हैं। परिवार के प्रकार और इसके कार्य विभिन्न समाजों और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों में विविधता प्रदर्शित करते हैं।

विवाह समाज की एक महत्वपूर्ण संस्था है, जो न केवल दो व्यक्तियों के बीच का संबंध है, बल्कि समाज के सांस्कृतिक और परंपरागत मूल्यों का परिचायक भी है। विवाह के समान स्वरूप और विभिन्न जनजातियों में साथी के चुनाव की विधियां इस संस्था की विविधता को उजागर करती हैं। यह हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे सामाजिक मान्यताएं और परंपराएं विवाह के स्वरूप को प्रभावित करती हैं।

नेतृत्व समाज में मार्गदर्शन और संगठन का कार्य करता है। जनजातीय समाज में नेतृत्व की भूमिका, दलबंदी, और सामाजिक संगठन का अध्ययन समाज के कार्यों और संरचनाओं को समझने के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार, यह अध्याय परिवार, विवाह, और नेतृत्व के माध्यम से भारतीय समाज और जनजातीय समुदायों की सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताओं और उनके महत्व को रेखांकित करता है।

4.10 मुख्य शब्द

1. परिवार (Family):समाज की एक प्राथमिक इकाई, जिसमें सदस्य पारस्परिक संबंधों और भावनात्मक जुड़ाव के आधार पर एक साथ रहते हैं।

2. सांस्कृतिक विविधता (Cultural Diversity):विभिन्न संस्कृतियों, परंपराओं, और सामाजिक प्रथाओं का सह-अस्तित्व।

3. नेतृत्व (Leadership):किसी समूह या समाज को दिशा प्रदान करने और सामूहिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता।

4. विवाह (Marriage):समाज द्वारा स्वीकृत दो व्यक्तियों के बीच का एक बंधन, जिसमें कानूनी और सामाजिक नियमों का पालन किया जाता है।

5. दल बंदी (Factionalism):किसी समुदाय या जनजाति में समूहों का बनना, जो अलग-अलग लक्ष्यों या हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

6. पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family):वह परिवार जिसमें प्रमुख भूमिका पिता या पुरुष सदस्य की होती है।

7. जनजातीय समाज (Tribal Society):वह समाज जो पारंपरिक रीति-रिवाजों और विशेष सांस्कृतिक पहचान के साथ संगठित होता है।

8. मातृसत्तात्मक परिवार (Matriarchal Family):वह परिवार जिसमें महिलाओं को मुख्य भूमिका दी जाती है।

9. सामाजिक संगठन (Social Organization):समाज में विभिन्न भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के माध्यम से संरचित व्यवस्था।

10. जनजातीय विवाह (Tribal Marriage): विभिन्न जनजातियों में प्रचलित विवाह की विधियां और परंपराएं।

4.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1. (इ), 2. आई. (य), II. (हाँ), III. (हाँ), IV. (हाँ) 3. (इ), 4. (ब), 5. (द), 6. (द), 7. (द)

8. (द), 9. (अ), 10. (द), 11. (बी)।

4.12 सन्दर्भ सूची

1. गुप्ता, डी.एस. (2018). भारतीय समाज और संस्कृति. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

2. मिश्रा, एस.के. (2020). परिवार और विवाह का समाजशास्त्रीय अध्ययन. वाराणसी: ज्ञान गंगा पब्लिकेशन।

3. शास्त्री, आर.एन. (2017). जनजातीय समाज का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य सदन।

4. कुमार, आर. (2019). सामाजिक नेतृत्व और संगठन. पटना: विद्या प्रकाशन।

5. वर्मा, पी. (2021). सांस्कृतिक विविधताएं और सामाजिक विकास. भोपाल: प्रभात प्रकाशन।

6. चौधरी, एन. (2016). भारतीय जनजातियों में विवाह और परंपराएं. कोलकाता: विश्वविद्यालय प्रकाशन।

7. त्रिपाठी, बी.एल. (2022). नेतृत्व और समाजशास्त्र. लखनऊ: नवीन पुस्तक केंद्र।

4.13 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions for Examinations)

(अ) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. परिवार की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए।

Define family. Write its characteristics.

2 परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्तों को समझाइए।

Explain the theories of origin of family.

3. परिवार की व्याख्या कीजिए। समाज में परिवार का महत्व लिखिए।

Define family. Write importance of family in society.

4. भारत में वन्यजातीय परिवारों पर एक लेख लिखिए।

Write an essay on Tribal families in India.

5. विवाह की अवधारणा को समझाइए।

Explain the concept of Marriage.

6. समाज में विवाह के महत्व को लिखिए।

Write the importance of marriage in society.

7.विवाह की उत्पत्ति पर एक निबन्ध लिखिए।

Write an essay on the origin of marriage.

8. विवाह का समाजशास्त्रीय महत्व लिखिए।

Write sociological importance of marriage.

9. जनजातीय विवाह की अवधारणा को समझाइए।

Explain concept of tribal marriage.

10. विवाह के सामान्य स्वरूपों को लिखिए।

Write general forms of marriage.

11.भारतीय जनजातियों में विवाह-साथी के चुनाव की विधियाँ लिखिए।

Write methods of mate selection in Indian tribes.

12.सामाजिक संगठन में नेता की भूमिका लिखिये।

Write the role of leader in Social organization.

13. नेतृत्व की व्याख्या कीजिए। नेतृत्व के कार्यों की विवेचना कीजिए।

Define leadership. Discuss the functions of leadership.

14. नेता के आवश्यक गुणों की विवेचना कीजिये।

Discuss the essential characteristics of leader.

15. नेतृत्व पर एक आदर्श नि-लिखें।

Write a short essay on leadership.

16. ग्रामीण नेतृत्व से आप क्या समझते हैं? ग्रामीण नेताओं के प्रकार लिखिये।

What do you mean by rural leadership? Write the types of rural leader.

17. ग्रामीण नेतृत्व के बदलते प्रतिमानों की विवेचना कीजिए।

Discuss the changing patterns of rural leadership.

18. ग्रामीण नेता की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

What are the essential characteristics of a rural leader?

(आ) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions) (5)

1. मातृसत्ता परिवार (Matriarchal Family)
2. गारो जनजाति (Garo Tribe)
3. खासी जनजाति (Khasi Tribe)
4. वैयक्तिक परिवार (परमाणु परिवार)
5. द्विविवाह
6. बहुपति विवाह
7. तलाक
8. विवाह निषेध
9. प्रजातन्त्रात्मक नेता (Democratic leader)
10. परम्परात्मक नेता (Traditional leader)
11. करिश्माई नेता (Charismatic leader)

12. नौकरशाही नेता (Bureaucratic leader)

13. दल या गुट

इकाई -5

नातेदारी, धर्म, विश्वास एवं व्यवहार, टोटम

(Kinship, religion, beliefs and practices, totem)

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 नातेदारी की परिभाषा

5.4 परिहास या हंसी मजाक के संबंध

5.5 धर्म

5.6 जादू

5.7 टोटम

5.8 भारतीय जनजातीय समाज का भविष्य

5.9 सार संक्षेप

5.10 स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.11 मुख्य शब्द

5.12 संदर्भ सूची

5.13 अभ्यास के प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

समाज सामाजिक संबंधों की व्यवस्था का नाम है और व्यक्ति अभिनेता है, जो इन संबंधों की स्थापना और निर्धारण करता है। चूँकि समाज में अनेक प्रकार के संगठन और समूह पाए जाते हैं, इसलिए सामाजिक संबंधों में विविधता का होना नितान्त

स्वाभाविक है। अनेक सामाजिक संबंधों में रक्त पर आधारित मानव संबंध अत्यंत ही शक्तिशाली और महत्वपूर्ण होते हैं। रक्त ही वह आधार है, जिसके द्वारा व्यक्ति समस्त सामाजिक प्राणियों को निम्न दो भागों में विभाजित कर देता है -

अपने या हम, और

(ii) पराये या 'वे'।

सम्बन्ध भी दो प्रकार के होते हैं-

(i) समीप या निकट के सम्बन्ध, और

(ii) दूर के सम्बन्ध।

सामाजिक मानवशास्त्र के अन्तर्गत नातेदारी शब्द अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसी की सहायता से समाज के समस्त प्राणियों के बीच स्थापित सम्बन्धों की विवेचना की जाती है। वैसे तो सामाजिक प्राणी समाज में रहने के कारण अनेक प्रकार के सूत्रों से आबद्ध होते हैं, किन्तु इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे सम्बन्ध होते हैं जो रक्त या खून (Blood) की आधारशिला पर कायम होते हैं। रक्त ही वह आधार है जिसकी सहायता से व्यक्ति अपने और पराये के' बीच भेद स्थापित करता है।

5.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. नातेदारी की परिभाषा से परिचित होंगे ।

2. नातेदारी के प्रकार नातेदारी के नियामक व्यवहार या रीतियाँ को जान पायेगें ।

3धर्म का अर्थ ,धर्म की परिभाषा विशेषता व लक्षणों को जान पाएंगे।

4. धर्म की भूमिका किस प्रकार है इससे परिचित होंगे।

5. जादू की परिभाषा जादू के प्रकार धर्म और जादू व जादू की विशेषताओं को जान पाएंगे।

6. टोटम से परिचित होंगे टोटमकी परिभाषा टोटम की उत्पत्ति के सिद्धांत को जान पाएंगे ।

7.विश्वास एवं व्यवहार से भी परिचित होंगे।

5.3 नातेदारी की परिभाषा (Definition of Kinship)

विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने नातेदारी की जो परिभाषाएँ दी हैं, वे इस प्रकार हैं-

(1) मजूमदार और मदन- "सभी समाजों में मनुष्य विभिन्न प्रकार के बन्धनों से समूह में बँधे हुए होते हैं। इन बन्धनों में सबसे अधिक सार्वभौम और सबसे अधिक मौलिक वह बन्धन है, जो कि सन्तानोत्पति पर आधारित है, जो कि आन्तरिक मानव प्रेरणा है, यही नातेदारी कहलाता है।"

(2) चार्ल्स विनिक- "नातेदारी व्यवस्था कल्पित तथा यथार्थ आनुवांशिक बन्धनों पर आधारित समाज- स्वीकृत समस्त सम्बन्धों को सम्मिलित कर सकता है।"

(3) "लेवी स्ट्रास" "नातेदारी प्रणाली वंश अथवा रक्त संबंधी कर्म विषयक सूत्रों से निर्मित नहीं होती, जो कि व्यक्ति को मिलाती है, यह मानव चेतना में विद्यमान रहती है, यह विचारों की निरंकुश प्रणाली है, वास्तविक परिस्थिति का स्वतः विकास नहीं है।"

(4) ब्राउन - "नातेदारी सामाजिक उद्देश्यों के लिए स्वीकृत वंश सम्बन्ध से है, जो कि सामाजिक सम्बन्धों के परम्परात्मक सम्बन्धों का आधार है।"

(5) नोट्स एण्ड क्वैरीज आन एन्थ्रापोलॉजी "नातेदारी वह संबंध है, जिसकी जानकारी माता-पिता, भाई-बहन या बच्चों के निकट संबंधों द्वारा प्राप्त होती है और जिसे सामाजिक कार्य के लिए मान्यता मिली होती है।"

(6) लूसी मेयर "बन्धुत्व में सामाजिक संबंधों को जैविक शब्दों में व्यक्त किया जाता है।"

(7) राबिन फाक्स - "नातेदारी केवल मात्र स्वजन अर्थात् वास्तविक ख्यात अथवा कल्पित समरक्तता वाले व्यक्तियों के मध्य रक्त संबंध है।"

संक्षेप में "नातेदारी समाज में पाई जाने वाली सामाजिक संबंधों की वह स्वीकृत व्यवस्था है जो या तो यथार्थ वंशानुगत संबंधों पर आधारित हो या कल्पित पूर्वजों पर।"

नातेदारी के प्रकार (Types of Kinship)

फर्थ ने लिखा है कि "यह एक छड़ है, जिसके सहारे प्रत्येक व्यक्ति जीवन भर रहता है।" प्रत्येक समाज की दो मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं- विवाह और रक्त सम्बन्ध। इन्हीं आधारों पर नातेदारी को भी निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(i) रक्त सम्बन्धी नातेदारी (Consanguineous Kinship)- यह नातेदारी व्यवस्था का वह प्रकार है, जो रक्त-सम्बन्धों पर आधारित होता है। इसमें प्राणिशास्त्रीय रक्त-सम्बन्धी और गोद लिये हुए दोनों ही प्रकार के सम्मिलित किये जाते हैं। अनेक जनजातियों में जहाँ पिता का कोई निश्चय नहीं होता है, ऐसी स्थिति में भी बालक और पिता के बीच नातेदारी इस आधार पर मानी जाती है कि वह व्यक्ति सामाजिक संस्कारों द्वारा बालक का पिता बन जाता है।

(ii) विवाह सम्बन्धी नातेदारी (Affinal Kinship)- पति और पत्नी में विवाह के कारण दोनों पक्षों के अनेक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों में आबद्ध हो जाते हैं। ये सभी व्यक्ति एक स्त्री और एक पुरुष के विवाह बन्धनों के कारण नातेदार बन जाते हैं।

(iii) काल्पनिक नातेदारी काल्पनिक नातेदारी कल्पना पर आधारित होती है। जब कोई व्यक्ति किसी को गोद लेता है, तो वह उसका असली बेटा न होकर, रक्त संबंधी न होकर गोद लिया होता है। यही कारण है कि इस प्रकार नातेदारी वास्तविक न होकर काल्पनिक होती है।

नातेदारी की श्रेणियाँ Categories of kinship

श्रेणियों का तात्पर्य सम्बन्ध के उन अंशों से है, जिनके द्वारा नातेदारी व्यवस्था में सभी व्यक्ति आबद्ध होते हैं। दूसरे शब्दों में इसे नातेदारी का विस्तार कहकर भी सम्बोधित किया जा सकता है। संक्षेप में नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन प्रकार की श्रेणियाँ पायी जाती हैं-

(i) **प्राथमिक नातेदारी (Primary Kinship)-** इस श्रेणी के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं, जो प्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर आबद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए माता-पिता और बच्चे, पति-पत्नी आदि जो परस्पर प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

(ii) द्वैतीयक नातेदारी (Secondary kinship)- इसके अन्तर्गत वे नातेदार आते हैं, जो व्यक्ति के प्राथमिक श्रेणी के सम्बन्धों द्वारा सम्बन्धित होते हैं। इनसे व्यक्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु वे प्रथम श्रेणी के सम्बन्धों से सम्बन्धित होते हैं। इसके अन्तर्गत विमाता और साले-सालियाँ आदि आते हैं।

(iii) तृतीयक नातेदारी (Tertiary Kinship)- इसके अन्तर्गत द्वैतीयक श्रेणी के सम्बन्धियों से प्राथमिक रिश्तेदार आते हैं। इस व्यवस्था के कारण विशिष्ट प्रकार के व्यवहार प्रतिमानों का निर्धारण होता है।

नातेदारी के नियामक व्यवहार या रीतियाँ

समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। ये संबंध अत्यंत ही विस्तृत और विशाल है। समाज में जब किसी भी व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबंध बनता है तो प्रश्न यह पैदा होता है कि वह व्यक्ति जिसका दूसरे व्यक्ति से संबंध बनता है, किस प्रकार का व्यवहार करे या किस प्रकार का व्यवहार न करे। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबंधों के इसी व्यवहार को नातेदारी के नियामक व्यवहार अथवा नातेदारी की रीतियों के नाम से जाना जाता है। समाज में व्यक्तियों के व्यवहार अनन्त और असीमित होते हैं। इन्हीं अनंत और असीमित व्यवहारों के आधार पर व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। व्यवहारों के अनेक प्रकार होते हैं। उदाहरण के लिए दूसरो के प्रति श्रृद्धा का व्यवहार, मधुरता का व्यवहार, हास-परिहास का व्यवहार, प्रतिबंधों का व्यवहार आदि। इस प्रकार समाज में व्यक्तियों का दूसरे व्यक्तियों के साथ व्यवहार को ही नातेदारी की रीतियों या नियामकों के नाम से जाना जाता है। नातेदारी के जो प्रमुख नियामक व्यवहार या रीतियाँ हैं, उन्हें निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत परिभाषित तथा उनकी. व्याख्या का प्रयास किया गया है, जो इस प्रकार है:-

निकटाभिगमन (Incest)

इसे परिहार (Avoidance) भी कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि नातेदार आपस में यौन संबंध स्थापित न करें। रेडक्लिफ ब्राउन ने इसको परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'सही शब्दों में कहें, तो निकटाभिगमन यौन संबंधी पाप या अपराध है, जो परिवार के निकट संबंधियों, जैसे पिता-पुत्री, मां-पुत्र, भाई-बहन के बीच यौन संबंधों के कारण पनपता है।' इस प्रकार के संबंधों को निषिद्ध करना निकटाभिगमन निषेध कहलाता है। संसार के प्रायः सभी समाजों में निकट संबंधियों के बीच यौन संबंधों को स्थापित करने का निषेध है। इस संबंध में कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न हैं-

1. पुत्र वधू तथा सास-ससुर के मध्य अनेक जनजातियों और यहाँ तक कि कुछ से अन्य समाजों में भी पुत्रवधू, सास-ससुर तथा जेठ से पर्दा करती है तथा उनसे सीधा वार्तालाप नहीं करती है और न ही उनके कमरों में सोती हैं।

2. दामाद और सास के मध्य कुछ जनजातियों में दामाद तथा सास के मध्य बातचीत नहीं होती है। दामाद तथा सास एक दूसरे को नहीं छूते हैं और न ही देखते हैं तथा एक दूसरे का नाम भी नहीं लेते हैं।

3. भाई-बहन के मध्य - अनेक जनजातियों में भाई तथा बहन के बीच कुछ व्यवहारों पर प्रतिबन्ध है। उदाहरण के लिए वे एक दूसरे से बातचीत नहीं कर सकते हैं, भाई बहन दोनों एक ही कमरे में नहीं रह सकते हैं, दोनों एक साथ भोजन नहीं कर सकते तथा अपने शरीर को ढँककर रखते हैं।

4. पुत्रवधू एवं जेठ के मध्य अनेक जनजातियों तथा हिन्दू समाज में भी छोटे भाई की पत्नी जेठ के सामने घूँघट में रहती है तथा जेठ के लिए छोटे भाई की पत्नी का मुँह देखना वर्जित है। वे दोनों एक दूसरे से आपस में बातचीत भी नहीं कर सकते हैं।

निकटाभिगमन के कारण (Causes of Incest)

निकटाभिगमन के क्या कारण हैं? इसमें मानवशास्त्रियों के विचारों में भिन्नता है। फिर भी कुछ सामान्य कारण हैं, जो इस प्रकार हैं -

(a) प्रसिद्ध मानवशास्त्री टायलर ने इसके मूल कारणों में मातृसत्तात्मक परिवार की प्रथा को माना है। मातृसत्तात्मक परिवार के कारण इस प्रथा को बल मिलता है।

(b) फ्रेजर का विचार है कि यौन संबंधों को नियंत्रित करने के लिए निकटाभिगमन पर रोक लगाई गई है।

(c) फ्रायड का विचार है कि पारस्परिक यौन संबंधों को रोकना इसके मूल कारणों में है।

(d) लोवी के अनुसार पुत्रवधू बाहरी तथा भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की होने के कारण परिवार के प्रभावों से बचाने के लिए ऐसा किया जाता है।

(e) टर्नी हाई के अनुसार पत्नी को परिवार में सास-ससुर तथा पति को संतुष्ट करने के लिए ऐसा करना पड़ता है। इससे पारिवारिक संघर्ष से बचा जा सकता है।

(f) ब्राउन का विचार है कि परिवार के सदस्यों में अधिक सम्पर्क होने से जहाँ एक ओर प्रेम की प्रगाढ़ता बढ़ती है, वहीं दूसरी ओर सदस्यों में आपसी द्वेष की भावना का विकास भी होता है। ये दोनों ही बातें पारिवारिक भावना के लिए हानिकारक होती हैं। इसलिए परिवार के सदस्यों के बीच परिहास आवश्यक है।

(g) मैलिनोवस्की का विचार है कि निकटाभिगमन का कारण सदस्यों के बीच एक दूसरे के लिए सम्मान की भावना है। परिहार के कारण ही सदस्यों में एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना का विकास होता है। डॉ. मजूमदार ने भी मैलिनोवस्की के विचारों से अपनी सहमति जताई है।

(h) चेपल तथा कून का मत भी इसी प्रकार है। उनके अनुसार सामाजिक संरचना के विघटन को रोकने एवं कुछ व्यक्तियों के बीच अंतः क्रिया को प्रतिबंधित करने के लिए ही परिहार की प्रथा का जन्म और विकास हुआ।

(i) रिवर्स का मत है कि द्वेघ संगठनों के कारण समाज में निकटाभिगमन के नियमों का जन्म और विकास हुआ। उसके अनुसार विषम लिंगियों में यौन संबंधों को रोकने के लिए निकटाभिगमन का जन्म हुआ। साथ ही समलिंगियों (प्रमुख रूप से पुरुषों में) में निकटाभिगमन का कारण यह है कि वे विद्वेषी अद्धार्शों (Moieties) के सदस्य रहे होगें।

इस प्रकार निकटाभिगमन सार्वभौमिक नियामक रीतियाँ हैं, जो प्रायः सभी समाजों में समान रूप से पाई जाती हैं। चाहे वह समाज शिक्षित हो या अशिक्षित, आदिम हो या आधुनिक। इतना अवश्य है कि देश काल और परिस्थितियों के अनुसार इनमें भिन्नता पाई जाती है। इसका उद्देश्य समाज में व्यवस्था की स्थापना है! जिससे सामाजिक संगठन बना रहे तथा इसको विघटित होने से रोका भी जा सके। इसके साथ ही पशु जगत की मूलप्रवृतियों के स्थान पर मानव जगत की मूलप्रवृत्तियों को स्थापित किया जाये।

5.4 परिहास या हंसी-मजाक के संबंध (Joking Relations)

परिहार और परिहास एक दूसरे के विरोधी संबंध है। परिहास जहाँ संबंधों को रोकना है वहीं परिहास संबंधों की स्थापना करना है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह मनोरंजनात्मक संबंध है, जिसके माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ हंसी मजाक के संबंध स्थापित करता है। इसका उद्देश्य संबंधों में घनिष्ठता का विकास करना है इस प्रकार के संबंध प्रायः विवाह संबंधियों के बीच पाए जाते हैं। जिसके द्वारा विवाह संबंधी आपस में हंसी मजाक करते हैं। इसमें गाली-गलौज को भी सम्मिलित किया जाता है एक दूसरे के प्रति भद्दे शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए -

1. भारत में ओराँव और बैगा जनजाति में दादी तथा पोते के बीच परिहास संबंध पाया जाता है।

2. जीजा तथा साली के बीच परिहास आधुनिक समाजों में भी पाया जाता है। जनजातियों में भी इसी प्रकार के परिहास पाए जाते हैं।

3. देवर तथा भाभी के बीच परिहास के उदाहरण सामान्य हैं।

4. जीजा और साला के बीच परिहास,

5. ननद भाभी परिहास,

6. मामा-भांजा परिहास,

मामी-भांजा परिहास,

8. दादा-पोती परिहास,

9. चाचा-भतीजा परिहास,

10. फूफा-भतीजा परिहास आदि।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि आदिम समाजों में सामाजिक प्रथाओं और मर्यादाओं के अनुसार परिहास संबंध जाए जाते हैं। इन संबंधों का प्रचलन विशेष अवसरों पर होता है। उदाहरण के लिए होली, विवाह तथा अन्य त्यौहार आदि। हंसी मजाक के इन संबंधों के कारण अनेक अवसरों पर यौन संबंध भी स्थापित हो जाता है। इन परिहासों के माध्यम से एक दूसरे की खिल्ली उड़ाना, नीचा दिखाना, पानी छिड़कना, कपड़े फाड़ देना, रंग डालना, काली वस्तु फैंकना, चेहरे पर किसी प्रकार की आकृति बना देना आदि सम्मिलित है।

इस प्रकार संबंध प्रायः सभी समाजों में पाए जाते हैं। वैरियर एलविन के अनुसार वैगा जनजाति में पोता- दादी के बीच विवाह संबंध पाए जाते थे। शरतचंद्रराय के अनुसार उरांव जनजाति में दादी और पोते के बीच विवाह संबंधों का उल्लेख है। दक्षिण अफ्रीका की अनेक जनजातियों में मामा-भान्जे के बीच परिहास के संबंध होते हैं। अनेक पितृवंशीय परिवार ऐसे है, जहाँ एक व्यक्ति अपनी बुआ से परिहास कर सकता है। होपी जनजाति में भी इसी प्रकार की प्रथा पाई जाती है। अफ्रीका की सौगा (Tsonga) जनजाति में यह प्रथा है कि यदि मामा खाना बन जाने के बाद देर से पहुँचता है, तो भांजा पूरा खाना खा सकता है। इस प्रकार हास परिहास के ये संबंध सार्वभौमिक हैं।

परिहास संबंधों के कारण (Causes of Joking Relations)

परिहास संबंध क्यों ? इसके प्रमुख कारण क्या हैं? इस संबंध में कोई निश्चित मापदण्ड नहीं हैं, जिनके आधार पर इसके कारणों का पता लगाया जा सके और न ही ये सार्वभौमिक हैं, जो सभी समाजों, कालों और परिस्थितियों में समान रूप से लागू हो। इस संबंध में कुछ विद्वानों ने विभिन्न जातियों और जनजातियों का अध्ययन करने

के उपरांत कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। इन विद्वानों के निष्कर्षों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

(1) ब्राउन - रेडक्लिफ ब्राउन ने परिहास के कारणों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार परिहास एक ऐसी मित्रता का प्रतीक है, जिसे शत्रुता पूर्ण व्यवहार के रूप में व्यक्त किया जाता है। आपसी गाली-गलौज, एक दूसरे के साथ मारपीट, अपमानजनक शब्द आदि का दिखावटी प्रयोग किया जाता है। मामा-भांजे के परिहास संबंध को विवाह से संबंधित कुलाशो के बीच समावित वैमनस्य को मिटाने के एक साधन के रूप में किया जाता है।

(2) वेस्टरमार्क - का विचार है कि जिन व्यक्तियों के बीच परिहास के संबंध होते हैं, उनमें पारस्परिक संबंध, समानता और घनिष्ठता इतनी अधिक होती थी, कि अनेक अवसरों पर वे विवाह के संबंधों में भी बंध जाते थे। उदाहरण के लिए जीजा-साली और देवर-भाभी के ऐसे परिहास संबंध हैं, जो अनेक अवसरों पर विवाह के सूचक बन जाते हैं।

(3) डॉ. रिवर्स का विचार है कि परिहास संबंध ममेरे, फुफेरे विवाह संबंध के कारणों के प्रतीक हैं।

(4) डॉ. चेपल तथा कून का विचार है कि इस प्रथा को कुछ व्यक्तियों के बीच अंतः क्रिया बढ़ाने के लिए उत्प्रेरक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

अंग्रेजी का टेक्नोनिमी शब्द ग्रीक भाषा से बना है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री टायलर ने सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग किया था। इस शब्द के लिए हिंदी में प्रयुक्त शब्दों में अनुसंतति संबोधन, संताननामी व्यवहार, माध्यमिक संबोधन, अनुतामिता आदि का प्रयोग किया जाता है। भारत में आदिवासियों तथा गैर आदिवासी समाजों में आज भी एक प्रथा पाई जाती है। इस प्रथा के अनुसार विवाहित स्त्री अपने पति का नाम नहीं लेती है। जब उसे पति को संबोधित करना होता है, तो इसके लिए पुत्र या पुत्री के नाम के संबोधन से अपने पति को बुलाती हैं। उदाहरण के लिए रानी के पापा सुनते हो। ऐसा कहते ही उसका पति अपनी पत्नी की बात की ओर ध्यान देता है।

• टायलर के अतिरिक्त फ्रेजर, लोवी आदि मानवशास्त्रियों ने दुनिया के विभिन्न भागों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि इस प्रकार के सम्बन्ध प्राय- दक्षिणी अफ्रीका, पश्चिमी कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, मलाया, चीन, उत्तरी साइबेरिया, ब्रिटिश कोलम्बिया, लंका, फिजी द्वीप समूह, मलेशिया, आदि की अनेक जनजातियों में पाए जाते हैं।

माध्यमिक संबोधन के कारण (Reasons for secondary addressing)

माध्यमिक संबोधन क्यों किया जाता है? इस प्रकार के संबोधन के क्या कारण हैं। इस संबंध में भी विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। इस संबंध में टायलर का विचार है कि माध्यमिक संबोधन की उत्पत्ति का कारण मातृसत्तात्मक परिवार है। मातृसत्तात्मक परिवारों में स्त्रियों की प्रधानता होती है तथा सर्वोच्च सत्ता उन्हीं के हाथों में होती है। पति बाहरी व्यक्ति होता है। स्वाभाविक तौर पर उसकी परिवार में स्थिति द्वैतीयक संबंधों की होती थी। यही कारण है कि उसको पुकारने के लिए बच्चों को माध्यम बनाया जाता था। कालांतर में जब इस प्रथा का विस्तार हुआ, तो पत्नी अपने पति के नाम को पुकारने के लिए बच्चों के नाम का सहारा लेने लगीं।

लोवी टायलर के इन विचारों से सहमत नहीं है। उसका तर्क है कि यदि माध्यमिक संबोधन का कारण मातृसत्ता है तो पितृसत्ता परिवारों में भी इस संबोधन का प्रयोग क्यों किया जाता है। कुछ समाज ऐसे हैं, जहाँ स्त्रियों की सामाजिक स्थिति निम्न है, जब कि कुछ समाज ऐसे भी हैं, जहाँ पुरुषों की सामाजिक स्थिति निम्न है। उसका कहना है कि समाज में भाषा का विकसित न होना तथा शब्दावली की कमी और अज्ञानता के कारण इस प्रकार के संबोधनों का जन्म और विकास हुआ।

इसे मातुल प्रधान व्यवहार के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रथा मातृसत्तात्मक समाजों में पाई जाती है। यहाँ भाँजे-भाँजियों के लिए पिता की अपेक्षा माता का अधिक महत्व होता है। इसका कारण यह है कि भाँजे- भाँजियों का लालन-पालन माता के घर पर ही होता है। इसके साथ ही माता के स्थान पर मामा ही उनका अभिभावक और संरक्षक होता है तथा भाँजे ही मामा की संपत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं। भारत की खासी और टोडा जनजातियों में मातुल संबंधी व्यवहार पाया जाता है।

मातुलेय का तात्पर्य यह है कि सभी पुरुष संबंधियों की तुलना में मामा का भांजे एवं भांजियों के लिए परिवार में पहला स्थान होता है। इस प्रकार की सत्ता को मातुल सत्तात्मक सत्ता के नाम से जाना जाता है। यदि भांजे, भांजी मामा के घर रहकर बड़े होते हैं, तो इस प्रथा का मातृस्थानीय निवास कहा जाता है। मातुलेय प्रथा मातृसत्तात्मक समाज की प्रमुख विशेषता है। यदि इस प्रकार की प्रथा किसी पितृसत्तात्मक परिवार में पाई जाती है, तो ऐसा माना जा सकता है, कि यह पूर्ववर्ती मातृप्रधान सामाजिक संरचना का ही अवशेष है। इस प्रथा के कारण अनेक अवसरों पर मामा और भांजे के बीच संघर्ष की स्थिति का निर्माण हो जाता है। संघर्ष की इस स्थिति का कारण यह होता है कि कभी-कभी मामा अपने भान्जों की तुलना में पुत्रों को अधिक महत्व देने लगता है। मैलिनोवस्की ने ट्रोब्रिमाण्डा द्वीप का उदाहरण देकर इस प्रकार के संघर्षों का उल्लेख किया है।

पितृश्वश्रेय (Amitate)

सत्ता के आधार पर परिवार दो प्रकार के होते हैं मातृसत्ता और पितृसत्ता। मातृसत्ता परिवारों में मामा का अधिक महत्व तथा विशेषाधिकार होता है। ठीक इसके विपरीत पितृसत्ता परिवारों में बुआ का अधिक महत्व और विशेषाधिकार होता है। इन परिवारों में पिता की बहन. को पितृश्वसा कहा जाता है। डॉ. रिवर्स ने बैक्सद्वीप में इस प्रथा के प्रचलन को पाया है। वहाँ बुआ ही भतीजे के लिए वधू ढूंढ़ती है तथा भतीजा मां से अधिक अपनी बुआ का सम्मान करता है। बुआ की संपत्ति का उत्तराधिकारी भी वही होता है। दक्षिणी अफ्रीका की अनेक जनजातियों में इस प्रकार की प्रथा का प्रचलन है। भारत में टोडा जनजाति में बच्चों को नामकरण बुआ ही करती है। इस संबंध में चैपल और कून का विचार है कि जिन संबंधियों से विवाह के बाद सामाजिक अंतःक्रिया के शिथिल होने की संभावना होती है, उन्हें निरंतर बनाए रखने के लिए इस प्रथा का प्रचलन हुआ है। बुआ विवाह के बाद दूसरे परिवार में चली जाती है। अतः इस प्रथा को बनाए रखने के लिए ही पितृश्वश्रेय प्रथा का प्रचलन हुआ।

सहप्रसविता या सहशक्ति (Couvade)

इसे कूवाद या सहकष्टी के नामे से भी जाना जाता है। इस प्रथा का संबंध प्रसवकाल से है। इस प्रकार की प्रथा भारत के खासी और टोडा जनजातियों में पाई जाती है। इसमें प्रसूता स्त्री के साथ उसके पति को भी कष्ट साध्य जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है। उसे प्रसूता की तरह नियत भोजन दिया जाता है तथा प्रसूता की भाँति ही अछूत माना जाता है। वह उन सभी निषेधों का पालन करता है, जिन्हें प्रसूता को करना पड़ता है।

प्रथा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या (Psychological Interpretation of Custom)

अनेक विद्वान इस प्रथा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हैं। उनका कहना है कि इस प्रथा के कारण पति- पत्नी में परस्पर प्रेम का विकास होता है। पत्नी को यह जानकर मानसिक प्रसन्नता होती है कि उसका पति उसके कष्टों में सहभागी है।

सहप्रसविता के कारण (Causes of Couvade) सहप्रसविता क्यों? इसके कारण क्या हैं? अनेक मानवशास्त्रियों ने इसके कारणों के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विचारों को दिया गया है -

1. मैलिनोवस्की का विचार है कि वैवाहिक संबंधों को अधिक दृढ़ बनाने और पैतृक प्रेम को प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के संबंधों का जन्म और विकास हुआ।

2. रेगलन ने इसे विवाह नामक संस्था के उद्विकास में एक सहयोगी कारक के रूप में स्वीकार किया है।

3. डॉ. एस.पी. दुबे के अनुसार इस प्रथा का प्रचलन पितृत्व निर्धारण करने के लिए हुआ होगा।

4. बहपति विवाही और मातृसत्तात्मक परिवारों में जहाँ संतान के जैविक पिता का निर्धारण करना कठिन रहा होगा, वहाँ वही व्यक्ति संतान का पिता माना जाता रहा होगा, जो सहकष्टी रीति का पालन करता रहा होगा।

5. कुछ विद्वानों का विचार है कि सहप्रसविता का कारण मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक संकुल की संक्रमण की अवस्था का एक अवशेष है। दोनों अवस्थाओं में

जब संक्रमण की स्थिति का जन्म हुआ होगा, तो सहप्रसविता की रीति का जन्म और विकास हुआ होगा।

नातेदारी का महत्व (Importance of Kinship)

नातेदारी का महत्व निम्नलिखित कारणों से है -

1. मानवशास्त्र के अध्ययन में उपयोगी मानवशास्त्र एक स्वतंत्र विज्ञान है। इस विज्ञान के ज्ञान की प्राप्ति के लिए नातेदारी का ज्ञान आवश्यक है। इसके आधार पर समाज की संरचना को समझाने में मदद मिलती है।

2. मानसिक संतुष्टि - नातेदारी के ज्ञान से व्यक्ति को मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है। साथ ही व्यक्ति स्वयं को अकेला नहीं समझता है। उसका भी कोई अपना है, ऐसा अहसास उसे मानसिक संतुष्टि देता है।

3. सामाजिक दायित्वों का निर्वहन मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसके अनेक सामाजिक दायित्व हैं। इन दायित्वों के निर्वहन में नातेदारी मदद करती है। नाते-रिश्तेदार पर्व, त्यौहार तथा सांस्कृतिक कार्यों में सम्मिलित होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं।

4. आर्थिक सहयोग - सदस्यों को आर्थिक सहयोग प्रदान करने में भी नातेदारी की महत्वपूर्ण भूमिका है। नातेदारी व्यक्ति को आर्थिक संकट से उबारती है।

5. अन्य महत्व नातेदारी के अन्य महत्व निम्न हैं -

(a) विवाह तथा परिवार का निर्धारण।

b) वंशावली, उत्तराधिकार तथा पटाधिकार का निर्धारण।

(c) समाज के विकास के स्वरों को समझने में मदद करना।

(d) व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित करना।

(e) व्यक्ति के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का निर्धारण।

(f) व्यक्तियों को सम्मान और प्रतिष्ठा देना।

5.5 धर्म (Religion)

उद्विकास के प्रसिद्ध विद्वान डार्विन (Darwin) ने लिखा है कि मनुष्य के पूर्वज बन्दर थे। इसी प्रकार हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने भी लिखा है कि समाज का उविकास हुआ है। उद्विकास का तात्पर्य यह है कि समाज धीरे-धीरे विकसित हुआ है और समाज का निर्माण अनेक संस्थाओं और संगठनों से होता है। इन सभी संस्थाओं और संगठनों को उद्विकास की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। धर्म समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। इस दृष्टि से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म का भी उद्विकास हुआ है।

जब धर्म का उद्विकास हुआ है तो हमारे सामने मौलिक समस्या उपस्थित होती है कि धर्म का जन्म क्यों और किस प्रकार हुआ? मनुष्य की कुछ आवश्यकताएँ होती हैं। वह इन आवश्यकताओं को पूरा करना चाहता है। आदिम मनुष्य इसी प्रकार के अनेक संकटों को अपने बीचा पाता था। इन सभी संकटों का स्वरूप भौतिक (Physical) था, जिन्हें हम भोजन, वस्त्र और आवास के रूप में कह सकते हैं। इसके साथ ही उसे प्राकृतिक शक्तियों का भी सामना करना पड़ता था जैसे बाढ़, बिजली, सूखा, ठंडक आदि।

मनुष्य के मस्तिष्क में इस प्रकार के स्वाभाविक प्रश्न पैदा होते थे कि इन प्राकृतिक घटनाओं का संचालन कौन करता है? पानी क्यों गिरता है? बिजली क्यों कौंधती है? यदि इसी प्रकार के अनेक प्रश्न उसके मस्तिष्क में पैदा होते थे। इसके साथ ही वह ऐसे प्रयास भी करता था जिनसे प्राकृतिक शक्तियों से अपनी रक्षा कर सके। इन सबका परिणाम यह हुआ कि वह परिस्थितियों के मध्य अपने को सहायक मानने लगा। ज्ञान के अभाव में वह इस प्रकार की धारणाएँ विकसित करने लगा कि इन घटनाओं का संचालन एक ऐसी शक्ति के माध्यम से होता है जो मनुष्य से परे है। शक्ति का रूप स्वीकार करने के बाद मनुष्य ने उस शक्ति में पूजा, आराधना जैसे कार्यों को विकसित किया और इस प्रकार धर्म नामक संस्था का जन्म हुआ।

धर्म की परिभाषा (Definition of Religion)

साधारण तौर पर धर्म का तात्पर्य मानव-समाज के परे अलौकिक तथा सर्वोच्च शक्ति पर विश्वास से है जिसमें पवित्रता, भक्ति, श्रद्धा, भय आदि तत्व सम्मिलित हैं। इन्हीं

तत्वों को दृष्टि में रखकर विभिन्न विद्वानों ने धर्म की जो परिभाषाएँ दी हैं, उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाओं को यहाँ प्रस्तुत किया गया।

(1) फ्रेजर "धर्म से मेरा तात्पर्य मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि अथवा आराधना करना है जिनके बारे में व्यक्तियों का विश्वास हो कि वे प्रकृति और मानव-जीवन को नियंत्रित करती हैं तथा उनको निर्देश देती हैं।"

(2) टेलर "धर्म का अर्थ किसी आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास करना है।"

(3) मजूमदार और मदन "धर्म किसी भय की वस्तु अथवा शक्ति का मानवीय परिणाम है, जो पारलौकिक है, इन्द्रियों से परे है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति तथा अनुकूलन का रूप है जो लोगों को अलौकिक शक्ति की धारणा से प्रभावित करता है।"

(4) दुर्खीम - "धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों और आचरणों की समग्रता है जो इन पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय के रूप में संयुक्त करती है।"

(5) हॉबेल- "धर्म अलौकिक शक्ति के ऊपर विश्वास पर आधारित है, जो आत्मावाद और माना को सम्मिलित करता है।"

(6) डॉ. राधाकृष्णन- "धर्म की अवधारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन स्वरूपों और प्रतिक्रियाओं को लाते हैं जो मानव-जीवन का निर्माण करती हैं और उसको धारण करती हैं।"

(7) मैलिनोवस्की - "धर्म क्रिया का एक ढंग है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी और धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ-साथ एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।"

(8) होनिगशीम - "प्रत्येक मनोवृत्ति जो इस विश्वास पर आधारित या इस विश्वास से सम्बन्धित है कि अलौकिक शक्तियों का अस्तित्व है और उनसे संबंध स्थापित करना सम्भव और महत्वपूर्ण है, धर्म कहलाती है।"

(9) ऑगबर्न और निमकॉफ "धर्म मानवोपरि शक्तियों के प्रति अभिवृत्तियाँ हैं।"

(10) गिलिन और गिलिन "धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत एक समूह अलौकिक से सम्बन्धित उद्देश्यपूर्ण विश्वास तथा इन विश्वासों से सम्बन्धित बाध्य व्यवहार, भौतिक वस्तुएँ और प्रतीक आते हैं।"

(11) जॉनसन "एक धर्म, प्राणियों, शक्तियों, स्थानों अथवा अन्य वस्तुओं की अलौकिक व्यवस्था से सम्बन्धित विश्वासों एवं व्यवहारों की अधिक या कम साम्यपूर्ण व्यवस्था है।"

(12) पॉल टिलिक "धर्म वह है, जो अन्ततः हमसे सम्बन्धित है।"

इस प्रकार 'धर्म को सामाजिक प्राणी के उन व्यवहारों और क्रियाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिनका सम्बन्ध अलौकिक शक्ति पर सत्ता से होता है।'

धर्म की विशेषताएँ (Characteristics of Religion)

विभिन्न विद्वानों ने धर्म की जो परिभाषाएँ दी हैं, उन परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए धर्म की निम्न प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है -

(1) धर्म का सम्बन्ध प्राकृतिक शक्तियों से होता है।

(2) इन प्राकृतिक शक्तियों का चरित्र दिव्य होता है अर्थात् इस प्रकार की शक्ति मानव-समाज से परे होती है।

(3) धर्म में पवित्रता का तत्व पाया जाता है। 100

(4) प्रत्येक धर्म की एक सैद्धान्तिक व्यवस्था होती है। इस सैद्धान्तिक व्यवस्था के द्वारा धर्म की सैद्धान्तिक व्यवस्था की जाती है और इसको व्यावहारिक रूप दिया जाता है।

(5) धर्म के माध्यम से मनुष्य और दैवीय शक्तियों के बीचा सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं।

(6) प्रत्येक धर्म में धार्मिक व्यवहार करने के कुछ निश्चित प्रतिमान होते हैं। ये प्रतिमान ईश्वरीय इच्छा को प्रकट करते हैं।

(7) धर्म में सफलता और असफलता दोनों ही तत्व पाये जाते हैं। इन तत्वों के आधार पर व्यक्ति को धार्मिक पुरस्कार और धार्मिक दण्ड मिलता है।

धर्म के मौलिक लक्षण (Fundamentals of Religion)

इससे पहले धर्म की विशेषताओं की विवेचना की गई है। इस विवेचना के द्वारा धर्म की अवधारणा स्पष्ट होती है। मौलिक विशेषताओं के अन्तर्गत धर्म के उन तत्वों या लक्षणों का विवेचन किया जायेगा जो सभी समाजों के विभिन्न धर्मों में सार्वभौमिक रूप से पाये जाते हैं। ये आधारभूत लक्षण निम्नलिखित भागों में विभाजित हैं.

(1) अलौकिक शक्ति में विश्वास धर्म का आधार एक ऐसी शक्ति है, जो मानवीय शक्ति अथवा इस लोक की शक्ति से परे है। प्रत्येक समाजों का धर्म इसी अलौकिक शक्ति के आधार पर टिका हुआ है। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार इस शक्ति को भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया है। इस शक्ति की व्यक्ति आराधना करते हैं और इस आराधना का आधार भी धर्म में विश्वास का होना है। एक कि

(2) मानसिक भावनाएँ धर्म का आधार तर्क न होकर मनोवैज्ञानिक तत्व होते हैं। तर्क के आधार पर धर्म को समझना अत्यन्त ही कठिन है। धर्म जिन मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित है, उनमें श्रद्धा, प्रेम, आतंक, भय, वेदना और विह्वलता प्रमुख हैं। इन्हीं मानसिक शक्तियों के आधार पर व्यक्ति अलौकिक शक्ति के नजदीक पहुँचने का प्रयास करता है।

(3) धार्मिक व्यवहार - धर्म का आधार अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करना है। उस शक्ति को प्रसन्न करने के लिए व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यवहार करते हैं। इन व्यवहारों में व्यक्ति अपने को पतित एवं तुच्छ कहता है तथा भगवान को दयालु, पाप-विनाशक और ब्रह्म की संज्ञा देता है। इसके अतिरिक्त नृत्य, शारीरिक कष्ट, कर्मकाण्ड, यात्रा आदि के माध्यम से इस अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करते हैं। इसके साथ ही अनेक प्रकार के संस्कारों का सम्पादन करते हैं।

(4) धार्मिक प्रतीक - प्रत्येक सामाजिक संस्थाओं के अपने अलग-अलग प्रतीक होते हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से इस संस्था को पहचाना जाता है। धर्म भी एक सामाजिक संस्था है। धर्म नामक सामाजिक संस्था को पहचानने के लिए कुछ निश्चित प्रतीकों का समाज में प्रचलन हुआ है। इन प्रतीकों में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित है, जैसे - मूर्ति भगवान का प्रतीक, धूपबत्ती सुगन्ध की प्रतीक, आसन और रेशमी वस्त्र पवित्रता के प्रतीक, रामायण और गीता ईश्वरीय ज्ञान के प्रतीक हैं।

(5) धार्मिक श्रेणियाँ - प्रत्येक समाज में सामाजिक संस्तरण पाया जाता है। इस संस्तरण का आधार व्यक्ति को ऊँचे और नीचे पदों के आधार पर भिन्न-भिन्न पदों पर विभाजित करना होता है। धर्म में भी इसी प्रकार का संस्तरण पाया जाता है। यह संस्तरण देवताओं के अतिरिक्त धार्मिक मनुष्यों में भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए धार्मिक दृष्टि से पुरोहित सबसे ऊँचे संस्तरण में होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति आते हैं।

धर्म की भूमिका (Role of religion)

जैसा कि इसकी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वास का नाम है। इस विश्वास के आधार पर मनुष्य में अनेक सामाजिक और मानसिक गुणों का विकास होता है। इसका कारण यह है कि धर्म की समाज में महत्वपूर्ण भूमिका है। सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र से धर्म का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक नियंत्रण के दो प्रकार हैं

(a) औपचारिक सामाजिक नियंत्रण (Formal Social Control)।

(b) अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण (Informal Social Control)।

धर्म अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण का साधन है। सामाजिक नियंत्रण की दृष्टि से धर्म की भूमिका को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) समाजीकरण - धर्म का सम्बन्ध भावनाओं से होता है। इस दृष्टि से धर्म व्यक्ति के अन्दर अनेक सामाजिक गुणों को विकसित करता है। इन गुणों में सहिष्णुता, दया, धर्म, स्नेह, सेवा और सहयोग प्रमुख हैं। व्यक्ति में इन सामाजिक गुणों के विकास के परिणामस्वरूप समाज की व्यवस्था में शक्ति एवं क्षमता का विकास होता है। धर्म व्यक्ति के व्यवहारों को भी नियंत्रित करता है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में ऐसा कहा जा सकता है कि धर्म सामाजिक नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

(2) धार्मिक संगठनों की प्रेरणा सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है कि इसके माध्यम से समाज में विभिन्न प्रकार की धार्मिक संस्थाओं और संगठनों का विकास होता है। ये धार्मिक संगठन और संस्थाएँ समाज में स्थिरता की स्थापना करते हैं। इसका कारण यह है कि धर्म का आधार विश्वास और आस्था है,

जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति बदलती हुई परिस्थितियों में भी इन संगठनों और संस्थाओं की उपेक्षा नहीं करता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में सदस्यों के व्यवहारों में नैतिकता का विकास है और सामाजिक संगठन अधिक शक्तिशाली बनता है।

(3) सद्गुणों का विकास धर्म एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसके माध्यम से मनुष्यों के सद्गुणों का समुचात विकास होता है। हाफडिंग ने लिखा है "धर्म बनाया नहीं जाता, इसका विकास तो मानव के जीवन संघर्षों की उमंगों से होता है। विकास की परम्परा में अपने अनुभवों के आधार पर मनुष्य अपने जिन मूल्यों को उचित समझता है प्रत्येक परिस्थिति में उन्हीं मूल्यों पर अटल रहने की प्रेरणा से धर्म का जन्म होता है।" इसका तात्पर्य यह है कि समाज के अधिकांश व्यक्ति धर्म पर विश्वास करते हैं। इससे उनका जीवन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जीवन को प्रभावित करता है। व्यक्ति अपने धार्मिक आदर्शों के अनुसार जीवन को ढालने का प्रयास करता है। इसका परिणाम यह होता है कि इसके अन्दर अनेक मानवीय गुणों का विकास होता है।

(4) व्यक्ति के अपूर्व सत्ता का अनुभव धर्म का सम्बन्ध एक सत्ता से है जो सर्वशक्तिमान और अलौकिक है। इस दृष्टि से धार्मिक व्यक्ति सभी कार्यों को ईश्वरीय इच्छा का प्रतीक मानते हैं। इसके साथ ही उनमें ऐसा विश्वास रहता है कि भगवान अच्छा-बुरा जो भी करता है, व्यक्ति के कल्याण की दृष्टि से ही करता है। जीवन में जो भी कष्ट और विपत्तियाँ आती हैं, वे मात्र परीक्षा के लिए होती हैं। इन्हीं विपत्तियों के आधार पर भगवान व्यक्ति की धार्मिक परीक्षा करता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति के अन्दर अपूर्व शक्ति का विकास होता है।

(5) सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक यदि हम मानव-समाज के इतिहास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव जीवन अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त था। इन समस्याओं के समाधान के लिए समाज में अनेक संगठनों और संस्थाओं का जन्म हुआ। धर्म के माध्यम से हम अनेक सामाजिक समस्याओं से मुक्ति पाते हैं। जैसे भक्त दुःखों से मुक्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करता है और ऐसा करने से उसे मानसिक शान्ति मिलती है। इस प्रकार संक्षेप में धर्म में वही शक्ति

है जिससे व्यक्ति में आत्म-विश्वास पैदा होता है। इस आत्म-विश्वास के कारण सामाजिक नियंत्रण में सहायता मिलती है।

(6) पवित्रता की भावना का विकास प्रसिद्ध समाजशास्त्री दुर्खीम ने धर्म के अनेक सामाजिक कार्यों की विवेचना की है। धर्म का जो मौलिक कार्य है वह यह है कि इससे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में पवित्रता की भावना का विकास होता है। इसके साथ ही धर्म अपवित्र और भ्रष्ट कार्यों पर रोक भी लगाता है। धार्मिक दृष्टि से समाज में सिर्फ उन्हीं कार्यों को उत्पन्न किया जाता है, जो शुद्ध समझे जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज एक संगठन में बंध जाता है।

(7) धर्म समाज का आधार है धर्म एक ऐसा तत्व है, जिस पर सम्पूर्ण समाज का ढाँचा आधारित है, इसका कारण यह है कि धर्म के अन्तर्गत अनेक उच्च आदर्श और मूल्य होते हैं। इसके साथ ही धर्म का आधार अलौकिक शक्तियों में विश्वास भी होता है। इस अलौकिक शक्ति के डर के कारण से आदर्शों और मूल्यों की उपेक्षा नहीं करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में शांति-व्यवस्था और एकता का विकास होता है।

(8) नैतिकता और मूल्यों का विकास धर्म समाज का वह आधार है जिसके माध्यम से समाज में मानवीय मूल्यों और नैतिक भावनाओं का विकास होता है। संक्षेप में धर्म निम्न माध्यमों से समाज में मूल्यों और नैतिकता का विकास करता है -

(a) धर्म वह साधन है जिससे व्यक्तिवाद की भावना समाप्त होती है और समूहवाद की भावना का विकास होता है। जब व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक हितों में संघर्ष होता है तो मूल्य और नैतिकता सामाजिक हितों की रक्षा करते हैं।

(b) मूल्य धर्म के वे आधार हैं जिन्हें व्यक्ति अन्तःकरण से स्वीकार करता है। इस कारण मूल्यों के आधार पर व्यक्तियों का जीवन निर्देशित होता है।

(c) धर्म नैतिक भावनाओं की वृद्धि में भी सहायता करता है।

(d) धर्म वह शक्ति है जिससे मनुष्य में निराशा की भावना कम होती है। साथ ही साथ मनुष्य में उत्साह और नैतिकता की वृद्धि होती है। इसका परिणाम यह होता है कि

मनुष्य अनेक प्रकार के संकटों, दुःखों और निराशाओं में भी नैतिकता बनाये रखने का प्रयास करता है। धर्म के माध्यम से समाज में मूल्यों का निर्माण होता है और इन मूल्यों की प्रतिस्थापना की जाती है। इन मूल्यों के आधार पर धर्म समाज में महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता है। ন এই চিথেরী

(9) सामाजिक तनाव को रोकना धर्म एक ऐसा साधन है जो मनुष्य को चिन्ता और निराशा से मुक्ति दिलाता है। धर्म के अभाव में मनुष्य अनेक प्रकार के मानसिक तनावों का शिकार हो जाता है। ये तनाव समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देते हैं जैसे अपराध, मद्यपान, जुआ आदि। धर्म व्यक्ति को इन मानसिक तनावों से मुक्ति दिलाता है।

(10) सुरक्षा की भावना धर्म के माध्यम से व्यक्ति में सुरक्षा की भावना का भी विकास होता है। धार्मिक लोगों में ऐसा विश्वास है कि जन्म और मृत्यु भगवान के हाथ है। वह सभी प्राणियों का पालन-पोषण भी करता है। इसके साथ-साथ भगवान समदर्शी भी है। व्यक्ति में ऐसा विश्वास रहता है कि जब भगवान इतने गुणों से सम्पन्न है तो वह व्यक्ति के साथ किस प्रकार असुरक्षात्मक कार्य नहीं कर सकते। इससे सभी व्यक्ति धर्म और भगवान के आगे सुरक्षा का अनुभव करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म का सम्बन्ध अलौकिक शक्ति से है। वह अलौकिक शक्ति विश्व में सदैव विद्यमान है। समाज में जब भी संकट आये हैं, धर्म ने इन संकटों से व्यक्ति की रक्षा की है। आधुनिक युग विज्ञान का होते हुए भी सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में धर्म का महत्व कम नहीं हुआ है, चाहे भले ही अनेक व्यक्ति धर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हों। साम्यवादी देशों में तो धर्म को अफीम की गोली कहकर सम्बोधित किया है, इसके बावजूद भी धर्म के महत्व को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया है। संक्षेप में धर्म वह शक्ति है जो व्यक्ति को नियंत्रण में रखकर उसके नैतिक और मानवीय मूल्यों को विकसित करके व्यक्ति के विकास में सहायता प्रदान करता है।

5.6 **जादू** (Magic)

धर्म और जादू मानव-समाज के उद्विकास के आधार रहे हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि आदिम समाजों • में जादू टोने का अस्तित्व रहा है तथा आज भी है। धर्म और जादू में प्राचीनता के दृष्टिकोण से उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में कई प्रकार की विचारधाराएँ हैं

(a) कुछ मानवशास्त्री मानते हैं कि जादू की उत्पत्ति पहले हुई और धर्म की बाद में।

(b) मानवशास्त्रियों का एक ऐसा समूह है, जो यह मानता है कि धर्म की उत्पत्ति पहले हुई और जादू की बाद में।

(c) कुछ ऐसे मानवशास्त्री भी हैं, जो धर्म और जादू की उत्पत्ति के बारे में समन्वित दृष्टिकोण अपनाते हैं। इन विद्वानों के अनुसार धर्म और जादू की उत्पत्ति साथ-साथ हुई है।

आदिकाल से मानव का अलौकिक शक्ति में विश्वास रहा है। यह अलौकिक शक्ति संसार की समस्त घटनाओं का संचालन करती है। अलौकिक शक्ति पर नियंत्रण स्थापित करने के मानव ने दो तरीके अपनाए थे-

(i) अलौकिक शक्ति की आराधना करना और इस आराधना से अलौकिक शक्ति को अपने नियंत्रण में रखना। अलौकिक शक्ति को अपने नियंत्रण में रखकर मानव अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता था। आराधना का यही स्वरूप कालान्तर में धर्म के रूप में विकसित हुआ।

(ii) अलौकिक शक्ति पर नियंत्रण रखने का दूसरा उपाय था, इसे दबाकर अपने वश में रखे और इस प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति करे। अलौकिक शक्ति को अपने नियंत्रण में रखने का दबाव ही कालान्तर में जादू के नाम से जाना गया।

जादू की परिभाषा (Definition of magic)

जादू की अवधारणा को व्यक्त करने के लिए कुछ विद्वानों ने इसकी परिभाषाएँ दी हैं। यहाँ इन्हीं विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं में से कुछ को रखा जाएगा। जादू की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं -

(1) मैलिनोवस्की - "जादू विशुद्ध व्यावहारिक क्रियाओं का एक योग है, जिनका प्रयोग उद्देश्यों की पूर्ति के साधन के रूप में किया जाता है।"

(2) कीसिंग "टेक्निकल अर्थों में जादू एक ऐसा शब्द है, जो कि विविध पद्धतियों को सम्मिलित करता है, जिससे कि मानव स्वतः घटनाओं के क्रम को प्रभावित करता है, जो कि अलौकिक शक्ति को छूता है। एक जादुई क्रिया एक संस्कार है जो मानव-इच्छाओं की संतुष्टि के लिए विशेष पद्धति द्वारा मोड़ती है।"

(3) पिडिंग्टन - "जादू प्रत्यक्ष रूप से परिणामों को उत्पन्न करता है अर्थात् बिना आत्मीय जनों के हस्तक्षेप यह अनिवार्यतः यदा-कदा गुप्त होता है, इसका एक निश्चित उद्देश्य होता है तथा यह दोषमुक्त होता है, इसलिए समाज इसकी निन्दा करता है।"

(4) डॉ. दुबे - "जादू उस शक्ति विशेष का नाम है, जिससे अति मानवीय जगत पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके और उसकी क्रियाओं को अपनी इच्छानुसार भले या बुरे, शुभ-अशुभ उपयोग में लाया जा सके।"

(5) बील्स तथा हाइजर "जादू संसार को नियंत्रित करने के लिए तकनीकियों तथा विधियों का एक समूह है, जो इस कल्पना पर आधारित है कि यदि कुछ कार्यक्रमों को सूक्ष्म रूप से काम में लाया गया, तो कुछ परिणाम अवश्य निकलेंगे। यह कारण तथा कार्य की सम्पूर्ण नियमितता की पूर्व कल्पना है।"

(6) फ्रेजर - "जादू अपने में दो मौलिक कल्पनाएँ सम्मिलित करता है। पहली, कि समान वस्तु उत्पन्न करती है अथवा एक कारण के सदृश्य होता है तथा दूसरी, जो कि एक समय सम्पर्क में रही वह सदैव सम्पर्क में रहकर दूर से उस समय भी क्रिया एवं प्रतिक्रिया करती है, जबकि शारीरिक सम्बन्ध टूट जाता।"

इस प्रकार 'जादू वह मानवीय-शक्ति है, जिसका उपयोग मानव अलौकिक शक्तियों को अपने नियंत्रण में रखने के लिए करता है, जिनकी सहायता से मानव अपने अच्छे और बुरे उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए करता है।'

जादू की विशेषताएँ

ऊपर जिन विद्वानों की परिभाषाओं को दिया गया है, उनको ध्यान में रख जादू की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है जारी कराई ग

(1) जादू एक प्रकार की शक्ति होती है।

(2) इस शक्ति को संचालित करने के लिए एक जादूगर होता है, जो जादू पर नियंत्रण रखता है।

(3) जादू का उपयोग अलौकिक शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

(4) इसका सम्बन्ध मानव जगत से नहीं है। जादू अतिमानवीय जगत से संबंधित होता है।

(5) जादू का उपयोग जादूगर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार से कर सकता है। जादू से जहाँ एक ओर जादूगर अच्छे कार्य कर सकता है, वहीं दूसरी ओर वह बुरे कार्य भी कर सकता है। (N

जादू के प्रकार (Types of magic)

जादू की परिभाषाओं और विशेषताओं की विवेचना करने के पश्चात् जादू के विभिन्न प्रकारों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। जादू के प्रकार या स्वरूप के बारे में मानवशास्त्री एक मत नहीं हैं। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न मानवशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। कुछ प्रमुख मानवशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण इस प्रकार है

(1) डॉ. दुबे का वर्गीकरण - प्रसिद्ध भारतीय मानवशास्त्री डॉ. श्यामाचारण दुबे ने जादू को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया है -

(a) सम्वर्धक जादू (Productive Magic)- सम्वर्धक जादू, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, यह किसी न किसी प्रकार के निर्माण से सम्बन्धित होता है। इस जादू की सहायता से मानव अपनी सम्वृद्धि में वृद्धि करता है। उदाहरण के लिए व्यापार में लाभ, वर्षा के अभाव को दूर करना, प्रेमी-प्रेमिका की सफलता आदि प्रमुख हैं।

(b) संरक्षक जादू (Protective Magic)- इस प्रकार के जादू की सहायता से संरक्षण का कार्य किया जाता है। इस जादू का प्रयोग समाज तथा व्यक्ति के बचाव के लिए किया जाता है।

(c) विनाशक जादू (Destructive Magic)- इस जादू का उपयोग विनाशकारी कार्यों के लिए किया जाता है। इस प्रकार के जादू की सहायता से विनाशकारी घटनाएँ पैदा की जाती हैं। इसमें सम्पत्ति और व्यक्ति को नष्ट करने वाले जादू सम्मिलित हैं।

(2) मैलिनोवस्की का वर्गीकरण - मैलिनोवस्की ने जादू को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है-

(a) काला जादू (Black Magic)- काला जादू वह जादू है, जो समाज में मान्यता प्राप्त नहीं है तथा जिसका उपयोग समाज को हानि पहुँचाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार के जादू में भूत-प्रेतों की सिद्धि, टोना- टोटका आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(b) सफेद जादू (White Magic)- यह जादू दूसरों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता है। चूँकि इससे समाज को लाभ होता है, अतः इस जादू को सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है। (2)

(3) फ्रेजर का वर्गीकरण फ्रेजर ने जादू को निम्न दो भागों में विभाजित किया है -

(a) अनुकरणात्मक जादू (Imitative Magic)- अनुकरणात्मक जादू समानता के नियम (Law of Similarity) पर आधारित होता है। इसे संवेदनात्मक जादू के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार के जादू में कार्य-कारण समानता पाई जाती है।

(b) संक्रामक जादू (Contact Magic)- इस प्रकार के जादू को सम्पर्क जादू भी कहा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के नाखून काटकर उन पर जिस प्रकार की क्रिया की जाएगी, व्यक्ति पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ेगा।

धर्म और जादू (Religion and magic)

अनेक मानवशास्त्री धर्म और जादू में कोई खास अन्तर नहीं मानते हैं। धर्म और जादू में कुछ समानताएँ तथा कुछ असमानताएँ हैं। ये समानताएँ एवं असमानताएँ निम्नलिखित हैं -

समानताएँ - धर्म और जादू में प्रमुख समानताएँ इस प्रकार हैं -

(1) धर्म और जादू के सामान्य तत्वों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म और जादू दोनों का ही अलौकिक शक्ति (Supernatural Power) में विश्वास है।

(2) धर्म और जादू में अलौकिक शक्ति में समानता के साथ ही सामान्य तत्वों (Common Elements) में भी समानता है।

(3) धर्म और जादू दोनों ही परम्पराओं (Traditions) पर आधारित होते हैं।

(4) दोनों में ही कुछ न कुछ अनिवार्य निषेधों (Taboos) का पालन करना पड़ता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि निर्धारित निषेधों का पालन किए बिना वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती है।

(5) धर्म और जादू में कुछ परम्परागत विधियाँ होती हैं, जिनका सम्पादन अनिवार्य है। अपने निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इन धार्मिक विधियों का पालन अनिवार्य है।

(6) धर्म और जादू दोनों का प्रयोग जीवन में आने वाले संकट से मुक्ति पाना है।

(7) धर्म और जादू दोनों में ही उद्वेगात्मक तनाव (Emotional Tension) पाया जाता है।

असमानताएँ- उपर्युक्त समानताओं के अतिरिक्त धर्म और जादू में कुछ असमानताएँ भी हैं, जो इस प्रकार हैं-

(1) धर्म और जादू दोनों ही क्रियाओं के उद्देश्यों की प्राप्ति की प्रतिक्रिया में अंतर है। धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन इस आधार पर किया जाता है कि इससे उद्देश्य प्राप्त भी किया जा सकता है और नहीं भी, किन्तु जादुई क्रियाओं का सम्पादन मात्र उद्देश्य प्राप्ति के लिए ही किया जाता है।

(2) धर्म सामूहिक कल्याण की भावना पर आधारित होता है, जबकि जादू में व्यक्तिगत कल्याण की भावना पाई जाती है,

(3) धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन सभी व्यक्ति कर सकते हैं, किन्तु जादुई क्रियाओं का सम्पादन सिर्फ वही व्यक्ति कर सकते हैं, जो कि उन क्रियाओं को सम्पादित करने में निपुण होते हैं।

(4) धर्म के प्रति श्रद्धा की भावना होती है, जबकि जादू के प्रति भय की भावना।

(5) धर्म और जादू दोनों ही अलौकिक शक्ति में विश्वास करते हैं, किन्तु दोनों की विश्वास पद्धतियों में अन्तर है। धार्मिक शक्ति को विनती और पूजा द्वारा अपने वश में करके उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है, जबकि जादू में अलौकिक शक्ति को दबाकर और उसे अपने नियंत्रण में रखकर अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

(6) धर्म सामाजिक कार्य है, जबकि जादू व्यक्तिगत कार्य है।

विज्ञान और जादू (Science and Magic)

इससे पहले धर्म और जादू की विस्तृत व्याख्या की गई है तथा इन दोनों में समानताओं और असमानताओं का उल्लेख किया गया है। विज्ञान और जादू में समानताओं तथा असमानताओं का उल्लेख करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि विज्ञान क्या है -

समानताएँ - विज्ञान और जादू में निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती हैं -

(1) विज्ञान और जादू दोनों का ही उद्देश्य अदृश्य संसार में प्रवेश करके इसकी गोपनीयता का पता लगाना है।

(2) विज्ञान और जादू दोनों ही अदृश्य संसार में प्रवेश करने के लिये एक ही पद्धति (Method) का प्रयोग करते हैं। इसी पद्धति के कारण जादू को प्राचीन विज्ञान कहा गया है।

(3) विज्ञान और जादू अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जिन नियमों का पालन करते हैं, उनमें भी समानता पाई जाती है।

(4) जादू और विज्ञान दोनों ही अपने परिणामों के बारे में आश्वस्त रहते हैं। अर्थात् दोनों को ही पता रहता है कि यदि वे विशिष्ट नियमों का पालन करेंगे, तो क्या परिणाम निकलेगा।

(5) विज्ञान और जादू दोनों के नियमों में समरूपता पाई जाती है। यही कारण है कि फ्रेजर ने दोनों को सौतेली बहनें कहा है।

असमानताएँ - उपर्युक्त समानताओं का यह कदापि अर्थ नहीं है कि धर्म और जादू में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं है। दोनों में प्रमुख असमानताएँ निम्न हैं -

(1) विज्ञान भौतिक घटनाओं पर आधारित होता है, जबकि जादू सामाजिक और मानसिक घटनाओं पर आधारित होता है।

(2) दोनों के परिणामों (Results) में भी अन्तर है। जादू के परिणाम भ्रम और मिथ्यापूर्ण होते हैं, जबकि विज्ञान के परिणाम सदैव सत्यता पर आधारित होते हैं।

(3) जादू अलौकिक शक्ति पर आधारित होता है, जबकि विज्ञान का आधार भौतिक शक्ति होती है।

(4) विज्ञान द्वारां प्राप्त परिणामों को प्रमाणित करने के लिए इनकी कई बार परीक्षा की जाती है, किन्तु जादू में ऐसा नहीं किया जाता है।

5.7 टोटम (Totem)

सम्पूर्ण मानव समाज उद्विकास की प्रक्रिया का परिणाम है। इस प्रक्रिया का प्रभाव वन्यजातीय समाज पर भी पड़ा है तथा अन्य अनेक संगठन और सांस्कृतिक विशेषताएँ उद्विकास की प्रक्रिया से गुजरी हैं। मानव विचार और चिन्तन भी अनेक स्तरों से गुजरा है। विचार और चिन्तन की इस प्रक्रिया में वंश-मूल की उत्पत्ति का स्थान भी महत्वपूर्ण रहा है। जनजातीय या वन्यजातीय सामाजिक संगठन में वंश के मूल की उत्पत्ति के आधार मात्र सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू ही नहीं रहे हैं, अपितु भौतिक पहलुओं का भी इस उत्पत्ति में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ये भौतिक वस्तुएँ पशु, पक्षी या अन्य भौतिक पदार्थ भी हो सकते हैं। अपनी उत्पत्ति के सम्बन्ध में वन्यजातीय समाजों में

जो आधार प्रस्तुत किए गए हैं, वे श्रद्धा, भक्ति, आदर और अन्धविश्वास के रूप में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार टोटम की कल्पना वन्यजातीय समूहों में मूल वंश की उत्पत्ति से सम्बन्धित है।

टोटम की परिभाषा (Definition of totem)

उपर्युक्त विवेचना से टोटम के अर्थ को समझने में मदद मिलती है। टोटम के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए अनेक समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों ने इसे परिभाषाओं के रूप में व्यक्त किया है। यहाँ टोटम की इन्हीं परिभाषाओं में से कुछ को दिया जाएगा, जो निम्न हैं -

(1) पिडिंगटन- पिडिंगटन ने टोटम की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए लिखा है कि - "यह शब्द (टोटम) एक 'छिप्पिवा' शब्द से उधृत किया गया है, जो विभिन्न रूप 'डोडेम', 'टुडेम', 'अटाँटिमन' तथा 'ओडोडम' प्रयोग में लाया जाता है, अंग्रेजी भाषा में टोटम के रूप में अपना लिया गया है।"

(2) ब्राउन - "टोटम प्रथाओं तथा विश्वासों का एक समूह है जो समाज तथा पौधों और पशुओं एवं दूसरे प्राकृतिक पदार्थों, जो कि सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण हैं, के मध्य सम्बन्धों का एक विशिष्ट क्रम बैठाता है।"

(3) हावेल- "टोटम एक पदार्थ, प्रायः एक पशु अथवा एक पौधा है, जिसके प्रति एक सामाजिक समूह के सदस्य विशेष श्रद्धाभाव रखते हैं और जो यह अनुभव करते हैं कि उनके और टोटम के बीच भावनात्मक समानता का एक विशिष्ट बन्धन है।"ন্সিত।

(4) फ्रेजर "टोटम भौतिक वस्तुओं का एक वर्ग है, जिसका एक आदिम जाति यह विश्वास रखते हुए कि उसके तथा गौत्र के प्रत्येक सदस्य के बीच एक विशिष्ट आन्तरिक सम्बन्ध विद्यमान है, की अन्धविश्वासपूर्वक आदर करती है।"

(5) चार्ल्स विनिक- "टोटम एक वस्तु है, जिसके प्रति रक्त सम्बन्धी इकाई से सदस्य एक विशिष्ट मिथ्यावादी सम्बन्ध रखते हैं तथा जिसके साथ इकाई का नाम संलग्न है। यह वस्तु पशु, पौधा अथवा खनिज पदार्थ हो सकती है।"

(6) कोसिंग- "यह शब्द (टोटम) विभिन्न क्रियाओं तथा विश्वास प्रणालियों की ओर निर्देश करता है, जो अपना सामान्य लक्षण मानव तथा पशुओं, पौधों या निर्जीव वस्तुओं के बीच एक काल्पनिक सम्बन्ध रखते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि 'टोटम एक विश्वासपूर्ण नाम है, जो वृक्ष, पौधा, पशु आदि से सम्बन्धित हो सकता है। इसका गौत्र के सदस्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

टोटम की विशेषताएँ (Characteristics of Totem)

ऊपर जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि टोटम में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं -

(1) श्री मजूमदार और हट्टन ने टोटम की विशेषताओं को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया है-

(a) टोटम किसी पेड़, पौधा, वनस्पति या पशु के प्रति एक विशिष्ट मानसिक दशा का सूचकांक है,

(b) टोटम गौत्र से सम्बन्धित होता है, और

(c) इसका आधार बहिर्विवाह होता है।

टोटम खास गौत्र के व्यक्तियों के मूल पुरुष से सम्बन्धित होता है,

(3) इस प्रकार विशिष्ट गौत्र समूह के व्यक्ति आपस में एक दूसरे को रक्त सम्बन्धी मानते हैं,

(4) टोटम के साथ गौत्र के सम्बन्ध अत्यन्त ही अलौकिक और गूढ़ होते हैं,

(5) प्रत्येक गौत्र के सदस्यों में टोटम से सम्बन्धित निषेधों का पालन किया जाता है। अर्थात् उस गौत्र के सदस्य टोटम के प्राणी या वस्तु को मारना, उसे चोट पहुँचाना या नुकसान पहुँचाना निषिद्ध मानते हैं,

(6) टोटम का आधार बहिर्विवाही होता है। इसका कारण यह है कि एक ही टोटम के सभी सदस्य आपस में एक दूसरे को रक्त सम्बन्धी मानते हैं। इस कारण टोटम से बाहर विवाह किए जाते हैं।

(7) टोटम का आधार अलौकिक विश्वास (Supernatural Belief) है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि टोटम अग्रांकित दो प्रकार से अपने सदस्यों की रक्षा करता है-

(a) समूह की रक्षा और कल्याण,

(b) खतरों की चेतावनी।

(8) टोटम एक पवित्र अवधारणा है। इसके प्रति सदस्यों की विशेष श्रद्धा, भक्ति और आदर-भाव होता है।

(9) टोटम पर आदर भाव और श्रद्धा होने के कारण इसके सभी सदस्य इसकी पूजा करते हैं।

टोटम की उत्पत्ति के सिद्धान्त (Theories of the origin of totem)

टोटम की उत्पत्ति कैसे हुई? इस सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं हैं। विद्वानों के मतों में विविधता के कारण टोटम की उत्पत्ति के सिद्धान्तों में भी विविधता है। टोटम की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

(1) समाजशास्त्रीय सिद्धान्त (Sociological Theories)- टोटम की उत्पत्ति का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त समाजशास्त्रीय सिद्धान्त है। इस मत को मानने वाले प्रमुख विद्वानों के विचार निम्न हैं -

(a) हापकिन्स (Hopkins)- हापकिन्स ने उपयोगितावादी दृष्टि को ध्यान में रखकर टोटम की उत्पत्ति को समझाने का प्रयास किया है। जीवन में पेड़, पौधों और वनस्पतियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जिन वनस्पतियों और पेड़, पौधों का वन्यजाति के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है, उसके प्रति वह वन्यजाति पूजा और आदर के भाव रखती है। यही आदर का भाव बाद में टोटम की उत्पत्ति का आधार बना।

(b) हैडन (Haddan)- हैडन का विचार है कि प्रारम्भ में प्रत्येक वन्यजाति किसी न किसी विशिष्ट वनस्पति के आधार पर जीवन-यापन करती थी। वन्यजातियों में सम्पर्क के कारण यह वनस्पति दूसरे समुदाय में भी आदर योग्य हो गई। कालान्तर में यही महत्वपूर्ण वनस्पति उस विशिष्ट वन्यजाति की उत्पत्ति का आधार बनी।

(c) फ्रेजर (Frazer)- जेम्स फ्रेजर ने अरुन्ता (Aruntas) जाति का उदाहरण देकर गौत्र की उत्पत्ति को समझने का प्रयास किया है। अरुन्ता जाति में आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म में विश्वास है। जब किसी सदस्य की मृत्यु होती है, तो वह पुनर्जन्म तक किसी पेड़ आदि में निवास करता है। आत्मा चूँकि परिवार के सदस्य की होती है, अतः उसकी पूजा की जाती है, जो कालान्तर में पूर्वज के रूप में जानी जाती है। यहाँ यह आत्मा निवास करती है पूजा और विश्वास के कारण वह अपने आप ही टोटम का रूप धारण कर लेती है।

(d) एलविन (Elvin)- डॉ. वैरियर एलविन ने ऐतिहासिक आधारों पर टोटम की उत्पत्ति को समझाने का प्रयास किया है। यदि कोई ऐतिहासिक घटना किसी वन्यजाति के सदस्य पर घटी तो उसे अलौकिक माना और कालान्तर तक उसकी पूजा करने लगे, जिसने टोटम का रूप धारण कर लिया। उदाहरण के लिए साँप ने किसी सदस्य की रक्षा की हो, जो बाद में टोटम के रूप में परिवर्तित हो गया।

(e) वाइजर (Golden Weiser) वाइजर के अनुसार टोटम की उत्पत्ति सामाजिक और धार्मिक कारणों से हुई। सामाजिक परिस्थितियों तथा दशाओं ने टोटम की उत्पत्ति के लिए आधारशिला निर्मित की।

(f) राय- रायबहादुर शरतचन्द्र राय ने भारत की ओरांव वन्यजाति का उदाहरण देते हुए लिखा है कि टोटम की उत्पत्ति किसी ऐसी वनस्पति या घटना है, जिसने समुदाय के किसी सदस्य के प्राणों की रक्षा की हो, जो बाद में पूज्य हो गई और टोटम कहलाई।

(2) नामवादी सिद्धान्त (Nominalistic Theory)- इसे नामवाद सम्बन्धी सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धान्त को मानने वाले प्रमुख विचारकों के मत इस प्रकार हैंकको

(a) हर्बर्ट-स्पेन्सर (Herbert Spencer)- उद्विकासवादी समाजशास्त्री हर्बर्ट स्पेन्सर ने इस मत का प्रतिपादन किया था। उसके अनुसार टोटम की उत्पत्ति गौत्रों के नामकरण पर आधारित है। उदाहरण के लिए किसी पौधे का जीवन में अधिक महत्व है, वह वन्यजाति के सदस्यों की रक्षा करता है। उस वन्यजाति के सभी सदस्य उस वस्तु का आदर करते हैं। कालान्तर में वही वस्तु टोटम का रूप धारण कर लेती है। गोरक्षा ए

(b) मैक्समूलर (Maxmuller)- मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक में टोटम के निम्न चार अर्थ बतला हैं-

(i) टोटम गौत्र-चिन्ह है,

(ii) गौत्र का एक नाम होता है, 10

(iii) यह किसी वस्तु के नाम पर आधारित है,

(iv) गौत्र के सभी सदस्य उसका आदर करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि टोटम की उत्पत्ति किसी नाम विशेष के आधार पर हुई है-

(c) एन्ड्र्यू लांग (Andrew Lang)- लांग का विचार है कि जब व्यक्तियों ने अपने पूर्वजों के नाम याद करना प्रारम्भ किया होगा, तो किसी विशिष्ट व्यक्ति या वस्तु को अपना पूर्वज माना होगा और इसी से अपनी उत्पत्ति मानने लगे होंगे।

टोटमवाद (Totemism)

टोटमवाद एक प्रकार की भावना है जो एक विशिष्ट प्रकार के टोटम में विश्वास करने वाले व्यक्तियों में पाई जाती है। इस दृष्टि से अनेक मानवशास्त्रियों और समजशास्त्रियों ने टोटमवाद की व्याख्या करने का प्रयास किया है, इनमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-प्रकारही

(1) वाइजर "वह संस्था जो गौत्रों का निर्माण करती है, उनके टोटम तथा सहयोगी विश्वास, प्रथाएँ तथा संस्कारों को टोटमवाद कहते हैं।"

(2) नोट्स एण्ड क्वेरीज ऑन एन्थ्रापोलॉजी- "टोटमवाद शब्द एक सामाजिक संगठन तथा धार्मिक जादू-प्रथाओं के स्वरूप के लिए प्रयोग किया जाता है, जिसकी केन्द्रीय

विशेषता, कुछ जीवित तथा निर्जीव वस्तुओं के वर्ग के साथ एक वन्यजाति में कुछ समूहों को सम्मिलित करना है।"

टोटमवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Totemism)

टोटमवाद की विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है -

(1) टोटमवाद सामाजिक संगठन तथा धर्म और प्रथाओं के एक स्वरूप को व्यक्त करता है,

(2) यह पेड़, पौधों तथा पशु में विश्वास पर आधारित होता है,

(3) टोटम एक कल्पित पूर्वज होता है,

(4) इसका सभी सदस्य आदर करते हैं।

विश्वास एवं व्यवहार (Faith and Behaviour)

विश्वास और व्यवहार मानव जीवन का एक तरीका है। इस विश्वास का एक निश्चित आधार होता है तथा इसका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरण होता रहता है। विश्वास का सम्बन्ध परम्पराओं और अलौकिक जीवन से भी होता है। समाज में जो होता आया है, उस पर समाज सहज ही विश्वास कर लेता है। विश्वास का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता है। अनेक स्थितियों में विश्वास समाज में अन्धविश्वास को भी जन्म देता है। विश्वास की प्रकृति रूढ़िवादी होती है। यही कारण है कि व्यक्ति विश्वास के आधार पर अपनी क्रियाओं का सम्पादन करता है। विश्वास के आधार पर सम्पादित होने वाली क्रियाएँ व्यवहार को जन्म देती हैं और क्रियाएँ जीवन के विविध पहलुओं में परिलक्षित होती हैं।

जनजातीय समाजों में विश्वास का अत्यन्त ही महत्व होता है। जनजातीय समाज भौगोलिक विशेष क्षेत्र में निवास करता है। इस विशेष क्षेत्र से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, जिसे जीवन के विभिन्न भागों में देखा जा सकता है। जनजातियों का नातेदारी में गहन विश्वास है। यही कारण है, उनमें आज भी पूर्वजों के प्रति गहन आस्था और विश्वास है तथा उसी के आधार पर अपने व्यवहारों का संचालन करते हैं।

धार्मिक दृष्टि से जनजातीय समाज अधिक जागरूक होते हैं तथा इनकी धार्मिक क्रियाएँ और देवी-देवता भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर होते हैं।

5.8 भारतीय जनजातीय समाज का भविष्य (The future of Indian tribal society)

किसी भी समाज, समुदाय या व्यक्ति के भविष्य का निर्धारण उस समाज की परिस्थितियों पर आश्रित होता है और इन परिस्थितियों के निर्धारण में उस समाज की शासन व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान होता है। पुरानी कहावत है, जैसा राजा, वैसी प्रजा। किसी भी समाज की राजव्यवस्था उस समाज के व्यक्तियों के आचरण और व्यवहार का आइना होता है। राज व्यवस्था के आधार पर ही समाज में किसी व्यक्ति या समुदाय के भाग्य का निर्धारण किया जा सकता है।

जनजातियाँ भारत की मूल निवासी हैं। आजादी के पूर्व जंगल और जमीन इनकी आजीविका का साधन था। ये बाहय संसार से अलग रहते थे। इनकी संस्कृति और परम्पराएँ अपनी थीं तथा ये अपने जीवन से सन्तुष्ट थे। 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हो गया। आजाद भारत के लिए शासन व्यवस्था का संचालन करने के लिए एक संविधान की आवश्यकता थी, जो 26 नवम्बर, 1949 को लागू हो गया और इस प्रकार भारत सर्वसत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बन गया। लोकसत्तात्मक गणराज्य में भारतीय जनजातीय समाज के भविष्य को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1.. संरक्षण, (Safeguards) और

2. विकास (Development)

किसी भी समाज को यदि कानूनी संरक्षण प्राप्त है तथा उस समाज के चहुँमुखी विकास के लिए प्रयास किए जा रहे हैं, तो वह समाज सुरक्षित रहता है तथा उसका भविष्य उज्जवल रहता है। भारतीय जनजातीय समाज के लिए जो संरक्षणात्मक और विकासात्मक प्रयास किए जा रहे हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

1. संवैधानिक संरक्षण (Constitutional Safeguards) :-

भारतीय संविधान में जनजातियों को जो सम्वैधानिक संरक्षण दिया गया है, उसके कारण उन्हें समस्त प्रकार के अधिकार और सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। भारतीय संविधान में कहीं भी जनजाति का उल्लेख नहीं है, किन्तु अनुच्छेद 342 में अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribe) शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसके अनुसार वे जातियाँ जो अनुसूची में शामिल हैं, अनुसूचित जनजाति हैं। राष्ट्रपति इस सूची में किसी भी नाम को जोड़ सकता है, और काट सकता है। नाम जोड़ने और काटने की एक सम्वैधानिक प्रक्रिया है। इस प्रकार अनुसूचित जनजातियाँ वे जनजातियाँ हैं, जो भारतीय सम्विधान के अनुसार एक विशिष्ट अनुसूची में सम्मिलित हैं। भारत में अनुसूचित जातियों को जो संरक्षणात्मक अधिकार मिले हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

(a) संवैधानिक पहचान भारतीय संविधान में जनजातियों को अनुसूचित करके उनको राष्ट्रीय पहचान प्रदान की गई है। आजादी के पूर्व जनजातियों की कोई राष्ट्रीय पहचान नहीं थी। आज उन्हें संविधान की अनुसूची में सम्मिलित किया गया है। इस अनुसूची में सम्मिलित करने के कारण उन्हें राष्ट्रीय पहचान मिली है। इस राष्ट्रीय पहचान के कारण उन्हें एक और जहाँ संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ है, वहीं दूसरी ओर उन्हें विकास के कार्यक्रमों में अनेक अधिकार और सुविधाएँ मिली हैं।

(b) सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक हितों का संरक्षण:- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (4) के अनुसार इस समुदाय के लोगों को निम्न क्षेत्रों में संरक्षण दिया गया है-

(i) शैक्षणिक संस्थाओं में सीटों का आरक्षण

(ii) शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए योग्यताओं में छूट

(iii) सरकारी जमीनों के बन्दोबस्त (Settements of Government Lands) में इस समुदाय के सदस्यों को छूट और

(iv) इन समुदाय के सदस्यों को सरकारी आवास के आवंटन में छूट।(6)

(c) पदों और नौकरियों में संरक्षण संविधान के अनुच्छेद 16 के अनुसार राज्य सरकार के अधीन किसी भी पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में जाति, धर्म, वर्ग, वंश, सम्प्रदाय,

आदि का किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। साथ ही विभिन्न पदों की भर्ती में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या के आधार पर पदों का आरक्षण किया जाएगा।

(d) सम्पत्ति सम्बन्धी संरक्षण जनजातीय समुदाय आर्थिक रूप से काफी पिछड़े हैं तथा इनका जीवन अत्यन्त ही सरल तथा सहज है। इनका किसी प्रकार से शोषण न किया जाय तथा इन्हें कोई धोखा न दे, इसे ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 19 में ऐसे प्रावधान किए गए हैं कि राज्य सरकार इनके शोषण को रोकने के लिए कानून बना सकती है।

(e) मानव गरिमा की रक्षा अधिकांश जनजातीय समुदाय के व्यक्ति गरीब हैं तथा वे सहज और सरल है। इस सरलता और सहजता के कारण उनके साथ किसी ऐसी प्रकार का व्यवहार न हो, जो मानव गरिमा के विपरीत हो तथा कोई उनसे वेगार या बलात श्रम न ले, इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 23 में ऐसे प्रावधान किए गए हैं, जिनके अनुसार कानून बनाकर इनके मान सम्मान और गरिमा की रक्षा हो सके।

(f) संस्कृति एवं भाषायी संरक्षण:- अनुसूचित जनजातियों को अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा के लिए संवैधानिक अधिकार दिए गए हैं। इन्हें अपनी भाषा, बोली, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 29 में दिया गया है। इस अधिकार के तहत कोई भी राज्य सरकार अनुसूचित जातियों पर कानून बनाकर कोई भी भाषा या संस्कृति को लाद नहीं सकती है।

(g) राज्य के नीति निदेशक तत्व :- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत राज्य सरकार पिछड़ी जातियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास की दृष्टि से किसी भी प्रकार को कानून बना सकती है।

(h) अन्य संरक्षण भारत में जनजातीय समाज के भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए उन्हें संविधान में अन्य अनेक संरक्षण, सुविधाएँ और लाभ प्रदान किए गए हैं। इनमें से संक्षेप में कुछ का विवरण इस प्रकार है।

(i) संविधान के अनुच्छेद 338 के अनुसार जनजातीय समुदायों के संरक्षण के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान है। इस अधिकारी का नाम अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त' (Commissioner for schedule caste and Scheduled Tribes) है।

(ii) संविधान में 65 वें संशोधन के द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के राष्ट्रीय आयोग' (National Commission for Scheduled Caste and Scheduled Tribes) का गठन किया गया है। इस आयोग के गठन का उद्देश्य अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों की भलाई के सम्बन्ध में समय-समय पर शासन को प्रतिवेदन तथा सुझाव देना है।ाद्र

(iii) संविधान के अनुच्छेद 330 तथा 332 के द्वारा अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को लोकसभा और राज्य विधान सभाओं में आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई है।गरि

iv) संविधान के अनुच्छेद 334 के द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि आरक्षण संविधान के लागू होने (की तिथि से 40 वर्षों तक अर्थात् 1990 तक लागू रहेंगे। 1990 में इसे 10 वर्षों के लिए बढ़ाकर 2000 तक प्रभावी रखा गया। वर्ष 2000 में पुनः इसे 10 वर्षों के लिए प्रभावी रखने का प्रावधान किया गया।

(v) संविधान के अनुच्छेद 339 (i) के अनुसार अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में केन्द्र का नियंत्रण है।

(vi) भारतीय संविधान में विभिन्न राज्यों की अनुसूचित जातियों को संरक्षण सुविधा और उनके चहुँमुखी विकास के लिए जो प्रयास किए गए हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

(a) अनुच्छेद 164 के द्वारा बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रदेश में जनजातियों के कल्याण के लिए एक मंत्री का प्रावधान।

(b) अनुच्छेद 371 (क) के अनुसार नागालैण्ड राज्य के लिए विशेष प्रावधान,

(c) अनुच्छेद 371 (ख) के अनुसार असम राज्य के सम्बन्ध में विशेष प्रावधान,

(d) अनुच्छेद 371 (ग) के अनुसार मणिपुर राज्य के सम्बन्ध में विशेष प्रावधान।

(vii) संविधान के भाग X के अन्तर्गत अनुच्छेद 244 एवं 244 (क) में अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में प्रावधान किए गए हैं।

(viii) संविधान की छठी अनुसूची असम, मेघालय, मिजोरम और त्रिपुरा के प्रशासनिक क्षेत्रों पर लागू होती है।

(2) विकासात्मक संरक्षण (Developmental Safeguards)-

भारतीय समाज में जहाँ एक और जनजातियों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है, वहीं दूसरी और उन्हें विकास के सम्बन्ध में भी संरक्षण प्रदान किया गया है, जो इस प्रकार है-

(a) संविधान के अनुच्छेद 275 (1) में यह प्रावधान किया गया है कि अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए या अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासनिक स्तर को उस राज्य के शेष प्रशासनिक स्तरों तक उन्न्त बनाने के लिए केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को सभी प्रकार की सहायता उपलब्ध कराएगा। इसके अन्तर्गत विशेष जनसंख्या वाले राज्यों 'विशेष केन्द्रीय सहायता' (Special Central Assistance) का प्रावधान किया गया है। इस प्रावधान के अनुसार अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए विशिष्ट योजनाएँ बनाने, केन्द्र से उनका अनुमोदन कराने और राज्य सरकारों को अनुदान दिए जाने का प्रावधान है।

(b) संविधान के अनुच्छेद 339 (2) के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए संघ के नियंत्रण का प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संघ की कार्यपालिका को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्य सरकार को उस राज्य की अनुसूचित जनजातियों के लिए निदेश में आवश्यक बनाई गई योजनाओं को बनाने और निष्पादन के सम्बन्ध में निर्देश दे सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण, उत्थान, विकास और उनके हितों के संरक्षण की सक्षम व्यवस्था की गई है। ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि भारत में जनजातीय समाज का भविष्य उज्जवल है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. किसने कहा- 'नातेदारी सामाजिक उद्देश्यों के लिए स्वीकृत वंश सम्बन्ध से है, जो कि सामाजिक सम्बन्धों के परम्परात्मक सम्बन्धों का आधार है।'

(अ) लूसी मेयर (बी) ब्राउन (स) राबिन फाक्स (द) फर्थ

2. किसने कहा- 'धर्म का अर्थ किसी अध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है।'

(अ) फ्रेजर (ब) दुर्खीम (स) हाबेल (द) टेलर

3. किसने कहा- 'जादू विशुद्ध व्यवहारिक क्रियाओं का योग है।'

(अ) मैलिनोवस्क (ब) पिडिग्टन (स) फ्रेजर (द) बील्स एवं हाइजर

5.9 सार संक्षेप

नातेदारी, धर्म, विश्वास, व्यवहार और टोटम मानव समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना के महत्वपूर्ण आधार हैं। नातेदारी सामाजिक संबंधों की वह संरचना है, जो रक्त संबंध, विवाह या गोद लेने के आधार पर व्यक्तियों को जोड़ती है और समाज में अधिकार, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को परिभाषित करती है। धर्म पवित्र और अलौकिक शक्तियों में विश्वास और उनसे संबंधित प्रथाओं का संग्रह है, जो समाज में नैतिकता और आध्यात्मिकता को बढ़ावा देता है। विश्वास किसी विचार या तथ्य में आस्था है, जो व्यक्ति के अनुभव, परंपरा और समाज से प्रभावित होती है। यह व्यक्तिगत और सामूहिक निर्णयों को निर्देशित करता है। व्यवहार सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों पर आधारित क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का रूप है, जो व्यक्तियों के संबंधों और समाज के साथ उनके अनुकूलन को दर्शाता है। टोटम किसी प्राकृतिक वस्तु, जैसे जानवर या वृक्ष, का प्रतीकात्मक रूप है, जिसे किसी समूह या व्यक्ति के साथ पवित्र संबंध के रूप में देखा जाता है। यह सामूहिक पहचान और परंपराओं को संरक्षित करता है। ये सभी तत्व मिलकर समाज की संरचना, संस्कृति और परंपराओं को सशक्त बनाते हैं।

5.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1.(ब), 2. (द), 3. (अ)

5.11 मुख्य शब्द

1. पितृसत्तात्मक: ऐसा समाज जहां परिवार या समाज में पुरुष का अधिकार अधिक हो।

2. मातृसत्तात्मक: ऐसा समाज जहां परिवार या समाज में महिला का अधिकार प्रमुख हो।

3. सांस्कृतिक मानदंड: ऐसे नियम जो समाज द्वारा स्वीकृत और पालन किए जाते हैं।

4. पवित्र (Sacred): धार्मिक दृष्टि से विशेष रूप से पूजनीय।

5. अलौकिक (Supernatural): जो प्राकृतिक नियमों से परे है या दिव्य है।

5.12 संदर्भ सूची

- Durkheim, É. (1915). The Elementary Forms of the Religious Life. Free Press.
- Lévi-Strauss, C. (1969). The Elementary Structures of Kinship. Beacon Press.
- Radcliffe-Brown, A. R. (1952). Structure and Function in Primitive Society. Oxford University Press.
- Malinowski, B. (1922). Argonauts of the Western Pacific. Routledge.
- Evans-Pritchard, E. E. (1956). Nuer Religion. Clarendon Press.

5.13 अभ्यास प्रश्न

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. नातेदारी की व्याख्या कीजिए। इंसके प्रकार लिखिए। Define kinship. Write its types.

2. नातेदारी की श्रेणियाँ लिखिए। Write Categories of kinship.

3. नातेदारी की श्रेणियाँ लिखिए। Write importance of kinship.

4. नातेदारी की रीतियों को समझाइए। Explain usage of kinship.

5. धर्म की अवधारणा को समझाइए। Explain the concept of Religion.

6. धर्म की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए। Define Religion. Write its characteristics.

7. धर्म के कार्यों को लिखिए। Write functions of Religion

8. जादू की व्याख्या कीजिए। जादू के प्रकार लिखिए। Define Magic. Write its types.

9. टोटम की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए। Define Totem. Write its characteristics.

10. टोटम की उत्पत्ति के सिद्धान्तों को लिखिए। Write theories of the origin of Totem.

11.टोटमवाद पर एक लेख लिखिए। Write an essay on Totemism.

12. भारतीय जनजातीय समाज के भविष्य पर एक लेख लिखिए।

Write an essay in future of Indian tribal Society.

13. भारतीय संविधान में जनजातियों को प्रदान की गई सुरक्षा और विकास को लिखिए। Write safeguards and development of tribals as described in Indian constitution.

(B) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये (Write a shortnote on the following)

1. नातेदारी की श्रेणियाँ Categories of kinship
2. परिहार Avoidance
3. परिहास Joking relations
4. टेक्नोनिमी Teknonymy
5. धर्म और जादू Religion and Magic
6. जादू और विज्ञान Magic and Science
7. टोटम Totem.
8. टोटमवाद Totemism.

इकाई -6

जनजातीय अर्थ-व्यवस्था एवं दरिद्रता-जीवन शैली, नई कृषि नीति, भूमि सुधार, ऋणग्रस्तता

(Tribal economy and poverty-lifestyle, new agricultural policy, land reforms, indebtedness)

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 अर्थ- व्यवस्था की परिभाषा

6.4 जनजाति व्यवसाय

6.5 जनजातियों में व्यावसायिक गतिशीलता

6.6 निर्धनता या दरिद्रता

6.7 सार संक्षेप

6.8 मुख्य शब्द

6.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

6.10 सन्दर्भ सूची

6.11 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

मनुष्य निरन्तर आवश्यकताओं से घिरा रहता है। ये आवश्यकताएँ आज ही भर नहीं हैं, अपितु आदि काल से मनुष्य के सामने अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ रही हैं। इन आवश्यकताओं से मनुष्य के सामने अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ रही हैं। इन आवश्यकताओं में भौतिक आवश्यकताओं की प्रकृति तो इस प्रकार की होती है कि इनके अभाव में मानव अपने अस्तित्व

की रक्षा ही नहीं कर सकता है। आर्थिक व्यवस्था मानव जीवन का आधार है। ऐसा कोई भी समाज नहीं, जहाँ अर्थव्यवस्था के महत्व को स्वीकार न किया जाता हो।

वन्यजातीय समुदाय समाज का ही एक भाग है। इस दृष्टि से जनजातियों की आर्थिक व्यवस्था भी सम्पूर्ण समाज की आर्थिक व्यवस्था का एक भाग है। इस दृष्टि से हमारे अध्ययन का एक आकर्षक विषय है। इस कारण यह है कि जनजाति हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक हैं। यदि हम जनजातियों की अर्थ-व्यवस्था की तुलना आधुनिक समाज की अर्थ-व्यवस्था से करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी अर्थ-व्यवस्था ही पिछड़ी हुई है। इनका सम्पूर्ण आर्थिक जीवन आदिम है।

6.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ,इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- जनजातीय समाज की अर्थव्यवस्था, गरीबी और जीवन शैली की समझ विकसित करना।
- नई कृषि नीति और भूमि सुधारों के प्रभाव का विश्लेषण करना।
- जनजातीय समुदायों की चुनौतियों और विकास में उनके योगदान को पहचानना।

6.3 अर्थ-व्यवस्था की परिभाषा (Definition of Economic System)

विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने अर्थ-व्यवस्था या आर्थिक संगठन की जो परिभाषाएँ की हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

(1) बील्स तथा हाइजर "आर्थिक संगठन व्यवहारों के प्रतिमान हैं तथा समाज का वह परिणामस्वरूप संगठन है जो कि समाज तथा सेवाओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग से सम्बन्धित है।"

(2) पिडिंग्टन - "आर्थिक व्यवस्था लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए उत्पादन की व्यवस्था, वितरण पर नियन्त्रण तथा समुदाय में स्वामित्व के अधिकारों तथा दावों को निर्धारित करती है।"

इस प्रकार जनजातीय अर्थ-व्यवस्था 'जनजातीय स्रोतों के उपभोग, संरक्षण और संगठन के वास्तविक तथा ऐच्छिक साधनों की संरचना का अध्ययन है।'

जनजातीय अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Tribal Economy)

भारतीय जनजातियों की आर्थिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) कृषि की प्रधानता - भारतीय जनजातियों की भौतिक विशेषता कृषि की प्रधानता है। यदि हम मानव समाज के उद्विकास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव समाज का उद्विकास बर्बरता से हुआ है। आदि काल में मानव का जीवन शिकार पर आधारित था और विकास के क्रम में उसने बाद में कृषि को अपनाया। भारत सम्पूर्ण जनजातियों में तीन चौथाई कृषि पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इनकी कृषि की विधियाँ अत्यन्त ही प्राचीन हैं।

जनजातियों में कृषि पद्धतियों में 'झूम कृषि' (Shifting Cultivation) महत्व अधिक है। प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष में विभिन्न नामों से झूम कृषि की प्रथा पाई जाती है। इसे आसाम और त्रिपुरा में भूमि, मध्य प्रदेश में बेबर अथवा दहिया, आन्ध्र प्रदेश में पान्डू, उत्तर उड़ीसा में पामे, दाही, कोमन अथवा ब्रिगना और दक्षिण उड़ीसा में गुदिया अथवा डोगार पास।

भारतवर्ष में करीब 26 लाख जनजातियाँ झूम-कृषि करती हैं। कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहाँ यह समस्या अत्यन्त ही गम्भीर है। इनमें आंध्रप्रदेश, आसाम, बिहार, उड़ीसा और केन्द्र शासित प्रदेश मणिपुर, त्रिपुरा तथा नागालैण्ड प्रमुख हैं। आगे तालिका में भारतवर्ष में इस प्रकार की खेती करने वाले व्यक्तियों की संख्या और इनके द्वारा प्रतिवर्ष झूम-कृषि के लिए प्रयुक्त भूमि को दिखाया गया है -

झूम-कृषि संबंधित आंकड़े

क्र.सं.	राज्य व केन्द्रशासित प्रदेश	झूम-कृषि करने वाले व्यक्तियों की संख्या	प्रतिवर्ष झूम-कृषि में प्रयुक्त भूमि (एकड़ों में)
1	आन्ध्र प्रदेश	200000	96000
2	असम	699000	558800
3	बिहार	115000	436
4	उड़ीसा	935700	400000
5	मणिपुर	183000	54000
6	त्रिपुरा	95501	116900
7	मध्य प्रदेश	30000	44000
8	बम्बई	25000	72300
9	मैसूर	14000	2500
10	मद्रास	2200	3000
11	केरल	10000	54000
	कुल योग	2589401	1351938

इससे स्पष्ट होता है कि झूम-कृषि भारतीय जनजातियों की मौलिक विशेषता है। इसके अतिरिक्त अनेक जनजातियाँ हल से भी खेती करती हैं, किन्तु इनके तरीके अत्यन्त ही प्राचीन और अविकसित हैं।

(2) अदला-बदली व्यवस्था (Barter System) भारतीय जनजातियों की दूसरी आर्थिक विशेषता अदला- बदली प्रथा है। इसका कारण यह है कि जनजातियों में रुपये का अभाव पाया जाता है। इसलिए आदान-प्रदान के लिए वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। दो व्यक्तियों या दो परिवारों के बीच अदला-बदली का आधार आवश्यकताएँ होती हैं। इसलिए इन जनजातियों में मूल्य-निर्धारण (Price determination) की कोई व्यवस्था नहीं है और न ही शाखा व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की विकसित संस्था ही।

(3) प्रकृति पर आधारित भारतीय जनजातियों की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था प्रकृति पर आधारित है। उनको पानी प्राकृतिक स्रोतों तथा नदी नालों से प्राप्त होता है। कृषि पूरी तरह पानी तथा अन्य प्राकृतिक दशाओं पर आधारित होती है। ये अपनी खाद्य-सामग्री भी जंगली फल-फूल, जड़ और पत्तियों से प्राप्त करते हैं, जिनका आधार प्रकृति होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सारी अर्थ-व्यवस्था प्रकृति पर आधारित होती है।

(4) आर्थिक संस्थाओं का अभाव जनजातियों में आर्थिक संस्थाओं का भी अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि वहाँ लाभकारी कृषि, उद्योग और व्यापारों का अभाव पाया जाता है। यही कारण है कि जनजातियों में विकसित आर्थिक संस्थाओं-बैंक, बाजार, स्टाक एक्सचेंज आदि का अभाव पाया जाता है।

(5) सम्पत्ति का कम महत्व जनजातियों के जीवन में भी यद्यपि संपत्ति को स्थान दिया जाता है, किन्तु सम्पत्ति को वे उतना महत्व प्रदान नहीं करते हैं, जितना कि आधुनिक समाजों में। वे अस्थायी जीवन व्यतीत करते हैं, इससे भूमि पर भी उनका स्वामित्व स्थायी नहीं रह पाता है। वे भूमिहीन होते हैं। जंगली जानवर और पालतू पशु ही उनकी सम्पत्ति है। सोना, चाँदी, यंन्त्र, आदि का वे संग्रह नहीं करते हैं।

(6) अविकसित उद्योग- भारतीय जनजातियों के जीवन में उद्योगों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक जनजातियाँ ऐसी हैं, जो जीविकोपार्जन के लिए उद्योगों का सम्पादन करते हैं, किन्तु इन उद्योगों की मौलिक विशेषता यह है कि इन उद्योगों का स्वरूप अत्यन्त ही आदिम, परम्परात्मक और अविकसित होता है। जनजातीय क्षेत्रों में कुछ

व्यक्तियों ने उद्योगों की स्थापना की है। इन उद्योगों में जनजाति के व्यक्ति श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं।

(7) सामूहिकता - जनजातीय अर्थ-व्यवस्था की मौलिक विशेषता सदस्यों में पाई जाने वाली सामूहिकता की भावना है। जनजातियों में सामूहिक जीवन अत्यन्त ही दृढ़ होता है। इसका कारण यह है कि ये घोर जंगलों और पहाड़ों में निवास करते हैं, जंगली हिंसक पशुओं तथा अनेक प्राकृतिक विपदाओं से घिरे होते हैं। इससे इनके जीवन में सुरक्षा का महत्व सबसे अधिक होता है। इसके साथ ही अनेक ऐसे आर्थिक कार्य हैं, जिन्हें कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता है। इन कार्यों में आखेट करना, मछली मारना, खेती करना आदि प्रमुख हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जनजातियों में सामूहिक अर्थ-व्यवस्था का जन्म होता है।

(8) विशेषीकरण का अभाव जनजाति जो भी आर्थिक क्रियाएँ करते हैं, इन क्रियाओं का उद्देश्य लाभ कमाना न होकर जीवन-यापन करना होता है। इसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक क्रियाओं में श्रम-विभाजन (Division of Labour) और विशेषीकरण (Specialization) का अभाव पाया जाता है। सभी आर्थिक क्रियाएँ सामूहिक आधार पर संचालित की जाती है- जैसे शिकार करना, खेती करना, मछली मारना आदि ऐसी ही आर्थिक क्रियाएँ हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं।

(9) प्रथाओं पर आधारित जनजातीय अर्थ-व्यवस्था की अगली विशेषता यह है कि इसमें सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाओं की छाप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सभी जनजातियाँ आर्थिक क्रियाओं का संचालन प्रथाओं के आधार पर करते हैं। इसीलिए आर्थिक संगठनों और आर्थिक क्रियाओं पर धर्म, देवी-देवता, प्रथाओं तथा परम्पराओं की छाप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

(10) अविकसित प्रौद्योगिकी जनजातीय समाजों में प्रौद्योगिकी (Technology) है, किन्तु इसका स्वरूप अत्यन्त ही अविकसित है। जनजातियों के उत्पादन और रहन-सहन की जो पद्धतियाँ हैं, वे अत्यन्त ही प्राचीन हैं। आधुनिक यन्त्रों का नितांत अभाव है। वे उद्योगों को संचालित करने वाली नवीन पद्धतियों के ज्ञान से पूर्णतया अपरिचित हैं।

(11) मिश्रित अर्थ-व्यवस्था अन्त में भारतीय जनजातियों की अर्थ-व्यवस्था को मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनके जीवन के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पहलू परस्पर अन्तः सम्बन्धित हैं। इसके साथ ही अर्थ-व्यवस्था का स्वरूप मिश्रित है।

जनजातीय जीवन यापन के साधन

(tribal livelihood means)

प्रत्येक जीवधारी की यह इच्छा होती है कि वह जीवित रहे किन्तु जीवित रहना उतना आसान नहीं है, जैसा कि समझा जाता है। जीवित रहने के लिए आवश्यक है- आवश्यकताओं की पूर्ति और आवश्यकताओं की पूर्ति अपने आप होती नहीं। इसके लिए कुछ प्रयास करना पड़ता है। अनेक अवसरों में लाखों प्रयासों के बावजूद भी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है। फिर भी मनुष्य निरन्तर प्रयास करता रहता है। वह हार नहीं मानता। क्योंकि हार मानने का अर्थ है मृत्यु को आमंत्रण देना। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि जीने के लिए जिन आधारों की तलाश मानव जीवन द्वारा की जाती है, वही आधार संक्षेप में जीवन यापन के साधन हैं।

मनुष्य की कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। अर्थशास्त्री इन मूलभूत आवश्यकताओं को निम्न तीन शीर्षकों में विभाजित करते हैं:-

(a) भोजन, (बी) वस्त्र और (सी) निवास

इन आवश्यकताओं का सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्व से हैं यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति न की जाय तो जीवन ही खतरे में पड़ जाय। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार की जाय? इसके लिए मनुष्य तरीकों की तलाश करता है। अपनी आवश्यकताओं के पूर्ति के लिए मनुष्य जिन तरीकों की तलाश करता है, इन्हीं तरीकों को जीवन यापन के साधन के रूप में जाना जाता है।

जीवन यापन के इन साधनों का आर्थिक प्रणाली से घनिष्ठ सम्बन्ध है। आर्थिक प्रणाली ही वह आधार है, जो जीवन यापन के साधनों को विकसित करती है तथा उन्हें एक व्यवस्था प्रदान करती है। जनजातियाँ आज के विज्ञान के युग में भी अधिकांशतः अपने

जीवन यापन के साधनों के लिए प्रकृति पर ही आश्रित हैं। हजारों वर्षों से जंगल, पहाड़, नदियाँ और घाटियाँ उनके जीवन यापन के साधनों के रूप में प्रयुक्त होते आए हैं। जंगलों और पहाड़ों से खाद्‌य सामग्री का संग्रह करना, नदियों और तालाबों से मछली पकड़ना तथा जंगली जानवरों का शिकार करना और पहाड़ों तथा ढलान क्षेत्रों में खेती करना आदिवासियों की आजीविका के अंग रहे हैं। यही कारण है कि

जनजातियों के जीवन यापन के साधन भौगोलिक पर्यावरण पर आश्रित रहे हैं। उनके जीवन का अधिकांश भाग प्रकृति की गोद में व्यतीत होता है और यही प्रकृति उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम भी बनती है। यही कारण कि वे निरन्तर प्रकृति से संघर्ष करते हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं।

जीवन यापन के साधनों की पूर्ति में वे अनेक प्रकार के औजारों, वस्तुओं और तकनीकी प्रयोग करते हैं। इनके सारे औजार, तकनीक और वस्तुएं प्रकृति के द्‌वारा प्रदान की जाती हैं। आर्थिक जीवन के साथ ही साथ इनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का भी प्रकृति से ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज इन समाजों में जो धर्म, त्यौहार, उत्सव तथा सामाजिक संस्थाएँ पाई जाती हैं, वे सभी प्रकृति पर आधारित तथा प्रकृति के द्‌वारा ही पल्लवित और पुष्पित हैं।

जीवन यापन के साधनों की विशेषताएँ (Characteristics of Means of Livelihood)

जीवन यापन के साधनों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न है-

1. जीवन यापन के सभी साधन जनजातियों के भौगोलिक पर्यावरण पर आश्रित होते हैं। अर्थात जनजातियों का जैसा भौगोलिक पर्यावरण होगा, उनके जीवन यापन के साधनों का विकास उसी के अनुरूप होगा।

2. जीवन यापन के सारे साधन प्राकृतिक शक्ति से पूरी तरह संचालित होते हैं। जनजातियाँ प्राकृतिक शक्ति की पूजा करती हैं। अतः सभी साधन पूजनीय होते हैं तथा समाज में उनका महत्वपूर्ण स्थान होता है।

3. जीवन यापन के सभी साधन देवी देवताओं की पूजा और उपासना पर आधारित होते हैं। उनका विश्वास है कि पूजा और उपासना के माध्यम से जो भी आर्थिक क्रियाएं की जाएंगी, उनमें सफलता प्राप्त होगी।

4. जनजातियों के जीवन यापन के साधनों में आधुनिक प्रौद्योगिकी (Modern Technology) का अभाव पाया जाता है। वे अपने सरलतम् तथा परम्परागत जीवन यापन के साधनों का इस्तेमाल करते हैं।

5. उनके जीवन यापन के साधनों के माध्यम से अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता है। वे जो भी उत्पादन करते हैं वह मात्र उपभोग के लिए होता है। यही कारण है कि अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता है।

6. अतिरिक्त उत्पादन न होने से संचय का अभाव पाया जाता है।

7. जीवन यापन के साधन विनिमय (Exchange) पर आधारित होते हैं। यही कारण है कि मुद्रा (Money) का अभाव पाया जाता है। आवश्यकतानुसार वस्तुओं का आदान प्रदान कर लिया जाता है। इस आदान प्रदान को अदला बदली की प्रथा (Barter system) के नाम से जाना जाता है।

8. जीवन यापन के साधनों का लाभ कमाने से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। ये केवल जीविका निर्वाह के लिये कोण होते हैं।

9. जनजातियों के जीवन यापन के साधनों में निम्न तत्वों का अभाव पाया जाता हैः-

(a) नियमित बाजार, (b) प्रतियोगिता,(c) एकाधिकार, और (d) विशेषीकरण का अभाव।

10. जनजातियों के जीवन यापन के जितने साधन होते हैं, सभी में सामूहिकता (Collectiveness) और सहकारिता (Co-operation) की भावना पाई जाती है। इसका कारण यह है कि जनजातियाँ सामुदायिकता (Communityness) को सर्वोच्च प्राथमिकता देती हैं। व्यक्तिगत स्वामित्व कम और सामूहिक स्वामित्व का अधिक महत्व होता हैं।

11. जनजातीय अर्थव्यवस्था को जीवन निर्वाह की अर्थव्यवस्था कहा जाता है। अर्थात् प्रतिदिन की आर्थिक जरूरतें पूरी हो जायँ, बस।

12. जनजातियों की जीवन निर्वाह क्रियाएँ एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रहती हैं। इसका कारण यह है कि आवागमन और संचार साधनों का अभाव पाया जाता है।

13. जीवन निर्वाह के सभी साधन स्थायी प्रकृति के होते हैं। वहाँ कोई नवाचार, परिवर्तन आदि का महत्व कनहीं होता है।

14.जनजातियों के जीवन निर्वाह के साधनों पर किसी प्रकार का राजनैतिक दबाव अथवा राजनैतिक सत्ता का प्रभाव नहीं होता है।

15. जीवन निर्वाह के समस्त साधन श्रम की महत्ता पर आधारित होते हैं।

जनजातियों के जीवन यापन के प्रमुख साधन

(Main means of livelihood of tribes)

जनजातियों के जीवन निर्वाह के सभी साधन प्रकृति पर आधारित है। साथ ही जनजातियाँ विकास के भिन्न- भिन्न स्तरों पर हैं। कोई जनजाति विकास के निम्न स्तर पर है, तो कोई जनजाति विकास के उच्च स्तर पर है। निम्न और उच्च स्तर के विकास की जनजातियों के जीवन यापन के साधनों में भी भिन्नता है। जो जनजातियाँ विकास के निम्न स्तर पर हैं, उनके जीवन यापन के साधन पिछड़े तथा परम्परागत है और जो जनजातियाँ विकास के उच्च स्तर पर हैं, उनके जीवन यापन के साधन आधुनिक और नई प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित है। जनजातियों में भौगोलिक और क्षेत्रीय भिन्नता के कारण भी जीवन स्तर के साधनों में भिन्नता है। कुछ जनजातियों की अपनी परम्पराएँ और जीवन की शैली है, जो दूसरी जनजातियों से भिन्न है। इस कारण भी इन जनजातियों के जीवन यापन के साधनों में भिन्नता है। जनजातियों के जीवन स्तर के प्रमुख साधनों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) संकलन - जनजातियों के जीवन स्तर का पहला साधन संकलन का है। संकलन का तात्पर्य है - एकत्रित करना। अधिकांश जनजातियाँ जंगलों और पहाड़ों में निवास करती है। अतः इनके संकलन का आधार भी जंगलों और पहाड़ों का उत्पादन है। जनजातियाँ उपर्युक्त वन उत्पादन का बारहों महीने संकलन करते हैं। जंगलों में अनेक प्रकार की

वनस्पति होती है। ये वनस्पतियाँ भिन्न-भिन्न मौसमों में पत्ती, फूल, फल, जड़ कन्द मूल, आदि प्रदान करती हैं। इनका उपभोग करते हैं और जो अतिरिक्त होता है, उसे अन्य को दे देते हैं तथा बाजार में विक्रय आदि करते हैं। वे इनका अन्य उत्पादित वस्तुओं के साथ अदला बदली भी करते हैं। इस प्रकार जनजातीय समूह जंगलों के उत्पादन का संकलन करके अपना जीवन यापन करते हैं।क आए मोगा माँड

(2) आखेट आखेट या शिकार करना भी जनजातियों के जीवन यापन का साधन है। आज वही जनजातियाँ आखेट करती हैं, जो अत्यन्त ही पिछड़ी अवस्था में हैं। जैसे ही जैसे सभ्यता का विकास होता जा रहा है तथा जंगल के कानूनों का प्रभाव पड़ता जा रहा है, जनजातियों में आखेट की प्रवृत्ति कम होती जा रही है। फिर भी आज अनेक जनजातियाँ आज भी आखेट के माध्यम से ही अपना तथा अपने परिवार का जीवन यापन कर रही है।

(3) कृषि - जनजातियों में जीवन यापन के साधनों में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण यह है कि आज अधिकांश जनजातियाँ कृषि या कृषि से सम्बन्धित कार्यों का सम्पादन करती है। उपर्युक्त दो साधन संकलन और आखेट-विलुप्त होने की अवस्था में हैं। इसका कारण यह है कि आखेट पर प्रतिबन्ध लग गया है और ऐसा करना दण्डनीय अपराधों की श्रेणी में आ गया है। साथ ही अनेक कानूनों के कारण जंगलों के दोहन पर भी प्रतिबन्ध है। साथ ही जंगलों की मात्रा धीरे-धीरे कम होती जा रही है। जब जंगल ही नहीं होंगे तो संकलन कहाँ से होगा। इस दृष्टिकोण से जनजातियों में कृषि जीवन यापन का महत्वपूर्ण साधन है। कृषि को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है

(a) स्थानान्तरित कृषि, और

(b) व्यवस्थित कृषि।

इन दोनों का विस्तृत विवरण इस प्रकार हैः-

(6)स्थानान्तरित कृषि (Shifting Cultivation) - भारत की जनजातियों में एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर कृषि कार्य करने की पद्धति अत्यन्त ही प्राचीन है। यह

पद्धति प्रायः पहाड़ों और घने जंगलों में निवास करने वाली जनजातियों में प्रचलन में है। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा निगरानी समिति ने अनुमान लगाया है कि 9.95 लाख हेक्टेयर भूमि पर आदिवासी अदल बदल कर कृषि कार्य करते हैं। देश के 16 राज्यों के 62 जिलों के 223 विकास खण्डों में इस पद्धति को कृषि कार्य के लिए जनजातियों द्वारा अपनाया जाता है। एक अनुमान के अनुसार 12 प्रतिशत आदिवासी आबादी इस पद्धति से कृषि कार्य का सम्पादन करती है। 1955 में प्रकाशित अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयुक्त भारत सरकार के प्रतिवेदन के अनुसार स्थानान्तरित कृषि जिन राज्यों में की जाती है, उनके नाम इस प्रकार हैं:-

(a) असम (b) आन्ध्र प्रदेश की (c) बिहार (d) मध्य प्रदेश (e) उड़ीसा

(f) मणिपुर (g) त्रिपुरा (h) विंध्य प्रदेश, जो मध्यप्रदेश में सम्मिलित है।

स्थानांतरित कृषि खेती का सबसे आदिम तरीका है जिसे 'झूम' के नाम से जाना जाता है। इसे विभिन्न प्रदेशों में निम्नलिखित भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है -

(a) झूम आसाम और त्रिपुरा

(बी) वेबर-दहिया, पेंडा-मध्यप्रदेश

(c) पेडू - आन्ध प्रदेश और उड़ीसा

(d) गुड़िया या डोंगर चास-दक्षिण उड़ीसा ।

मध्य प्रदेश में 1967 तक स्थानान्तरित कृषि का प्रचलन था और इस पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। 1967 में सरकार ने इस प्रकार की कृषि पर प्रतिबन्ध लगाया तथा आदेश जारी किया कि राज्य सरकार की अनुमति से ही इस प्रकार की खेती की जा सकती है। किन्तु सरकारी नियंत्रण के बावजूद भी जनजातियों पर कोई असर नहीं पड़ा और स्थानान्तरित खेती होती रही। इस प्रकार की कृषि को समाप्त करने के लिए सरकार ने अनेक योजनाओं को हाथ में लिया है। संक्षेप में, स्थानान्तरित कृषि भी जीवन यापन का एक साधन था।

व्यवस्थित कृषि (Systematic Cultivation) जनजातियों के जीवन यापन के साधनों में व्यवस्थित कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। यह कृषि उसी प्रकार की है, जिस प्रकार अन्य सभ्य समाजों में प्रचलित है। यह कृषि हल-बैलों की सहायता से की जाती है। 1991 की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार 68 प्रतिशत जनजातियाँ व्यवस्थित कृषि के माध्यम से अपना जीवन यापन करती थी। साथ ही 20 प्रतिशत भूमिहीन कृषि श्रमिक थे। इतना निश्चित है कि जनजातियों द्वारा आज भी कृषि पुराने तरीके से हो की जाती है। यही कारण है कि जनजातियों के जीवन यापन के लिए पर्याप्त उपज नहीं होती है। यद्यपि सरकार द्वारा उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए अनेक प्रकार की सहायता और अनुदान की व्यवस्था शासन की ओर से की गई है, किन्तु जनजातियों द्वारा इन योजनाओं का लाभ प्राप्त नहीं किया जा रहा है। सरकार मिट्टी परीक्षण में किसानों को मदद कर रही है। उन्नत किस्म के बीज और रसायनिक खाद उपलब्ध करा रही है। सिंचाई के लिए पम्प आदि खरीदने पर अनुदान और सब्सिडी प्रदान कर रही है। बाग-बगीचे को प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान दे रही है। फिर भी जनजातियों के जीवन स्तर का सुधार नहीं हो रहा है। इसका मुख्य कारण है, उनकी गरीबी और अशिक्षा। इसके कारण जागरूकता का विकास नहीं हो रहा है। समाज का कोई भी भाग जब तक जागरूक नहीं होगा, प्रगति नहीं कर सकता है।

(4) शिल्पकला और घरेलू उद्योग जनजातियों के जीवन यापन के साधनों में शिल्पकला और घरेलू उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन यापन के साधनों के रूप में जनजातियों द्वारा जो घरेलू उद्योग किए जाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार हैः- 19

(a) टोकरी तथा बाँस का सामान बनाना,

(b) लकड़ी के विभिन्न उपयोगी सामान बनाना,

(c) सूत कातना और बुनना,

(d) रस्सी बनाना तथा रस्सी से अन्य उपयोग सामान का निर्माण करना,

(e) जंगली पदार्थों से स्पिरिट बनाना,

(f) प्रतिबन्ध के बावजूद महुए से शराब बनाना, उसका उपयोग करना था बेचना,

(g) धातु का शोधन करना तथा इससे विभिन्न प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ बनाना,

(h) लोहा सोधना तथा लोहे के औज़ार बनाना,

(i) वाद्य यंत्र, रस्सी, चटाई आदि का निर्माण करना,

(j) वस्त्र निर्माण,

(k) कालीन तथा ऊनी वस्त्र और टोपी-टोपा आदि।

भारत विशाल देश है और इस विशाल देश में फैली हुई जनजातियों की संख्या भी विशाल है। ये विशाल जनजातियाँ अपने जीवन यापन के लिए विभिन्न प्रकार के उद्योगों का सहारा लेती हैं। म ()

(5) औद्योगिक श्रमिक आज उद्योगों का निरन्तर विकास होता जा रहा है। इन उद्योगों में काम करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता होती है। जो जनजातियाँ इन उद्योगों के पास निवास करती हैं उन्हें आसानी से उद्योगों में श्रमिकों का काम मिल जाता है, जो उनके जीवन यापन का साधन होता है। आज जैसे ही जैसे उद्योगों का विकास होता ज्या रहा है, श्रमिक उनकी ओर आकर्षित होते जा रहे हैं। अनेक जनजातीय क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ खनिजों का भण्डार है, जहाँ जनजातियों को आसानी से कार्य मिल जाता है। इन जनजातियों को अपने घरों से बाहर नहीं जाना पड़ा और घर में रहकर ही जीवन यापन के साधन प्राप्त हो गए हैं। असम के चाय बागानों में बड़ी मात्रा में जनजातियाँ काम कर रही हैं। देश के प्रायः हर क्षेत्र में कोयले की खदानें हैं, जहाँ आदिवासियों को आसानी से काम मिल जाता है। टाटा लोहा तथा इस्पात उद्योग में प्रायः सभी अकुशल श्रमिक जनजाति के हैं, जिनकी संख्या 17 हजार है। इसी प्रकार बिहार का कोयला की खानों में 250000 श्रमिक कार्य करते हैं। इनमें से अधिकांश जनजातीय समूह से हैं। इसके साथ ही वन विभाग, आदि में जो अकुशल श्रमिक कार्य करते हैं वे सभी जनजातीय समूहों के हैं।

आज सारा समाज खुली अर्थव्यवस्था की ओर जा रहा है। यही कारण है कि जीवन यापन के परम्परागत साधन समाप्त होते जा रहे हैं, और उनके स्थान पर आधुनिक साधनों का विकास हो रहा है। सरकारी सेवाओं में स्थान आरक्षित होने के कारण

जनजातीय समाज के लोग नौकरी में आ रहे हैं। इस प्रकार नौकरी करना आज जीवन यापन के एक साधन के रूप में विकसित हो रहा है। सरकार की ओर से जनजातियों को औद्योगिक इकाइयों को स्थापित करने के लिए ऋण दिए जा रहे हैं। अतः अनेक जनजातियाँ उद्योगों की ओर आगे बढ़ रही हैं। प्रशासकीय पदों पर भी अनेक जनजातियों के आने से जीवन यापन के साधन बदल रहे हैं। जन प्रतिनिधि के रूप भी जनजातियों को आरक्षण प्राप्त है तथा वे इसका लाभ उठा रहे हैं। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि आज जनजाति के लोग मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, मंत्री, विधायक, कलेक्टर, एस.पी., थानेदार, प्रोफेसर, डॉक्टर, इन्जीनियर तथा जीवन के विविध प्रगति के रास्ते पर ले जाने में योगदान कर रहे हैं। परिवर्तन के इस दौर में जीवन यापन के साधनों का निरन्तर विकास होता जा रहा है।

6.4 जनजातीय व्यवसाय (Tribal Occupations)

व्यवसाय जनजातियों की अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड है। जिस प्रकार का महत्व शरीर में मेरुदण्ड का है, अर्थव्यवस्था में व्यवसाय का है। व्यवसाय वह आधार है, जो आजीविका का साधन है साथ ही रहन सहन के स्तर का आधार भी है। जनजातियाँ आदिकाल से किसी न किसी व्यवसाय को सम्पादित करती रही हैं। आदिवासियों का व्यवसाय से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, कि इसकी विवेचना आदिग्रन्थ वेदों में भी की गई है। शंकरानन्द मुखोपाध्याय ने आस्ट्रिक (कोल) जनजातियों को निषाद बतलाते हुए इस तथ्य की ओर इशारा किया है कि ये लोग कृषि न करने वाली जनजातियाँ थीं तथा अनेक प्रकार के गैर कृषि व्यवसायों में पारंगत थीं। इनका विवरण इस प्रकार है-

कृषि से इतर व्यवसाय करने वाली जनजातियाँ

नाम	**व्यवसाय**
घुमंतु	**वृत्य**

तक्षण	**बढ़ईगीरी करने वाली जनजाति**
रथकार	**रथ बनाने वाली जनजाति**
कुलाल	**बर्तन ढालने वाली जनजाति**
कर्मर	**लोहार जनजाति**
पुजिष्ठ	**मुर्गी पालने वाली जनजाति**
श्वानिन	**कुत्ता पालने वाली जनजाति**
मृगायु	**शिकारी जनजाति**

मानव समाज का उद्विकास हुआ है और जनजातीय समाज भी उद्विकास की इन्हीं अवस्थाओं से गुजरा है। आदि से लेकर अन्त तक वह किसी न किसी प्रकार के व्यवसायों से संलग्न रहा है। आखेट अवस्था (Hunting

Stage) में आखेट करना ही उसका मुख्य व्यवसाय था और यही आर्थिक जीवन का आधार स्तंभ भी। लाखों और करोड़ों वर्ष आखेट की अवस्था में व्यतीत करने के बाद व्यक्ति पशुपालन की अवस्था (Pastoral state) में आया। आखेट अवस्था में कभी-कभी उसे शिकार प्राप्त नहीं होता था। अनेक अवसर ऐसे भी आते थे, जब व्यक्ति जरुरत से ज्यादा जानवरों को मार डालता था। ऐसी स्थिति में उसे जब यह समझ में आया होगा कि क्यों न जानवरों को मारने के स्थान पर पाल लिया जाय तथा आवश्यकतानुसार उसका वध किया जाय, तो समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आया और समाज पशुपालन की अवस्था में प्रवेश कर गया।

आज भी अनेक जनजातियाँ आखेट और पशुपालन की अवस्था से गुजर रही हैं और उनका मुख्य व्यवसाय शिकार करना और पशुपालन है। पशुपालन आज भी एक प्रमुख व्यवसाय है। ये पशुपालन जनजातियाँ पानी और चारे की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को भटकते रहते हैं तथा पशुपालन उनकी अर्थव्यवस्था का आधार है तथा पशुपालन ही उनका प्रमुख व्यवसाय भी है। आखेट और पशुपालन की अवस्था से आगे बढ़कर मानव कृषि की अवस्था से होते हुए औद्योगिक अवस्था में पहुँच गया है। आज अनेक जनजातियाँ कृषि कार्यों में लगी है तथा कृषि उनके व्यवसाय का प्रमुख आधार है। कृषि के साथ उद्योगों और नौकरी आदि को भी जनजातियाँ व्यवसाय के रूप में ग्रहण कर रही हैं।

थर्नवाल्ड ने व्यवसाय के आधार पर जनजातियों को निम्न समूहों में विभाजित किया है -

(a) आखेटक तथा फन्दा शिकारी जनजातियाँ,

(b) पशुपालक जनजातियाँ,

(c) स्थान्तरित तथा व्यवस्थित कृषि करने वाली जनजातियाँ,

(d) औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कार्य करने वाली जनजातियाँ।,

एडम स्मिथ ने व्यवसाय को आधार बनाकर जनजातियों को निम्न तीन समूहों में विभाजित किया है-

(a) आखेटक, (b) पशुपालक, (c) किसान।

लिस्ट ने व्यवसायिक आधार पर जानजातियों को निम्न चार समूहों में विभाजित किया है -

(a) आखेटक, (b) पशुपालक, (c) कृषक, और (d) दस्तकारी तथा औद्योगिक कार्यों में संलग्न।

हर्षकोविट्स ने व्यवसायों को आधार मानकर जनजातीय समूहों को निम्न पाँच भागों में विभाजित किया है-

(a) संकलन, (b) आखेट, (c) मच्छीमारी, (d) कृषि, (e) पशुपालन।

प्रसिद्ध मानवशास्त्री मर्डक (Murdock) ने 915 जनजातीय समाजों का अध्ययन करने के उपरान्त जनजातियों की एक व्यवसायिक प्रकारिकी (Typology) बताया था तथा इसके द्वारा यह बताने का प्रयास किया था कि जनजातियाँ किस प्रकार का व्यवसाय करती हैं तथा उनका व्यवसाय करने का प्रतिशत कितना है।

व्यावसायिक प्रकारिकी (Occupational Typology)

क्रमांक	व्यवसाय के प्रकार	प्रतिशत
1.	शिकार, संकलन तथा मछलीमार	21.00
2.	पौध-कृषि	21.00
3.	कृषि	29.00

4.	लागत	05.00
5.	अन्य (औद्योगिक तथा अन्य गतिविधियों से जुड़े)	24.00
	योग	100.00

जनजातियों के व्यवसाय की विशेषताएँ (Characteristics of Occupation of Tribes)

आज भी जनजातियों के विकास के अनेक स्तर हैं। जहाँ एक ओर कुछ जनजातियाँ आज भी आदिम अवस्था में निवास कर रही हैं, वहीं कुछ जनजातियाँ आज भी आदिम अवस्था में किसी से पीछे नहीं हैं। हाँ इतना अवश्य है कि इनकी संख्या अभी कम है तथा विकास की गति भी काफी धीमी है। जनजाति चाहे वे किसी भी प्रकार का व्यवसाय क्यों न करते हों, उनकी एक अलग विशेषता है। इन विशेषताओं के आधार पर जनजातियों को पहचाना जाता है। जनजातियों के व्यवसाय की जो प्रमुख विशेषताएँ हैं, उनका विवरण इस प्रकार है -

1. जनजातीय व्यवसाय आस पास के वातावरण के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर आधारित होता है।

2. जनजातीय व्यवसाय अकुशल होते हैं। यही कारण है कि उनके माध्यम से आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है।

3.जनजातीय व्यवसाय की विशेषता वस्तु विनिमय (Exchange) की होती है, मुद्रा का उतने व्यापक रूप में प्रयोग नहीं किया जाता है, जितना कि अन्य व्यवसायों में किया जाता है। कि

4. बैंक, सहकारी संस्थाएँ तथा साख समितियों की जनजातीय व्यवसायों में नगण्य भूमिका होती है।

5. जनजातियों में जो व्यवसाय किए जाते हैं उनका मूल उद्देश्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। यही कारण है कि जनजातीय व्यवसायों में मुनाफा (Profit) की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। जो व्यवसाय किए जाते हैं, वे पारस्परिक दायित्व, सहभागिता तथा सुदृढ़ता के आधार पर किए जाते हैं।

6. जनजातियों के व्यवसाय स्थायी प्रकृति के होते हैं। अतः उनमें गतिशीलता का अभाव पाया जाता है।

7. जनजातियों के व्यवसाय की अगली विशेषता है कि इनमें बाजार (Market) का संस्थागत स्वरूप नहीं पाया जाता है। साप्ताहिक हाट-बाजारों का ज्यादा महत्व होता है तथा त्योहार या अन्य अवसरों पर भी व्यवसाय को सम्पादित किया जाता है। 02

8.व्यवसाय का अधिकांश भाग उपभोक्ता वस्तुओं पर केन्द्रित होता है। चूंकि ये वस्तुएं उपभोग की होती हैं। अतः इन्हें न तो बचाकर रखा जाता, न तो संग्रह किया जाता है और न ही विनिमय ही किया जाता है।

9. जनजातीय व्यवसायों में विशेषीकरण का अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि जनजातीय व्यवसाय में किसी विशिष्ट तकनीक का प्रयोग नहीं किया जाता है।

10. जनजातीय व्यवसाय में सम्पत्ति की अवधारणा भी भिन्न होती है। जो सम्पत्ति कमाई जाती है, उसमें संग्रहण की प्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है। उसका उपयोग केवल प्रदर्शन और खर्च के लिए होता है।

11. सम्पत्ति का स्वामित्व संयुक्त अथवा दोनों प्रकार का होता है तथा उत्तराधिकार के नियमों का भी प्रचलन है।

जनजातियों के प्रमुख व्यवसाय (Main Occupations of Tribes)

जैसा कि लिखा जा चुका है, कुछ जनजातियाँ आज भी आदिम अवस्था में हैं तथा कुछ आधुनिक अवस्था में। ऐसी स्थिति में कुछ जनजातियाँ आज भी आदिम व्यवसायों में

संलग्न हैं, जबकि कुछ आधुनिक प्रकार के व्यवसायों का सम्पादन कर रही हैं। समग्र रूप से जनजातियों में व्यवसाय के जो प्रकार प्रचलित हैं, उनका विवरण इस प्रकार है

1. शिकार करना। शिकार का निजी भोजन के रूप में प्रयोग करना तथा उनको बेचना।

2. पशुओं का पालन करना। पशुओं को बेचना। पशुओं का दूध तथा खाद आदि को बेचना।

3. वनोत्पादन - चार, चिरौंजी, कन्द, मूल, फल आदि को एकत्रित करना। उनका उपयोग करना तथा उसे काम बेचना।

4. वनों से लाख इकट्ठा करना यह इस प्रदेश की जनजातियों का एक प्रमुख व्यवसाय रहा है। लाख एक विशिष्ट प्रकार के कीड़ों के शरीर से निकाला हुआ चिपचिपा पदार्थ है। यह अधिकांशतः मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग के जिले के पलास के पेड़ पर पाया जाता है। ये कीड़े पलाश की टहनियों पर तरल पदार्थ का

उत्सर्ग करते हैं, जो लाख के नाम से जाना जाता है। इस लाख से चमड़ा, वार्निश और प्लास्टिक आदि को बनाने का कार्य किया जाता है। पुराने विंध्यप्रदेश में यह काम बड़े पैमाने पर किया जाता था।

5. जनजातियों का अन्य परम्परागत उद्योग कत्था बनाना है। कत्था बनाना खैरवार जनजाति का परम्परागत व्यवसाय है। जंगलों में एक लकड़ी होती है, जिसे खैर कहा जाता है। यह उद्योग भी मध्यप्रदेश के पूर्वी जिले में होता था।

6. जनजातियों द्वारा बाँस से अनेक प्रकार के बर्तन बनाए जाते थे। बर्तन बनाना एक प्रकार का व्यवसाय था और अनेक जनजातियों के जीवन यापन का साधन भी। चटाई, टोकनी, सूपा, अनाज रखने और ढोने के बर्तन बाँसों द्वारा बनाए जाते थे। बाँस के बर्तनों का कृषि कार्यों तथा गृहस्थी के कार्यों में सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। इसलिए बाँस-उद्योग का सबसे अधिक महत्व है। जनजातियाँ स्वयं बाँस से अपने तीर-धनुषों का निर्माण करते हैं। बाँस से हैट भी बनाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि बाँसो का जनजातीय समाज में व्यवसाय के लिए अत्यधिक महत्व है।

7. जनजातियों द्वारा मधुमक्खियों का पालन करना एक प्रमुख व्यवसाय है। मध्यप्रदेश के पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में शहद की मक्खियाँ पाई जाती हैं। जनजाति के व्यक्ति इन मधुमक्खियों से शहद निकालने की कला को जानते हैं। यद्यपि यह एक प्रमुख धंधा नहीं है, किन्तु इसका आज भी किसी न किसी रूप में अस्तित्व है।

8. रेशम उद्योग भी मध्य प्रदेश की जनजातियों का प्रमुख व्यवसाय है। मध्यप्रदेश के बालाघाट, मण्डला, शहडोल, बस्तर, बिलासपुर, सरगुजा, रायगढ़, रायपुर, बैतूल आदि जिलों में साल, सागौन तथा मिश्रित वन पाए जाते हैं जहाँ रेशम के कीड़े पालने की प्राकृतिक सुविधाएँ हैं। यहाँ की जलवायु, धरातल और मिट्टी भी इसके अनुकूल है। जिससे रेशम उद्योग को बढ़ावा मिलता है।

9. कोसा व्यवसाय भी मध्यप्रदेश की जनजातियों में काफी लोकप्रिय है, जो चाम्पा, रायगढ़, अम्बिकापुर, बिलासपुर, सांरगगढ़, धर्मजयगढ़ तथा कटघोरा आदि स्थानों पर व्यवसाय के रूप में होता है।

10. अन्य व्यवसाय - ऊपर जिन व्यवसायों का विवरण दिया गया है, उनके अतिरिक्त जनजातियों में कुछ अन्य छोटे व्यवसाय भी प्रचलित हैं यद्यपि ये छोटे स्तर पर हैं। इन व्यवसायों में से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

(a) कांसे की घन्टियां बनाना,

(बी)मुलायम पत्थरों से मूर्तियां बनाना,

(c) माला बनाना,

(डी)लोहा-धातु उद्योग,

(e) कपड़ा बनाना,

(f) चटाई तथा बाँस के बर्तन बनाना,

(g) झाड़ बनाना,

(h)मालों की गुरिया बनाना,

(i) रस्सी बनाना,

(j)कंघा-कंघी बनाना,

(k) बाँस तथा लकड़ी की घरेलू उपयोग की वस्तुएँ बनाना,

(i)ईट और खपड़े बनाना।

6.5 जनजातियों में व्यवसायिक गतिशीलता (Occupational Mobility among Tribes)

आज का युग गतिशीलता का युग है। जीवन का हर पहलू गतिशील है। गतिशीलता के कारण जीवन के सभी आयाम परिवर्तन की प्रक्रिया में है। जब सारा समाज परिवर्तित हो रहा हो, तो भला जनजातीय समाज इस परिवर्तन से अछूता कैसे रह सकता है। जनजातीय समाज में भी परिवर्तन हो रहे हैं। इतना अवश्य है कि अन्य समाजों में परिवर्तन की जो गति है, जनजातीय समाज में तुलनात्मक रूप से उसकी गति धीमी है। जब जनजातीय समाज परिवर्तित हो रहा है तो भला जनजातीय व्यवसाय उससे कैसे अछूता रह सकता है। यदि जनजातियों में घरिवर्तन न होता और नए व्यवसायों की खोज न की जाती, तो जनजातीय समाज भी उद्विकास की उसी अवस्था में रहता, जहाँ से उसने अपनी यात्रा प्रारंभ की है। व्यवसायिक गतिशीलता की सबसे सरल अवधारणा है, परम्परागत व्यवसायों के स्थान पर नए व्यवसायों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति। आज जनजातीय समाज में परम्परागत व्यवसायों को छोड़ा जा रहा है तथा उनके स्थान पर नए व्यवसायों को अपनाया जा रहा है। यह प्रक्रिया सभी व्यवसायों में लागू है, चाहे वह कृषि व्यवसाय हो या अन्य कोई।

व्यवसायिक गतिशीलता के लक्षण (Symptoms of Occupational Mobility)

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, जनजातियों में व्यावसायिक गतिशीलता का विकास होता जा रहा है। जनजातीय समाजों में व्यावसायिक गतिशीलता के जो प्रमुख लक्षण दिखाई दे रहे हैं, वे इस प्रकार हैं-

(a) परम्परात्मक व्यवसायों के प्रति अपेक्षापूर्ण रवैया,

(b) परम्परात्मक व्यवसायों के साथ हीनता जैसी सोच का विकास,

(c) आधुनिक व्यवसायों की ओर बढ़ता रुझान,

(d) व्यवसायों की खोज में समाज से बाहर जाने की प्रवृत्ति का विकास,

(e) कृषि अर्थव्यवस्था के स्थान पर औद्योगिक अर्थव्यवस्था की ओर रुझान,

(f) संचार साधनों का अधिकाधिक उपयोग,

(g) नए बाजारों की खोज तथा इनकी ओर बढ़ता रुझान,

(h) मूल्य तथा पैसों पर आधारित अर्थव्यवस्था।

जनजातियों में व्यावसायिक गतिशीलता के कारण

(Causes of Occupational Mobility among Tribes)

जनजातियों में व्यावसायिक गतिशीलता का जो विकास हो रहा है, उसके प्रमुख कारण निम्न हैं -

(1) सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) जनजातियों में व्यावसायिक गतिशीलता का सबसे प्रमुख कारण सामाजिक गतिशीलता है। समाज की गतिशीलता व्यवसायों में गतिशीलता को प्रोत्साहित करती है।

(2) प्रौद्योगिक गतिशीलता (Industrial Mobility) आधुनिक समाज की प्रौद्योगिकी अत्यन्त ही गतिशील है। प्रौद्योगिक गतिशीलता के कारण नए व्यवसायों का जन्म और विकास होता है। पुराने व्यवसायों का स्थान नए व्यवसाय लेते हैं। समाज में व्यवसाय के नए-नए अवसर प्राप्त होते हैं। इनका आदिवासी समाजों पर भी प्रभाव पड़ता है और उनमें व्यावसायिक गतिशीलता आती है।

(3) कृषि में क्रान्ति (Revolution in Agriculture) आदिवासी स्थानांतरित कृषि (Shifting Cultivation) करते थे। आज समाज में कृषि में बड़ी क्रान्ति आई है और यह क्रान्ति है- कृषि या व्यावसायिक स्वरूप। आज खेती जीवन यापन का साधन न होकर एक प्रकार का व्यवसाय है, जो हानि और लाभ के दायरे में किया जाता है। कृषि में आई क्रान्ति के कारण भी आदिवासियों में व्यावसायिक गतिशीलता का विकास हुआ है।

(4) शिक्षा का प्रसार (Extention of Education) पूरे समाज के साथ जनजातियों में भी शिक्षा का प्रसार हो रहा है। शिक्षा के प्रसार के कारण नए व्यवसायों के लिए अवसर प्राप्त हो रहे हैं। यही कारण है कि जनजातियों में व्यावसायिक गतिशीलता का विकास होता जा रहा है।

(5) बौद्धिक विकास (Intellectual Development) शिक्षा तथा संचार ने बौद्धिक विकास के लिए आधार प्रस्तुत किया है। बौद्धिक विकास के कारण व्यावसायिक ज्ञान बढ़ रहा है। व्यावसायिक ज्ञान के बढ़ने से व्यावसायिक गतिशीलता का विकास होता है।

(6) अन्य कारण (Other Causes) जनजातियों में व्यावसायिक गतिशीलता के अन्य अनेक कारण हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्न हैं -

(a) समाज में नए मूल्य और मान्यताओं की स्थापना,

(b) पंचवर्षीय योजनाएँ तथा जनजातीय कल्याण कार्यक्रम,

(c) सामाजिक सम्पर्क और संचार साधनों का विकास,

(d) लोगों के उन्च पद पाने की प्रेरणा, एक कालेगी

(e) समाज में धन के महत्व में वृद्धि,

(f) पंचायती राज तथा नई राजनैतिक व्यवस्था,

(g) धर्म का घटना प्रभाव,

(h) परम्परागत व्यवसायों की उपेक्षा,

(i) अर्जित गुणों का महत्व,

(j) जनतांत्रिक व्यवस्था तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा।

जनजातीय विकास में व्यावसायिक गतिशीलता की भूमिका

(Role of occupational mobility in tribal development)

जनजातीय समाज में व्यावसायिक गतिशीलता के सुखद परिणाम सामने आए हैं। इससे जनजातियों की सोच में परिवर्तन आया है। उन्हें इस तथ्य की जानकारी हो गई है कि जब तक व्यवसायों में गतिशीलता नहीं आएगी, व्यक्ति और समाज का सन्तुलित विकास असंभव है। आज जनजातीय समाज की जो प्रगति हो रही है, उसका कारण ही व्यावसायिक जागरूकता है। इसी से समाज आगे बढ़ रहा है। जनजातियों के विकास में व्यावसायिक गतिशीलता के महत्व को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है-

1. व्यावसायिक गतिशीलता से जनजातीय समाज का आर्थिक विकास होता है। आर्थिक विकास से खुशहाली आती है। रहन सहन का स्तर बढ़ता है।

2. व्यावसायिक गतिशीलता से जनजातीय समाज में गतिशीलता आती है। उसके आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

3. व्यावसायिक गतिशीलता से जनजातीय समाज में योग्य व्यक्तियों की संख्या बढ़ती है। किसी भी समाज में जब योग्य व्यक्तियों की संख्या बढ़ती है, तो उस समाज का विकास होता है।

4. व्यावसायिक गतिशीलता के कारण परम्परागत व्यवसाय समाप्त होते हैं। इससे जातिगत और वर्गगत रूढ़िवादिता समाप्त होती है तथा समाज की प्रगति होती है।

5. व्यावसायिक गतिशीलता से संचार माध्यमों का विकास होता है। किसी भी समाज के विकास में संचार माध्यमों की अहम् भूमिका होती है। जनजातीय समाज के विकास में भी संचार माध्यमों की अपनी भूमिका है।

6. व्यावसायिक गतिशीलता से शिक्षा को प्रोत्साहन मिलता है। जनजातीय समाजों में शिक्षा के प्रसार का सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है।

7. व्यावसायिक गतिशीलता से नगरीकरण और औद्योगीकरण का विकास होता है। इससे जनजातीय समाज के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जनजातीय समाज के विकास में व्यावसायिक गतिशीलता का महत्वपूर्ण स्थान है।

6.6 निर्धनता या दरिद्रता (poverty or penury)

जनजातियों का सम्पूर्ण जीवन समस्याओं से ग्रस्त है। अतः समस्याएँ कितनी है, यह कहना अत्यन्त ही कठिन है। इन समस्याओं को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) मौलिक समस्याएँ, तथा

(b) सहायक समस्याएँ।

मौलिक समस्याएँ वे हैं, जो समस्याओं के जड़ में हैं। इन समस्याओं के कारण अन्य समस्याओं का जन्म और विकास होता है। सहायक समस्याएं वे हैं जो मूल समस्याओं के कारण जन्म लेती हैं। जनजातियों की तीन मौलिक समस्याएँ हैं -

(i) निर्धनता,

(ii) ऋणग्रस्तता, और जगल

(iii) भूमि विभाजन।

यदि इन तीन मौलिक समस्याओं की विवेचना की जाय तो इनमें भी निर्धनता की समस्या सबसे बड़ी है। निर्धनता के कारण ही ऋणग्रस्तता और भूमि पृथक्करण की समस्याओं का जन्म और विकास होता है। निर्धनता न केवल भारत के लिए अपितु विश्व की विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए एक चुनौती है। आर्थिक असमानता और विकास का न होना आधुनिक समय में निर्धनता के दो प्रमुख कारण हैं। (3)

निर्धनता का तात्पर्य है "मनुष्य को आधारभूत आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा और मकान के साथ- साथ स्वास्थ्य और शिक्षा को पाने के लिए पर्याप्त आय का न होना।" योजना आयोग के अनुसार 2140 कैलोरीज प्राप्ति में असफल सभी व्यक्ति निर्धन हैं। इस परिपेक्ष्य में यह समझा गया कि ग्रामीण आबादी के कमजोर वर्गों जिनकी आय बहुत कम हैं, उन्हें निर्धनता से मुक्ति दिलाने के लिए 1 जुलाई 1975 स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम शुरू किया था, जिसके अन्तर्गत 20 सूत्रीय

कार्यक्रम की घोषणा की थी। इस कार्यक्रम में 1980, 1982 और 1984 को तीन बार संशोधन किया।

एक अनुमान के अनुसार अनुसूचित जनजाति के 52.6 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे का जीवनयापन जी रहे हैं। अखिल भारतीय गरीबी रेखा के नीचे का प्रतिशत 33.4 है। आठवी योजना में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि आज भी हमारे देश की अधिकांश अनुसूचित जनजातियाँ गरीबी रेखा के नीचे जी रही हैं। पहले भारत सरकार द्वारा 6400 वार्षिक से कम आमदनी वाले परिवारों को गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में सम्मिलित किया था। भारत सरकार ने इसे पुनः परिभाषित किया है और गरीब उन्हें माना है, जिनकी वार्षिक आमदनी 11000 रुपए से कम है। साथ ही गरीबों को निम्न चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है -

(a) वार्षिक आमदनी रु. 4000 से कम

(b) छा" रु. 4000 से 6000 तक

(c) रु. 6000 से 8500 तक

(डी)रु. 8500 से 11000 तक

इस प्रकार जो रु. 11000 वार्षिक से अधिक कमाते हैं, उन्हें अमीर माना गया है। 1986 में इस अधिनियम को पुनः संशोधित किया गया तथा निर्धनता के उन्मूलन के लिए भारत सरकार ने निम्न वचन-बद्धता घोषित की-

(i) यह सुनिश्चित करना कि गरीबी उन्मूलन का कार्यक्रम प्रत्येक गाँव के निर्धन तक पहुँचे,

(ii) ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों तथा क्षेत्र विकास और मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों के बीच सामन्जस्य,

(iii) विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने तथा ग्रामीण रोजगार बढ़ाने से जोड़ना, और

(iv) हाथकरघा, वस्तुशिल्प, लघु और ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देना तथा स्वरोजगार के लिए दक्षता में सुधार करना।

निर्धनता के अतिरिक्त जनजातियों की दूसरी बड़ी समस्या ऋणग्रस्तता की है। भारत में यह कहावत प्रचलित है कि "भारतीय किसान ऋण में ही पैदा होता है, ऋण में ही जीता है और ऋण में ही मर जाता है।" यह कथन 100 प्रतिशत सही है। आंकड़े गवाह हैं कि ऐसा कोई भी जनजातीय परिवार नहीं है, जो ऋण के बोझ से दबा न हो। इस ऋण ग्रस्तता का मूल कारण भी निर्धनता ही है। जो आदिवासी एक बार किसी साहूकार से ऋण ले लेता है, फिर व दुबारा अपने जीवन भर इस ऋण से उऋण नहीं हो पाता है। केवल इतना ही नहीं यह ऋणग्रस्तता, उत्तराधिकार की भांति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। भारत में साख समितियों की कमी तथा जनजातियों में जागरूकता के अभाव के कारण जनजातियों को साहूकारों से ही ऋण लेना पड़ता है। इनके ब्याज की दरें काफी ऊँची होती हैं, जिन्हें जनजातियों के लिए अदा करना कठिन होता है। फिर ये आदिवासी अनपढ़ होते हैं। ऋण देने वाला अपने खाते में जो चाहे लिखकर उनके दस्तखत करा लेते हैं।

जनजातियों के पास आय के साधन भी नहीं है। खेती ही आय के साधन का प्रमुख स्त्रोत है। फिर इन आदिवासियों के पास खेती के लिए जमीन नहीं होती है। जो थोड़ी बहुत जमीन होती है, उसमें इतनी कम पैदावार होती है, कि ये अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। ऋण अदा करना अत्यन्त ही कठिन होता है।

निर्धनता ऋणग्रस्तता का कारण है। ऋणग्रस्तता से जिस अलग समस्या का जन्म होता है वह है भूमि का पृथक्करण। जब ऋण की मात्रा अधिक हो जाती है, तो इनकी जमीन पर ऋण देने वाले की नजर रहती है और अन्त में उसे भूमि से भी अलग होना पड़ता है। यद्यपि सरकार द्वारा ऐसे नियम बनाए गए हैं कि आदिवासियों की जमीनों का हस्तान्तरण बिना कलेक्टर की अनुमति के नहीं होगा। किन्तु इस नियम के तोड़ के लिए भी रास्ते बना लिए गए हैं और यही कारण है कि आदिवासियों में भूमि पृथक्करण की प्रक्रिया चल रही है।

कारण (Causes) - जनजातियों में निर्धनता, ऋणग्रस्तता तथा भूमि पृथक्करण के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं है। अनेक कारण इन समस्याओं को जन्म देते हैं। इन समस्याओं के लिए जो प्रमुख कारण हैं, उनका विवरण इस प्रकार हैर

(a) जागरूकता का अभाव,

(b) अशिक्षा,

(c) परम्परागत विचार और विश्वास,

(d) साख सुविधाओं का अभाव,

(e) गलत नेतृत्व तथा नौकरशाही की उदासीनता,

(f) आर्थिक पिछड़ापन,

(g) सामाजिक तथा धार्मिक परम्पराएँ।

सुझाव (Suggestions) - समाज में जो भी समस्याएँ होती हैं, उनके समाधान के उपाय उस समस्या के मूल में ही विद्‌यमान रहते हैं। इस प्रकार यदि जनजातियों की उपर्युक्त समस्या का समाधान खोजना है, तो इन्हीं समस्याओं की तह में जाना होगा। जनजातिं में जो समस्याएँ हैं, उनमें निर्धनता, ऋणग्रस्तता तथा भूमि पृथक्करण मुख्य हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं -

1. जनजातियों में जागरूकता का विकास करना,
2. जनजातियों में शिक्षा का प्रसार करना,
3. समाज में साख सुविधाओं का विस्तार करना,
4. रोजगार के अवसर उपलब्ध करना,
5. कृषि की उन्नति की ओर ध्यान देना,
6. नौकरशाही के दोषों को दूर करना,
7. सही नेतृत्व का चुनाव कराना,
8. समाज के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करना,

9. सामाजिक तथा धार्मिक और रूढ़िवादी मान्यताओं में परिवर्तन करना।

स्व -प्रगति परिक्षण

1. किसने कहा 'आर्थिक संगठन व्यवहारों के प्रतिमान हैं तथा समाज का वह परिणामस्वरूप संगठन है, जो समाज और सेवाओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग से सम्बन्धित है।'

(अ) पिडिंग्टन (ब) बील्स एवं हाइनर (स) टायलर (द) मजूमदा

2. An Introduction to Social Anthropology. नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं-

(अ) बील्स और हाइनर (ब) पिडिंग्टन (स) एल्विन (द) नेल्सन

(D) सत्य या असत्य लिखिए-

1. जनजातीय व्यवसाय गतिशीलता की ओर बढ़ रहे हैं।

2. स्थानान्तरित या झूम खेती सामान्य कृषक करते हैं। इसमें चिली। ए

3. जनजातियों की सबसे बड़ी समस्या निर्धनता है।

6.7 सार संक्षेप

जनजातीय समाज की अर्थव्यवस्था, जीवन शैली, और सामाजिक स्थिति पर गरीबी, कृषि नीति और भूमि सुधारों का गहरा प्रभाव पड़ता है। जनजातीय अर्थव्यवस्था मुख्यतः प्राथमिक क्षेत्र, जैसे कृषि, वन-उपज और पशुपालन पर आधारित होती है। संसाधनों की कमी, परंपरागत तरीकों और बाजार से दूरी के कारण ये समुदाय अक्सर दरिद्रता से ग्रस्त रहते हैं। उनकी जीवन शैली प्राकृतिक संसाधनों और सामूहिक सह-अस्तित्व पर आधारित होती है, लेकिन औद्योगिकीकरण और भूमंडलीकरण के प्रभाव ने इसे चुनौती दी है। नई कृषि नीति का उद्देश्य कृषि क्षेत्र को आधुनिक बनाना, उत्पादकता बढ़ाना और किसानों को आत्मनिर्भर बनाना है। हालांकि, इसका लाभ कई बार जनजातीय समुदायों तक नहीं पहुंचता, जिससे उनकी स्थिति और जटिल हो जाती है। भूमि सुधार के तहत भूमि स्वामित्व और उपयोग में बदलाव लाने की कोशिशें की गईं, लेकिन ये

सुधार अक्सर प्रभावी रूप से लागू नहीं हो पाए, जिससे इन समुदायों को विस्थापन और गरीबी का सामना करना पड़ा। इस प्रकार, जनजातीय समाज की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को समझने के लिए इन कारकों का गहन अध्ययन आवश्यक है।

6.8 मुख्य शब्द

1. **औद्योगिकीकरण (**Industrialization): पारंपरिक अर्थव्यवस्था से औद्योगिक उत्पादन और व्यापार आधारित अर्थव्यवस्था में बदलाव।

2. **भूमंडलीकरण (**Globalization): विश्व अर्थव्यवस्था और संस्कृति का आपस में घनिष्ठ संपर्क।

3. **विस्थापन (**Displacement): किसी समुदाय को उनकी भूमि या आवास से हटाना।

4. **सामूहिक सह-अस्तित्व:** समूहों का पारस्परिक सहयोग और शांतिपूर्ण सह-जीवन।

5. **परंपरागत (**Traditional): जो लंबे समय से चलती आ रही रीति-रिवाज या प्रणाली है।

6.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1. (आ), 2. (आ), D. 1. (सत्य), 2. (असत्य), 3. (सत्य) ।

6.10 सन्दर्भ सूची

- Baviskar, A. (1995). In the Belly of the River: Tribal Conflicts Over Development in the Narmada Valley. Oxford University Press.
- Xaxa, V. (2008). State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India. Pearson.
- Desai, A. R., & Thakkar, U. (2001). Agrarian Struggles in India After Independence. Oxford University Press.
- Gadgil, M., & Guha, R. (1992). This Fissured Land: An Ecological History of India. Oxford University Press.

- Singh, K. S. (1982). Economy and Society in Tribal India. Seagull Books.

6.11 अभ्यास प्रश्न

(ए) निबंधात्मक प्रश्न (निबंध प्रकार के प्रश्न)

1. अर्थव्यवस्था की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए।

Define economic system. Write its characteristics.

2. जीवन यापन के साधन का क्या तात्पर्य है। इसकी विशेषताएँ लिखिए।

What is meant by means of livelihood. Write its characteristics.

3. जीवन यापन के प्रमुख साधनों की विवेचना कीजिए।

Discuss the main means of livelihood.

4.व्यवसाय की अवधारणा को समझाइए। जनजातियों के व्यवसाय की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

Explain the concept of occupation. Write the main characteristics of tribal occupation.

5. जनजातियों के प्रमुख व्यवसायों पर एक निबन्ध लिखिए।

Write an essay on main occupations of the Tribals.

6.जनजातीय व्यवसायों में गतिशीलता के क्या कारण हैं? समझाइए।

What are the reasons for mobility in tribal occupations? Explain.

7. निर्धनता जनजातीय समाज की प्रमुख समस्या है। विवेचना कीजिए।

Poverty is the main problem of tribal society. Describe.

8. जनजातीय निर्धरता के क्या कारण हैं? इस समस्या के समाधान के सुझाव दीजिए।

What are the causes of tribal poverty. Give suggestions to solve this problem.

(B) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ।

Characteristics of tribal economy. one noita noitesitiulense

2. जीवन यापन के साधनों की विशेषताएँ।

Characteristics of means of livelihood.

3. जीवन यापन के प्रमुख साधन।

main source of livelihood.

4. व्यवस्थित कृषि। Systematic Cultivation.

5. स्थानान्तरित या झूम कृषि। Shifting Cultivation.

6. व्यवसाय की अवधारणा। Concept of Culture.

7. जनजातियों के प्रमुख व्यवसाय। Main occupations of tribes.

8. जनजातीय व्यावसायिक गतिशीलता। Tribal Occupational Mobility.

9 जनजातीय दरिद्रता। Tribal Poverty.

ब्लॉक - III

इकाई -7

सामाजिक गतिशीलता एवं परिवर्तन- संस्कृतिकरण, परसंस्कृतिग्रहण, संस्कृतिग्रहण एवं नगरीकरण

(Social mobility and change- Sankritisation, acculturation, Sanskritisation and urbanisation)

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 सामाजिक गतिशीलतम परिवर्तन की अवधारणा

7.4 संस्कृतिकरण

7.5 परसंस्कृतिग्रहण

7.6 भारतीय जनजातियों में आत्मसात एवं परसंस्कृतिग्रहण

7.7 नगरीकरण

7.8 सार संक्षेप

7.9 मुख्य शब्द

7.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.11 सन्दर्भ सूची

7.12 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

गति ही परिवर्तन है। गति निरन्तर है तथा यह सार्वभौमिक है। समाज निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। परिवर्तन के दो आधार हैं- स्वतः परिवर्तन और नियोजित परिवर्तन है। अनेक परिवर्तन स्वतः होते हैं। इनकी न तो किसी को जानकारी होती है और न ही इनके लिए किसी योजना या कार्यक्रम की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का परिवर्तन प्रकृति द्वारा संचालित होता है और इसमें मानव प्रयास की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इससे समाज पर अचेतन प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त परिवर्तन का एक ऐसा प्रकार भी है, जो चेतन होता है तथा इसके लिए मानव समाज को प्रयास करना पड़ता है। परिवर्तन चाहे जैसा भी हो, इसका समाज पर प्रभाव पड़ता है।

7.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ,इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन की अवधारणाओं की समझ विकसित करना।
- संस्कृतिकरण और संस्कृत ग्रहण के बीच अंतर और उनके प्रभावों का अध्ययन करना।
- नगरीकरण के कारण और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिणामों का विश्लेषण करना।

7.3 सामाजिक गतिशीलता एवं परिवर्तन की अवधारणा (Concept of Social Mobility and Change)

गति और जीवन परस्पर अन्तः सम्बन्धित हैं। जीवन और समाज गतिशील है, परिवर्तनशील है, परिवर्तन ही प्रकृति है। प्रकृति का नियम ही परिवर्तन है, समाज इसी विशाल प्रकृति का एक अंग है। आज कोई भी समाज नहीं है जो परिवर्तन से प्रभावित न हो। सामाजिक परिवर्तन जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है यह वह परिवर्तन है जिसका सम्बन्ध समाज और सामाजिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन से है। परिवर्तन

समाज और जीवन का आधार है। यदि दिन और रात के रूप में परिवर्तन नहीं होता, ऋतुओं में परिवर्तन नहीं होता, जीवन में बचपन, यौवनावस्था, बुढ़ापा और मृत्यु के रूप में परिवर्तन नहीं होता तो क्या समाज सुचारू रूप से चल सकता था। किन्तु ऐसा नहीं होता है। इसका कारण यह है कि परिवर्तन प्रकृति का आधारभूत नियम है।

समाज नदी के प्रवाह की भाँति गतिमान है, निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। जिस प्रकार नदी का पानी उद्गम स्थान से निकलकर कहीं भी, किसी भी अवस्था में नहीं रुकता है, ठीक उसी प्रकार समाज भी सतत् परिवर्तित होता रहता है। यदि समाज में परिवर्तन न होते तो आज मानव समाज आखेट अवस्था में ही पड़ा रहता। यह सामाजिक परिवर्तन है जिसके कारण आज हम आखेट अवस्था में नहीं हैं, साथ ही आज जिस अवस्था में हैं, भविष्य में भी उसी में नहीं रहेंगे, अपितु और आगे जायेंगे।

परिवर्तन का अर्थ

(Meaning of Change)

सामाजिक परिवर्तन दो शब्दों से मिलकर बना है- सामाजिक और परिवर्तन। संक्षेप में सामाजिक का अर्थ है- समाज से संम्बन्धित । मैकाइवर ने समाज की परिभाषा करते हुए लिखा है कि समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। मैकाइवर ने समाज को वृहद् अर्थों में प्रयुक्त किया है। समाज के निर्माण में अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं का महत्व होता है और इन्हीं के योग से समाज निर्मित होता है। सामाजिक सन्तुलन बना रहे, इसलिए सामाजिक संस्थाओं की एक व्यवस्था होती है। ये संस्थाएँ और व्यवस्था अंतः सम्बन्धित तथा अन्तः निर्भर होती हैं।

परिवर्तन 'भिन्नता' (Variation) की ओर संकेत करता है। यह भिन्नता किसी भी प्रकार की और किसी भी क्षेत्र में हो सकती है। उदाहरण के लिए, चौड़ी मोहरी के पैन्ट का स्थान संकरी मोहरी के द्वारा लिया जाना भी परिवर्तन है। लिखने में कलम का स्थान पेन के द्वारा लिया जाना परिवर्तन है। जूतों की बनावट में परिवर्तन हो जाय, साइकिल के मॉडल में अन्तर आ जाय, ये सब परिवर्तन है। प्रत्येक वस्तु का एक स्वरूप होता है। इस स्वरूप का निर्माण तत्कालीन परिस्थितियाँ करती हैं। यदि समय, परिस्थितियों

और आवश्यकता में परिवर्तन हो जाने से उस वस्तु का स्वरूप परिवर्तित हो जाय, तो इसे भी परिवर्तन कहा जायेगा। फिचर ने सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "परिवर्तन को संक्षेप में पहले की अवस्था या अस्तित्व के प्रकरण में अन्तर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

परिवर्तन की विशेषताएँ (Characteristics of Change)

परिवर्तन की जो विवेचना और परिभाषा दी गई है उसके अनुसार परिवर्तन की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं -

(1) परिवर्तन का तात्पर्य भिन्नता से है।

(2) यह भिन्नता आकार-प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है,

(3) इस भिन्नता में वस्तु का पिछला आकार परिवर्तित हो जाता है,

(4) वस्तु का नया आकार पिछले को बदल देता है, परिवर्तन है।

(3)सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा (Definition of Social Change)

(1) डेविस- "सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं, जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना और कार्यों से घटित होता है।"

(2) गिन्सबर्ग- "सामाजिक परिवर्तन से मैं सामाजिक संरचना में परिवर्तन समझता हूँ।" प्रावि

(3) गिलिन तथा गिलिन "सामाजिक परिवर्तन जीवन की स्वीकृत विधियों में परिवर्तन को कहते हैं।"

(4) जेन्सन "व्यक्तियों के कार्य करने और विचार करने के तरीकों में होने वाले संशोधनों को सामाजिक परिवर्तन के रूप में परिभाषितज किया जा सकता है।"s

(5) मैकाइवर और पेज "समाजशास्त्री होने के नाते हमारी विशेष रुचि प्रत्येक रूप में सामाजिक सम्बन्ध से है। केवल इन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।"

"सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा उन अन्तरों (Variations) और रूपान्तरों (Modifications) के रूप में की जा सकती है जो सामाजिक संरचना में घटित होते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की विशेषतायें (Characteristics of Social Change)

(1) परिवर्तन समाज की प्रकृति अर्थात् यह समाज का मौलिक तत्व है। जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन का होना अनिवार्य है उसी प्रकार समाज के विभिन्न पहलुओं में परिवर्तन होना अनिवार्य है। यदि समाज में परिवर्तन अनिवार्य रूप से न होता तो हम आज भी उसी आखेट अवस्था में होते जहाँ शताब्दियों पहले थे। व्यक्ति की आवश्यकतायें, उनके विचार और उनकी मनोवृत्तियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और इन्हीं के परिणामस्वरूप समाज में भी परिवर्तन होते रहते हैं।

(2) परिवर्तन अनिवार्य होते हुए भी इसकी गति भिन्न होती है अर्थात् एक समाज में परिवर्तन की गति तेज हो सकती है, जबकि दूसरे समाज में परिवर्तन की गति धीमी हो सकती है। किन्तु ऐसा कोई भी समाज नहीं है जहाँ परिवर्तन ही न होते हों। किस समाज में परिवर्तन किस गति से होंगे, यह उस समाज के संगठन और ढाँचे पर निर्भर करता है।

(3) सामाजिक परिवर्तन की गति चाहे जो भी हो, सार्वभौमिक है। प्रत्येक देश, काल और परिस्थितियों में इसका अस्तित्व रहा है और भविष्य में भी रहेगा। चाहे आदिम समाज हो या आधुनिक, सभ्य समाज हो या असभ्य, शिक्षित समाज हो या अशिक्षित, परिवर्तन सभी जगह पाया जाता है। यह प्रकृति का नियम है।

(4) सामाजिक परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध समाज में आने वाले अन्तर से है, अर्थात् जो कल रहता है, वह कवात आज नहीं रहता है। सामाजिक संगठन, परिवार, विवाह, प्रथा, परम्परा, रीति-रिवाज और रहन-सहन में आने वाले अन्तर (भिन्नता) का नाम ही सामाजिक परिवर्तन है।

(5) सामाजिक परिवर्तन अनिश्चित होता है। दूसरे शब्दों में इसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। परिवर्तन कब किस दिशा में होगा? इसके क्या परिणाम होंगे? इसका कौन-सा रूप अधिक प्रभावपूर्ण होगा? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि परिवर्तन निरन्तर और अनिश्चित होता है।

(6) परिवर्तन चक्रीय या एकदेशीय हो सक़ता है। चक्रीय का तात्पर्य उस प्रकार के परिवर्तन से है जिनकी पुनरावृत्ति हो सकती है। जैसे पैन्ट की मोहरी- पहले चौड़ी, फिर संकरी और फिर चौड़ी और इसके बाद पुनः संकरी। एकरैखिक परिवर्तन वह है जिसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है, जैसे कुदाली से खेती (Hoe Culture) करना, फिर हल-बैल-ट्रैक्टर से खेती करने के बाद फिर कुदाली से खेती करना सम्भव नहीं है।

(7) सामाजिक परिवर्तन को नापा नहीं जा सकता है। परिवर्तन भौतिक अभौतिक दोनों वस्तुओं में होता है। भौतिक वस्तुओं में होने वाले परिवर्तन को नापा जा सकता है किन्तु अभौतिक वस्तुओं में जो परिवर्तन होता है उसे नापा नहीं जा सकता है। व्यक्ति के आचार-विचार, रीति-रिवाज, मनोवृत्तियों आदि में किस मात्रा में परिवर्तन हो गया है, इसकी माप सम्भव नहीं है। (4)

(8) सामाजिक परिवर्तन समाज को संगठित भी कर सकता है और समाज को विघटित भी। यह परिवर्तन की प्रकृति पर निर्भर करता है। इसीलिए यह समाज की उन्नति और अवनति दोनों की ओर ले जा सकता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन (Social and Cultural Change)

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में अन्तर स्पष्ट करने के लिए समाज और संस्कृति की अवधारणाओं को स्पष्ट करना अनिवार्य है।

है कि समाज = सामाजिक संबंध

संस्कृति = जीवन के स्वीकृत तरीके

गम्भीरता से विचार करने से स्पष्ट होता है कि समाज और संस्कृति आपस में अन्तः-सम्बन्धित हैं। अतः इन दोनों के बीच में कोई विभाजन रेखा खींचना कठिन है। समाज में ही संस्कृति होती है और संस्कृतियों से ही समाज का निर्माण होता है। कारण

संस्कृतियाँ सम्बन्धों का निर्धारण करती हैं। इस दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन में कोई खास अन्तर नहीं है, क्योंकि

सामाजिक परिवर्तन = सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन

सांस्कृतिक परिवर्तन = जीवन के स्वीकृत तरीकों में परिवर्तन ।

कुछ विद्वानों के विचार- सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं-

(1) **गिलिन और गिलिन** ने सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में कोई अन्तर नहीं माना है। इन विद्वानों के अनुसार जीवन के स्वीकृत तरीकों में परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। जीवन का स्वीकृत ढंग ही संस्कृति है। इस प्रकार सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन एक ही है।

(2) **मैलिनोवस्की-** मैलिनोवस्की के अनुसार संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के समस्त तरीके या ढंग आ जाते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक परिवर्तन के अन्तर्गत सामाजिक परिवर्तन भी आ जाते हैं।

(3) **प्रो. डेविस** - प्रो. डेविस के विचार उपर्युक्त विद्वानों से भिन्न हैं। प्रो. डेविस के अनुसार सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य केवल उन परिवर्तनों से है, जो समाज के ढाँचे और कार्यों में होते हैं। इस परिभाषा के अनुसार सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का केवल एक भाग है। इसका कारण यह है कि सामाजिक परिवर्तन समाज के ढाँचे और संगठन में परिवर्तन है, जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन का तात्पर्य जीवन में व्यवहार, कला, आदत, परम्परा आदि में परिवर्तन से है।

(4) **मैकाइवर और पेज-** मैकाइवर और पेज के अनुसार भी सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन से भिन्न है। मैकाइवर के अनुसार समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। इन सम्बधों में परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। सांस्कृतिक परिवर्तन वह है, जिसमें कला, साहित्य, धर्म आदि में परिवर्तन होता है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन एक दूसरे से भिन्न हैं।

(5) डासन और गेटिस- डासन और गेटिस ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन में किसी प्रकार का भेद नहीं किया है। उसके अनुसार 'सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है, क्योंकि सम्पूर्ण संस्कृति अपनी उत्पत्ति, अर्थ और प्रयोग में सामाजिक है।"।

(6) मेरिल- मेरिल के अनुसार 'सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन एक ही वस्तु नहीं हैं।'2

इन विद्वानों के विचार के अनुसार निम्न निष्कर्ष निकलते हैं-

(a) विद्वानों के विचारों में समानता नहीं है।

(b) सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन दो अलग-अलग अवधारणाएँ हैं।

(c) के इन दोनों अवधारणाओं में जो प्रमुख अन्तर है, वह इस प्रकार है-

(1) संस्कृति शब्द अत्यन्त ही व्यापक है। इसमें सभी भौतिक वस्तुओं का समन्वय होता है। की सांस्कृतिक परिवर्तन का सम्बन्ध इन्हीं भौतिक और अभौतिक वस्तुओं के परिवर्तन से कुमहहै। सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध सामाजिक ढाँचे या सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले आधी में परिवर्तन से है।

(2) संस्कृति में होने वाले परिवर्तन को देखा जा सकता है, जबकि सामाजिक परिवर्तन को नहीं देखा जा सकता है। इसका सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। ।

(3) सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का एक भाग है क्योंकि संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के सम्पूर्ण कला-विन्यास सम्मिलित रहते हैं।

(4) जहाँ तक प्रभाव का प्रश्न है सांस्कृतिक परिवर्तन का जीवन पर सामाजिक परिवर्तनों की तुलना में न्यून मात्रा में ही प्रभाव पड़ता है।

कानून (5) सामाजिक परिवर्तन अनियोजित होता है तथा इसके लिए किसी प्रकार के प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है। इसके विपरीत सांस्कृतिक परिवर्तन आमतौर पर नियोजित होता है।

(6) सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन की तुलना में तीव्र गति का होता है।

(7) सांस्कृतिक परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन दो अलग-अलग प्रकार के परिवर्तन हैं।

7.4 संस्कृतिकरण (Sanskritization)

आधुनिक भारत की अनेक मौलिक विशेषताएँ हैं, इनमें 'सामाजिक परिवर्तन' (Social change) का स्थान सर्वप्रथम है। वैसे तो परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो निरन्तर गतिशील रहती है किन्तु आधुनिक भारत में परिवर्तन की यह प्रक्रिया अत्यन्त ही तीव्र है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यन्त ही जटिल है। इस परिवर्तन की मौलिक विशेषता यह है कि परिवर्तन किसी खास दिशा में न होकर सभी दिशाओं में हो रहा है। इस परिवर्तन से शिक्षा, अर्थ व्यवस्था, राजनैतिक जीवन, धर्म आदि क्षेत्रों का प्रभावित होना नितान्त स्वाभाविक है। नैतिक और सांस्कृतिक जीवन भी इस परिवर्तन से अप्रभावित नहीं है।

यदि हम भारतीय इतिहास का अवलोकन करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि परिवर्तन की यह प्रक्रिया आदिकाल से निरन्तर चली आ रही है। भारतीय स्वतन्त्रता ने इस प्रक्रिया को और भी तेज कर दिया है और आज इसके लक्षणों को अधिक स्पष्ट और गम्भीरता से देखा जा सकता है। संस्कृतिकरण के माध्यम से भारत में होने वाले परिवर्तन की इसी प्रक्रिया को जानने का प्रयास किया गयी है।

संस्कृतिकरण की परिभाषा

(Definition of Sanskritization)

संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रतिपादन प्रोफेसर एम. एन. श्रीनिवास ने किया है। श्रीनिवास ने ही संस्कृतिकरण की जो परिभाषा दी है, उसे यहाँ रखने का प्रयास किया जायेगा-

(1)"संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई 'नीच' हिन्दू जाति या कोई जनजाति अथवा अन्य समूह, किसी उच्च और प्रायः 'द्विज' जाति की दिशा में अपने रीति रिवाज,

कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन पद्धति को बदलता है। आमतौर पर ऐसे परिवर्तनों के बाद वह जाति परम्परा से स्थानीय समाज द्वारा सोपान में जो स्थान उसे मिला हुआ है, उससे ऊँचा स्थान का दावा करने लगती है।"

इसकी विवेचना करते हुए उन्होंने आगे लिखा है कि सामान्यतः संस्कृतिकरण के साथ-साथ और प्रायः उसके परिणामस्वरूप सम्बद्ध जाति ऊपर की ओर गतिशील होती है पर गतिशीलता संस्कृतिकरण के बिना भी, अथवा गतिशीलता के बिना संस्कृतिकरण भी सम्भव है। किन्तु संस्कृतिकरण से सम्बद्ध गतिशीलता के परिणामस्वरूप व्यवस्था में केवल 'पदमूलक परिवर्तन' ही होते हैं, कोई 'संरचना मूलक परिवर्तन' नहीं अर्थात एक जाति अपने आस-पास की जातियों से ऊपर उठ जाती है और दूसरी नीचे आ जाती है, पर यह सब एक मूलतः अचल सोपान में घटित होता है। स्वयं व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(2) "संस्कृतिकरण का अर्थ केवल नई प्रथाओं और आदतों को ग्रहण करना ही नहीं है, बल्कि नये विचारों और मूल्यों को भी अभिव्यक्त करना है, जो कि धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष संस्कृत साहित्य के विशाल शरीर में बहुधा अभिव्यक्त हुआ है। कर्म, धर्म, पाप, पुण्य, माया, संसार और मोक्ष कुछ सामान्य सांस्कृतीय धार्मिक विचारों के उदाहरण हैं और जब कोई समाज 'संस्कृत' बन जाता है, तो ये शब्द उनकी संस्कृति में बहुधा दिखाई देते हैं। सांस्कृतीय पौराणिक कथाओं और कहानियों के द्वारा ये विचार सामान्य लोगों तक पहुँचाते हैं।"

वे आगे कहते हैं कि संस्कृतिकरण स्वयं में ही एक विषम और जटिल प्रत्यय है। यह भी सम्भव है कि इसको प्रत्ययों का ढेर मानना अकेले प्रत्यय मानने से अधिक उपयोगी होगा। यह एक विस्तृत सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया के लिए केवल एक नाम भर है। प्रत्यय के भोंड़ेपन और अस्पष्टता के बावजूद भी मैं उसको बिना किसी पश्चाताप के इस्तेमाल करता रहूँगा।

"जब निम्न जाति का व्यक्ति उच्च जाति के व्यक्तियों के आदर्शों, विचारों तथा रहन-सहन को अपनाता है, तो इसी प्रक्रिया को जिसके माध्यम से वह उच्च जाति के व्यक्तियों के आदर्शों और विचारों को अपनाता है, तो इसे ही संस्कृतिकरण के नाम से

जाना जाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा जो परिवर्तन होते हैं वे संरचना-मूलक न होकर पदमूलक होते हैं।

संस्कृतिकरण की विशेषताएँ

(Characteristics of Sanskritisation)

प्रो. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की जो विवेचना की है उसको ध्यान में रखकर इसकी निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

(1) संस्कृतिकरण की पहली विशेषता यह है कि वह एक प्रक्रिया है। इसकी धारणा गतिशील है।

(2) संस्कृतिकरण का सीधा सम्बन्ध परिवर्तन से है। परिवर्तन के अभाव में संस्कृतिकरण असंभव है।

(3) संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से निम्न जाति के व्यक्ति उच्च जाति की विचारधारा और जीवन पद्धति को अपनाते हैं।

(4) यह संस्कृतिकरण की प्रक्रिया हिन्दू जातियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जनजाति और अर्ध जनजाति में भी यह प्रक्रिया गतिशील रहती है।

(5) संस्कृतिकरण का सम्बन्ध भारतवर्ष की परम्परागत सामाजिक स्तरीकरण में परिवर्तन से है।

(6) संस्कृतिकरण की इस प्रक्रिया में केवल ब्राहमणों का ही अनुकरण नहीं किया जाता है, अपितु प्रत्येक स्थिति में निम्न जाति उच्च जाति के व्यक्तियों का अनुसरण करती हैं।

(7) संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में जाति अथवा समूह के रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन पद्धति किसी द्विज जाति के अनुरूप परिवर्तित हो जाती है।

संस्कृतिकरण सार्वभौमिक नहीं है

(Sanskritisation is not universal)

प्रोफेसर श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की जिस अवधारणा को प्रतिपादित किया है, उसे सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि यह प्रक्रिया समान रूप से सभी जगह क्रियाशील नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया सिर्फ निम्न जातियों में ही देखी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि निम्न जातियाँ ही उच्च जातियों के विचारों और आदर्शों को अपनाती हैं। कभी भी उच्च जातियाँ निम्न जातियों के विचारों और आदर्शों को ग्रहण नहीं करती हैं। इसके साथ ही संस्कृतिकरण की यह प्रक्रिया सम्पूर्ण भारतवर्ष

में समान रूप से लागू नहीं होती है। डॉ. मजूमदार (Dr. D.N. Majumdar) ने उत्तर प्रदेश के मोहाना ग्राम का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला है कि इस गाँव की निम्न जातियों में उच्च जातियों के विचारों और आदर्शों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है। इसके साथ यदि कोई भी निम्न जाति उच्च जाति के विचारों और आदर्शों को ग्रहण करती है, तो उसे सामाजिक स्तरीकरण में ऊँचा स्थान नहीं मिलता है। संस्कृतिकरण के प्रमुख रूप से दो आधार हैं-

(1) ऊध्र्वोन्मुख (Vertical) और

(2) क्षैतिज (Horizontal)

डॉ. मजूमदार ने मोहाना गाँव का अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला था कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ऊर्ध्वान्मुख न होकर क्षैतिज होती है। इसे उन्होंने निम्न उदाहरण के द्वारा समझाया है-

ब्राह्मण

भारतीय सामाजिक संस्तरण

क्षत्रिय

वैश्य

शूद्र

(2) इस संस्तरण में ब्राह्मण का पद सर्वोच्च है और शूद्र इस संस्तरण में नीचे की स्थिति में है। मजूमदार के अनुसार संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के द्वारा शूद्र को ब्राह्मणों के संस्तरण में पहुँचना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता है, बल्कि शूद्रों में ही एक अलग जाति बन जाती है, जैसे 'रैदास'। रैदास ब्राह्मण न होकर शूद्रों में ही एक शाखा के रूप में होंगे, इसलिये संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता है।

असंस्कृतिकरण

(Deculturalization)

डॉ. मजूमदार का कहना है कि यदि हम भारतीय सामाजिक संस्तरण की विवेचना करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ संस्कृतिकरण से अधिक असंस्कृतिकरण की प्रक्रिया दिखाई देती है। इसे संस्कृतिकरण की प्रक्रिया कहा जा सकता है। उनका तर्क यह है कि यदि निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों के विचारों और आदर्शों को ग्रहण करने की प्रक्रिया को संस्कृतिकरण कहा जाता है तो उच्च जातियों द्वारा अपने विचारों, आचारों और आदर्शों के त्याग की प्रक्रिया को क्या कहा जायेगा? उनका कहना है कि भारतीय सामाजिक संस्तरण में ब्राह्मणों का काम अध्ययन, अध्यापन, दान, यज्ञ आदि था। किन्तु क्या ब्राह्मण इन कार्यों को आज भी संचालित कर रहे हैं। अनेक ब्राह्मण वाणिज्य व्यापार, सेवा और प्रशासनिक कार्यों का संचालन कर रहे हैं। इसके साथ ही वे माँस, मदिरा का सेवन करते हैं, तथा अनेक ऐसे कार्यों का सम्पादन कर रहे हैं, जो उनके पद और प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हैं। डॉ. मजूमदार का कहना यह है कि भारत में संस्कृतिकरण न होकर असंस्कृतिकरण हो रहा है। निम्न जातियाँ उच्च जातियों के आचारों और विचारों को तो कम ग्रहण करती हैं, अपितु उच्च जाति के व्यक्ति ही अपने आचार, विचार और आदर्शों को छोड़ते जाते हैं।

प्रभु जाति

(Dominant Caste)

प्रोफेसर श्रीनिवास ने लिखा है कि- "भारत के विभिन्न भागों में देहाती जीवन की एक विशेषता है प्रभुत्तासम्पन्न, भूस्वामी जातियों की उपस्थिति। 'प्रभुता' का क्या आधार

होता है। ऐसी कौन-सी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर किसी भी जाति को 'प्रभु जाति' कहा जाय।" प्रो. श्रीनिवास ने भारतीय देहातों में फैली इन प्रभु जातियों की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है-

(1) उपलब्ध स्थानीय कृषि योग्य भूमि में से बड़े अंश पर स्वामित्व हो,

(2) उसकी सदस्य संख्या यथेष्ट हो,

(3) स्थानीय सोपान परम्परा में उस जाति को ऊँचा स्थान प्राप्त हो।

जब किसी भी जाति में प्रभुता के ये गुण मौजूद होते हैं, तो इस जाति को प्रभु जाति के नाम से जाना

प्रभुता (Domination) के आधारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(A) परम्परात्मक प्रभुता- (Traditional Domination) परम्परात्मक प्रभुता वह है, जिसमें परम्पराएँ प्रभुता का आधार प्रस्तुत करती हैं। ये परम्पराओं से चली आती हैं।

(B) प्रजातन्त्रात्मक प्रभुता- (Democratic Domination) प्रजातन्त्रात्मक प्रभुता का आधार भारतीय स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्र भारत की प्रभु जातियाँ वे हैं, जिनके हाथ में राजनैतिक सत्ता होती है।

भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में प्रभु जातियाँ पाई जाती हैं। उत्तर भारत के गाँवों में इन प्रभु जातियों को 'अजगर' कह कर सम्बोधित किया जाता है। इसके अन्तर्गत उत्तर भारत की निम्न चार जातियाँ आती हैं- कोए

(i) अ = अहीर (ii) ज = जाट (iii) ग = गूजर (iv) र = राजपूत

इसी प्रकार भारत के विभिन्न प्रान्तों में इन प्रभु जातियों को जिस नाम से पुकारा जाता है, उसका विवरण निम्नलिखित है-

(a) पश्चिमी बंगाल = सदगोय, (b) गुजरात = पाटीदार + राजपूत,

(c) महाराष्ट्र = मराठा, (d) आंध्र = कम्म + रेड्डी,

(e) मैसूर = औक्कलिजग + लिगायत, (f) मद्रास बेल्लास + गाउडर + पड़पाची + कल्लर, (g) केरल = नायर।

प्रभुत्व को विघटित करने वाले कारक (Factors Disorganizing Dominance)- भारतीय देहातों में जो प्रभुता पाई जाती है, वह आज परिवर्तन की प्रक्रिया में है। यह प्रभुता आज स्थायी नहीं रह गई है। अनेक ऐसे कारण हैं जो प्रभुता को समाप्त कर रहे हैं। संक्षेप में प्रभु जातियों की प्रभुता को समाप्त करने के जो प्रमुख कारक हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) भारतीय स्वतन्त्रता- भारतीय देहाती क्षेत्रों में प्रभु जातियों की जो प्रभुता थी, उसका प्रमुख कारण भारतीय परतन्त्रता ही है। स्वतन्त्रता के बाद देश के सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के जो अधिकार और समानान्तर प्रदान की गई है, इनसे प्रभु जातियों की प्रभुता में परिवर्तन आया है।

(2) प्रशासन में नौकरी- प्रभु जातियों की प्रभुता को समाप्त करने का जो दूसरा कारक है, वह भारतवर्ष में प्रशासकीय सेवाओं में सभी जाति वर्ग और साम्प्रदाय के व्यक्तियों को स्थान प्रदान करना है।

(3) आय के शहरी साधन जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि प्रभुता का यह सिद्धान्त भारतीय देहाती क्षेत्रों में लागू होता है। ग्रामों में प्रभुता इसलिये बनी रहती है कि आमदनी के सभी साधनों पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का अधिकार होता है और अधिकांश व्यक्ति निर्धन रहते हैं। शहरों में आमदनी के साधनों पर किसी का एकाधिकार नहीं होता है। इसका कारण यह है कि यहाँ के व्यवसाय परम्परात्मक नहीं होते हैं। शहरों में जिसके पास अधिक पैसा होता है, प्रभुता भी उसी के पास रहती है।

(4) शिक्षा- स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने शिक्षा की नयी नीति अपनाई है, जिसके अनुसार सभी नागरिकों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अधिकार होते हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक कारण ऐसे हैं, जो प्रभुता को समाप्त कर रहे हैं, इसमें कुछ प्रमुख निम्न हैं-

(5) पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भी देश पर तीव्रगति से प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रभाव के कारण भी प्रभुता समाप्त होती जा रही है।

(6) राजनैतिक जागरूकता का स्थान भी प्रभु जातियों की प्रभुता को समाप्त करने में कम नहीं है।

(7) आवागमन और संचार के साधनों के कारण सभी व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते है। इस सम्पर्क के कारण भी प्रभु जातियों की प्रभुता समाप्त होती जा रही है।

(8) नये पदों (Status) और भूमिकाओं (Roles) के कारण सामाजिक स्तरीकरण में परिवर्तन होता है। इस स्तरीकरण का परिणाम यह होता है कि प्रभु जातियों की प्रभुता समाप्त होती है।

संस्कृतिकरण के साधन (Means of Sanskritization)

भारत में संस्कृतिकरण के कौन से साधन हैं? वे कौन से तत्व हैं जो भारत में संस्कृतिकरण के लिये परिस्थितियाँ पैदा करते हैं? संक्षेप में संस्कृतिकरण के साधनों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) सामाजिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन संस्कृतिकरण का मौलिक तत्व है। परिवर्तन के अभाव में संस्कृतिकरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। परिवर्तन के कारण सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन होता है, समाज के मूल्य और मान्यताएँ बदलती हैं। मूल्य और मान्यताओं में परिवर्तन होने से संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को गति मिलती है।

(2) सामाजिक सम्पर्क सामाजिक संस्कृतिकरण का दूसरा महत्वपूर्ण साधन है। आधुनिक युग में सामाजिक सम्पर्क के साधनों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(i) विज्ञान और प्रोद्योगिकी का प्रसार,

(ii) आवागमन और सन्देशवाहन के साधनों का विकास,

(iii) सहशिक्षा और बढ़ता हुआ ज्ञान,

इन माध्यमों से मनुष्यों के बीच सम्पर्क की मात्रा में वृद्धि हुई है। इस सम्पर्क ने भारत में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की है।

(3) प्रसार- प्रसार को भी संस्कृतिकरण का साधन माना जाता है। प्रसार वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से संस्कृति फैलती है। संस्कृति में प्रसार की प्रक्रिया अत्यन्त ही मन्द गति से प्रवाहित होती है। संस्कृति के दो रूप होते हैं- सांस्कृतिक लक्षण और सांस्कृतिक संकुल। सांस्कृतिक लक्षण संस्कृति के एक अङ्ग को कहते हैं। इन सभी अङ्गों को मिलाकर सम्पूर्ण संस्कृति का निर्माण होता है। जब किसी संस्कृति का एक भाग दूसरी संस्कृति से प्रभावित होती है, तो इसे प्रसार कहते हैं। जब संस्कृति सम्पूर्ण रूप से दूसरी संस्कृति से प्रभावित होती है तो इसे प्रसार कहते हैं। जब संस्कृति सम्पूर्ण रूप से दूसरी संस्कृति से प्रभावित होती है तो इस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण के नाम से जाना जाता है। संस्कृति का एक भाग पहले प्रभावित होता है और धीरे-धीरे सम्पूर्ण संस्कृति प्रभावित हो जाती है।

(4) धार्मिक स्थान- भारत में धार्मिक स्थान भी संस्कृतिकरण के साधन है। भारत के धार्मिक स्थानों में जगन्नाथपुरी और बद्रीनाथ का नाम महत्वपूर्ण है। इन धार्मिक स्थानों में व्यक्ति-व्यक्ति का भेद ऊँच-नीच का भेद नहीं रहता है। यहाँ सभी जाति ओर वर्ग के व्यक्तियों को समान महत्व दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया गतिशील हो जाती है।

(5) आर्थिक कारक संस्कृतिकरण के साधनों में धार्मिक कारकों का भी कम महत्व नहीं है। प्रारम्भिक अवस्था में कृषि जीवन का मूल व्यवसाय था। मेहनत करना नीचता का प्रतीक कम हैसियत का प्रतीक माना जाता था। जीवन में गतिशीलता, सामाजिक परिवर्तन तथा अन्य परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण ग्रामीण व्यक्ति नगरों की ओर स्थानान्तरित होने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि जाति के बन्धन समाप्त हुए और नये वर्गों का विकास हुआ।

(6) राजनैतिक कारक- संस्कृतिकरण के साधनों में राजनैतिक कारकों का भी अत्यधिक महत्व है। स्वतन्त्रता से पहले भारत में राजनैतिक गतिशीलता और जागरूकता इतनी नहीं थी, जितनी की आज है। 18 वीं शताब्दी में राजनैतिक व्यवस्था के निम्न चार स्तर थे।

(a) सामाजिक स्तर - मुगल बादशाही

(b) माध्यमिक स्तर - नवाब, आदि

(c) प्रादेशिक स्तर - जागीरदार

(d) स्थानीय स्तर - आमिल

स्वतन्त्र भारत से पहले प्रशासकों को इस आशय के अधिकार थे कि वे जातियों के स्तर को अपनी इच्छानुसार ऊँचे उठाएँ या नीचे गिरायें। स्वतन्त्रता के बाद राजनैतिक जीवन में अत्यन्त ही गतिशीलता आ गई है। इसके भी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को गति मिलती है।

7.5 परसंस्कृतिग्रहण (Acculturation)

पश्चिम का भारतीय समाज और संस्कृति पर पड़ने ने वाले प्रभावों की के नाम जीवन पर पश्चिम का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। और इसके परिणामस्वरूप समस्त कसे जाना जाता है। भारतीय विया और यदि हम प्राचीन और आधुनिक भारतीय जीवन की विवेचना करें तो ऐस प्रतीत होता है कि जीवन का हर क्षेत्र पश्चिम से प्रभावित है।

15वीं शताब्दी में वास्कोडिगामा नामक पुर्तगाली सरदार सबसे पहले भारत आया। उसका भारत आने का प्रमुख उद्देश्य व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना करना था। धीरे-धीरे ये शासन-व्यवस्था पर भी अधिकार स्थापित करने लगे, यद्यापि वे सम्पूर्ण देश पर अधिकार करने में असमर्थ रहे और परिणामस्वरूप भारतीय समाज पर इनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

16वीं शताब्दी में व्यापारिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर अंग्रेज भारत आये। इनके भारत आने का उद्देश्य धर्म का प्रचार करना भी था। मुगल शासन की शिथिलता का फायदा अंग्रेजों ने उठाया और उन्होंने शासन-व्यवस्था पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजों का भारत पर शासन 1947 तक रहा। इस लम्बी अवधि में इनकी सभ्यता और संस्कृति ने देश को प्रभावित किया। इसी दृष्टि को सामने रखते हुए प्रो. डी.पी. मुकर्जी ने लिखा है कि "इतिहासकार कहते हैं, पहली बार एक विदेशी सभ्यता ने भारतीय जीवन

के प्रत्येक पक्ष पर संघात किया, इसके प्रतिमान को परिवर्तित किया तथा नये मूल्यों को जन्म दिया।" भारतीय समाज पर पड़ने वाले पश्चिम के प्रभाव को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) परिवार का प्रभाव-परिवार प्रत्येक समाज की मूलभूत इकाई होती है। भारत में इस मूलभूत संस्था को जओ प्रभाव पड़ा है, उसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) व्यक्तिवादी विचार में वृद्धि के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार यांदे एक ओर विघटित हो रहे हैं तो दूसरी ओर व्यक्तिगत परिवारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(b) परिवार समाजीकरण की प्रमुख संस्था के रूप में स्थायी था। परिवार के इस स्थायित्व में कमी हो जाने के कारण समाजीकरण के क्षेत्र में परिवार अपनी भूमिका का निर्वाह करने में असमर्थ प्रतीत हो रहा है।

(c) परिवार के कार्यों में भी शिथिलता आ गई है। परिवार के सदस्य आज अपने उत्तरदायित्वों के प्रति इतने सजग नहीं है जितना कि पहले थे।

(d) परिवार की संख्या में स्थायित्व में भी कमी आई है। इस स्थायित्व की कमी का ही परिणाम है कि आज परिवार विघटन की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं।

(e) पारिवारिक नियन्त्रण में भी शिथिलता का विकास हुआ।

(1) हिन्दू परिवार में स्वियों की स्थिति ऊँची हुई है, परिवार में श्रम विभाजन की जो दीवार रहती थी, वह भी समाप्त होती जा रही है।

(2) विवाह का प्रभाव- पश्चिम का दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव विवाह की संस्था पर पड़ा है। विवाह की संस्था पर जो प्रमुख प्रभाव पड़े है, उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) पश्चिमीकरण को जो प्रभाव भारतीय विवाह की संस्था पर पड़ा है, उसका परिणाम यह हुआ है कि वैवाहिक आधारों में ही परिवर्तन हो गया है। हिन्दू विवाह के तीन प्रमुख

आधार थे- धर्म, पुत्र और रति। विवाह इसलिए किया जाता था कि ऐसा करना धर्म की आज्ञा के अनुसार है। आज का विवाह धार्मिक संस्कार न होकर एक समझौता है। रति की उपेक्षा और प्रजाति की निरन्तरता में भी परिवर्तन हो गये हैं। आज ति को प्राथमिकता दी जाती है और परिवार नियोजन के द्वारा सन्तानों को पैदा होने से बोका जाता है।

(b) विवाह की पद्धतियाँ भी परिवर्तित हो गई हैं। आज विवाह करते समय उतने विधान नहीं माने जाते है, जिसने कि पहले माने जाते थे। इसके साथ ही संस्कारों द्वारा होने वाले पवित्र विवाहों के स्थान पर प्रेम विवाहों की संख्या में निरन्तर वृद्धि

(c) अन्तर्जातीय विवाहों को निरन्तर प्रोत्साहन मिल रहा है। जाति और धर्म में विवाह करना प्राचीनता का प्रतीक माना जाता है।

(d) बाल विवाहों की संख्या में निरन्तर कमी होती जा रही है और अधिक आयु में विवाह करना एक फैशन तथा सभ्यता का प्रतीक बनता जा रहा है।

(e) विवाह की संस्था आज उतनी स्थायी नहीं रह गयी है जितनी कि पहले थी। इसके साथ ही विवाह को जन्म-जन्मान्तर का मिलन भी नहीं माना जाता है। इससे तलाकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(f) एक-विवाह की प्रकृति का विकास होता जा रहा है और इसे सभ्यता का प्रतीक माना जाता है।

(g) आज विवाहित युवक और युवतियों में उन्मुक्त भोग की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। परिवार नियोजन के उपकरणों ने मानव को उन्मुक्त भोग की प्रवृत्ति की ओर भी प्रोत्साहित किया है।

(h) विवाह को एक ढकोसला तथा बन्धन का प्रतीक माना जाने लगा है और यही कारण है कि स्त्री-पुरुष में आजीवन अविवाहित रहने की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है।

(3) जाति प्रथा- भारतीय जाति-प्रथा भी पश्चिमी प्रभाव से प्रभावित हुई है। जातिप्रथा भारत की अपनी विशेषता है और इसकी मिसाल दुनिया में कहीं भी नहीं मिलती है। भारतीय जाति-प्रथा पर पश्चिम के प्रभावों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिक शिक्षा, आवागमन और संदेशवाहन के साधनों का परिणाम यह हुआ है कि जाति-प्रथा के महत्व में कमी आयी है।

(b) जाति-प्रथा के निषेघ शिथिल हो गये हैं और खानपान, रीति-रिवाज आदि के सम्बन्ध में निश्चित निषेधों का पालन नहीं किया जाता है।

(c) जाति-प्रथा में जो ऊँच-नीच की भावना थी आज उसमें भी शिथिलता का विकास हुआ है।

(d) जाति-प्रथा के यद्यपि प्रमुख लक्षण समाप्त होते जा रहे हैं, किन्तु इसके स्थान पर 'जातिवाद' (Castiesm) जैसे प्रचण्ड रोग भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर घर करते जा रहे हैं।

(e) विभिन्न जातियों के व्यक्तियों के द्वारा एक ही प्रकृति के कार्यों का सम्पादन करने का परिणाम यह हुआ है कि नये वर्गों का जन्म और विकास होता जा रहा है।

(4) अस्पृश्यता- आज अस्पृश्यता की भावना भी शिथिल होती जा रही है। अस्पृश्यता को शिथिल करने में आधुनिक शिक्षा, आवागमन और संचार के साधन रेल, होटल, मीटिंग, कल-कारखाने आदि प्रमुख हैं। अधिनियम के द्वारा भी अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया गया है। इन सबका परिणाम यह हुआ है कि अस्पृश्यता समाप्त होती जा रही है।

(5) स्त्रियों की स्थिति- स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर भी पश्चिम का प्रभाव पड़ा है। आज भारत में स्त्रियों और पुरुषों में समानता का व्यवहार किया जाता है। उन्हें ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जाती है। पश्चिम का भारतीय स्त्रियों पर निम्न प्रभाव पड़ा है-

(a) शिक्षा का समान अधिकार और इससे स्त्रियों में ज्ञान का प्रसार।

(b) ज्ञान के प्रसार के साथ ही साथ स्त्रियों ने पर्दा की भीषण कुप्रथा का बहिष्कार कर दिया।

(c) विवाह में स्त्रियों की सहमति को भी आवश्यक समझा जाने लगा।

(e) स्त्रियों को समाज में पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए गए। एक

(6) हिन्दू धर्म- हिन्दू धर्म पर भी पश्चिम का प्रभाव पड़ा है। हिन्दू धर्म में अनेक रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास व्याप्त हो जाने के कारण दोषयुक्त हो गया था। साथ ही इसमें अनेक प्रकार की दीवारें खड़ी हो गई थीं। पश्चिम का प्रभाव पड़ने से हिन्दू धर्म में व्यापकता का विकास हुआ है। धार्मिक कट्टरता को समाप्त किया गया। हिन्दुओं में धर्म के प्रति एक नवीन चेतना का विकास हुआ। अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं ने हिन्दू धर्म की भ्रान्तियों को समाप्त करके इसे नवीन दृष्टि प्रदान की।

(7) रीति-रिवाज- रीति-रिवाज पर पश्चिमीकरण का जो प्रमुख प्रभाव पड़ा है, वह निम्नलिखित है-

(a) स्त्री और पुरुष दोनों की वेशभूषा में परिवर्तन हुआ है।

(b) फैशन को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है तथा इसे जीवन के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है।

(c) खान-पान में भी परिवर्तन हुआ है तथा इसका सम्बन्ध भी पश्चिम समाज और सभ्यता से जोड़ने का प्रयास किया जाने लगा है। क

(d) रीति-रिवाजों और प्रथाओं में आमूल परिवर्तन हो गया है तथा इन्हें सामाजिक जीवन और परिस्थितियों से सम्बन्धित करने के प्रयास किए जाने लगे हैं।

(8) शिक्षा- परम्परात्मक शिक्षा समाप्त हो गई है। 'गुरूकुल' की जो परम्परा थी उसके कहीं भी दर्शन नहीं होते हैं। आधुनिक शिक्षा का प्रसार हुआ। इससे समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सह-शिक्षा (Co-education) का प्रसार हुआ है। इससे स्त्रियों ने पर्दा प्रथा का बहिष्कार किया तथा उनकी सामाजिक स्थिति ऊँची हुई। अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिला और जाति तथा अस्पृश्यता की भावनाएँ शिथिल हुईं।

(9) भारतीय संस्कृति- भारतीय संस्कृति पर भी पाश्चात्य का निम्न प्रभाव पड़ा है-

(a) प्राचीन भारतीय कला के स्थान पर 'आधुनिक कला' (Modern Art) का विकास हुआ है।

(b) चलचित्रों के दृश्य, संवाद, संगीत, तकनीकी आदि पर भी पश्चिमीकरण का प्रभाव पड़ा।

(c) संगीत में पाश्चात्य संगीत और पाश्चात्य वाद्ययन्त्रों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

(d) नृत्यकला भी पश्चिमी समाज और संस्कृति से प्रभावित हुई। 'कैवरा डांस' की प्रथा का प्रचलन चलचित्रों विक्रम में विशिष्ट आकर्षण लाता है।

(e) भारतीय चित्रकला में भी आज अनेक प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों पर पश्चिम का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

(f) भवन निर्माण कला भी पश्चिमी समाज और संस्कृति से प्रभावित हैं।

(g) भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग सामान्य हो गया है। इसके साथ ही अंग्रेजी भाषा को सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक माना जाने लगा है।

(h) साहित्य में भी पश्चिम के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतीय साहित्य में भी पश्चिमी साहित्य की रोमांसवाद (Romanticism), अस्तित्ववाद (Existentialism) तथा मनोविश्लेषण (Psycho- analysis) आदि की प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ती जा रही हैं।

(i) मनोरंजन के साधनों में भी परिवर्तन हुआ है। चलचित्रों से मनोरंजन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय समाज का प्रत्येक भाग पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित है।

पश्चिमीकरण और आधुनिकरण

(Westernisation and modernisation)

पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण को भी समानार्थी माना जाता है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य संस्कृति को आधुनिक माना जाता है किन्तु ये दोनों ही अवधारणाएँ अलग-अलग हैं। इतना निश्चित है कि समकालीन भारतीय जीवन में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गतिशीलता प्रदान करने में पश्चिमीकरण की भूमिका महत्वपूर्ण है। पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण में निम्न समानताएँ और भिन्नताएँ हैं-

(1) पश्चिमीकरण तथा भारतीय सामाजिक जीवन में परिवर्तन की प्रक्रियाएँ हैं।

(2) भारत को आधुनिक बनाने में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया की भूमिका महत्वपूर्ण है।

(3) आधुनिकीकरण की अवधारणा विस्तृत है, जबकि पश्चिमीकरण की अवधारणा सीमित है। इसका कारण यह है कि सभी देशों में आधुनिकीकरण तो हो रहा है किन्तु सभी देशों में पश्चिम के प्रभाव से ही आधुनिकीकरण नहीं हुआ है।

(4) आधुनिकीकरण में सभी प्रकार के परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है, जबकि पश्चिमीकरण में केवल उन्हीं प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है, जो कि पश्चिमी देशों के प्रभाव के कारण होते हैं।

पश्चिमीकरण और नगरीकरण

(Westernisation and Urbanisation)

पश्चिमीकरण और नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ हैं। समकालीन भारतीय समाज और संस्कृति को परिवर्तित करने में इन दोनों प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय समाज और जीवन की विवेचना करते हुए ऐसा लगता है कि पश्चिमीकरण का प्रभाव नगरों में अधिक है। यद्यपि भारतीय ग्रामीण अंचल भी पश्चिमीकरण के प्रभाव से अछूते नहीं हैं, किन्तु वहाँ इस प्रक्रिया की गतिशीलता कम है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पश्चिमीकरण नगरीकरण है। कुछ भारतीय गाँवों में ऐसे व्यक्ति भी हैं, जिनमें पश्चिमीकरण का प्रभाव किसी नगर में रहने वाले व्यक्ति से अधिक है। इसके साथ ही, नगरों में भी पश्चिमीकरण का समस्त जनसंख्या पर बराबर प्रभाव नहीं है। इसलिए पश्चिमीकरण को नगरीकरण का अनिवार्य लक्षण नहीं कहा जा सकता है। इन दोनों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि -

(1) नगरीकरण और पश्चिमीकरण दोनों ही समकालीन भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रक्रियाएँ हैं।

(2) नगरीकरण सार्वभौमिक अवधारणा है, जबकि पश्चिमीकरण की अवधारणा सार्वभौमिक नहीं है। इसका कारण यह है कि पश्चिमीकरण में पश्चिम के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

(3) नगरीकरण से जो सामाजिक परिवर्तन होते हैं, उससे अनेक समस्याओं का जन्म होता है। इन समस्याओं का व्यक्ति के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। पश्चिमीकरण से जो सामाजिक परिवर्तन होता है, उससे भी समस्याओं का जन्म होता है किन्तु ये समस्याएँ समाज पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालती हैं।

पूर्व और पश्चिम में अन्तर

(Difference Between Eastern and Western)

अनेक विचारकों की ऐसी धारणा है कि पूर्व और पश्चिम एक-दूसरे से भिन्न हैं तथा वे एक-दूसरे से मिल नहीं सकते हैं। 50 वर्ष पहले किपलिंग ने लिखा था कि 'पूर्व पूर्व है ओर पश्चिम पश्चिम, और ये दोनों कभी नहीं मिलेंगे।' किपलिंग ने इस प्रकार के विचार तब व्यक्त किये थे, जब अंग्रेजों के साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय अफ्रीका और एशिया महाद्वीपों का अधिकांश भाग इंग्लैण्ड तथा अन्य योरोपीय राष्ट्रों के साम्राज्य के अन्तर्गत था। दुनिया के 25 प्रतिशत भागों पर इंग्लैण्ड का अधिकार था। पश्चिमी समाज में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) पहले हुई। इसके कारण आविष्कारों (Inventions) का प्रादुर्भाव हुआ। इन औद्योगिक आविष्कारों के कारण पश्चिमी राष्ट्रों ने प्राकृतिक शक्तियों पर अपना अधिकार कर लिया। उनकी आर्थिक उन्नति हुई। अनेक अस्त्र-शस्त्रों तथा शक्ति-यंत्रों का आविष्कार हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय पश्चिमी राष्ट्र समृद्धिशाली हो गये तथा उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक हुआ। विपरीत पूर्व के राष्ट्रों से निर्धनता, बेरोजगारी, अभाव आदि का साम्राज्य रहा है। किपलिंग की विचारधारा को हम मात्र आदेश मान सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि किपलिंग ने अपने राष्ट्र के अभिमान और राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर अपने विचारों के कारण ऐसा लिखा हो। किन्तु किपलिंग के विचारों को मात्र आवेश नहीं कहा जा सकता है। किपलिंग के अतिरिक्त भी अन्य अनेक विद्वानों ने पूर्व और पश्चिम में अन्तर को स्वीकार किया है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इन विद्वानों के विचारों का मूल्यांकन किया जाय। पूर्व और पश्चिम में जो प्रमुख अन्तर है, वह इस प्रकार है-

(1) शासन-प्रणाली- इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पूर्व की वर्तमान शासन-प्रणाली का जन्म पश्चिम के आधार पर हुआ है। ब्रिटिश पार्लियामेंट संसार के सभी पार्लियामेंटों की जननी है। शासन- प्रणाली की दृष्टि से भी पूर्व और पश्चिम में अन्तर है कि गया कि हाथ চি

(a) पूर्व में सदैव निरंकुश शासन तन्त्र रहा है, गाना

(b) पश्चिम में प्रजातन्त्र की मान्यता मिलती रही है।

(2) जीवन दर्शन- जीवन-दर्शन (Philosophy of life) की दृष्टि से भी पूर्व और पश्चिम में अन्तर रहा है। जीवन-दर्शन की दृष्टि से पूर्व और पश्चिम में जो प्रमुख अन्तर रहा है, वह इस प्रकार है-

(a) पूर्व का जीवन-दर्शन परम्परावादी रहा है, जबकि पश्चिम के जीवन-दर्शन में आधुनिकता पाई जाती रही है।

(b) पूर्व में 'सादा जीवन, उच्च विचार' को महत्व प्रदान किया जाता रहा है, जबकि पश्चिम में इस प्रकार के जीवन-दर्शन को महत्व नहीं दिया गया है।

(c) पश्चिमी और भौतिकवादी (Materialistic) रहा है और 'खाओ पिओ तथा मौज करो' में विश्वास व्यक्त किया है। पूर्व का जीवन अध्यात्मवादी (Spiritualistic) रहा है तथा मोक्ष में विश्वास व्यक्त किया गया है।

(3) वैज्ञानिक प्रगति - वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से भी पूर्व और पश्चिम में अन्तर रहा है। पश्चिम में औद्योगिक क्रान्ति के कारण वैज्ञानिक प्रगति हुई, जबकि पूर्व में वैज्ञानिक प्रगति नहीं हुई। पश्चिम में वैज्ञानिक प्रगति के कारण जीवनोपयोगी अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओं का निर्माण हुआ जब कि पूर्व में ऐसा नहीं हुआ। पश्चिम में धर्म को विज्ञान के अन्तर्गत माना, जबकि पूर्व में धर्म को विज्ञान से महत्वपूर्ण माना।

(4) जीवन दृष्टिकोण- जीवन दृष्टिकोण के आधार पर पूर्व और पश्चिम में जो अन्तर है, वह इस प्रकार है-

(a) पश्चिम का दृष्टिकोण व्यावहारिक तथा सामयिक है, जबकि पूर्वी दृष्टिकोण सैद्धान्तिक परम्परा-प्रेमी है।

(b) पश्चिम का दृष्टिकोण प्रगतिवादी (Porgressive) है, जबकि पश्चिम का दृष्टिकोण भाग्यवादी (Fatalist) है।

(c) पूर्व का दृष्टिकोण इस लोक की उपेक्षा करके परलोक पर टिका है, जबकि पश्चिम के दृष्टिकोण में परलोक की उपेक्षा करके इस लोक को महत्व दिया गया है।

(d) पूर्व का दृष्टिकोण धर्म-प्रेरित है, जबकि पश्चिम का दृष्टिकोण विज्ञानवादी है।

प्रमुख समाजशास्त्री मैक्सवेबर ने संसार के 6 प्रमुख धर्मों का अध्ययन सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में किया था। वेबर ने अपने निष्कर्ष में कहा था कि भारत की आध्यात्मवादी संस्कृति यहाँ की आर्थिक प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। भले ही भारत ने भौतिकता का विशाल भवन खड़ा न किया हो, भारत ने आध्यात्मिक क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की है। आज पश्चिम ने भौतिक सभ्यता का इतना विशाल भवन खड़ा किया है कि वह अपनी कमजोर नीवों (Foundations) को ही नहीं सम्हाल पा रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि पश्चिम के सामने अपनी अस्तित्व रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो गया है। प्रसिद्ध विचारक ओसवाल्ड स्पेंगलर (Oswald Spengler) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पश्चिम का पतन' (Decline of the West) में लिखा है किन् "पश्चिमी भौतिक संस्कृति ने ऐसा भस्मासुर उत्पन्न किया है, जिससे उसके अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। पश्चिम में भौतिकवाद के जोश ने पूर्व की आध्यात्मिकता को ही भुला दिया है। प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'मानव की आत्मा' (Spirit of Man) में लिखा है किन्

"हम जिस दुनिया में निवास कर रहे हैं, वह स्वार्थ से डूबे हुए लोगों की दुनिया है। इस दुनिया में उद्योगवाद (Industrialism) तथा पूँजीवाद (Capitalism) से उत्पन्न एक भयंकर आर्थिक पद्धति राज्य कर रही है, जिसमें प्रौद्योगिकीय (Technological) सफलताओं और बाहरी जीतों का बोलबाला है, जिसमें शारीरिक सुविधाओं तथा पाशविक विलासिताओं की सामग्री की बाढ़ है, जहाँ सार्वजनिक जीवन में भी अनियन्त्रित लिप्सा

का अनन्त साम्राज्य है। यहाँ पाशविकता और रक्तपात का सहारा लेकर तानाशाही फैल रही है, जहाँ नास्तिकता, धर्म की ओर आत्मा की उपेक्षा सबसे बड़ा आचार है। यहाँ जिन्दगी सरकस का रूप ले रही है, जिसका न तो कोई ढाँचा दिखाई पड़ता है, न कोई लय और न ही तान।"

कुछ भी हो, पूर्व और पश्चिम में मौलिक अन्तर है और इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है। मानवता की गरिमा को बनाये रखने के लिए जहाँ पश्चिम को आध्यात्मिकता से सीख लेनी होगी, वहीं दूसरी ओर पूर्व को भी पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति को अस्पृश्यता के दायरे में नहीं सोचना है। पूर्व और पश्चिम का सम्मिलन ही मानव की सबसे बड़ी सफलता है तथा यही मानव की उपलब्धि है।

इस्लाम और परसंस्कृतिग्रहण

(Islam and Sanskritisation)

भौगोलिक परिस्थितियाँ और सामाजिक जीवन अन्तः सम्बन्धित हैं। आज जब ज्ञान और विज्ञान का विकास हो चुका है, तब भी मानव अपने को इस भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव से अलग नहीं कर सकता है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में तो मानव भौगोलिक परिस्थितियों का दास था। इसका कारण यह था कि मानव भौगोलिक

वातावरण पर नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकता। व्यक्ति को भौगोलिक परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करना पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियाँ ही किसी समाज की संस्कृति और संस्थाओं का निर्माण करती हैं।

संस्कृति देश और समाज की आत्मा होती है। इसी संस्कृति के आधार पर उस देश को पहचाना जाता है। यह संस्कृति नदी के प्रवाह की भाँति निरन्तर गतिशील रहती है। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से प्रभावित होती रहती है। किसी भी देश या समाज में संस्कृति में जो परस्पर आदान-प्रदान होते हैं, उन्हें निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) संस्कृतियों में आदान-प्रदान की पहली अवस्था वह है, जहाँ एक संस्कृति समूह के व्यक्ति दूसरी संस्कृति समूह में प्रवेश करते हैं, और

(b) दूसरी अवस्था में जब एक देश या समूह का कानून दूसरे देश या समूह पर लागू कर दिया जाता है, तब भी संस्कृतियों का आदान-प्रदान होता है।

यदि हम भारतीय इतिहास का अवलोकन करें, तो हमें इसके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि अत्यन्त ही प्राचीनकाल से भारत पर विदेशियों के आक्रमण होते रहे हैं। इन आक्रमणकारियों की शुरूआत चौथी शताब्दी ईसा से पूर्व ही प्रारम्भ होती है, जब भारत पर सिकन्दर महान् ने आक्रमण किया था और सिन्धु के राजा पुरु से उसका घमासान युद्ध हुआ था। भारत पर जिन व्यक्तियों ने आक्रमण किये उन्हें सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) आत्मसात करने वाले भारत पर आक्रमण करने वाले व्यक्तियों की पहली श्रेणी उन आक्रमणकारियों की है, जो भारत में आने के बाद यहाँ की संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था से आत्मसात कर लिया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि संस्कृतियों में आदान-प्रदान हुए हैं।

(b) लूट-पाट करने वाले- दूसरी श्रेणी में वे आक्रमणकारी आते हैं, जिनका उद्देश्य भारतीय समाज ओर संस्कृति से आत्मसात नहीं करना था, अपितु लूटपाट करके अपने देश लौट जाना था। इन आक्रमणकारियों में महमूद गजनवी का नाम प्रमुख है जिसने 17 बार भारत पर आक्रमण किया और देश की सम्पत्ति को अपने साथ कले गया।

जो आक्रमणकारी स्थायी तौर पर भारत में बस गये उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति को प्रभावित किया है। भारतीय समाज पर इस्लाम का जो प्रमुख प्रभाव पड़ा उसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) हिन्दू धर्म- भारत में हिन्दू धर्म पर इस्लाम का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। हिन्दू धर्म पर इस्लाम के प्रमुख प्रभावों को निम्नलिखित भागों में बाँटकर अच्छी तरह समझ सकते हैं-

(a) अद्वैतवाद- इसे एकेश्वरवाद के नाम से भी जाना जाता है। हिन्दू-धर्म में जिन देवी और देवताओं की कल्पना की गई है, उनकी संख्या करोड़ों में है। हिन्दू धर्म में इन सभी देवीदेवताओं की पूजा-आराधना में विश्वास व्यक्त किया गया है। जातियाँ सामाजिक

संस्तरण में नीचे थीं, वे ऊपर उठने लगीं ओर जो ऊपर थीं, उनका भी एकाधिकार समाप्त होने लगा। मुस्लिम शासन-काल में कायस्थों को शासन का काम दिया जाने लगा, इससे परम्परात्मक सामाजिक संस्तरण में उनका स्थान ऊपर की ओर उठने लगा।

(b) सुधार आन्दोलन- जाति-प्रथा में कठोरता के परिणामस्वरूप अनेक समस्याओं का जन्म और विकास हुआ। नानक, चैतन्य और कबीर जैसे महापुरुषों ने इस आन्दोलन को संचालित किया। परिणामस्वरूप जातीय प्रतिबन्ध और छूआछूत की भावना में शिथिलता का विकास हुआ।

(c) व्यावसायिक शिथिलता- भारत में प्रत्येक जाति के परम्परागत व्यवसाय होते थे और ये व्यवसाय एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते थे। मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद जातियों में व्यावसायिक परम्परा का प्रतिबन्ध भी नहीं रह गया।

(2) परिवार- भारत में हिन्दू परिवार का प्रतिनिधित्व ग्रामीण जीवन में होता है। आवागमन और संचार साधनों की कमी के कारण इस्लाम संस्कृति का भारतीय पारिवारिक जीवन पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत भारतीय संयुक्त परिवार का प्रभाव संस्कृति पर पड़ा।

(3) विवाह- मुस्लिम आक्रमणकारी भारत आये और यहाँ पर स्थायी तौर से बसने लगे, तो उनके सामने सबसे बड़ी समस्या परिवार के स्थापना की हुई। इसका कारण यह था कि वे हजारों मील दूर अपने परिवारों को छोड़ आये थे और आवागमन के साधनों के अभाव के कारण वे अपने परिवारों को बुलाने में असमर्थ थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वे हिन्दुओं से विवाह करने लगे। इन वैवाहिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन न मिले, इसके लिए हिन्दुओं में अनेक प्रकार की प्रथाओं का जन्म हुआ। ये प्रथाएँ निम्नलिखित हैं-

(a) बाल-विवाह- मुसलमान हिन्दू लड़कियों के साथ विवाह न कर सकें, इसके लिए बाल विवाहों का समाज में प्रचलन हुआ। बाल-विवाह के अनुसार अत्यन्त अल्प आयु में ही विवाह करके लड़के और लड़की को दाम्पत्य-सूत्र में बाँधने का प्रयास किया गया।

(b) गर्भ विवाह- बाल-विवाह का अतिरूप गर्भ विवाह के रूप में आया। गर्भ विवाह उसे कहते हैं, जब दो गर्भवती माताएँ ऐसा अनुबन्ध कर लेती हैं कि यदि उनके विषमलिङ्गीय सन्तानें पैदा होंगी तो दोनों का आपस में विवाह कर देंगे।

(c) विधवा विवाह निषेध- भारत में बसने वाले आक्रमणकारी विधवाओं से भी विवाह करने लगे। हिन्दुओं ने इसकी रक्षा के लिए अनेक प्रतिबन्ध लगाये और इसको नैतिक तथा धर्मिक विचारों से जोड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि विधवाओं की समस्या समाज में अपने उग्र रूप में उभर कर आई। ¼ट

(d) बर्हिविवाहों पर रोक आवागमन के साधनों की कमी, सुरक्षा का अभाव, इस्लाम का विश्वास 'एक खुदा' में है। इस खुदा के अलग-अलग रूप नहीं हैं। इस्लाम के इसी 'एक खुदा'। की भावना से प्रेरित होकर भारतीय दर्शन में अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। डॉ० ताराचन्द्र ने लिखा है कि भारतीय धर्म के महान् सुधारक जगतगुरू शंकराचार्य इस्लाम धर्म से प्रभावित थे और उन्होंने 'एकेश्वरवाद' के सिदान्त को इस्लाम के 'एक खुदा' के सिद्धान्त से लिया है।

(e) भक्ति आन्दोलन- इसे धार्मिक आन्दोलन के नाम से भी जाना जाता है। भारत में मोक्ष प्राप्ति के लिए तीन मार्ग बतलाये गये थे- भक्ति-मार्ग, ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग। मुसलमानों में अनेक विचारक ऐसे हुए भी जिन्होंने ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग की अपेक्षा भक्ति मार्ग को सबसे अधिक महत्व प्रदान किया। इसे ही भक्ति आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। कबीर भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त थे। इस आन्दोलन पर इस्लाम के सूफीवाद के प्रभावों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी आधार पर कबीर ने राम, रहीम, कृष्ण और करीम को एक ही बतलाया।

(f) मूर्ति पूजा का विरोध- हिन्दुओं में मूर्तिपूजा को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। इस्लाम में मूर्तिपूजा को 'बुतपरस्ती' कहा जाता है और मूर्तिपूजा को उचित नहीं माना जाता है। इस्लाम धर्म का यह प्रभाव हिन्दू धर्म पर भी पड़ा। अनेक ऐसे विचारक हुए जिन्होंने हिन्दू धर्म में प्रचलित कर्मकाण्ड और मूर्ति पूजा का विरोध किया। इन विचारकों में आर्यसमाज के स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम प्रमुख है।

(g) धार्मिक कट्टरता की शिथिलता परिस्थितियों के बदलने के साथ ही हिन्दू धर्म में अत्यन्त कट्टरता आ गई थी। छुआ-छूत, जाति व्यवस्था और खान-पान इसी प्रकार की धार्मिक कट्टरता के प्रतीक हैं। इनमें हिन्दू धर्म निरन्तर खोखला होता जा रहा था। इसमें हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाले इसे अधिक प्रजातांत्रिक बनाने के लिए अनेक धार्मिक आन्दोलन हुए अनेक पीर और पैगम्बरों ने अपने धार्मिक उपदेशों के द्वारा हिन्दू धर्म को प्रभावित किया। इससे हिन्दू धर्म की अनेक दुरूहताएँ समाप्त हो गईं।

(4) जाति व्यवस्था- भारतीय जाति-व्यवस्था भी इस्लाम के प्रभावों से प्रभावित हुई है। इस्लाम धर्म और संस्कृति का भारतीय जाति-व्यवस्था पर निम्न प्रभाव पड़े हैं-

(a) नियमों की कठोरता- जब भारत पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हुए और शासन-व्यवस्था में इनका अधिकार हो गया तो मुसलमानों ने भारतीय सामाजिक जीवन में प्रवेश करना प्रारम्भ किया। मुसलमानों के इस प्रवेश का परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों में रक्षात्मक प्रवृत्ति का विकास हुआ। वे हिन्दू धर्म और मगर जाति की रक्षा के प्रयास करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों ने जातीय नियमों और निषेधों का अत्यन्त ही कठोर बना दिया। सरकार कि विलाज

(b) संस्तरण की शिथिलता- भारतीय जाति-व्यवस्था का जो सामाजिक संस्तरण था, वह अत्यन्त ही कठोर था, क्योंकि इसका निर्धारण जन्म के आधार पर होता था और इसमें परिवर्तन असम्भव होता था। यह संस्तरण कठोरता के साथ अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सका और इससे भी शिथिलता का विकास हुआ। आक्रमण और अपहरण आदि की घटनाओं का बाहुल्य होने के कारण वैवाहिक गतिशीलता पर रोक लगा दी गई। सुरक्षा की दृष्टि से अपने आस-पास ही वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए जाने लगे। इस प्रकार बर्हिविवाहों पर प्रतिबन्ध लग गये।

(c) पर्दा प्रथा - लड़कियों और स्त्रियों का अपहरण न हो, इसके लिए समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ। यह पर्दा आज हिन्दुओं में भीषण रूप से विद्यमान है और इससे अनेक प्रकार की समस्याओं का समाज में जन्म होता है।

(d) सती प्रथा- हिन्दुओं में जो विधवा विवाहों पर रोक लगाई गई, वह सफल होने के बाद भी समाज में पूर्णरूप से प्रभावशाली नहीं हो सका। इसके दो कारण थे, अनेक बाल विधवाएँ जो अपनी काम-वासना को रोकने में असमर्थ होती थीं पुनः विवाह कर लेती थीं। इसके अतिरिक्त अनेक विधवाएँ अत्यन्त ही रूपवती होती थीं, अतः शासक वर्ग इन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर इनसे विवाह कर लेते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सती प्रथा को समाज में आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया और इसे एक परम्परा माना जाने लगा। इस प्रकार 'सतीत्व' के आदर्श की सहायता से सती प्रथा को प्रोत्साहित किया गया।

(5) स्त्रियों की स्थिति- वैदिक काल में भारतीय स्त्रियों को अनेक अधिकार प्रदान किए गए थे, उसे पुरुषों के समान ही समाज में स्थान दिया गया था। मुसलमानों में स्त्रियों को काफी निम्न स्तर के अधिकार दिये जाते थे और उनकी सामाजिक स्थिति निम्न रहती थी। मुसलमानों की पर्दा प्रथा का प्रभाव हिन्दू स्त्रियों पर पड़ा। उन्हें शिक्षा से दूर रखा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू स्त्रियों की समाज में स्थिति निम्न हो गई।

(6) दास-प्रथा- मुसलमान जिन गुलामों को पैसा देकर खरीदते थे, उन्हें दास (Slaves) के रूप में रखते थे। इसका प्रभाव हिन्दुओं पर भी पड़ा और हिन्दुओं में भी जाति-प्रथा का विकास हुआ।

(7) वेष-भूषा- परिधानों का भी हिन्दुओं पर प्रभाव पड़ा है। मुसलमानों में प्रचलित पाजामा, चूड़ीदार, पाजामा, अचकन, शेरवानी आदि हिन्दुओं ने भी अपना लिए। इसके साथ पगड़ी के स्थान पर टोपी (Cap) का प्रचलन भी इस्लाम संस्कृति के प्रभाव के कारण ही हुआ।

(8) खान-पान- हिन्दुओं का खान-पान या भोजन भी इस्लाम धर्म से प्रभावित हुआ। हिन्दुओं में जो अनेक प्रकार की मिठाइयाँ आज प्रचलित हो गई हैं, वे पहले मुसलमानों में प्रचलित थीं। इन मिठाइयों में बालूशाही, इमरती, जलेबी, बर्फी और गुलाब जामुन प्रमुख हैं। अधिकांश हिन्दुओं का भोजन शाकाहारी होता था। मुसलमानों के आने के बाद

मांसाहारी भोजन में वृद्धि होने लगी है। मांस, मछली, अंडों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है।

(9) भाषा और साहित्य- इस्लाम भाषा और साहित्य का प्रभाव भी हिन्दुओं पर पड़ा है। मुस्लिम प्रभाव के कारण ही खड़ी बोली को साहित्य की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। उर्दू फारसी भाषा का भारतीय रूप है। यदि हम भारतीय भाषा और साहित्य का अवलोकन करें, तो ऐसा स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू की अत्यधिक छाप पड़ी। इसमें अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं का समन्वय है।

(10) स्थापत्य कला- भारतीय स्थापत्य कला पर मुसलमानों के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस स्थापत्य कला में तहखाना, गुम्बज, मीनार, मेहराब आदि प्रमुख हैं। भारत में जो भवन निर्मित हो रहे हैं, उनमें इस कला को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'ताजमहल' स्थापत्य कला का प्रसिद्ध उदाहरण है।

(11) चित्रकला - चित्रकला पर भी इस्लाम संस्कृति पर प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मुसलमान शासक रंगीन-मिजाजी होते थे और उन्हें चित्रकला का अत्यन्त ही शौक होता था। भारतीय चित्रकला में मुगल शैली का विकास इन्हीं मुसलमानों शासकों के काल में हुआ था। अकबर के दरबार में चित्रकारों की भीड़ थी। अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर के दरबार में 17 चित्रकार थे तथा चित्रकला से सम्बन्धित 100 से भी अधिक समस्याएँ थीं। मुगल शैली की चित्रकला में प्राकृति चित्रों को प्राथमिकता दी जाती थी जिसमें पशु-पक्षी, झरने, नदी, फूल आदि प्रमुख थे। हिन्दू जीवन और चित्रकला में भी इसी पद्धति को देखा जा सकता है।

(12) संगीत कला- भारतीय शास्त्रीय संगीत (Classical Music) की मिसाल दुनिया में कहीं भी नहीं मिलती है। भारत में मुसलमानों के प्रभाव के कारण भारतीय संगीत शैली में मुगल शैली का विकास हुआ। आज भी 'कव्वाली' की प्रथा भारत में दिखाई देती है, यह इस्लाम संस्कृति का ही परिणाम है। इसके साथ ही भारतीय संगीत शैली में जो चमत्कार, रंगीलापन और रसरंजकता दिखाई देती है, वह इस्लाम संस्कृति के प्रभाव का ही

(13) आमोद-प्रमोद- भारत में आमोद-प्रमोद में जो अय्याशी और विलासिता का विकास हुआ है, उसमें सबसे अधिक प्रोत्साहन मुसलमानों से मिला है। नाच-गाने, मुशायरे और कव्वाली मुस्लिम संस्कृति के ही प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त शतरंज खेलना, जानवरों को पालना और शिकार करने की प्रथा भी हिन्दुओं ने मुसलमानों से ही ग्रहण की है।

(14) आर्थिक जीवन- आर्थिक जीवन पर भी मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ा है। अनेक व्यवसायों का विकास भारत में मुस्लिम संस्कृति के विकास के साथ ही हुआ है। दिल्ली में मुगल काल में अनेक कारखाने थे। इन कारखानों में 'जुलाहे' काम करते थे। वस्त्रों की रंगाई और छपाई, पच्चीकारी, कलई आदि उद्योगों का विकास मुस्लिम शासन-काल में ही हुआ। ढाका की 'मलमल' तो जगत प्रसिद्ध थी। घोड़ों और खच्चरों की सहायता से विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना मुस्लिम शासन काल में ही हुई।

इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज और संस्कृति को इस्लाम संस्कृति ने प्रभावित किया है। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सिर्फ हिन्दू संस्कृति ही प्रभावित हुई है। हिन्दुओं की संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था का इस्लाम पर भी प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार संक्षेप में इस्लाम ने संस्कृति को प्रभावित किया है, तो हिन्दू संस्कृति ने इस्लाम पर भी अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है।

7.6 भारतीय जनजातियों में आत्मसात एवं परसंस्कृतिग्रहण (Assimilation and Acculturation among Indian Tribes)

भारत की जनजातियाँ दुर्गम जंगलों और पहाड़ों में निवास करती थीं। संचार तथा आवागमन के साधनों का अभाव था। शिक्षा तथा जागरूकता नहीं थी। समाज परम्परागत था तथा सामाजिकपरिवर्तन की प्रक्रिया अत्यन्त ही शिथिल थी। जनजातियों का जीवन स्वतन्त्र एवं आत्म-निर्भर था तथा उनकी अपनी आर्थिक तथा सामाजिक संस्थाएँ थीं। इस प्रकार भारत में जनजातियों की अपनी पृथक संस्कृति तथा पृथक अस्तित्व था। कालान्तर में भारत में विदेशी व्यक्तियों का संघात हुआ। इस संघात के कारण जनजातियों की अलग संस्कृति और पहचान समाप्त होने लगी। देश आजाद हुआ। सभी नागरिकों के लिए संविधान लागू हुआ। बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों को

स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व और न्याय प्रदान किया गया। निर्भरीकरण तथा औद्योगीकरण हुआ और इस प्रकार जनसंख्या में गतिशीलता का विकास हुआ। इस गतिशीलता के कारण जनजातियों में पर-संस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। जनजातियों में परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया के कारण उनके जीवन में अनेक समस्याओं का जन्म और विकास हुआ। इन समस्याओं को अग्रलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) जनजातीय संस्तरण का विकास (Development of Tribal Hierachy)

पर-संस्कृतिग्रहण के कारण जनजातियों में जो सबसे विकराल समस्या खड़ी हुई है, वह है संस्तरण की अनेक आदिवासियों ने ईसाई धर्म को ग्रहण कर लिया। इसके कारण समाज में उनका अलग स्थान हो गया। धर्म परिवर्तन के कारण उनमें जागरूकता आई। भारत में ईसाइयों की अलग पहचान थी ताकि धर्म और राजनीति के कारण उनका समाज में ऊँचा स्थान था। जनजातियों ने ईसाई धर्म को अपना लिया, अन्यों की तुलना में उनका स्थान ऊँचा हो गया। इस प्रकार जनजातियों में जहाँ संस्तरण की समरूपता थी, ऊँच-नीच का भेद पैदा हो गया। धर्म परिवर्तन के कारण ये जनजातियाँ अपने परम्परागत धर्म का त्याग करने लगे और नए धर्म को अपनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। धर्म परिवर्तन के बाद भी उनकी वास्तविक समस्या का समाधान नहीं हो सका। कारण वे हिन्दू समाज से तो अलग हो गए, किन्तु ईसाई समाज में भी उन्हें उचित स्थान नहीं मिले सका।

(2) अनुकूलन की समस्या (Problem of Adaptation)

पर-संस्कृतिग्रहण से जनजातियों में जो दूसरी समस्या का विकास हुआ, वह थी अनुकूलन। हिन्दू समाज ने जनजातियों को स्वीकार नहीं किया। उनके धर्म तथा खान-पान में भिन्नता रही। ये उच्च हिन्दू जातियों से पूरी तरह पृथक रहे। जिन आदिवासियों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया, उन्हें भी अपने बीच में ही विवाह तथा खान- पान आदि करने पर बल दिया गया। इस प्रकार वे न तो इधर के रहे और न ही उधर के रहे। उन्हें ईसाई बननने से कोई लाभ तो नहीं मिला, उल्टा उन्हें नुकसान हुआ। इस प्रकार समाज

के साथ उनके अनुकूलन की समस्या खड़ी हो गई। इस अनुकूलन ने अनेक समस्याओं का विकास किया।

(3) स्वास्थ्य और पोषण (Health and Nutrition)

प्रारम्भ से ही जनजातियों में अनेक बीमारियाँ व्याप्त थीं, जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकर थीं। उन्हें उचित पोषण नहीं मिल पाता था। जब से जनजातियों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया, यह समस्या और भी जटिल हो गई। वे अंगेजी भाषा तो बोलने लगे, किन्तु उनके आर्थिक जीवन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया। तंग आर्थिक स्थिति के कारण उनके रहन-सहन के स्तर में निम्नता आती गई। कपड़ों की समस्या के कारण उनका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहा। उन्होंने नई वेशभूषा भी अपना ली, किन्तु प्राकृतिक दशाओं के साथ अनुकूलन स्थापित नहीं कर सके। इस प्रकार उनके जीवन में अनुकूलन की समस्या का विकास हुआ।

(4) सामाजिक संगठन में परिवर्तन (Change in Social Organization) पर-संस्कृतिग्रहण ने जनजातियों के सामाजिक संगठन को ही परिवर्तित कर दिया। इस परिवर्तन के दो परिणाम हुए-

(a) परम्परागत उपयोगी सामाजिक संस्थाओं का विघटन, तथा कफोनिजक

(b) नई सामाजिक संस्थाओं के जन्म और विकास में असमर्थता।

पर-संस्कृतिग्रहण के कारण जनजातियों में जो संस्थागत परिवर्तन हुए हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

(i) विवाह संस्था में अनेक कर्मकाण्डों का विकास,

(ii) बाल विवाह के प्रचलन में वृद्धि,

(ii) युवागृहों का विघटन,

(iv) सामूहिकता की भावना का विघटन।

(5) सांस्कृतिक विघटन (Cultural Disorganization)-

संस्कृति जनजातियों की सबसे सशक्त धरोहर मानी जाती है। पर-संस्कृतिग्रहण के कारण जनजातियों ने अपनी संस्कृति छोड़ दी तथा दूसरों की संस्कृति को अपना लिया। इस प्रकार उनके सामने पहचान की समस्या खड़ी हो गई। धीरे-धीरे वे अपनी पहचान को ही खोने लगे। जनजातियों में सांस्कृतिक विघटन इन कारणों से हुआ-

(a) अपनी भाषा का परित्याग,

(b) अपने पहनावे का परित्याग,

c) अपने जीवन प्रतीकों तथा संस्कारों का परित्याग, (

(d) अपने आदर्श-नियमों का परित्याग,

(e) व्यवहारों में परिवर्तन।

इस प्रकार अपनी भाषा और संस्कृति का त्याग करने के कारण जनजातियों के जीवन में शून्यता की स्थिति निर्मित हो गई है।

(6) अपराधों में वृद्धि (Increase in Crime)-

Dr. D.N.Majumdar ने अपनी पुस्तक 'The Matrix of Indian Culture' में लिखा है- 'छोटा नागपुर की अनेक जनजातियों के लोग अक्सर शहरों में जाकर रिक्शा चलाते हैं, कुलीगिरी करते हैं तथा श्रमिकों के रूप

में कम वेतन पर काम करते हैं। परसंस्कृतिग्रहण के कारण उनका पहनावा, खानपान और आरामदायक वस्तुओं का उपयोग इतना महंगा हो गया है कि वे इन साधनों को जुटाने में असमर्थ ही रहते हैं।' आज जनजातियों में हीनता की भावना घर कर गई है। निराशा और दिखावे की प्रवृत्ति का उनमें विकास हुआ है। उनकी आवश्यकताएँ अपार हुई हैं जिनकी पूर्ति नहीं हो रही है। इस कारण उनके जीवन में अपराधी प्रवृत्तियों का विकास हो रहा है। अपराधों के साथ ही उनमें अनैतिकता का भी विकास होता जा रहा है। यही कारण है कि जनजातियों की संस्कृति में तेजी से बिखराव आता जा रहा है।

(7) जनजातीय धर्म का विघटन (Disorganization of Tribal Religion)-

प्रत्येक समाज में धर्म की महती भूमिका होती है। जनजातियों के जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। पर-संस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया के कारण जनजातियों ने अपने धर्म की उपेक्षा की तथा उसके स्थान पर अन्य धर्मों को मान्यता प्रदान की। अन्य धर्मों को मान्यता प्रदान करने के कारण उनके परम्परागत धर्म के विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। इसके निम्न परिणाम हुए-

(a) अपने धर्म के प्रति तिरस्कार की भावना का विकास,

(b)धर्म में स्थानीय वातावरण की उपेक्षा,

(c) धर्म के कार्यों में कमी,

(d) सामाजिक आदर्श नियमों का घटता प्रभाव,

(e) धार्मिक विश्वासों के प्रति सन्देह,

(f) सामाजिक संरचना में परिवर्तन।

(8) राजनीतिक अव्यवस्था (राजनीतिक अव्यवस्था)-जनजातियों की अलग सरकार (Government) और कानून (Laws) होते थे। जब अंग्रेज भारत में आए, तो सबसे पहला काम किया राजनैतिक संस्थाओं पर हस्तक्षेप। यह हस्तक्षेप इस उद्देश्य से किया गया कि ऐसा करने से जनजातियों को शोषण से मुक्ति दिलाने में मदद मिलेगी। अंग्रेजों द्वारा जनजातियों की राजनैतिक संस्थाओं में हस्तक्षेप से शोषण समाप्त तो नहीं हुआ, किन्तु उनके जीवन में निराशा की समस्या का विकास हुआ, इस प्रकार मानसिक तनाव की समस्या का जन्म और विकास हुआ। यही कारण है कि जनजातियों का शान्त जीवन आन्दोलन की ओर मुड़ गया। आन्दोलन से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ, उल्टे समस्याएँ और भी जटिल हो गईं।

समस्या का समाधान (Remedy of the Problem)

स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न पैदा होता है कि पर-संस्कृति के कारण जनजातियों के जीवन में जो समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं, इन समस्याओं का समाधान क्या है? समस्या के समाधान के लिए कुछ प्रमुख सुझाव इस प्रकार हैं-

(1) ऐसे प्रयास करना जिससे कोई बाहरी समूह जनजातियों के जीवन पर अपनी संस्कृति का प्रभाव न डाल सके।

(2) जनजातियों का सन्तुलित सांस्कृतिक विकास किया जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि जनजातियों का प्रशासन उन व्यक्तियों को सौंपा जाय, जो इनकी संस्कृति और जीवन शैली से परिचित हों।

(3) जनजातियों के विकास की योजनाओं का निर्माण करते समय मानवशस्त्रियों (Anthropologists) और समाजशास्त्रियों (Sociologist) से सहयोग और मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए।

(4) जनजातियों के पुनर्वास (Rehabilitation) का प्रयास करना चाहिए।

(5) जनजातिय क्षेत्रों में शिक्षा के व्यापक और सार्थक प्रचार का प्रयास करना चाहिए।

(6) जनजातीय क्षेत्रों में आवागमन तथा संचार साधनों का बेहतर विस्तार करना चाहिए।

(7) आज जनजातियों में उपेक्षा की भावना व्याप्त है। अतः वे राष्ट्र की मुख्य धारा से अपने को कटा हुआ महसूस कर रहे हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि जनजातियों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ा जाय। यदि जनजातियाँ राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ जायेंगी। तो उनकी अनेक समस्याओं का अपने आप ही समाधान हो जायेगा।

(8) जनजातीय समस्याओं का उचित समाधान यह है कि उनके जीवन में जो अन्धविश्वास व्याप्त है, उसे समाप्त किया जाय तथा उसके स्थान पर तर्क-बुद्धि को महत्व प्रदान किया जाय। इससे उनके जीवन में जो कुप्रथाएँ व्याप्त हैं, उसे वे स्वयं समझ सकेंगे और इस प्रकार सांस्कृतिक असन्तुलन की समस्या समाप्त हो जायेगी।

(9) जनजातियों की भाषा और उनकी सांस्कृतिक विरासत के प्रति अत्यन्त ही सहानुभूति की आवश्यकता है। इससे जनजातीय समाजों में संघर्ष की मात्रा अपने आप ही कम ही जायेगी।

(10) सरकार का यह प्राथमिक दायित्व होना चाहिए कि वह ऐसी मिशनरियों पर प्रतिबन्ध लगाये जो जनजातियों में प्रतिक्रियावादी विचारों को प्रोत्साहित करती हैं।

इस प्रकार विविधता से एकता (Unity in Diversity) को आधार बनाकर जनजातीय समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

संस्कृतिग्रहण

मानव अन्य प्राणियों से भिन्न है। वह न केवल भिन्न है, अपितु श्रेष्ठ भी है। समाज के विभिन्न स्वरूपों- सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, कलात्मक तथा अभिव्यक्ति के विभिन्न स्वरूपों में मनुष्य अपने को ढालता है। समाजीकरण की यह प्रक्रिया जटिल है। बाल्यकाल से ही मनुष्य सीखने की विशेष प्रक्रिया के दौर से गुजरता है। चाहे-अनचाहे, जाने-अनजाने, प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, भाषा, कला, संगीत आदि सीख लेता है। इस प्रकार मनुष्य अनजाने ही एक विशेष प्रकार की संस्कृति अपने वातावरण तथा अपने परिवेश में सीखता तथा ग्रहण करता है। संस्कृति के सीखने, ग्रहण करने तथा उस में दक्षता प्राप्त करने की प्रक्रिया को ही संस्कृतिग्रहण कहते हैं।

पण संस्कृतिग्रहण वह प्रक्रिया है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति समाज से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। बचपन से ही खानपान का तरीका, बोलचाल, व्यवहार आदि के तरीके मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। सीखने की यह प्रक्रिया बाल्यकाल से लेकर जीवन के अन्त तक चलती रहती है। प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति अधिक जागरूक रहता है तथा रुचिकर तथा लाभकारी परिवर्तनों को ग्रहण करने का प्रयास करता है। ऐसा करके वह अपनी संस्कृति को संवृद्ध करता है।

जीव-जगत में सीखने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। सीखने की इस प्रक्रिया को हर्सकोविट्स ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है- एक बिल्ली का बच्चा और छोटा चूहा आपस में घनिष्ठ मित्र थे। प्रत्येक दिन वे आपस में खेलने जाते थे। किन्तु छोटे चूहे को यह पता नहीं था कि वह बिल्ली का मनपसन्द भोजन है। साथ ही बिल्ली के बच्चे को भी यह ज्ञात नहीं था कि चूहा उसका मनपसन्द भोजन है। लेकिन एक दिन जब छोटा चूहा वापस घर आया तो उसको भाँ ने पूछा कि तुम किसके साथ खेलते हो? उसने जवाब

दिया कि बिल्ली के बच्चे के साथ। तब चूहे की माँ ने उससे कहा कि तुम्हें अब से बिल्ली के बच्चे के साथ नहीं खेलना चाहिये। कारण तुम उसके मनपसंद भोजन हो। ठीक उसी समय बिल्ली के बच्चे की माँ अपने बच्चे को कह रही थी कि मूर्ख क्या तुम यह नहीं जानते हो कि वह तुम्हारा शत्रु है। जब तुम उसके साथ खेलो उसे निश्चित रूप से मारना। अगले दिन जब काफी देर हो गई और वे खेलने के लिए सड़क पर नहीं निकले तब बिल्ली के बच्चे ने अपने मित्र चूहे से कहा- क्या तुम अब मेरे साथ खेलने नहीं आओगे? एकाएक छोटे चूहे ने जवाब दिया- 'हाँ भाई, तुम्हारे गाँव में भी बुद्धिमान लोग हैं और मेरे गाँव में भी।

उपर्युक्त उद्धवरण समाजीकरण (Socialization) और संस्कृतिग्रहण (Enculturation) दोनों ही प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सीखना (learning) जीवधारी की मूलभूत विशेषता है। जीवधारी जब पैदा होता है, तो वह कच्ची मिट्टी की भाँति होता है। वह अत्यन्त ही कोमल तथा लचीला होता है। उसके शरीर, आत्मा और मन में कुछ ऐसी विशेषताएँ विद्यमान होती हैं, जिसके माध्यम से वह अपने को वातावरण के अनुकूल ढालने का प्रयाग का है। जहरी बिन्दु है जहाँ से उसमें सीखने की प्रक्रिया का सूत्रपात होता है। इसी प्रक्रिया के कारण वह सामाजिक प्राणी बन जाता है। गेट्स ने लिखा है कि 'सीखना व्यवहार में रूपान्तरण लाना है, जो अनुभव के द्वारा लाया जाता है।'

संस्कृतिग्रहण का अर्थ (Meaning of Enculturation)

संस्कृतीग्रहण का अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

(1) संस्कृतिग्रहण व्यक्तियों के जीवनकाल में एक निरन्तर प्रक्रिया के रूप में है।

(2) संस्कृतिग्रहण, एक ऐसी ताकत के रूप में है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह के प्रतिमान को स्वीकारता हो।

(3) संस्कृतिग्रहण, पुरातनवाद एवं परिवर्तन की प्राथमिक प्रक्रिया के रूप में।

(4) संस्कृति शास्त्र, निर्णय के असंगत आधारस्वरूप।

(5) संस्कृतिग्रहण समाजीकरण से भिन्नता रखते हुए।

(6) प्रारम्भ में, सांस्कृतिक स्थायित्व के तत्व के रूप में।

(7) अमेरिका में, समान अवसर की स्वीकृति अवधारणा के रूप में।

(8) बाद में, सामाजिक परिवर्तन स्थापित करने वाले के रूप में।

(9) संगीत की शैलियों के विश्लेषणात्मक तत्व के रूप में।

(10) व्यक्ति एवं संस्कृति के मध्य सम्बन्ध प्रकरट करने वाले तथ्य के रूप में।

संस्कृतिग्रहण की परिभाषा (Definition of Enculturation)

स्पष्ट है कि संस्कृतिग्रहण एक वृहत अवधारणा है। हर्सकोविट्स ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है, जो निम्न है-

पहली - ज्ञानार्जन एक ऐसा पहलू है जिसके द्वारा मानव अन्य प्राणियों की तुलना में अपनी भिन्नता या विशिष्टता स्थापित करता है, जिसके द्वारा वह अपने संस्कृति में सामर्थ्य प्राप्त करता है और इसे ही 'संस्कृतिग्रहण' की संज्ञा दी जा सकती है।

दूसरी- संस्कृतिग्रहण की अवधारणा, ऐसी संस्कृति जो स्वयमेव स्थापित होती है तथा संस्कृति जो व्यक्तियों के व्यावहारिक आचरण द्वारा प्रकट होती है, के मध्य पुल का काम करती है। ऐसा देखा गया है कि संस्कृतिग्रण की प्रक्रिया में व्यक्ति आचरण के ऐसे स्वरूपों को अंगीकृत करता है जो उसके समूह को स्वीकार्य हों।

7.7 नगरीकरण (Urbanization)

नगरीयकरण शब्द 'नगर' से बना है। यह शब्द उस प्रक्रिया की ओर संकेत करता है, जिसके माध्यम से नगरों का निर्माण होता है। आधुनिक युग में नगरीकरण को सबसे अधिक महत्व दिया जा रहा है। विश्व के अन्य भागों की तुलना में भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त ही धीमी है। इसका मौलिक कारण भारतवर्ष में औद्योगिक एगति की धीमी गति का होना है। नगरीकरण का मूल उद्गम स्रोत औद्योगीकरण है।

18 वीं शताब्दी में होने वाली औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) ने नगरीयकरण को अत्यधिक प्रोत्साहित किया है। औद्योगीकरण का परिणाम यह होता है कि एक स्थान पर उद्योगों की स्थापना की जाती है। इन उद्योगों में काम करने के लिए अधिक संख्या में व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर स्थानान्तरण प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार नगरीयकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और कुछ समय के भीतर एक छोटा-सा गाँव विशाल नगर के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। सरल शब्दों में जब गाँव नगरों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं और यह परिवर्तन प्रक्रिया के माध्यम से होता है, तो इसी माध्यम को नगरीकरण के नाम से जाना जाता है।

नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी समाज में विशेष नगरों की संख्या में वृद्धि अथवा उन स्थानों द्वारा नगरीय विशेषताओं को ग्रहण करने से लगाया जाता है जो अभी तक नगर नहीं कहे जाते थे। इस प्रकार नगरीकरण नगरीय विशेषताओं को अपनाने की प्रक्रिया है। नगरीकरण की अवधारणा सार्वभौमिक होते हुये भी निर्धारित करने वाले तत्वों को सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि नगरीकरण का आधार और इसके माप के पैमाने का नितान्त अभाव है। एक ही विशेषता किसी समाज म नगरा

सूचक हो सकती है, जब कि दूसरे समाजों में नहीं। मात्र जनसंख्या वृद्धि को ही नगरीकरण का सूचक नहीं कहा जा सकता है।

नगरीकरण की परिभाषा

(शहरीकरण की परिभाषा)

नगरीकरण को विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया है। सामान्यतया नगरीकरण की व्याख्या निम्न तीन आधारों में की जाती है- েগছে के अीय़ সড

(1) जनसंख्या वृद्धि और प्रवास की दृष्टि से (From Population Growth and Migration point of view) - किसी भी स्थान में जनसंख्या की वृद्धि और प्रवास को ध्यान में रखकर नगरीकरण की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(i) बर्गेल- 'ग्रामीण जनसंख्या को नागरिक क्षेत्रों में बदलने को हम नगरीकरण कहेंगे।'

(ii) फेयरचाइल्ड- 'नगरीकरण का अर्थ नागरिक बनने की प्रक्रिया से है अर्थात् व्यक्तियों एवं प्रक्रियाओं का नगरीय क्षेत्रों का गमन, नागरिक प्रक्रियाओं, जनसंख्या तथा क्षेत्र में वृद्धि।'

(iii) संयुक्त राष्ट्र संघ- अपने सबसे सरल एवं जनांकिकीय अर्थ में नगरीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके द्वारा जनसंख्या एक निश्चित निर्धारित आकार से बड़े आकार समूहों में एकत्रित हो जाती है।'

(2) व्यावसायिक गतिशीलता की दृष्टि से (From the point of view of point of Occupational Mobility) - व्यावसायिक गतिशीलता की दृष्टि से नगरीकरण की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(i) डेविस- 'नगरीकरण एक निश्चित प्रक्रिया है- परिवर्तन का वह चक्र है, जिससे कोई समाज खेतिहर से औद्योगिक में परिवर्तित होता है।'

(ii) एण्डरसन और ईश्वरन- 'साधारणतया नगरीय वृद्धि नगरीकरण है और इसका अर्थ है- (1) व्यक्तियों का ग्रामीण निवास से शहरी निवास की ओर गमन और (2) लोगों का कृषि कार्य से गैर कृषि कार्यों की ओर बढ़ना।

(iii) थामसन- 'व्यक्तियों का मुख्य रूप से या पूर्ण रूप से कृषि कार्य में लगे हुए समुदायों से दूसरे सामान्यतया बड़े अन्य समुदायों, जिनकी क्रियाएँ मुख्य रूप सरकार व्यापार, उत्पादन या उसी से सम्बद्ध स्वार्थों पर केन्द्रित होती है, गमन ही नगरीकरण है।'

(3) समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से (From Sociological point of view) - समाजशास्त्रीय दृष्टि से नगरीकरण की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(i) श्रीनिवास- 'नगरीकरण से तात्पर्य केवल सीमित क्षेत्र से अधिक जनसंख्या से ही नहीं अपितु सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन से भी है।'

(ii) गेराल्ड ब्रीज- 'नगरीकरण एक प्रक्रिया है, जिसकै कारण लोग नगरीय कहलाने लगते हैं, शहरों में रहने लगते हैं, खेती के स्थान पर अन्य व्यवसायों को अपनाते हैं जो नगर में उपलब्ध होते हैं और अपने व्यवहार प्रतिमान में अपेक्षाकृत परिवर्तन का समावेश करते हैं।

(iii) मैक्स वेबर- 'नगरीकरण संस्कृति का एक आश्रित कारक है।'

(iv) क्वीन और कारपेन्टर 'नगरीकरण का प्रयोग एक विशिष्ट जीवन का ढंग, जो अद्‌भुत रूप से नगर निवास से सम्बन्धित है, को पहचानने के लिए किया जाता है'

(3) जी.आर. मदन- 'नगरीकरण का तात्पर्य व्यक्ति के विचारों और व्यवहारों में परिवर्तन तथा उनके सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन से है।'

इस प्रकार "नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा ग्रामीण जनसंख्या नगरीय जनसंख्या के विचारों और मूल्यों को अपनाती है।"

नगरीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Urbanization)

नगरीकरण की जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनके आधार पर इसकी विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का नाम है,

(2) परिवर्तन की इस प्रक्रिया के द्वारा ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर हस्तान्तरित होती है,

(3) नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कृषि अर्थव्यवस्था के स्थान पर व्यवसायों (उद्योगों) को प्रोत्साहन दिया जाता है,

(4) नगरीकरण एक प्रकार की मानसिकता है। इसके द्वारा व्यक्ति एक ऐसी मनोवृत्ति, विचारधारा और आदत को विकसित कर लेते हैं, जो ग्रामीण जीवन से भिन्न होते हैं,

(5) नगरीकरण विविधताओं के भी केन्द्र होते हैं। यह विविधता आचार-विचार, रहन-सहन और जीवन- यापन के तरीकों से सम्बन्धित होती है,

(6) नगरीकरण की इस प्रक्रिया में गतिशीलता के लक्षण भी पाए जाते हैं। गतिशीलता का तात्पर्य निरन्तर परिवर्तन से है,

(7) अन्त में, नगरीकरण की इस प्रक्रिया से जो परिवर्तन होते हैं, उनसे ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या में सन्तुलन बना रहता है।

नगरीकरण का प्रभाव (Impact of Urbanization)

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में नगरीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नगरीकरण का प्रभाव जीवन के विविध क्षेत्रों में पड़ा है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(1) परम्परागत परिवार पर प्रभाव- (Impact on Traditional Family)- नगरीकरण का परम्परागत परिवारों पर प्रभावों का अध्ययन जिन प्रमुख विद्वानों ने किया है, उनका विवरण इस प्रकार है-

(क) महू (गुजरात) में परिवार के कुछ पहलू। - डॉ. आई.पी. देसाई, 1964.

(ख) शहरीकरण और पारिवारिक परिवर्तन.- डॉ. एम.एस. गोर, 1968

(सी) आलेख- आधुनिक उद्योग में भारतीय संयुक्त परिवार, 'भारतीय समाज में संरचना और परिवर्तन' - मिल्टन सिंगर।

(घ) भारत में परिवार और विवाह। - डॉ. के.एम. कपाड़िया।

उपर्युक्त अध्ययनों के द्वारा नगरीकरण का परम्परागत परिवारों पर जो प्रभाव पड़ा है, उसका विवरण इस प्रकार है-

(i) संयुक्त परिवारों का विघटन,

(ii) स्त्रियों में जागरूकता का विकास,

(iii) व्यक्तिवाद की भावना का विकास,

(iv) पारिवारिक संरचना में परिवर्तन 'छोटा परिवार, सुखी परिवार का आधार' की धारणा का विकास।

(2) विवाह संस्था पर प्रभाव (Impact on Marriage Institution)- विवाह संस्था पर नगरीकरण के प्रभावों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) हिन्दू विवाह की परम्परागत मान्यताओं में परिवर्तन,

(ii) विवाह को धार्मिक संस्कार न मानकर सामाजिक संविदा मानना,

(iii) पति-पत्नी के सम्बन्धों में परिवर्तन,

(iv) तलाक की बढ़ती मात्रा,

(v) श्राद्ध, तर्पण और यज्ञों के प्रति जनसंख्या,

(vi) पुत्र के समान ही पुत्रियों को महत्व,

(vii) अविवाहित स्त्री-पुरुषों की संख्या में वृद्धि,

(viii) विल्लुम्ब विवाह,

(ix) एक विवाह को महत्व,

(x) विधवा विवाह का महत्व,

(xi) अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन,

(xii) वैवाहित विज्ञापनों का महत्व,

(xiii) प्रतिष्ठासूचक के रूप में दहेज।

(3) जाति-व्यवस्था पर प्रभाव (Impact on Caste System)- नगरीकरण ने भारतीय जाति-व्यवस्था को विभिन्न स्वरूपों में परिवर्तन किया है, जो इस प्रकार है- कमीशन (१)

(i) जातिगत संस्तरण में परिवर्तन,

(ii) अस्पृश्यता संबंधित धारणा में शास्त्रीयता,

(iii) जातिगत व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन,

(iv) नये व्यवसायों का जन्म और विकास,

(v) भोजन सम्बन्धी परम्परागत जातीय मान्यताओं में परिवर्तन,

(vi) अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन,

(vii) सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की स्वतन्त्रता,

(viii) जातिगत आवास व्यवस्था में परिवर्तन,

(ix) जातिगत संस्थाओं और संगठनों का जन्म विकास,

(x) राजनीति एवं प्रशासन पर प्रभाव,

(xi) जातिवाद के नये मूल्यों का जन्म और विकास।

डॉ. राधाकमल मुकर्जी ने अपनी पुस्तक (Caste and Social Change in India) में नगरीकरण के कारण जाति-व्यवस्था पर जो प्रभाव पड़ा है, उसकी विवेचना इन शब्दों में की है "सभी प्रकार की जातियाँ प्रथक रहने और सहवास के प्राचीन प्रतिबन्धों को न मानती हुई बाजारों, फैक्टरियों और चाय की दुकानों में साथ-साथ काम करती हैं और खान-पान करती हैं।"

बैली (F.G.Bailey) ने अपनी पुस्तक (Tribe, Caste and Nation) में लिखा है कि "रेलों में अस्पृश्यता नहीं है, क्योंकि यह कोई नहीं जानता कि कौन अस्पृश्यामी है। जाति परम्परागत रूप से लघु स्तर के समाजों और उन्हीं स्थानों में विद्यमान है; जहाँ स्थानीय गतिशीलता का अभाव पाया जाता है।"

बारनावास (Barnabas) का विचार है कि "रेलों" बसों, नगरों, फैक्टरियों, होटलों, सिनेमाघरों और क्लबों के लोग बिना जाति भेदभाव के उनमें प्रवेश करते हैं।"

(4) ग्रामीण समुदाय पर प्रभाव- (Impact on Rural Community)- ग्रामीण समुदाय पर नगरीकरण के प्रभावों की विवेचना करते हुए डॉ. के. एम. कपाड़िया ने लिखा है कि "गाँव की आत्म निर्भरता नष्ट हो गई और गाँव के प्रभावहीन सांस्कृतिक प्रतिमान पर नवीन नगरीय संस्कृति का प्रभाव लगा। आधुनिक सुविधाएँ जो अभी तक नगरों तक

ही सीमित थी, गाँवों में पहुँच गईं। रहन-सहन, केश विन्यास; घर की सजावट के प्रतिमान नवीन सम्पर्क से प्रभावित हुए हैं और शिक्षा के विकास तथा मोटर यातायात के प्रारम्भ होने से इस प्रक्रिया में तीव्रता आ गई है।"

(A) ग्राम, नगर सम्बन्धों का विकास,

(i) आर्थिक,

(ii) सामाजिक

(iii) शैक्षणिक, तथा

(iv) चिकित्सा संबंधी आदि।

(B) कृषि का व्यवसायीकरण,

(i) रहन-सहन के स्तर में वृद्धि,

(ii) ग्राम पंचायत एवं जातीय पंचायतों का घटता महत्व,

(iii) नये जोश का विकास,

(iv) ग्रामीण आत्म निर्भरता का अन्त,

(v) ग्रामीण लोगों में आधुनिक जीवन शैली को अपनाने तथा नगरीय बनने की आकांक्षाओं का विकास।

(5) सामाजिक समस्याओं पर प्रभाव- (Impact on Social Problems)- प्रत्येक समाज में कुछ निश्चित समस्याएँ होती हैं। नगरीकरण के परिणामस्वरूप मानव समाज में बाह्य समस्याएँ और भी जटिल तथा गम्भीर हुई हैं। नगरीकरण के कारण जिन समस्याओं का जन्म और विकास हुआ है, उसका विवरण इस प्रकार है-

(a) अलगाव (Alienation) भावना का विकास,

(b) अस्तित्व के लिए संघर्ष की प्रवृत्ति का विकास,

(c) नगरीकरण ने वैयक्तिक विघटन की निम्नलिखित समस्याओं को विकसित किया है-

(i) आत्मकेन्द्रीयवाद (Egocentricism),

(ii) परिवारवाद (एंटीफैमिलिज्म),

(iii) मद्यपान तथा नशीली वस्तुओं का सेवन,

(iv) जुआ तथा क्लब जीवन,

(v) नैतिक पारिवारिक पतन तथा अकर्मण्यता,

(vi) शारीरिक दुर्बलता,

(vii) मानसिक हीनता,

(viii) असामान्य व्यक्तित्व,

(ix) आत्म-हत्या की प्रवृत्ति,

(d) नगरीकरण ने पारिवारिक जीवन में भी अनेक समस्याओं को विकसित किया है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(i) पारिवारिक तनावों में वृद्धि,

(ii) पारिवारिक स्वच्छन्दता का विकास,

(iii) तलाक की प्रवृत्ति,

(iv) यौन व्यवहारों में स्वतन्त्रता,

(v)सिद्धांतवादी एवं विलासी जीवन।

(e) नगरीकरण के कारण सामुदायिक जीवन के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार की समस्याओं का विकास हो रहा है। संक्षेप में इन समस्याओं का विवरण इस प्रकार है-

(i) सामुदायिक जीवन में अलगाव,

(ii) स्थानमूलक गतिशीलता का विकास,

(iii) बेरोजगारी, भिक्षावृत्ति एवं निर्धनता,

(iv) कुटिल आचरणों का विकास।

(6) अन्य प्रभाव (Other Impact)- नगरीकरण ने जीवन के कुछ अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित किया है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(i) पाश्चात्य मूल्यों और मान्यताओं का आदर,

(iii) फैशन और सभ्य जीवन की ओर प्रवृत्ति,

(iii) धार्मिक क्रियाओं के प्रति परम्परागत मूल्यों के प्रति जागरूकता,

(iv) राजनीतिकरण के प्रति जागरुकता,

(v) समय का मूल्य,

(vi) जीवन व्यवहार के नए ढंग,

(vii) कार्यों की अधिकता,

(viii) सम्बन्धों की जटिलता,

(ix) जीवन में औपचारिकता का विकास,

(xi) स्त्री समुदायों के जीवन स्तर में वृद्धि।

भारत के आधुनिकीकरण में नगरीकरण की भूमिका (Role of Urbanization in Modernization of India)

अत्यन्त संक्षेप में ग्रामों की परम्परात्मकता और नगरों को आधुनिकता का प्रतीक माना जाता है। जो व्यक्ति नगर में निवास करता है, उसमें आधुनिकता पाई जाती है। भारतीय सन्दर्भ में नगरीकरण की आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका है, जो इस प्रकार है-

(1) नगरीय मस्तिष्क अधिक विकसित और जागरूक होता है। इसके कारण भी आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिलता है,

(2) नगरीकरण के परिणामस्वरूप व्यावसायिक गतिशीलता (Occupational Mobility) का विकास होता है। इससे नये व्यवसायों का जन्म और विकास होता है। यह प्रक्रिया भी आधुनिकीकरण में सहायक होती है,

(3) नगरीकरण शिक्षा को प्रोत्साहित करती है तथा वहाँ विविध प्रकार की शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि आधुनिकीकरण में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

(4) नगरीकरण के कारण उद्योगों का विकास होता है। उद्योगों का विकास आर्थिक विकास तथा आधुनिकीकरण की आवश्यक दशा है।

(5) नगरीकरण के द्वारा आवागमन और संदेशवाहन के साधनों का विकास होता है। इन साधनों के विकसित हो जाने से भी आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है, जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं।

(6)- नगरीकरण विभिन्न संस्कृतियों में सम्पर्क स्थापित करता है इससे भी आधुनिकीकरण को बल मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में नगरीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारत में नगरीकरण की प्रगति (1901-2011)

नगरीय जनसंख्या का विवरण

वर्ष	नगरों की संख्या	कुल नगरीय जनसंख्या (दस लाख में)	कुल जनसंख्या से नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत
1901	1834	25.85	10.84
1911	1776	25.94	10.29
1921	1920	28.09	11.17

1931	2049	33.46	11.99
1941	2210	44.15	13.86
1951	2844	62.44	17.29
1961	2330	78.94	17.97
1971	2531	109.11	19.91
1981	3245	159.46	23.31
1991	3609	217.61	26.31
2001	3799	286.12	27.81
2011	4041	377.01	31.16

नगरीकरण की समस्याएँ (Problems of Urbanization)

बढ़ते हुए नगरीकरण ने भारत में कई परिवर्तनों को जन्म दिया है। इन परिवर्तनों के कारण कुछ लाभकारी परिणाम सामने आए हैं तो दूसरी ओर कई नयी समस्याओं ने भी जन्म लिया है। नगरीकरण से जनित कुछ समस्याएँ इस प्रकार हैं-

(1) स्वास्थ्य की समस्या- सामान्य धारणा यह है कि गाँव के लोग नगरीय लोगों की तुलना में हृष्ट- पुष्ट और बलिष्ठ होते हैं। नगरों में स्वच्छ वातावरण का अभाव होता है। मकानों की भीड़-भाड़, वायु प्रदूषण, मिल, फैक्ट्री का धुआँ, स्थान की कमी, बन्द मकान, रोशनी एवं स्वच्छ हवा का अभाव, गड़गड़ाहट एवं बहरा कर देने वाला शोरगुल,

खटमल, मच्छर आदि की अधिकता, छूत के रोग, बदबूदार एवं सीलन भरे कमरे आदि सभी मिलकर स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं। नगरों में मृत्यु दर गाँवों की तुलना में अधिक होने के ये प्रमुख कारण हैं। स्वास्थ्य की सुविधा जुटाने के लिए वहाँ पार्क, बगीचों एवं खेलकूद की सुविधा जुटायी जाती है। मुम्बई सर्वेक्षण में यह पाया गया कि 61 प्रतिशत लोगों ने मुम्बई में आने के बाद बीमार रहने की शिकायत की। 30 प्रतिशत लोगों ने परिवारजनों की मृत्यु के लिए नगर में आने के बाद लगी बीमारी को उत्तरदायी माना है। कई लोगों ने अपच एवं भूख न लगने की शिकायत की। नगरीकरण मानसिक स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव डालता है और लोग अनिद्रा एवं चिन्ता से परेशान रहते हैं।

(2) अपराधों में वृद्धि - गाँवों की तुलना में नगरों में अपराध अधिक होते हैं। नगरों में परिवार, धर्म, पड़ोस, रक्त सम्बन्ध एवं जाति के नियन्त्रण में शिथिलता के कारण अपराध बढ़ जाते हैं। नगर में अपरिचितता के कारण भी अपराध के लिए पृष्ठभूमि तैयार होती है। वहाँ अपराधी गिरोह अपराध में प्रशिक्षण देने का कार्य करते हैं। वहाँ चोरी, डकैती, बैंकों को लूटना, आत्महत्याएँ एवं हत्याएँ, दुर्घटनाएँ, बच्चों को उठा ले जाने, धोखाधड़ी, ठगी आदि की घटनाएँ अधिक होती हैं। समाचार-पत्रों में आए दिन इस प्रकार के अपराध की घटनाएँ छपती ही रहती हैं।

(3) मनोरंजन की समस्या नगरों में मनोरंजन का व्यापारीकरण पाया जाता है। सिनेमा, टेलीविजन, खेलकूद, पार्क एवं बगीचों के लिए काफी पैसा खर्च करना होता है। यहाँ व्यापारिक संस्थाओं द्वारा मनोरंजन जुटाया जाता है। गाँवों में खेलकूद, नृत्य, भजन, गायन आदि के माध्यम से सुगमता से लोगों का मनोरंजन होता है।

(4) सामाजिक विघटन- व्यक्तिवादिता के कारण नगरों में सामाजिक नियन्त्रण शिथिल हुआ है। यहाँ परिवार, धर्म, ईश्वर, रक्त सम्बन्धी एवं जाति के नियन्त्रण के अभाव में समाज विरोधी कार्य अधिक होते हैं। नगरों में नित्य एवं परिवर्तन होने से परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों से लगाव नहीं होता। नगरों में सामाजिक एवं

सांस्कृतिक प्रतिस्पर्द्धा एवं संघर्ष देखने को मिलते हैं जो सामाजिक विघटन पैदा करते हैं। गरीबी, भिक्षावृत्ति, तलाक, बाल-अपराध और अपराध नगरीय जीवन की प्रमुख समस्याएँ हैं। तोड़-फोड़, हड़ताल, नारेबाजी, नगरीय जीवन की आम घटनाएँ हैं।

(5) आवास की समस्या नगरों में एक भयंकर समस्या मकानों की है। नगरों में हवा एवं रोशनदान युक्त मकानों का अभाव होता है। कई लोग सड़क के किनारे झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। कानपुर जैसे कई औद्योगिक नगरों में तो एक कमरे में दस से पन्द्रह तक व्यक्ति रहते हैं। इन मकानों में पाखाना एवं पेशाब घर का अभाव होता है। मकान किराया अधिक होने के कारण किराए पर मकान लेना सम्भव नहीं हो पाता। नगरीय क्षेत्रों में कई मकान तो बीमारियों के घर होते हैं।

(6) भिक्षावृत्ति- नगरों में भिक्षावृत्ति अधिक है। सड़क के किनारे मन्दिर, मस्जिद एवं धार्मिक स्थानों के पास, रेल्वे स्टेशन, बस स्टैण्ड एवं सार्वजनिक स्थानों पर भिखारियों की भीड़ देखी जा सकती है। भिक्षावृत्ति नगरों में व्याप्त गरीबी का सूचक है।

(7) मानसिक तनाव एवं संघर्ष- नगरों में मानसिक तनाव एवं संघर्ष अधिक है जिनसे मुक्ति पाने हेतु लोग नशे की गोलियाँ लेते हैं। मानसिक बेचैनी से मुक्ति पाने का यह उपाय वास्तव में बड़ा महँगा है। धीरे- धीरे यह व्यक्ति को मृत्यु के मुँह में धकेलता है।

(8) वेश्यावृत्ति- नगरों में वेश्यावृत्ति अधिक पायी जाती है। यहाँ यौन अपराधों की अधिकता एवं नैतिक मूल्यों में ह्रास पाया जाता है। इस प्रकार नगरीकरण ने मानव के सदियों से चले आ रहे जीवन में अनेक परिवर्तन किए हैं और नई समस्याओं को जन्म दिया है।

(9) बढ़ती जनसंख्या- नगरों में बढ़ती जनसंख्या ने यातायात, शिक्षा, प्रशासन एवं सुरक्षा की समस्या पैदा की है। सभी के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना, यातायात एवं सुरक्षा के स्थान जुटाना और नगर प्रशासन चलाना एक कठिन कार्य हो गया है।

नगरीय समस्याओं के समाधान के लिए नगर नियोजन (Town Planning) आवश्यक है। नगर नियोजन द्वारा निवास, यातायात, सड़कों, बगीचों, चिकित्सालयों, शिक्षण संस्थाओं, बाजारों, मण्डियों एवं कारखानों का स्थान-निर्धारण इस प्रकार से किया जाता है कि नगरीय जीवन सुविधाजनक एवं आनन्ददायक बन सके, नगरीय समस्याओं का समाधान हो सके तथा उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जा सके।

स्व -प्रगति परिक्षण

1.पहले की स्थिति या रहन-सहन के ढंग से भिन्नता को ही संक्षेप में-

(अ) प्रगति कहते हैं (ब) उद्विकास कहते हैं (स) परिवर्तन कहते हैं (द) विघटन कहते हैं

2.समाज की संरचना व उसके प्रकारों में परिवर्तन को-

(अ) सामाजिक परिवर्तन कहते हैं (ब) सामाजिक विकास कहते हैं

(स) सामाजिक प्रगति कहते हैं (द) सामाजिक विघटन कहते हैं

3.सामाजिक परिवर्तन आधुनिक एवं सरल सभी समाजों में होता है। कोई भी समाज पूर्णतः स्थिर नहीं है, इसीलिये-

(अ) सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक घटना है

(ब) सामाजिक परिवर्तन वैयक्तिक घटना है

(स) सामाजिक परिवर्तन सार्वभौमिक नहीं है

(द) सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध समय से है।

4."सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना और कार्यों में घटित होते हैं।"

](अ) मैकाइवर और पेज की (ब) गिलिन और गिलिन की

(स) जिन्सवर्ग की (द) किंग्सले डेविस की

5. "सामाजिक परिवर्तन से मैं सामाजिक संरचना में परिवर्तन समझता हूँ।" सामाजिक परिवर्तन की उक्त परिभाषा है-

(अ) गिलिन और गिलिन की (ब) मैकाइवर और पेज की

(स) गिन्सबर्ग की (द) डेविस की नज़ार करोजिनगांड

6. सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।" उपरोक्त परिभाषा है-

(अ) मैकाइवर और पेज (ब) डेविस की (स) गिन्सबर्ग की (द) जान्सन की

7. एक सांस्कृतिक समूह द्वारा दूसरे सांस्कृतिक समूहों के तत्वों को ग्रहण करना **ही-**

(अ) असंस्कृतिकरण है (ब) पर-संस्कृतिकरण है

(स) आधुनिकीकरण है (द) औद्योगीकरण है

7.8 सार संक्षेप

सामाजिक गतिशीलता (social mobility) और सामाजिक परिवर्तन (social change) के विविध आयामों का अध्ययन किया गया है। संस्कृतिकरण (acculturation) और संस्कृत ग्रहण (enculturation) के माध्यम से समाज में संस्कृतियों का आपसी आदान-प्रदान और उसमें होने वाले बदलावों को समझाया गया है। नगरीकरण (urbanization) के प्रभाव से समाज में आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन होता है। यह इकाई समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से इन प्रक्रियाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करती है, जिससे विद्यार्थियों को आधुनिक समाज के विकास और उसकी चुनौतियों की गहरी समझ विकसित होती है।

7.9 मुख्य शब्द

1. **सामाजिक गतिशीलता (**Social Mobility) - एक वर्ग या सामाजिक स्थिति से दूसरे में जाने की प्रक्रिया।

2. **संस्कृतिकरण (**Acculturation) - विभिन्न संस्कृतियों के संपर्क में आने पर किसी व्यक्ति या समूह द्वारा नई सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाने की प्रक्रिया।

3. **संस्कृत ग्रहण (**Enculturation) - व्यक्ति के समाज में जन्म के बाद उसकी संस्कृति और मूल्यों को आत्मसात करने की प्रक्रिया।

4. **नगरीकरण (**Urbanization) - ग्रामीण समाज से शहरी समाज में परिवर्तन या स्थानांतरण की प्रक्रिया।

5. **सामाजिक परिवर्तन (**Social Change) - समय के साथ सामाजिक संरचना, मान्यताओं और परंपराओं में होने वाले बदलाव।

7.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1. (स), 2. (अ), 3. (अ), 4. (द), 5. (स), 6. (अ), 7. (ब)।

7.11 सन्दर्भ सूची

1. Desai, A. R. (1948). Social Background of Indian Nationalism. Oxford University Press.

2. Srinivas, M. N. (1956). Caste in Modern India and Other Essays. Asia Publishing House.

3. Weber, M. (1968). Economy and Society: An Outline of Interpretive Sociology. University of California Press.

7.12 अभ्यास प्रश्न

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये।

Explain the concept of social change.

2. परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन की विवेचना कीजिये।

Discuss change and social transformation.

3. सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन में भेद कीजिये।

Distinguish between social change and cultural change.

4. संस्कृतिकरण की अवधारणा की विवेचना कीजिए।

Discuss the concept of Sanskritisation.

5. संस्कृतिकरण के प्रमुख साधनों को लिखिए।

Write main means of sanskritization.

6. संस्कृतिकरण के और जनजातियों में सामाजिक परिवर्तन पर एक लेख लिखिए।

Write an essay on Sanskritisation and social change among tribes.

7.परसंस्कृतिकरण की अवधारणा को समझाइए।

Explain the concept of acculturation.

8.परसंस्कृतिग्रहण और पश्चिमीकरण पर एक निबन्ध लिखिए।

Write an essay on Acculturation and Westernization.

9.भारतीय जनजातियों में परसंस्कृतिग्रहण से उत्पन्न समस्याओं को लिखिए।

Write problems due to Acculturation in Indian tribes.

10. संस्कृतिग्रहण क्या है? समझाइए।

Explain what is enculturation.

(B) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer type Questions)

1.सामाजिक परिवर्तन की तीन परिभाषा लिखिये।

Write three definitions of social change.

2.सामाजिक परिवर्तन की पाँच प्रमुख विशेषताएँ लिखिये।

Write five main characteristics of social change.

3. सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन में पाँच प्रमुख अन्तर लिखो।

Write five main differences between social change and cultural change.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें

(i) प्रभुजाति Dominant caste

(ii) असंस्कृतिकरण Desanskritization

(iii) भारतीय जनजातियाँ और परसंस्कृतिग्रहण Indian Tribes and Acculturation.

इकाई -8

औपनिवेशिक शासन का जनजातीय समाज पर प्रभाव

(Impact of colonial rule on tribal society)

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 इस्लाम का प्रभाव

8.4 पश्चिम का प्रभाव

8.5 पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण

8.6 पूर्व और पश्चिम में अंतर

8.7 जनजातियों की समस्याएं

8.8 सार संक्षेप

8.9 मुख्य शब्द

8.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.11 सन्दर्भ सूची

8.12 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

आदिकाल से भारत दुनिया के आकर्षण का केन्द्र रहा है। इस आकर्षण का कारण था- भारत का ज्ञान- विज्ञान। इस क्षेत्र में भारत दुनिया को आकर्षित करता रहा है और इस आकर्षण के कारण भारतीय समाज और संस्कृति विदेशों की संस्कृति का संघात और प्रतिघात होता रहा है। किसी भी समाज पर जब विदेशी संस्कृति का संघात अस्थायी होता है, तो इसका प्रभाव भी अस्थायी होता है। किन्तु जब विदेशी संस्कृति का संघात

स्थायी होता है, तो यह समाज को स्थायी रूप से प्रभावित करती है। प्रारम्भ में भारत में जो विदेशी आए, उनका उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना था। किन्तु कालान्तर में जो विदेशी आए, उनका उद्देश्य व्यापार करना था। भारत को आदिकाल से सोने की चिड़िया कहा जाता रहा है। भारत अत्यन्त सम्पन्न था और उसकी सम्पन्नता को प्राप्त करने के लिए विदेशी व्यापारी के तौर पर भारत आए। कुछ विदेशी व्यापारी आए और लौट गए किन्तु कुछ व्यापारी आकर भारत में स्थायी रूप से निवास करने लगे। व्यापारियों के अतिरिक्त अनेक शासकों ने अपने देश पर आक्रमण किया और यहाँ से अकूत सम्पत्ति अपने देश ले गए। कुछ ने यहाँ शासन करने का प्रयास किया। जिन विदेशियों ने भारत पर शासन करने का प्रयास किया उनमें मुस्लिम शासकों और अंग्रेजों की अहम भूमिका है। इस प्रकार मुस्लिम शासकों और अंग्रेज शासकों ने भारत पर वर्षों शासन किया। इस शासन का भारतीय समाज और जीवन पर प्रभाव पड़ा। यहाँ भारतीय समाज पर इन्हीं विदेशी शासकों के शासन के प्रभावों की विवेचना की जाएगी। इन विदेशी शासकों सभी समाजों पर प्रभाव पड़ा किन्तु उन समाजों पर ज्यादा प्रभाव पड़ा, जो बाह्य जीवन के सम्पर्क में अधिक थे। जो समाज बाह्य जीवन के सम्पर्क में नहीं थे या कम थे, उन समाजों पर कम प्रभाव पड़ा।

जनजातीय समाज भारतीय समाज का ही एक अंग है। जो प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ेगा, वही प्रभाव जनजातीय समाज पर भी पड़ेगा। अन्तर केवल इतना है, कि जनजातीय समाज बाह्य समाज के सम्पर्क में कम रहा है। इसलिए उस पर प्रभाव की गति धीमी रही है। इस दृष्टि से इस अध्याय के अन्तर्गत भारतीय समाज पर इस्लाम और पश्चिमी देशों के प्रभावों की विवेचना की जाएगी।

8.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ,इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- औपनिवेशिक शासन के दौरान जनजातीय समाज की स्थिति और उनके पारंपरिक अधिकारों पर पड़े प्रभाव को समझना।

- जनजातीय समाज में उत्पन्न समस्याओं, जैसे विस्थापन, आर्थिक शोषण, और सांस्कृतिक क्षति का विश्लेषण करना।
- जनजातीय विद्रोहों के कारणों और उनकी ऐतिहासिक भूमिका पर चर्चा करना।
- छात्रों को जनजातीय समाज के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पक्षों के प्रति संवेदनशील बनाना।
- भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में जनजातीय समाज के योगदान और उनके समकालीन मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना।

8.3 इस्लाम का प्रभाव (Impact of Islam)

भौगोलिक परिस्थितियाँ और सामाजिक जीवन अन्तः सम्बन्धित हैं। आज जब ज्ञान और विज्ञान का विकास हो चुका है, तब भी मानव अधने की इस भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव से अलग नहीं कर सकता है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में तो मानव भौगोलिक परिस्थितियों का दास था। इसका कारण यह था कि मानव भौगोलिक वातावरण पर नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकता था। व्यक्ति को भौगोलिक परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करना पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियाँ ही किसी समाज की संस्कृति और संस्थाओं का निर्माण करती हैं।

संस्कृति देश और समाज की आत्मा होती है। इसी संस्कृति के आधार पर उस देश को पहचाना जाता है। यह संस्कृति नदी के प्रवाह की भाँति निरन्तर गतिशील रहती है। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से प्रभावित होती रहती है। किसी भी देश या समाज में संस्कृति में जो परस्पर आदान-प्रदान होते हैं, उन्हें निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) संस्कृतियों में आदान-प्रदान तब होता है, जब एक स्थान पर दो संस्कृतियाँ आकर मिलती है,

(b) संस्कृतियों में आदान-प्रदान की दूसरी अवस्था वह है, जहाँ एक संस्कृति समूह के व्यक्ति दूसरी संस्कृति समूह में प्रवेश करते हैं, और

(c) तीसरी अवस्था में जब एक देश या समूह का कानून दूसरे देश या समूह पर लागू कर दिया जाता है, जब भी संस्कृतियों में आदान-प्रदान होता है।

यदि हम भारतीय इतिहास का अवलोकन करें, तो हमें इसके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि अत्यन्त ही प्राचीन काल से भारत पर विदेशियों के आक्रमण होते रहे हैं। इन आक्रमणकारियों की शुरूआत चौथी शताब्दी ईसा से पूर्व ही प्रारम्भ होती है, जब भारत पर सिकन्दर महान ने आक्रमण किया था और सिन्धु के राजा पुरु से उसका घमासान युद्ध हुआ था। भारत पर जिन व्यक्तियों ने आक्रमण किए उन्हें सुविधा दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) आत्मसात करने वाले- भारत पर आक्रमण करने वाले व्यक्तियों की पहली श्रेणी उन आक्रमणकारियों की है, जो भारत में आने के बाद यहाँ को संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था से आत्मसात कर लिया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि संस्कृतियों में आदान-प्रदान हुये हैं।

(b) लूट-पाट करने वाले- दूसरी श्रेणी में वे आक्रमणकारी आते हैं, जिनका उद्देश्य भारतीय समाज और संस्कृति से आत्मसात नहीं करना था, अपितु लूटपाट करके अपने देश को लौट जाना था। इन आक्रमणकारियों में महमूद गजनवी का नाम प्रमुख है जिसने 17 बार भारत पर आक्रमण किया और देश की सम्पत्ति को अपने साथ ले गया।

जो आक्रमणकारी स्थायी तौर पर भारत में बस गये उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति को प्रभावित किया है। भारतीय समाज पर इस्लाम का जो प्रमुख प्रभाव पड़ा, उसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) हिन्दू धर्म- भारत में हिन्दू धर्म पर इस्लाम का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। हिन्दू धर्म पर इस्लाम के प्रमुख प्रभावों को निम्नलिखित भागों में बाँटकर अच्छी तरह समझ सकते हैं-

(a) अद्वैतवाद- इसे एकेश्वरवाद के नाम से भी जाना जाता है। हिन्दू धर्म में जिन देवी और देवताओं की कल्पना की गई है, उनकी संख्या करोड़ों में है। हिन्दू धर्म में इन सभी देवी-देवताओं की पूजा-आराधना में विश्वास व्यक्त किया गया है। इस्लाम का विश्वास

'एक खुदा' में है। इस खुदा के अलग-अलग रूप नहीं है। इस्लाम के इसी 'एक खुदा' की भावना से प्रेरित होकर भारतीय दर्शन में अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। डॉ. ताराचन्द ने लिखा है कि भारतीय धर्म के महान सुधारक जगतगुरू शंकराचार्य इस्लाम धर्म से प्रभावित थे, और उन्होंने 'एकेश्वरवाद' के सिद्धान्त को इस्लाम के 'एक खुदा' के सिद्धान्त से लिया है।

(b) भक्ति आन्दोलन- इसे धार्मिक आन्दोलन के नाम से भी जाना जाता है। भारत में मोक्ष प्राप्ति के लिए तीन मार्ग बतलाए गये थे, भक्ति-मार्ग, ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग। मुसलमानों में अनेक विचारक ऐसे भी हुए जिन्होंने ज्ञानमार्ग और कर्म मार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग को सबसे अधिक महत्व प्रदान किया। इसे ही भक्ति आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। कबीर भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त थे। इस आन्दोलन पर इस्लाम के सूफीवाद के प्रभावों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी आधार पर कबीर ने राम, रहीम, कृष्ण और करीम को एक ही बतलाया। की धनी

(c) मूर्तिपूजा का विरोध- हिन्दुओं में मूर्तिपूजा को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। इस्लाम में मूर्तिपूजा को 'बुतपरस्ती' कहा जाता है और मूर्तिपूजा को उचित नहीं माना जाता है। इस्लाम धर्म का यह प्रभाव हिन्दू धर्म पर भी पड़ा। अनेक ऐसे विचारक हुए जिन्होंने हिन्दू धर्म में प्रचलित कर्मकाण्ड और मूर्तिपूजा का विरोध किया। इन विचारकों में आर्य समाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम प्रमुख है।

(d) धार्मिक कट्टरता की शिथिलता- परिस्थितियों के बदले के साथ ही हिन्दू धर्म में अत्यन्त कट्टरता आ गई थी। छुआछूत, जाति-व्यवस्था और खानपान इसी प्रकार की धार्मिक कट्टरता के प्रतीक हैं। इनमें हिन्दू धर्म निरन्तर खोखला होता जा रहा था। इससे हिन्दू धर्म की रक्षा करने और इसे अधिक प्रजातांत्रिक बनाने के लिए अनेक धार्मिक आन्दोलन हुए। अनेक पीर और पैगम्बरों ने अपने धार्मिक उपदेशों के द्वारा हिन्दू धर्म को प्रभावित किया। इससे हिन्दू धर्म की अनेक दुरूहताएँ समाप्त हो गई।

(2) जाति-व्यवस्था- भारतीय जाति-व्यवस्था भी इस्लाम के प्रभावों से प्रभावित हुई है। इस्लाम धर्म और संस्कृति का भारतीय जाति-व्यवस्था पर निम्न प्रभाव पड़े हैं-

(a) नियमों की कठोरत्ता- जब भारत पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हुए और शासन-व्यवस्था में इनका अधिकार हो गया तो मुसलमानों ने भारतीय सामाजिक जीवन में प्रवेश करना प्रारम्भ किया। मुसलमानों के इस प्रवेश का परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों में रक्षात्मक प्रवृत्ति का विकास हुआ। वे हिन्दू धर्म और जाति कीरक्षा के प्रयास करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों ने जातीय नियमों और निषेधों को अत्यन्त ही कठोर बना दिया।

(b) संस्तरण की शिथिलता- भारतीय जाति-व्यवस्था का जो सामाजिक संस्तरण था, वह अत्यन्त ही कठोर था, क्योंकि इसका निर्धारण जन्म के आधार पर होता था और इसमें परिवर्तन असम्भव होता था। यह संस्तरण कठोरता के साथ अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सका और इससे भी सिथिलता का विकास हुआ। जो जातियाँ सामाजिक संस्तरण के नीचे थी, वे ऊपर उठने लगीं और जो ऊपर थीं, उनका भी एकाधिकार समाप्त होने लगा। मुस्लिम शासन-काल में कायस्थों को शासन का काम दिया जाने लगा, इससे परम्परात्मक सामाजिक संस्तरण में उनका स्थान ऊपर की और उठने लगा।

(c) सुधार आन्दोलन- जाति-प्रथा में कठोरता के परिणामस्वरूप अनेक समस्याओं का जन्म और विकास हुआ। नानक, चैतन्य और कबीर जैसे महापुरुषों ने इस आन्दोलन को संचालित किया। परिणामस्वरूप जातीय प्रतिबन्ध और छुआछूत की भावना में शिथिलता का विकास हुआ।

(d) व्यावसायिक शिथिलता- भारत में प्रत्येक जाति के परम्परागत व्यवसाय होते थे और ये व्यवसाय एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते थे। मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद जातियों में व्यावसायिक परम्परा का प्रतिबन्ध भी नहीं रह गया।

(3) परिवार- भारत में हिन्दू परिवार का प्रतिनिधित्व ग्रामीण जीवन में होता है। आवागमन और संचार साधनों की कमी के कारण इस्लाम संस्कृति का भारतीय पारिवारिक जीवन पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत भारतीय संयुक्त परिवार का प्रभाव इस्लाम संस्कृति पर पड़ा।

(4) विवाह- जब मुस्लिम आक्रमणकारी भारत आये और यहाँ पर स्थायी तौर से बसने लगे, तो उनके सामने सबसे बड़ी समस्या परिवार के स्थापना की हुई। इसका कारण यह था कि वे हजारों मील दूर अपने परिवारों को छोड़ आये थे और आवागमन के साधनों के अभाव के कारण वे अपने परिवारों को बुलाने में असमर्थ थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वे हिन्दुओं से विवाह करने लगे। इस वैवाहिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन न मिले, इसके लिए हिन्दुओं में अनेक प्रकार की प्रथाओं का जन्म हुआ। ये प्रथाएँ निम्नलिखित हैं-

(a) बाल विवाह- मुसलमान हिन्दू लड़कियों के साथ विवाह न कर सकें, इसके लिए बाल विवाहों का समाज में प्रचलन हुआ। बाल विवाह के अनुसार अत्यन्त अल्प आयु में ही विवाह करके लड़के और लड़की को दाम्पत्य सूत्र में बाँधने का प्रयास किया गया।

(b) गर्भ विवाह-बाल-विवाह का अतिरूप गर्भ विवाह के रूप में आया। गर्भ विवाह उसे कहते हैं, जब दो गर्भवती माताएँ ऐसा अनुबन्ध कर लेती हैं कि यदि उनके विषलिङ्गय सन्तानें पैदा होंगी तो दोनों का आपस में विवाह कर देंगे।

(c) विधवा विवाह निषेध- भारत में बसने वाले आक्रमणकारी विधवाओं से भी विवाह करने लगे। हिन्दुओं ने इसकी रक्षा के लिए अनेक प्रतिबन्ध लगाये और इसको नैतिक तथा धार्मिक विचारों से जोड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि विधवाओं की समस्या समाज में अपने उग्र रूप में उभर कर आई।

(d) बहिर्विवाहों पर रोक आवागमन के साधनों की कमी, सुरक्षा का अभाव, आक्रमण और अपहरण आदि की घटनाओं का बाहुल्य होने के कारण वैवा-गतिशीलता पर रोक लगा दी गई। सुरक्षा की दृष्टि से अपने आस-पास ही वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए जाने लगे। इस प्रकार बहिर्विवाहों पर प्रतिबन्ध लग गए।

(c) पर्दा प्रथा- लड़कियों और स्त्रियों का अपहरण न हो, इसके लिए समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ। यह पर्दा प्रथा आज हिन्दुओं में भीषण रूप में विद्यमान है और इससे अनेक प्रकार की समस्याओं का समाज में जन्म होता है।

(f) सती प्रथा- हिन्दुओं में जो विधवा विवाहों पर रोक लगाई गई, वह सफल होने के बाद भी समाज पर पूर्णरूप से प्रभावशाली नहीं हो सकी। इसके दो कारण थे, अनेक बाल विधवाएँ जो अपनी काम-वासना को रोकने में असमर्थ होती थीं पुनः विवाह कर लेती थीं, इसके अतिरिक्त अनेक विधवाएँ अत्यन्त ही रूपवती होती थीं, अतः शासक वर्ग इन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उनसे विवाह कर लेते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सती प्रथा को समाज में आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया और इसे एक परम्परा माना जाने लगा। इस प्रकार 'सतीत्व' के आदर्श की सहायता से सती प्रथा को प्रोत्साहित किया गया।

(5) स्त्रियों की स्थिति- वैदिक काल में भारतीय स्त्रियों को अनेक अधिकार प्रदान किए गए थे उसे पुरुषों के सामान ही समाज में स्थान दिया गया था। मुसलमानों में स्त्रियों को काफी निम्न स्तर के अधिकार दिये जाते थे और उनकी सामाजिक स्थिति निम्न रहती थी। मुसलमानों की पर्दा प्रथा का प्रभाव हिन्दू स्त्रियों पर पड़ा। उन्हें शिक्षा से दूर रखा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू स्त्रियों की समाज में स्थिति निम्न हो गई।

(6) दास-प्रथा- मुसलमान जिन गुलामों को पैसा देकर खरीदते थे, उन्हें दास (Slaves) के रूप में रखते थे। इसका प्रभाव हिन्दुओं पर भी पड़ा और हिन्दुओं में भी जाति-प्रथा का विकास हुआ।

(7) वेश-भूषा परिधानों का भी हिन्दुओं पर प्रभाव पड़ा है। मुसलमानों में प्रचलित, पाजामा, चूड़ीदार पाजामा, अचकन, शेरवानी आदि हिन्दुओं ने भी अपना लिए हैं। इसके साथ ही पगड़ी के स्थान पर टोपी (Cap) का प्रचलन भी इस्लाम संस्कृति के प्रभाव के कारण ही हुआ।

(8) खान-पान- हिन्दुओं का खान-पान या भोजन भी इस्लाम धर्म से प्रभावित हुआ है। हिन्दुओं में जो अनेक प्रकार की मिठाइयाँ आज प्रचलित हो गई हैं, वे पहले मुसलमानों में प्रचलित थीं। इन मिठाइयों में बालूशाही, इमरती, जलेबी, बर्फी और गुलाब जामुन प्रमुख है। अधिकांश हिन्दुओं का भोजन शाकाहारी होता था। मुसलमानों के आने के बाद

मांसाहारी भोजन में वृद्धि होने लगी है। मांस, मछली, अंडों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है।

(9) भाषा और साहित्य- इस्लाम भाषा और साहित्य का प्रभाव भी हिन्दुओं पर पड़ा है। मुस्लिम प्रभाव के कारण ही खड़ी बोली को साहित्य की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। उर्दू फारसी भाषा का भारतीय रूप है। यदि हम भारतीय भाषा और साहित्य का अवलोकन करें, तो ऐसा स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू की अत्यधिक छाप पड़ी थी। इसमें अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं का समन्वय है।

(10) स्थापत्य कला- भारतीय स्थापत्य कला पर मुसलमानों के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस स्थापत्य कला में तहखाना, गुम्बज, मीनार, महराब आदि प्रमुख हैं। भारत में जो भवन, निर्मित हो रहे हैं, उनमें इस कला को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'ताजमहल' स्थापत्य कला का प्रसिद्ध उदाहरण है।

(11) **चित्रकला-** चित्रकला पर भी इस्लाम संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मुसलमान शासक रंगीन मिजाजी होते थे और उन्हें चित्रकला का अत्यन्त ही शौक होता था। भारतीय चित्रकला में मुगल शैली का विकास इन्हीं मुसलमान शासकों के काल में हुआ था। अकबर के दरबार में चित्रकारों की भीड़ थी। अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर के दरबार में 17 चित्रकार थे तथा चित्रकला से सम्बन्धित 100 से भी अधिक संस्थाएँ थीं। मुगल शैली की चित्रकला में प्राकृतिक चित्रों को प्राथमिकता दी जाती थी। जिसमें पशु, पक्षी, झरने, नदी, फूल आदि प्रमुख थे। हिन्दू जीवन और चित्रकला में भी इसी पद्धति को देखा जा सकता है।

(12) संगीत कला- भारतीय शास्त्रीय संगीत (Classical Music) की मिसाल दुनिया में कहीं भी नहीं मिलती है। भारत में मुसलमानों के प्रभाव के कारण भारतीय संगीत शैली में मुगल शैली का विकास हुआ। आज जो 'कव्वाली' की प्रथा भारत में दिखाई देती है, वह इस्लाम संस्कृति का ही परिणाम है। इसके साथ ही भारतीय संगीत शैली में जो चमत्कार, रंगीलापन और रसरंजकता दिखाई देती है, वह इस्लाम संस्कृति के प्रभाव का ही परिणाम है।

(13) आमोद-प्रमोद- भारत में आमोद-प्रमोद में जो ऐय्याशी और विलासिता का विकास हुआ है, उसमें सबसे अधिक प्रोत्साहन मुसलमानों से मिला है। नाचगाने, मुशायरे और कव्वाली मुस्लिम संस्कृति के ही प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त शतरंज खेलना, जानवरों को पालना और शिकार करने की प्रथा भी हिन्दुओं ने मुसलमानों से ही ग्रहण की है।

(14) आर्थिक जीवन- आर्थिक जीवन पर भी मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ा है। अनेक व्यवसायों का विकास भारत में मुस्लिम संस्कृति के विकास के साथ ही हुआ है। दिल्ली में मुगल काल में अनेक कारखाने थे। इन कारखानों में 'जुलाहे' काम करते थे। वस्त्रों को रंगाई और छपाई, पच्चीकारी, कलई आदि उद्योगों का विकास मुस्लिम शासन काल में ही हुआ। ढाका की 'मलमल' तो जगत प्रसिद्ध थी। घोड़ों और खच्चरों की सहायता से विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना मुस्लिम शासन काल में ही हुई।

इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज और संस्कृति को इस्लाम संस्कृति ने प्रभावित किया है। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सिर्फ हिन्दू संस्कृति ही प्रभावित हुई है। हिन्दुओं की संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था का इस्लाम पर भी प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार संक्षेप में इस्लाम ने संस्कृति, तो हिन्दू संस्कृति ने इस्लाम पर भी अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है।

8.4 पश्चिम का प्रभाव (Western influence)

अंग्रेजी शासन के कारण भारतीय समाज और संस्कृति में बुद्धिमत्तापूर्ण और स्थायी परिवर्तन हुए। यह काल भारतीय इतिहास के पिछले सभी कालों से भिन्न था, क्योंकि अंग्रेज अपने साथ नई औद्योगिकी, संस्थाएँ, ज्ञान, विश्वास और मूल्य लेकर आये थे। नई औद्योगिकी और उसके कारण संचार साधनों में होने वाली क्रान्ति की सहायता से अंग्रेजों ने देश का ऐसा एकीकरण किया जैसा पहले उसके इतिहास में कभी नहीं हुआ था।

पश्चिमीकरण अर्थ और परिभाषा

Westernisation - Meaning and Definition

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रत्येक समाज में परिवर्तन की गति निरन्तर अबाध रूप से चलती रहती है। भारत भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं है। यदि हम भारतीय इतिहास का अवलोकन करें, तो ऐसा प्रतीत होता है, कि आधुनिक भारत में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनकी गति तुलनात्मक रूप से अधिक तीव्र है। भारतवर्ष में आज जो परिवर्तन हो रहे हैं, इन्हें अनेक प्रकार कारक प्रभावित करते हैं। इन कारकों में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव प्रमुख है।

अनुकरण मानव की मूल प्रवृति है। अनुकरण के आधार पर ही मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। अनुकरण का सिद्धान्त यह है कि निम्न वर्ग के व्यक्ति उच्च वर्ग के व्यक्तियों का अनुकरण करते हैं। ग्रामीण व्यक्ति नगरों में निवास करने वाले व्यक्ति का अनुकरण करते हैं और इसी प्रकार अशिक्षित व्यक्ति सिद्धान्तों का अनुकरण करते हैं।

पश्चिमीकरण अनुकरण की ही एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा भारतीय व्यक्ति पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का अनुकरण करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पाश्चात्य संस्कृति के रङ्ग रङ्गने की प्रक्रिया ही पश्चिमीकरण है। प्रो. श्री निवास ने पश्चिमीकरण की निम्न परिभाषा दी है-

"मैंने पश्चिमीकरण शब्द को अन्य स्थान पर ब्रिटिश राज्य के डेढ़ सौ वर्ष के शासन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में उत्पन्न हुए परिवर्तन के लिए प्रयोग किया है, और यह शब्द औद्योगिकी, संस्थाओं, विचारधाराओं और मूल्यों- विभिन्न स्तरों पर उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों को सम्मिलित करता है।"

इस प्रकार 'पश्चिमीकरण एक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से भारतीय समाज पश्चिमी समाज से प्रभावित होता है।'

पश्चिमीकरण की विशेषताएँ

(Characteristics of Westernisation)

प्रोफेसर श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण की जो परिभाषा दी है, उसको ध्यान में रखकर इसकी निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

(1) एक प्रक्रिया- पश्चिमीकरण एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के दो स्वरूप है-

(a) चेतन (Conscious) और।

(b) अचेतन (Unconscious)।

पश्चिमीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से पाश्चात्य रहन-सहन, विचार और संस्कृति को अपनाया जाता है। कभी-कभी व्यक्ति जानबूझकर इच्छा रहते हुये पाश्चात्य विचार और संस्कृति को अपनाता है। इसलिए इसे जागरूक प्रक्रिया के नाम से जाना जायेगा। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी परिस्थितियाँ पैदा होती रहती है, जिनके कारण व्यक्ति अचेतनावस्था में पाश्चात्य विचार और संस्कृति को ग्रहण करता है। प्रक्रिया चाहे चेतन हो या अचेतन, वह भारतीय समाज में निरन्तर चलती रहती है।

(2) जटिल प्रत्यय- पश्चिमीकरण की जो अवधारणा है, वह अत्यन्त ही व्यापक होते हुये भी जटिलता लिये हुए है। इसमें भारतीय समाज में होने वाले उन सभी परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है जो पाश्चात्य औद्योगिकी (Technology) और आधुनिक विज्ञान (Modern science) के परिणामस्वरूप होते हैं। पश्चिमीकरण की धारणा में जटिलता इसलिये आई है कि इसका प्रभाव सभी जगह समान रूप से नहीं पड़ा है। इसके अतिरिक्त भारत में पश्चिमीकरण का जो प्रभाव पड़ा है, वह अनेक स्तरों में विभाजित है। इसलिए अब भी पश्चिमीकरण शब्द का-प्रयोग किया जाय, तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि इसका सभी जगह समान प्रभाव पड़ा है।

(3) तटस्थ अवधारणा पश्चिमीकरण एक तटस्थ अवधारणा है। प्रत्येक अवधारणा के दो पहलू होते हैं- अच्छा पहलू और बुरा पहलू। पश्चिमीकरण के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि इसके अच्छे प्रभाव होते हैं या बुरे। पश्चिमीकरण पश्चिमी समाज के अनुकरण की प्रक्रिया को कहा जाता है। पश्चिम से हम बहुत- सी बातों को सीखते हैं। इसमें से कुछ अच्छी होती हैं तो कुछ बुरी। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि पश्चिमीकरण एक तटस्थ अवधारणा है।

(4) सीमित अवधारणा पश्चिमीकरण की जो अवधारणा है, उसकी कुछ अपनी निश्चित सीमाएँ हैं। इसका तात्पर्य यह है कि पश्चिम से हम जो कुछ भी अनुकरण कर रहे हैं,

उसके बारे में ऐसा सोचना कि इनकी उत्पत्ति पश्चिम में हुई है, नितान्त ही गलत है। पश्चिमी से हम अनेक बातों को ग्रहण करते हैं, जिनकी उत्पत्ति पश्चिमी में नहीं हुई है। उदाहरण के लिए-

(a) ईसाई धर्म की उत्पत्ति एशिया में हुई थी।

(b) दशमलव की पद्धति का आविष्कार सबसे पहले भारत के वैज्ञानिकों ने किया था, और

(c) छापाखाना तथा प्रेम का आविष्कार सबसे पहले चीन में हुआ था।

पश्चिमीकरण इसलिए भी एक सीमित अवधारणा है कि पश्चिम में जितने भी देश आते हैं इन सभी में मौलिक रूप से सांस्कृतिक भिन्नताएँ विद्यमान हैं।

पश्चिमीकरण के वाहक

मौलिक प्रश्न यह है कि भारत में पश्चिमीकरण की जो प्रक्रिया गतिशील हुई है, उसके वाहन के आधार क्या हैं? कौन से ऐसे माध्यम हैं जो पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को भारत तक ले आए। भारत में पश्चिमीकरण को लाने में मुख्य रूप से तीन वर्गों का प्रमुख स्थान रहता है-

• (1) सैनिक और सिविलियन अधिकारी भारत में पश्चिमीकरण के पहले वाहक हैं। सामाजिक संस्तरण में इनका एकस्तर सर्वोच्च रहता है, नागरा

(2) व्यापारी और बगीचों के मालिक, जो नीचे स्तर पर थे, भारत में पश्चिमीकरण के दूसरे वाहक थे, और

(3) अंग्रेज मिशनरियों में काम करने वाले व्यक्ति पश्चिमीकरण के तीसरे वाहक थे।

जहाँ तक भारतवर्ष में पश्चिमीकरण को फैलाने का प्रश्न है, इन तीनों वर्ग के व्यक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन अंग्रेजों के अतिरिक्त अनेक भारतीयों ने भी भारत में पश्चिमीकरण को फैलाने में मदद दी है। भारत के ये व्यक्ति जिन्होंने संस्कृतिकरण को फैलाने में योग दिया है, प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(a) प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले पहले वर्ग में वे भारतीय आते हैं, जो अंग्रेजों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते थे। इससे इन भारतीयों पर अंग्रेजों की संस्कृति और विचारधारा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले ऐसे भारतीयों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) हिन्दू धर्म का त्याग करके ईसाई धर्म ग्रहण करने वाले भारतीय, और

(2) अंग्रेजों के यहाँ निकट सम्पर्क में नौकरी करने वाले भारतीय जैसे खानसामा, चपरासी, आदि।

(b) अप्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले भारत में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में दूसरे वर्ग में वे भारतीय आते हैं, जो अंग्रेजों के साथ अप्रत्यक्ष सम्पर्क में आते थे।

अप्रत्यक्ष रूप से पश्चिमीकरण को जिन भारतीयों ने गति प्रदान की है, उनमें से कुछ निम्नलिखित है-

(i) अंगेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति,

(ii) अंग्रेजी नौकरियों में लगे हुए व्यक्ति,

(iii) विशाल नगरों में उद्योग और व्यापार को संचालित करने वाले व्यक्ति,

(iv) अंग्रेज अस्पतालों में रहने वाले रोगी,

(v) अंग्रेजी न्यायालयों में आने वाले वादी और प्रतिवादी,

(vi) अंग्रेजी समाचारपत्र और पुस्तकों को पढ़ने वाले व्यक्ति,

(vii) समुद्री बन्दरगाह और वहाँ निवास करने वाले, व्यक्ति।

पश्चिमीकरण के प्रभाव (Effects of Westernization)

भारतवर्ष में पश्चिमीकरण का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है, वह सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित हैं। पश्चिमीकरण से भारतीय समाज और संस्कृति में परिवर्तन हुए हैं उसे प्रोफोसर एम. एन. श्रीनिवास ने निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है।

(1) शिक्षा का प्रसार- भारतवर्ष में पश्चिमीकरण का जो सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है, वह है शिक्षा का प्रचार और आधुनिक शिक्षा पद्धति का जन्म। इस प्रसार के परिणामस्वरूप एक ऐसे शिक्षित वर्ग का निर्माण हुआ है, जिसे भारतीय क्रान्ति का अग्रदूत कहा जा सकता है। पश्चिमीकरण से देश में अनेक महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। पुस्तकों और पत्रिकाओं के माध्यम से एक नई विचारधारा का जन्म हुआ।

(2) सुधार कार्य-पश्चिमीकरण का भारतीय जीवन और समाज पर इसका जो प्रभाव पड़ा है, वह है सुधार कार्य। सामाजिक तथा अन्य समस्याओं के समाधान के लिए अनेक सुधार कार्य किये गये। इन सुधार कार्यों का उद्देश्य सामाजिक कल्याण है। भारत में जो सुधार कार्य हुये, उनमें शिक्षा का प्रसार अकाल और महामारी से बचने के उपाय आदि प्रमुख है।

(3) प्राचीन संस्थाओं का विघटन- पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप भारत के प्राचीन संस्थाओं का विघटन हुआ है। इन संस्थाओं के प्रति देशवासियों के मन में उपेक्षा की भावना का विकास हुआ। पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप जिन प्रमुख संस्थाओं का विघटन हुआ है, उनमें जाति-प्रथा, संयुक्त परिवार, धर्म संस्कार, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि प्रमुख है।

(4) नई संस्थाओं का जन्म- पश्चिमीकरण का समाज पर दोहरा प्रभाव पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप यदि कुछ संस्थाओं का विघटन हुआ है, तो इनके स्थान पर नवीन संस्थाओं का जन्म भी हुआ है पश्चिमीकरण से भारत में जिन नवीन संस्थाओं का विकास हुआ। उनमें समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ, मतदान, ईसाई मिशनरी आदि प्रमुख हैं।

(5) मूल्यों में परिवर्तन संस्कृतिकरण के परिणामस्वरू, भारतीय समाज के स्थापित मूल्य और मान्यताएँ कम प्रभावशाली हो गई हैं। इन परम्परागत मूल्यों के प्रति व्यक्तियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गये हैं। शिक्षा के प्रसार के कारण जाति और अस्पृश्यता से सम्बन्धित मूल्य शिथिल हुए हैं। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति ऊँची हुई

है। इसके साथ ही समानता धर्म निरपेक्षता और मानवतावादी मूल्यों का विकास हुआ है।

(6) हिन्दुत्व की नयी व्याख्या- हिन्दू धर्म का निर्माण महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया था, किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के कारण ये उद्देश्य समाज के साथ अपना अनुकूलन करने में असमर्थ रहे। परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म में सुधार की आवश्यकता का अनुभव किया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक समाज सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ। इसमें आर्य समाज, ब्रह्म समाज, थियोसिफिकल सोसाइटी, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि प्रमुख हैं। जिन विद्वानों ने हिन्दुत्व की नवीन व्याख्या में योगदान दिया है उनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, राजाराम मोहनराय, महर्षि अरविन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बीरसावकर, महात्मागाँधी प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने अनेक भारतीय समस्याओं के समाधान में मदद की है, जिनमें अस्पृश्यता उन्मूलन, सतीप्रथा निषेध, विधवा पुनर्विवाह की अनुभूति, बाल विवाह पर रोक आदि प्रमुख हैं।

(7) विभिन्न आन्दोलन- पश्चिमीकरण ने भारत में विभिन्न राजनैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलन को प्रोत्साहित किया है। इन सभी आन्दोलनों में राष्ट्रीय आन्दोलन का अपना अलग ही महत्व है। इसके अतिरिक्त अनेक आन्दोलनों का जन्म हुआ। इन आन्दोलनों में साम्प्रदायिक, भाषावादी, क्षेत्रवादी, जातिवादी और प्राचीन परम्परावादी आन्दोलन प्रमुख हैं।

भारतीय समाज पर पश्चिम का प्रभाव (Impact of West on Indian Society)

पश्चिम का भारतीय समाज और संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभावों की प्रक्रिया को ही पश्चिमीकरण के नाम से जाना जाता है। भारतीय जीवन पर पश्चिम का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है और इसके परिणामस्वरूप समस्त जीवन को ही परिवर्तित कर दिया है। यदि हम प्राचीन और आधुनिक भारतीय जीवन की विवेचना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन का हर क्षेत्र पश्चिम से प्रभावित है।

15वीं शताब्दी में वास्कोडिगामा नामक पुर्तगाली सरदार सबसे पहले भारत आया। उसका भारत आने का प्रमुख उद्देश्य व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना करना था। धीरे-धीरे ये शासन-व्यवस्था पर भी अधिकार स्थापित करने लगे, यद्यपि ये सम्पूर्ण देश पर अधिकार करने में असमर्थ रहे और परिणामस्वरूप भारतीय समाज पर इनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

16वीं शताब्दी में व्यापारिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर अंग्रेज भारत आए। इनके भारत आने का उद्देश्य धर्म का प्रचार करना भी था। मुगल शासन की शिथिलता का फायदा अंग्रेजों ने उठाया और उन्होंने शासन-व्यवस्था पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजों का भारत पर शासन 1947 तक रहा। इस लम्बी अवधि में इनकी सभ्यता और संस्कृति ने देश को प्रभावित किया। इसी दृष्टि को सामने रखते हुये प्रो.डी.पी. मुखर्जी ने लिखा है कि "इतिहासकार कहते हैं, पहली बार एक विदेशी सभ्यता ने भारतीय जीवन के प्रत्येक पक्ष पर संघात किया, इसके प्रतिमान को परिवर्तित किया तथा नए मूल्यों को जन्म दिया।" भारतीय समाज पर पड़ने वाले पश्चिम के प्रभाव को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) परिवार पर प्रभाव- परिवार प्रत्येक समाज की मूलभूत इकाई होती है। भारत में इस मूलभूत संस्था पर पश्चिम का जो प्रभाव पड़ा है, उसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) व्यक्तिवादी विचारधाराओं में वृद्धि के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार यदि एक ओर विघटित हो रहे हैं तो दूसरी ओर व्यक्तिगत परिवारों की संस्था में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(b) परिवार समाजीकरण की प्रमुख संस्था के रूप में स्थायी था। परिवार ने इस स्थायित्व में कमी हो जाने के कारण समाजीकरण के क्षेत्र में परिवार अपनी भूमिका का निर्वाह करने में असमर्थ प्रतीत हो रहा है।

(c) परिवार के कार्यों में भी शिथिलता आ गई है। परिवार के सदस्य आज अपने उत्तरदायित्वों के प्रति उतने सजग नहीं है जितना कि पहले थे।

(d) परिवार की संख्या में स्थायित्व में भी कमी आई है। इस स्थायित्व की कमी का ही परिणाम है कि आज परिवार विघटन की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं।

(e) पारिवारिक नियन्त्रण में भी शिथिलता का विकास हुआ।

(f) हिन्दू परिवार में स्त्रियों की स्थिति ऊँची हुई है, परिवार में श्रम विभाजन की जो दीवार रहती थी, वह भी समाप्त होती जा रही है।

(2) विवाह का प्रभाव- पश्चिम का दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव विवाह की संस्था पर पड़ा है। विवाह की संस्था पर जो प्रमुख प्रभाव पड़े हैं उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(a) पश्चिमीकरण का जो प्रभाव भारतीय विवाह की संस्था पर पड़ा है। उसका परिणाम यह हुआ है कि वैवाहिक आधारों में ही परिवर्तन हो गया है। हिन्दू विवाह के तीन प्रमुख आधार थे, धर्म, पुत्र और रति, विवाह इसलिए किया जाता था कि ऐसा करना धर्म की आज्ञा के अनुसार है। आज का विवाह धार्मिक संस्कार न होकर एक समझौता है। रति की उपेक्षा और प्रजाति की निरन्तरता में भी परिवर्तन हो गए है। आज रति को प्राथमिकता दी जाती है और परिवार नियोजन के द्वारा सन्तानों को पैदा होने से रोका जाता है।

(b) विवाह की पद्धतियाँ भी परिवर्तित हो गई हैं। आज विवाह करते समय उतने विधान नहीं माने जाते हैं, जितने की पहले माने जाते थे। इसके साथ ही संस्कारों द्वारा होने वाले पवित्र विवाहों के स्थान पर प्रेम विवाहों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(c) अन्तर्जातीय विवाहों को निरन्तर प्रोत्साहन मिल रहा है। जाति और धर्म में विवाह करना प्राचीनता का प्रतीक माना जाता है।

(d) बाल-विवाहों की संख्या में निरन्तर कमी होती जा रही है और अधिक आयु में विवाह करना एक फैशन तथा सभ्यता का प्रतीक बनता जा रहा है।

(e) विवाह की संस्था आज उतनी स्थायी नहीं रह गयी है जितनी कि पहले थी। इसके साथ ही विवाह को जन्म जन्मान्तर का मिलन भी नहीं माना जाता है। इससे तलाकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(f) एक विवाह की प्रकृति का विकास होता जा रहा है और इसे सभ्यता का प्रतीक माना जाता है।

(g)आज विवाहित युवक और युवतियों में उन्मुक्त भोग की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। परिवार नियोजनके उपकरणों ने मानव के उन्मुक्त भोग की प्रवृत्ति की ओर भी प्रोत्साहित किया है। (h) विवाह को एक ढकोसला तथा बन्धन का प्रतीक माना जाने लगा है और यही कारण है कि स्त्री-पुरुषों में आजीवन अविवाहित रहने की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है।

(3) जाति-प्रथा- भारतीय जाति-प्रथा भी पश्चिमी प्रभाव से प्रभावित हुई है। जाति-प्रथा भारत की अपनी विशेषता है और इसकी मिसाल दुनिया में कहीं भी नहीं मिलती है। भारतीय जाति-प्रथा पर पश्चिम के प्रभावों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(a) औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिक शिक्षा, आवागमन और संदेशवाहन के साधनों का परिणाम यह हुआ है कि जाति-प्रथा के महत्व में कमी आयी है।

(b) जाति-प्रथा के निषेध शिथिल हो गए हैं और खानपान, रीतिरिवाज, आदि के सम्बन्ध में निश्चित निषेधों का पालन नहीं किया जाता है।

(c) जाति-प्रथा में जो ऊँच-नीच की भावना थी, आज उसमें भी शिथिलता का विकास हुआ है।

(d) जाति-प्रथा से यद्यपि प्रमुख लक्षण समाप्त होते जा रहे हैं, किन्तु इसके स्थान पर 'जातिवाद' (casteism) जैसे प्रचण्ड रोग भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर घर करते जा रहे हैं।

(e) विभिन्न जातियों के व्यक्तियों के द्वारा एक ही प्रकृति के कार्यों का सम्पादन करने का परिणाम यह हुआ है कि नए वर्गों का जन्म और विकास होता जा रहा है।

(4) अस्पृश्यता- आज अस्पृश्यता की भावना भी शिथिल होती जा रही है। अस्पृश्यता को शिथिल करने में आधुनिक शिक्षा, आवागमन और संचार के साधन, रेल, होटल, मीटिंग, कल कारखाने आदि प्रमुख हैं। अधिनियम के द्वारा भी अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया गया है। इस सबका परिणाम यह हुआ है कि अस्पृश्यता समाप्त होती जा रही है।

(5) स्त्रियों की स्थिति- स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर भी पश्चिम का प्रभाव पड़ा है। आज भारत में स्त्रियों और पुरुषों में समानता का व्यवहार किया जाता है। उन्हें ऊँची शिक्षा दी जाती है। पश्चिम का भारतीय स्त्रियों पर निम्न प्रभाव पड़ा है-

(a) शिक्षा का समान अधिकार और इससे स्त्रियों में ज्ञान का प्रसार।

(b) ज्ञान के प्रसार के साथ ही साथ स्त्रियों ने पर्दा की भीषण कुप्रथा का बहिष्कार कर दिया।

(c) विवाह में स्त्रियों की सहमति को भी आवश्यक समझा जाने लगा।

(d) स्त्रियों को समाज में पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए गए।

(6) हिन्दू धर्म- हिन्दू धर्म पर भी पश्चिम का प्रभाव पड़ा है। हिन्दू धर्म में अनेक रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास व्याप्त हो जाने के कारण दोषयुक्त हो गया था। साथ ही इसमें अनेक प्रकार की दीवारें खड़ी हो गई थीं। पश्चिमी का प्रभाव पड़ने से हिन्दू धर्म में व्यापकता का विकास हुआ है। धार्मिक कट्टरता को समाप्त किया गया। हिन्दुओं में धर्म के प्रति एक नवीन चेतना का विकास हुआ। अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं ने हिन्दू धर्म की भ्रान्तियों को समाप्त करके इसे नवीन दृष्टि प्रदान की।

(7) रीतिरिवाज- रीतिरिवाज में पश्चिमीकरण का जो प्रमुख प्रभाव पड़ा है। वह निम्नलिखित है-

(ए) स्त्री और पुरुष दोनों की वेशभूषा में परिवर्तन हुआ है।

(b) फैशन को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है तथा इसे जीवन के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है।

(c) खान-पान में भी परिवर्तन हुआ है तथा इसका सम्बन्ध भी पश्चिमी समाज और सभ्यता से जोड़ने का प्रयास किया जाने लगा है।

(d) रीतिरिवाजों और प्रथाओं में आमूल परिवर्तन हो गया है तथा इन्हें सामाजिक जीवन और परिस्थितियों से सम्बन्धित करने के प्रयास किए जाने लगे हैं।

(8) शिक्षा- परम्परात्मक शिक्षा समाप्त हो गई है। 'गुरुकुल' की जो परम्परा थी उसके कहीं भी दर्शन नहीं होते हैं। आधुनिक शिक्षा का प्रसार हुआ। इससे समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। महाविद्यालयों और विश्वविद्यालय में सहशिक्षा (Co-education) का प्रसार हुआ है। इससे स्त्रियों ने पर्दा प्रथा का बहिष्कार किया तथा उनकी सामाजिक स्थिति ऊँची हुई। अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिला और जाति तथा अस्पृश्यता की भावनाएँ शिथिल हुईं।

(9) भारतीय संस्कृति- भारतीय संस्कृति पर भी पाश्चात्य का निम्न प्रभाव पड़ा है-

(a) प्राचीन भारतीय कला के स्थान पर 'आधुनिक कला' (Modern Art) का विकास हुआ है,

(b) चलचित्रों के दृश्य, उद्देश्य, संवाद, संगीत, तकनीकी आदि पर भी पश्चिमीकरण का प्रभाव पड़ा।

(c)संगीत में पाश्चात्य संगीत और पाश्चात्य वाद्ययन्त्रों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है,

(d)नृत्यकला भी पश्चिमी समाज और संस्कृति से प्रभावित हुई। 'कैबराडांस' की प्रथा का प्रचलन चलचित्रों में विशिष्ट आकर्षण लाता है।

(e) भारतीय चित्रकला में भी आज अनेक प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों पर पश्चिमी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

(f) भवन निर्माण कला भी पश्चिमी समाज और संस्कृति से प्रभावित है,

(g) भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग सामान्य हो गया है। इसके साथ ही अंग्रेजी भाषा को सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक माना जाने लगा है।

(h) साहित्य में भी पश्चिम प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतीय साहित्य में भी पश्चिमी साहित्य की रोमांसवाद (Romanticism), अस्तित्ववाद (Existentialism) तथा मनोविश्लेषण (Psycho- analysis) आदि की प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ती जा रही हैं।

(i) मनोरंजन के साधनों में भी परिवर्तन हुआ है। चलचित्रों से मनोरंजन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय समाज का प्रत्येक भाग पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित है।

8.5 पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण(Westernisation and Modernisation)

पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण को भी समानार्थी माना जाता है। इसका कारण यह है कि पाश्चात संस्कृति को आधुनिक माना जाता है। किन्तु ये दोनों ही अवधारणाएँ अलग-अलग हैं। इतना निश्चित है कि समकालीन भारतीय जीवन में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गतिशीलता प्रदान करने में पश्चिमीकरण की भूमिका महत्वपूर्ण है। पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण में निम्न समानताएँ और भिन्नताएँ हैं।

(1) पश्चिमीकरण तथा भारतीय सामाजिक जीवन में परिवर्तन की प्रक्रियाएँ हैं,

(2) भारत को आधुनिक बनाने में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया की भूमिका महत्वपूर्ण है,

(3) आधुनिकीकरण की अवधारणा विस्तृत है, जबकि पश्चिमीकरण की अवधारणा सीमित है। इसका कारण यह है कि सभी देशों में आधुनिकीकरण तो हो रहा है किन्तु सभी देशों में पश्चिम के प्रभाव से ही आधुनिकीकरण नहीं हुआ है।

(4) आधुनिकीकरण में सभी प्रकार के परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है, जबकि पश्चिमीकरण में केवल उन्हीं प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है, जो पश्चिमी देशों के प्रभाव के कारण होते हैं।

पश्चिमीकरण और नगरीकरण (Westernization and Urbanization)

पश्चिमीकरण और नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ हैं। समकालीन भारतीय समाज और संस्कृति को परिवर्तित करने में इन दोनों प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय समाज और जीवन की विवेचना करते हुए ऐसा है कि पश्चिमीकरण का प्रभाव नगरों में अधिक है। यद्यपि भारतीय ग्रामीण आंचल भी पश्चिमीकरण के प्रभाव से अछूते नहीं हैं, किन्तु वहाँ इस प्रक्रिया की गतिशीलता कम है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पश्चिमीकरण नगरीकरण है। कुछ भारतीय गाँवों में ऐसे व्यक्ति भी हैं, जिनमें पश्चिमीकरण का प्रभाव किसी नगर में रहने वाले व्यक्ति से अधिक है। इसके साथ ही, नगरों में भी पश्चिमीकरण का समस्त जनसंख्या पर बराबर प्रभाव नहीं है। इसलिए पश्चिमीकरण को नगरीकरण का अनिवार्य लक्षण नहीं कहा जा सकता है। इन दोनों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि

(1) नगरीकरण और पश्चिमीकरण दोनों ही समकालीन भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रक्रियाएँ है,

(2) नगरीकरण सार्वभौमिक अवधारणा है, जबकि पश्चिमीकरण की अवधारणा सार्वभौमिक नहीं है। इसका कारण यह है कि पश्चिमीकरण में पश्चिम के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है,

(3) नगरीकरण से जो सामाजिक परिवर्तन होते हैं, उनसे अनेक समस्याओं का जन्म होता है। इन समस्याओं का व्यक्ति के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। पश्चिमीकरण से जो सामाजिक परिवर्तन होता है, उससे भी समस्याओं का जन्म होता है किन्तु ये समस्याएँ समाज पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालती हैं।

8.6 पूर्व और पश्चिम में अन्तर (Difference between Eastern and Western)

अनेक विचारकों की ऐसी धारणा है कि पूर्व और पश्चिमी एक दूसरे से भिन्न हैं तथा वे एक दूसरे से मिल नहीं सकते हैं। 50 वर्ष पहले किपलिंग ने लिखा था कि 'पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम, और ये दोनों कभी नहीं मिलेंगे।' किपलिंग ने इस प्रकार के विचार तब व्यक्त किए थे, जब अंग्रेजों के साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। कहने

का तात्पर्य यह है कि उस समय अफ्रीका और एशिया महाद्वीपों का अधिकांश भाग इंग्लैंड तथा अन्य योरोपीय राष्ट्रों के साम्राज्य के अन्तर्गत था। दुनिया के 25 प्रतिशत भागों पर इंग्लैण्ड का अधिकार था। पश्चिमी समाज में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) पहले हुई। इसके कारण वह आविष्कारों (Inventions) का प्रादुर्भाव हुआ। इन औद्योगिक आविष्कारों के कारण पश्चिमी राष्ट्रों ने प्राकृतिक शक्तियों पर अपना अधिकार कर लिया। उनकी आर्थिक उन्नति हुई। अनेक अस्त्र-शस्त्रों और शक्ति-यन्त्रों का आविष्कार हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय पश्चिमी राष्ट्र समृद्धिशाली हो गए तथा उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक हुआ। विपरीत पूर्व राष्ट्रों में निर्धनता, बेरोजगारी, अभाव आदि का साम्राज्य रहा। किपलिंग की विचारधारा को हम मात्र आवेश मान सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि किपलिंग ने अपने राष्ट्र के अभिमान और राष्ट्रीयता से प्रेरित अपने विचारों के कारण ऐसा लिखा हो। किन्तु किपलिंग के विचारों को मात्र आवेश नहीं कहे जा सकते हैं। किपलिंग के अतिरिक्त भी अन्य अनेक विद्वानों ने पूर्व और पश्चिम में अन्तर को स्वीकार किया है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इन विद्वानों के विचारों का मूल्यांकन किया जाय। पूर्व और पश्चिम में जो प्रमुख अन्तर है, वह इस प्रकार है-

(1) शासन प्रणाली- इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पूर्व की वर्तमान शासन प्रणाली का जन्म पश्चिम के आधार पर हुआ है। ब्रिटिश पार्लियामेंट संसार के सभी पार्लियामेंटों की जननी है। शासन प्रणाली की दृष्टि से भी पूर्व और पश्चिम में अन्तर है-

(a) पूर्व में सदैव निरंकुश शासन तन्त्र रहा है,

(b) पश्चिम में प्रजातन्त्र को मान्यता मिलती रही है।

(2) जीवन दर्शन- जीवन-दर्शन (Philosophy of life) की दृष्टि से भी पूर्व और पश्चिम में अन्तर रहा है। जीवन दर्शन की दृष्टि से पूर्व और पश्चिम में जो प्रमुख अन्तर रहा है, वह इस प्रकार है-

(a) पूर्व में जीवन दर्शन परम्परावादी रहा है, जबकि पश्चिम के जीवन दर्शन में आधुनिकता पाई जाती रही है।

(b) पूर्व में 'सादा जीवन, उच्च विचार' को महत्व प्रदान किया जाता रहा है, जबकि पश्चिम में इस प्रकार के जीवन दर्शन को महत्व नहीं दिया गया है।

(c) पश्चिमी जीवन भौतिकतावादी (Materialistic) रहा है और 'खाओ, पिओ तथा मौज करो' में विश्वास व्यक्त किया है। पूर्व का जीवन अध्यात्मवादी (Spiritualistic) रहा है तथा मोक्ष में विश्वास व्यक्त किया है।

(3) वैज्ञानिक प्रगति- वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से भी पूर्व और पश्चिम में अन्तर रहा है। पश्चिम में औद्योगिक क्रान्ति के कारण वैज्ञानिक प्रगति हुई, जबकि पूर्व में वैज्ञानिक प्रगति नहीं हुई। पश्चिम में वैज्ञानिक

प्रगति के कारण जीवन उपयोगी अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओं का निर्माण हुआ, जबकि पूर्व में ऐसा नहीं हुआ।

पश्चिम में धर्म को विज्ञान के अन्तर्गत माना, जबकि पूर्व में धर्म को विज्ञान से महत्वपूर्ण मान्ना।

(4) जीवन दृष्टिकोण - जीवन दृष्टिकोण के आधार पर पूर्व और पश्चिम में जो अन्तर है, वह इस प्रकार

(a) पश्चिम का दृष्टिकोण व्यावहारिक तथा सामयिक है, जबकि पूर्वी दृष्टिकोण सैद्धान्तिक परम्परा- प्रेमी।

(b) पश्चिम का दृष्टिकोण प्रगतिवादी (Progressive) है, जबकि पश्चिम का दृष्टिकोण भाग्यवादी (Fatalist) है।

(c) पूर्व का दृष्टिकोण इस लोक की उपेक्षा करके परलोक पर टिका है, जबकि पश्चिम के दृष्टिकोण में परलोक की उपेक्षा करके इस लोक को महत्व दिया गया है।

(d) पूर्व का दृष्टिकोण धर्म-प्रेरित है, जबकि पश्चिम दृष्टिकोण विज्ञानवादी है।

प्रमुख समाजशास्त्री मैक्सवेबर ने संसार के 6 प्रमुख धर्मों का अध्ययन सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में क्रिया था। वेबर ने अपने निष्कर्ष में कहा था कि भारत की अध्यात्मवादी संस्कृति यहाँ की आर्थिक प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। भले ही भारत में भौतिकता का विशाल भवन खड़ा न किया हो, भारत ने आध्यात्मिक क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की है। आज पश्चिम ने भौतिक सभ्यता का इतना विशाल भवन खड़ा किया है कि वह अपनी कमजोर नीवों (Foundations) को ही नहीं सम्हाल पा रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि पश्चिम के सामने अपनी अस्तित्व रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो गया है। प्रसिद्ध विचारक ओसवाल्ड स्पेंगर (Oswald Spengler) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पश्चिम का पतन' (Decline of the West) में लिखा है कि पश्चिमी भौतिक संस्कृति ने ऐसा भस्मासुर उत्पन्न किया है, जिससे उसके अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। पश्चिम ने भौतिकतावाद के जोश से पूर्व की आध्यात्मिकता को ही भुला दिया है। प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन् ने अपनी पुस्तक 'मानव की आत्मा' (Spirit of Man) में लिखा है कि-

"हम जिस दुनिया में निवास कर रहे हैं, वह स्वार्थ में डूबे हुए लोगों की दुनिया है। इस दुनिया में उद्योगवाद (Industrialism) तथा पूँजीवाद (Capitalism) से उत्पन्न एक भयंकर आर्थिक पद्धति राज्य कर रही है, जिसमें प्रौद्योगिकीय (Technological) सफलताओं और बाहरी जीतों का ही बोलबाला है, जिसमें शारीरिक सुविधाओं तथा पाशविक विलासिताओं की सामग्री की बाढ़ है, जहाँ सार्वजनिक जीवन में भी अनियंत्रित लिप्सा का अनन्त साम्राज्य है। यहाँ पाश्विकता और रक्तपात का सहारा लेकर तानाशाही फैल रही है, जहाँ नास्तिकता, धर्म की ओर आत्मा की उपेक्षा सबसे बड़ा आचार है। यहाँ जिन्दगी सरकस का ऐसा रूप ले रही है, जिसका न तो कोई ढांचा दिखाई पड़ता न कोई लय और न ही तान।'

कुछ भी हो पूर्व और पश्चिम में मौलिक अन्तर है और इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। मानवता की गरिमा को बनाए रखने के लिए जहाँ पश्चिम की आध्यात्मिकता से सीख लेनी होगी, वहीं दूसरी ओर पूर्व को भी पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति को

अस्पृश्यता के दायरे में नहीं सोचना है पूर्व और पश्चिम का सम्मिलन ही मानव की सबसे बड़ी सफलता है तथा यही मानव की उपलब्धि है।

8.7 जनजातियों की समस्याएँ (PROBLEMS OF TRIBES)

भारत में निवास करने वाली जनजातियाँ वनों, पहाड़ों, उच्च पठारी भागों, दलदलों एवं घने वनों में निवास करती हैं। यद्‌यपि अधिवास की परिभाषा के अन्तर्गत इनके निवास क्षेत्र को ग्रामीण अधिवास की संज्ञा दी जाती है, किन्तु एक आम भारतीय ग्राम की तुलना में जनजातियों की ग्राम सभ्यता बिल्कुल ही भिन्न पायी जाती है। इनके अधिवास का सच्चा सम्बोधन वनग्राम है। जहाँ सभ्य समाज के लिए उपलब्ध बुनियादी सुविधाओं का नितान्त अभाव होता है। एक भारतीय ग्राम की सामान्य स्थिति विपन्नता की है, वन ग्रामों की स्थिति इससे भी कहीं अधिक बदतर है।

सन् 1947 के पूर्व अंग्रेजी राज्य में वन संसाधनों के दोहन के साथ भोले-भाले आदिम जनों का भी शोषण होता रहा। विकास क्या होता है। विकास कैसे किया जाय एवं विकास की आवश्यकता क्या है? प्रायः ऐसे विचार तक इनके मन में नहीं पनपे। वन वस्तुओं के संचयन एवं मृगया उदर पोषण एवं आमोद-प्रमोद का प्रमुख लक्ष्य था। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह विचार किया गया कि देश में निवास करने वाले सभी वर्गों का यदि समुचित विकास न हो सकेगा तो राष्ट्र की विकास धारा आगे नहीं बढ़ सकेगी। अतः जनजातियों के विकास के प्रारूप तैयार कर कार्य योजना का क्रियान्वयन किया गया। विकास योजनाओं के द्‌वारा परिवर्तन तो हुआ किन्तु परिवर्तन के संक्रमण काल की समस्त समस्याओं जनजातियों को अपने आगोश में जकड़ लिया। वर्तमान जनजातीय अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि वनों के मध्य जीवन यापन करने वाले जनजातियों के स्वावलम्बन की प्रकृति समाप्त हो गई है। परस्पर प्रतिस्पर्धा बढ़ी है, ऊँच-नीच का भेदभाव भी बढ़ा है। समाज में बिखराव है, संस्कृति अपघटित हुयी है। भोले-भाले आदिवासियों में वह सरलता नहीं रही। महत्वाकांक्षा की ललक ने जनजातियों को विभिन्न समस्याओं की ओर ढकेल दिया है। समस्याओं के प्रमुख कारण निम्नानुसार हैं- 1.पर-संस्कृति प्रभाव

2. मानवीय सुविधाओं की सुलभता
3. नगरीकरण
4. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि
5. औद्योगीकरण
6. आधुनिक तकनीक का अधिकाधिक प्रयोग
7. आर्थिक प्रगति
8. अनियोजित विकास आदि।

उपरोक्त तत्वों ने जनजातियों के आवश्यकताओं में भारी वृद्धि की है। आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बेचैन जनजातीय समुदाय निरन्तर समस्याग्रस्त होता जा रहा है। वर्तमान में वनवासियों की मूलभूत प्रमुख समस्यायें निम्नानुसार हैं-

(1) संस्कृति संपर्क की समस्यायें

(2) भूमि अलगाव की समस्या

(3) कृषक शोषण की समस्या

(4) अशिक्षा एवं ऋणग्रस्तता की समस्या

(5) आर्थिक समस्यायें

(6) सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्यायें

7) मानवीय सुविधा सम्बन्धी समस्यायें

(8) राजनैतिक समस्यायें

9) पर्यावरणीय समस्यायें आदि।

समस्याओं के अध्ययन के लिये विभिन्न समितियों का गठन किया गया। मौन्टगू एवं चैम्सफोर्ड समिति ने अपनी रिपोर्ट में आदिवासियों के लिए आधुनिक राजनैतिक संस्थाओं की स्थापना को असंभव बताते हुए उनके निवास क्षेत्र को अधिसूचित क्षेत्र घोषित करने

की सिफारिश की। 1919 में इस प्रकार के क्षेत्रों की अधिसूचना जारी की गयी तथा 19 प्रदेशों को पिछड़े घोषित किये तथा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया।

(1) लक्षद्वीप चटगांव अंगुल

(2) दाजिर्लिंग लाहुल, गारोहिल्स, खासी, जयन्तिया, नागा, मिकिर, उत्तरी कछार, लुशाई सदिया, बालीपारा, लाखिमपुर।

(3) गंजाम एजेन्सी, विशाखापट्टनम, गोदावरी, छोटा नागपुर, संभलपुर, संथाल परगना।

उपरोक्त तीनों प्रकार के प्रदेशों में से प्रथम को प्रान्तीय विधान सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं प्राप्त था, जबकि द्वितीय क्रम के प्रदेशों के विधानसभाओं में नामजद प्रतिनिधियों की व्यवस्था थी। तीसरे क्रम के प्रदेशों की विधानसभाओं में जनजातियों के प्रतिनिधि चुनाव द्वारा तथा नामांकित किये जाने की व्यवस्था थी। उपर्युक्त व्यवस्था द्वारा जनजातियों के प्रतिनिधित्व एवं सहभागिता की व्यवस्था की गई थी किन्तु निर्णय का अन्तिम विकल्प गवर्नर जनरल पर निर्भर था।

उपर्युक्त प्रकार के प्रदेशों के श्रेणीकर तथा प्रतिनिधित्व से ऐसा आभास होता है कि ब्रिटिश सरकार जनजातियों की समस्याओं के निदान हेतु ठोस प्रयास किये थे। किन्तु वास्तविकता यह नहीं थी, बाह्य लोगों की दखलंदाजी रोक दी गई किन्तु इन बाह्य लोगों में भारत के ही निवासी हिन्दू, मुस्लिम एवं सिक्ख पर उक्त नियम लागू हुए ईसाइयों को आदिवासी संरक्षण के नाम पर खुलकर छूट तथा विशेष सरकारी सहायता प्रदान की गयी। ईसाई मिशनरीज द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में स्वास्थ्य शिक्षा, कृषि सुधार, महाजनों से रक्षा आदि पर उल्लेखनीय कार्य हुए किन्तु इसके साथ ईसाईकरण की नीति बलवती होती गयी फलतः आदिवासी अंचलों में अलगाव के स्वर मुखर होते गये। आदिवासियों ने समस्याओं की प्रकृति स्वतंत्रता के पूर्व एवं पश्चात काल में अलग-अलग रही, जिसे निम्नांकित दो कालों के परिप्रेक्ष्य में इन समस्याओं को देखना उचित होगा।

(A) स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजी काल- जनजातीय कबीलों एवं उनके सरदारों का अस्तित्व भारतीय राजनीति एवं शासन प्रबंध में कोई नई बात नहीं है। जब देश में राजतंत्र व्यवस्था थी, राजे एवं महाराजे जनजातीय क्षेत्रों में इन्हीं कबीलों के सरदार लोगों द्वारा

व्यवस्था का संचालन करते थे। जनजातियाँ अपने सामाजिक, आर्थिक कार्यों के लिए एक स्वतंत्र इकाई के परिवेश में कार्य करती थीं। 10वीं शदी के बाद जनजातियों का अस्तित्व शनैः- शनैः घटता गया। लोगों का सम्पर्क इनसे टूटता गया। अतः इनकी समस्यायें क्या हैं। क्या ये समस्यायें जनजातियों के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर रही हैं, इसकी जानकारी बाह्य लोगों को नहीं हो सकी। अंग्रेजीकाल में जनजातीय समस्या का प्रारंभ अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उस समय हुआ जब इनके महत्व का ज्ञान शासकों को हुआ। सन् 1772 में राजमहल जिले के पहाड़िया जनजाति के लोगों का हिन्दू जमीदारों के खिलाफ उठे विद्रोह 1831 में बिहार के सिंहभूमि जिले के ही जनजाति का हिन्दू राजा के विरुद्ध विद्रोह, 1835 का संथाल विद्रोह आदि ने तत्कालीन सरकार का ध्यान जनजातीय समस्याओं की ओर आकृष्ट किया। समस्याओं के सुधार के रूप में विद्रोही क्षेत्र के लोगों के लिए एक स्वायत्तशासी क्षेत्र के गठन की घोषणा की जिसका अधिकार केवल गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी था।

सन् 1861 में ब्रिटानी संसद ने भारतीय परिषद एक्ट पास कर आदिवासी क्षेत्रों के लिए बनाये गये नियमों और अधिनियमों को वैधानिकता प्रदान की। इस अधिनियम के द्वारा आदिवासियों को सुरक्षा प्रदान करना, बाहरी लोगों के शोषण से उनको बचाना तथा आर्थिक एवं सामाजिक संरक्षण प्रदान करना रहा। कुछ अंग्रेजी मानव शास्त्रियों ने इनके अलगाव का पक्ष (बेरियर एल्विन-1940) रखते हुए उनके सुरक्षित क्षेत्र की वकालत की किन्तु अन्य भारतीय मानवशास्त्रियों एवं विद्वानों का समर्थन नहीं मिल सका। बाद में एल्विन महोदय जैसी विचारधारा वाले विद्वानों ने अपने सोच में बदलाव लाकर जनजातियों को राष्ट्रीय धारा से जोड़ने की बात को स्वीकार किया।

(B) स्वतंत्र भारत में जनजातीय समस्यायें- स्वतंत्रता के पश्चात् जनजातियों के चहुमुखी विकास के लिए तथा राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए प्रान्त. में विभिन्न समितियों का गठन किया गया। केन्द्र सरकार द्वारा अलग से इस प्रकार की समितियों का गठन हुआ। इन समितियों से आदिवासियों की पहचान करते हुए इनकी समस्याओं को उजागर करने के निर्देश दिये गये। समितियों की रिपोर्ट के आधार पर संविधान में इनकी सुरक्षा, आर्थिक विकास तथा शोषण से बचाने के लिए संविधान में संशोधन करते हुए संरक्षण

(Reservation) प्रदान किया गया। जनजातियों की संस्कृति नष्ट न होने पाये इसके प्रयास सुनिश्चित किए गये। संविधान की धारा 23, 46, 330, 342 द्वारा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण एवं सुरक्षा पर बल दिया गया। आदिवासियों के विकास हेतु शिक्षा, कृषि, सिंचाई योजनायें, भूमि सुधार एवं संरक्षण तथा आवास व पुनर्वास, पशुधन विकास, संचार व्यवस्था, गृह निर्माण, स्वयंसेवी एजेंसी की सहायता, शासन एवं अनुसंधान जैसे क्षेत्रों के सकल क्रियान्वयन हेतु विकास खंड खोले गये। विकासखंडों की अवधारणा पर आधारित जनजातियों के विकास को उत्तरोत्तर गति मिलती गई।

संवैधानिक संरक्षण एवं शासकीय प्रयासों द्वारा आदिवासियों के आर्थिक, सामाजिक क्रियाकलापों को गतिशीलता प्रदान की। शिक्षा में विकास हुआ। शिक्षित वर्ग को आदिम समुदाय के अतिरिक्त अन्य समाज के व्यक्तियों एवं लोगों के सम्पर्क में आना पड़ा। विकास के इन तमाम उपादानों ने जनजातियों को एक संक्रमण की अवस्था में लाकर खड़ा कर दिया। जो आदिवासी भोले भाले थे, समूह में रहकर निष्ठा से एक दूसरे की मदद करते थे, वही आदिवासी लोग अब छल-कपट द्वारा अपने ही लोगों के शोषण में लिप्त होते दिखने लगे। पर संस्कृति प्रभाव के कारण इनकी सीमित आवश्यकताओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है। आदिवासियों के परम्परागत आर्थिक क्षेत्र घटे हैं। फलतः विभिन्न प्रकार की समस्यायें जन्म ली हैं।

जनजातियों में पूर्व में उल्लेखित विभिन्न समस्याओं में से यहाँ केवल तीन समस्याओं का अध्ययन किया गया है-

1.भूमि अलगाव की समस्या (Problem of Land Alienation)

2. कृषक शोषण की समस्या (Problem of Peasant Exploitation)

3. शिक्षा एवं ऋणग्रस्तता की समस्या (अशिक्षा एवं ऋणग्रस्तता की समस्या)

1. भूमि अलगाव की समस्या जनजातियों में भूमि अलगाव की समस्या को दो भागों में विभक्त कर अध्ययन किया जा सकता है-

(A) सुदूर बसे क्षेत्रों में निवास से उत्पन्न समस्यायें- वर्तमान समय में जनजातियों का संकेन्द्रण उन्हीं क्षेत्रों में पाया जाता है जो किन्हीं कारण से अपने दुरूहता के लिये जाने

जाते हैं, यही विशिष्टता जनजातियों को अपनी ओर आकृष्ट करती है। भारत वर्ष में निवास करने वाली जनजातियाँ वनों, पहाड़ों, गुफा, कन्दराओं, गिरि, खोह, उच्च भागों, दलदलों एवं घने वनों में निवास करती हैं। यद्यपि इनके निवास स्थलों को ग्रामीण अधिवास की संज्ञा दी जाती है किन्तु इनके अधिवासों को वन ग्राम या जनजातीय ग्राम कहना अधिक उचित होगा। वन ग्राम या जनजातीय ग्राम का सम्बोधन इसलिये भी उपयुक्त है क्योंकि इनके अधिवास आज भी तथाकथित सभ्य समाज से दूर एकांकी हैं, जहाँ आवश्यक बुनियादी सुविधाओं का नितान्त अभाव है। इन सुदूर बसे क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियाँ निम्नलिखित समस्याओं का दंश झेल रही हैं-

(i) संबंध-संबंधी समस्या

(ii) कृषि सम्बन्धी समस्या सिंचाई, उन्नत बीज, उर्वरक, उन्नत कृषि यंत्र आदि के उपयोग में कमी से कृषि पैदावार निरन्तर कम हो रही है।

(iii) सांस्कृतिक अलगाव की समस्या

(iv) प्राचीन ज्योतिष शास्त्र समस्याएँ

(v) गरीबी एवं कर्जग्रस्तता की समस्या

(vi) शिक्षा का प्रचार-प्रसार कम

(vii) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें

(viii) संचार एवं परिवहन संपर्क समस्याएँ

(ix) साझी समाज से अभिन्न संबंध समस्याएँ आदि ने जन्म लिया है।

(B) पैतृक भूमि से अलगाव से उत्पन्न समस्यायें- पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि जनजातियाँ अपना आवास उन क्षेत्रों में बनाती हैं जो दुरूहता के लिये प्रसिद्ध हैं। ऐसे क्षेत्र पर्वतीय पठारी या वन क्षेत्र होते हैं। इन क्षेत्रों में घुसपैठियों एवं शासकीय परियोजनाओं के विकास के कारण इनका आवास क्षेत्र संकुचित होता गया। जहाँ घुसपैठियों ने इन सीधे-साधे विश्वासी लोगों से छलाव कर उनकी भूमि को हथिया लिया है वहीं शासकीय योजनाओं के कारण इनकी भूमि को अधिग्रहीत कर लिया गया है। जो

जनजातीय क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। परिणामस्वरूप ये जनजातियाँ अपने मूल स्थानों से बेघर होकर अन्यत्र जाकर बस गई हैं। उस पर्यावरण में भी यह अपने आप को अनुकूलित नहीं कर पाई हैं। उपरोक्त कारणों से जनजातियों में आवास सम्बन्धी समस्या ने जन्म लिया है। यह समस्या तीन रूपों में देखने को मिल रही है-

(i) भूमि अधिग्रहण के कारण अधिवास की समस्या एवं समुचित मुआवजा की समस्या

(ii) परियोजना के विस्तार के कारण पुनर्वास सम्बन्धी समस्यायें।

(iii) पुनर्वास के कारण पर्यावरण समायोजन की समस्या।

(iv) पुनर्वास के कारण उत्पन्न आर्थिक समस्यायें।

(v) गरीबी एवं कर्जग्रस्तता की समस्या।

(2) कृषक शोषण की समस्या जनजातीय समाज आरंभ से शोषण का शिकार था इसके हमें कई उदाहरण मिलते हैं। जनजातीय समाज का मुख्य उद्यम कृषि कार्य आखेट तथा वनोपज का संग्रहण है। जनजातीय कृषकों के शोषण का प्रमुख कारण गरीबी एवं ऋणग्रस्तता है। एक अध्ययन द्वारा पाया गया है कि म.प्र. का जनजातीय समाज 80% से अधिक गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है, इसमें से बैगा, अगरिया, खैरवार, सौर, बियार आदि कृषक जनजातियों की स्थिति विशेष दयनीय है। गरीबी एवं ऋणग्रस्तता जनजातीय कृषकों की जटिल समस्या है। जनजातियों में गरीबी का मुख्य कारण निम्न कृषि आय, अनुर्वर भूमि, सिंचाई सुविधाओं की कमी, नवाचार का कम उपयोग, परम्परागत जीवन निर्वाह कृषि, रोजगार की अनिश्चितता, वनोपज संग्रह एवं खनिज उत्पादन में कानूनी अड़चनें, प्राथमिक उत्पादन साधनों से निम्न आय की प्राप्ति, आय से व्यय की अधिकता सामाजिक एवं धार्मिक समारोहों एवं संस्कारों में व्यय की अधिकता अचानक दैवी प्रकोप या अकाल का पड़ना, भयंकर बीमारी या कमाऊ सदस्य की अकाल मौत आदि के कारण जनजातीय कृषक शोषण की समस्या का शिकार है। उपरोक्त कारणों के साथ-साथ अशिक्षा, नशाखोरी एवं अज्ञानता भी जनजातीय कृषक के शोषण के प्रमुख कारण हैं। जनजातीय कृषकों के सांस्कृतिक समारोहों में मादक पदार्थों का सेवन एक अभिन्न अंग है। मादक पदार्थ एवं नशीली वस्तुओं का सेवन अधिकांश

जनजातीय कृषक करते हैं। इन मादक पदार्थों में महुए से बनी देशी मदिरा, बीड़ी, तम्बाकू की चौंगी बहुत लोकप्रिय है। आदिवासी कृषक अपने अतिथि का सत्कार भी महुए की शराब से ही करते हैं। जनजातीय कृषकों की उपर्युक्त कमजोरी का लाभ स्थानीय साहूकार, व्यापारी, जमींदार तथा बड़े कृषक लेते हैं। कई अध्ययनों द्वारा यह पाया गया है कि व्यापारी एवं साहूकार आदिवासी अंचलों में जाकर इनकी अज्ञानता का फायदा उठाकर इनका शोषण करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते हैं। पहले तो ये साहूकार एवं व्यापारी इन्हें थोडे-थोड़े कर्ज देकर मनमाना ब्याज वसूलते हैं जब इनके ऊपर ढेर सारा कर्ज चढ़ जाता है तो उनकी संपत्ति पशु, बैल, गाय, बकरी या भूमि को उसके एवज में ले लेते हैं परिणामस्वरूप आदिवासी कृषक अपने जीविकोपार्जन का आधार खो देता है। गरीबी व विपन्नता का मारा आदिवासी कृषक और कर्ज न चुका पाने की स्थिात में स्वयं, बच्चे एवं बीबी को भी गिरवी रख देता है। गिरवी के बाद आदिवासी कृषक की दशा और दयनीय हो जाती है क्योंकि उसे साहूकार या जमींदार के यहाँ बेगार मे काम करना पड़ता है और यदि मजदूरी मिलती भी है तो वह काफी कम होती है। जिन कृषकों के पास थोड़ी बहुत जमीन है भी उसके उपज को प्राप्त होने के बाद उसका एक बड़ा हिस्सा सूद के रूप में साहूकार या जमींदार के घर में चला जाता है।

गरीब आदिवासी कृषकों का शोषण अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण भी बहुत अधिक हुआ है। जिस भूमि पर उसके दादा-परदादा खेती करते आये हैं वह भूमि भी उससे हड़प ली जाती है। कारण यह कि उस भूमि पर कागजी रूप में उसे स्वामित्व प्राप्त नहीं होता या तो पटवारी, रेवेन्यू अधिकारी एवं साहूकार तथा जमीदारों ने मिली भगत से उसे उसकी पैतृक भूमि से बेदखल कर दिया जाता है। इस प्रकार आदिवासी कृषक का शोषण न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक एवं राजनैतिक शोषण भी किया जाता है।

3. अशिक्षा एवं ऋणग्रस्तता- पूर्व अध्ययन में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि जनजातियों में अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण ऋणग्रस्तता, आर्थिक विपन्नता, स्वास्थ्य स्तर में गिरावट आदि की समस्याओं ने जन्म लिया है। शिक्षा किसी भी सभ्य समाज की प्रथम आवश्यकता है। शिक्षा समाज के विकास का प्रथम सोपान होता है। इसके द्वारा विभिन्न

प्रकार के सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक क्रियाकलापों की समस्याओं का समाधान होता है। हमारे देश में निवास करने वाले आदिम जन शिक्षा की दृष्टि से काफी पिछड़े हैं। वास्तव में पिछड़ेपन का वास्तविक कारण अशिक्षा का बोलबाला ही है। हमारे देश में जनजातीय शिक्षा का प्रतिशत औसत साक्षरता की दर से काफी कम है। महिला साक्षरता की स्थिति आदिवासी समाज में और भी दयनीय है। राज्य, व केन्द्र सरकार द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में साक्षरता के विस्तार हेतु कई सकारात्मक कदम उठाये हैं जिससे साक्षरता में थोड़ी वृद्धि दर्ज की गई किन्तु शिक्षित एवं अशिक्षित आदिवासी वर्ग के बीच एक बड़ी खाई दिखाई देने लगी है। शिक्षित वर्ग अशिक्षित आदिवासी भाइयों के बीच बैठने में संकोच करने लगा है। इस तरह समाज में ही वर्ग अन्तराल की समस्या दिखाई देने लगी है जिसके कई दुष्परिणाम दिखाई देने लगे हैं।

स्व -प्रगति परिक्षण

1. औपनिवेशिक शासन के दौरान जनजातीय समाज पर सबसे बड़ा प्रभाव क्या पड़ा?

2. जनजातीय विद्रोहों में प्रमुख विद्रोह कौन-से थे?

3. औपनिवेशिक शासन के कारण जनजातीय समाज में कौन-सी समस्याएं उभरीं?

8.8 सार संक्षेप

औपनिवेशिक शासन ने भारतीय जनजाति समाज को गहराई से प्रभावित किया। ब्रिटिश नीतियों के कारण जंगलों पर उनका पारंपरिक अधिकार खत्म हो गया, जिससे उनकी आजीविका छिन गई। स्थायी बंदोबस्त और जंगलों के वाणिज्यिक उपयोग ने उन्हें विस्थापित किया, जबकि वन अधिनियमों ने उनके पारंपरिक शिकार और कृषि के अधिकारों को सीमित किया। शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक विकास से वंचित रहने के कारण उनका सामाजिक पिछड़ापन बढ़ा। परिणामस्वरूप, जनजातीय क्षेत्रों में गरीबी, शोषण और पहचान संकट जैसी समस्याएं उभरकर सामने आईं। औपनिवेशिक शासन ने जनजातीय समाज की संस्कृति और परंपराओं को कमजोर कर दिया, जिससे उनमें असंतोष और विद्रोह की भावना पनपी, जैसे संथाल और भील विद्रोह।

8.9 मुख्य शब्द

1. **औपनिवेशिक शासन:** वह शासन व्यवस्था जो किसी देश पर दूसरे देश द्वारा थोप दी जाती है, जैसे भारत पर ब्रिटिश शासन।

2. **पारंपरिक अधिकार:** किसी समुदाय द्वारा लंबे समय से चली आ रही प्रथाओं के आधार पर प्राप्त अधिकार।

3. **विस्थापन:** किसी व्यक्ति या समुदाय को उसकी जमीन या स्थान से हटाना।

4. **सामाजिक पिछड़ापन:** आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक विकास में अन्य समुदायों की तुलना में पीछे रह जाना।

8.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.जंगलों पर उनके पारंपरिक अधिकार खत्म हो गए।

2.संथाल विद्रोह और भील विद्रोह।

3.विस्थापन, शोषण, गरीबी, और सामाजिक पिछड़ापन।s

8.11 सन्दर्भ सूची

- Guha, R. (1983). Elementary Aspects of Peasant Insurgency in Colonial India. Oxford University Press.
- Singh, K. S. (1995). The Scheduled Tribes. Oxford University Press.
- Sharma, B. D. (1978). Tribal Development: The Concept and the Frame. Vikas Publishing House.

8.12 अभ्यास प्रश्न

1. औपनिवेशिक शासन का भारतीय समाज पर प्रभावों को लिखिए।

Write impact of colonial administration on Indian Society.

2. इस्लाम का भारतीय समाज पर प्रभाव लिखिए।

Write the impact of Islam on Indian society.

3. पश्चिमीकरण की अवधारणा को समझाइए।

Explain the concept of westernisation.

4.भारतीय समाज पर पश्चिम के प्रभावों को लिखिए।

Write about western impact on Indian society.

(b) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions) by

1. जनजातीय समस्याओं पर एक निबन्ध लिखिए। Write an essay on Tribal Problems.

2. जनजातीय समस्या की अवधारणा को समझाइए। इसके प्रमुख कारण क्या हैं। Explain the concept of Tribal Problems. Write its causes.

3. प्रमुख जनजातीय समस्याएँ क्या हैं? समझाइए। What are main tribal problems. Explain.

4. जनजातीय समस्याओं के समाधान के लिए सुझावों को लिखिए। Write suggestions to solve tribal problems.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें

(i) भूमि अलगाव

भूमि हस्तांतरण

(ii) कृषक शोषण Peasant Exploitation

(iii) अशिक्षा और ऋणग्रस्तता DYS Iiliteracy and Exploitation.

इकाई - 9

जनजातीय क्रांति- अर्थ, विशेषताएँ, कारण एवं परिणाम

TRIBAL REVOLUTION- MEANING, CHARACTERISTICS, CAUSES AND RESULT

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 जनजाति आंदोलन- अर्थ

9.4 भारत में जनजातीय आन्दोलन

9.5 जनजाति आंदोलन - कारण एवं परिणाम

9.6 आजादी के बाद का परिदृश्य - राजनीतिक, सामाजिक एवं विकास

9.7 सार संक्षेप

9.8 मुख्य शब्द

9.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.10 सन्दर्भ सूची

9.11 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

जनजातियाँ भारतीय समाज और संस्कृति की मेरूदण्ड हैं, जो आदिकाल से इस धरोहर को सजोये हुए हैं। उनका जीवन अत्यन्त निर्मल तथा जीवन के तरीके अत्यन्त सरल और पारदर्शी रहे हैं। वे अपने में ही सन्तुष्ट रहने के आदी हैं तथा आधुनिक तड़क भड़क से हमेशा दूर रहते हैं। उनका जीवन अत्यंत शान्त और शालीन है। वे न हस्तक्षेप

करते हैं और न ही किसी अन्य का हस्तक्षेप बर्दाश्त करते हैं। ऐसी स्थिति में आन्दोलन कर जीवन में हलचल पैदा करने के वे आदी नहीं हैं। फिर भी सामाजिक परिवर्तन के कारण या अन्य किन्हीं कारणों से जब वे यह महसूस करते हैं कि उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय हो रहा है, तो वे आन्दोलन की राह को अपनाते हैं। इस प्रकार भारत में आजादी से पहले और आजादी के बाद जनजातियों द्वारा अनेक आन्दोलन किए गए हैं।

भारत जैसे विशाल देश में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। इन जनजातियों में अनेक सांस्कृतिक और पृथकता के कारण भी इन जनजातियों में अनेक भिन्नताएँ हैं। भारतीय सभ्यता के इतिहास में इन जनजातियों का विशिष्ट स्थान रहा है और है। इन जनजातियों ने अनेक अवसरों पर राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर सामाजिक और राजनैतिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत में विदेशियों के आक्रमण और विदेशी शासन के कारण इन जनजातियों का बाह्य जीवन और समाज से सम्पर्क हुआ। इस सम्पर्क के कारण इनके जीवन के तरीकों में अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के कारण ही जनजातीय समाज में अनेक आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों का विद्वानों द्वारा विधिवत आंकलन नहीं किया जा सका। इसके अनेक कारण थे-

आन्दोलन से सम्बन्धित स्रोतों का अभाव,

विद्वानों में ऐतिहासिक अध्ययनों की रुचि का अभाव,

विद्वानों द्वारा अपने को राजनैतिक, विवाद, सरकारी नीति से अलग रखने की प्रवृत्ति आदि।

फिर भी अनेक विद्वानों ने जनजातीय आन्दोलनों को समझने और उसे विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इन विद्वानों में फ्यूच, विद्यार्थी, घुरिए, सच्चिदानन्द, देसाई, रेड्डी, मानकेकर, मुखर्जी, चौहान आदि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन विद्वानों ने जनजातियों के राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक आन्दोलनों का अध्ययन किया है। इन आन्दोलनों को क्षेत्रीय, जनजातीय और उद्देश्यों के आधार पर विभाजित किया जा सकता है।

9.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- जनजाति आंदोलनों के इतिहास, प्रकृति, और विकास को समझाना।
- जनजातीय समाज के आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक मुद्दों का विश्लेषण करना।
- जनजातीय आंदोलनों के कारणों और उनके परिणामों पर विचार करना।
- स्वतंत्रता से पहले और बाद में जनजातीय संघर्षों में आए परिवर्तनों को स्पष्ट करना।
- छात्रों को जनजातीय समाज के अधिकारों और समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाना।
- भारतीय संविधान और सरकारी नीतियों में जनजातियों के लिए किए गए प्रावधानों की जानकारी देना।
- जनजातीय आंदोलनों के सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक प्रभावों का आकलन करना।
- छात्रों को जनजातीय संस्कृति, परंपराओं, और उनके संरक्षण के महत्व को समझने के लिए प्रेरित करना।

9.3 जनजातीय आन्दोलन - अर्थ (Tribal Movement - Meaning)

जनजातीय आन्दोलन, जनजाति और आन्दोलन दो शब्दों से मिलकर बना है। आन्दोलन एक ऐसी सुव्यवस्थित क्रिया है, जिसका उद्देश्य वर्तमान व्यवस्था को प्रभावित करना है। प्रत्येक समाज में चाहे वह आधुनिक हो या आदिम, समस्याओं का समावेश हो ही जाता है। जब इन समस्याओं का समाधान विधि सम्मत तरीके से नहीं हो पाता है तो व्यवस्था के प्रति जनता में आक्रोश होता है और यही आक्रोश आन्दोलन को जन्म देता है। आन्दोलन एक सामाजिक प्रयास है, जिसका उद्देश्य व्यवस्था में परिवर्तन लाना है। प्रत्येक आन्दोलन के लिए कुछ कारण जिम्मेदार होते हैं, जिसके कारण समाज संगठित

होता है। संगठित समाज द्वारा व्यवस्थित तरीके से निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यवस्था के विरुद्ध किए जाने वाले क्रियात्मक प्रयासों को सामाजिक आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। प्रो. राव ने सामाजिक आन्दोलनों को निम्न पाँच भागों में विभाजित किया है-

(a)अभियानवादी

(c) धार्मिक आख्यान

(b) पिछड़े वर्गों का आन्दोलन

(d) महिला आन्दोलन, और

(e) जनजातीय आन्दोलन

इस प्रकार स्पष्ट है कि जनजातीय समाज द्वारा किए जाने वाला आन्दोलन ही जनजातीय आन्दोलन है। हार्टन और हंट ने लिखा है कि "आन्दोलन समाज अथवा उसके सदस्यों में परिवर्तन लाने अथवा उसका विरोध करने का सामूहिक प्रयास है।" इसी प्रकार के विचार हर्बर्ट ब्लूमर ने भी व्यक्त किए हैं। ब्लूमर के अनुसार "जीवन की एक नवीन व्यवस्था को स्थापित करने के उद्देश्य से किए गए सामूहिक प्रयास ही सामाजिक आन्दोलन हैं।"

हैबरले ने जनजातीय आन्दोलन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक विशेष प्रकार का संगठित क्रियात्मक समूह, जो दीर्घकालीन होता है तथा जो जनता, भीड़ अथवा उत्तेजित भीड़ से अधिक संगठित होता है तथापि राजनैतिक समाजों के समान आयोजित नहीं होता, जनजातीय आन्दोलन कहलाता है।"

थियोडोरसन ने लिखा है कि "आन्दोलन सामूहिक व्यवहार का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है, जिसमें परिवर्तन लाने अथवा इसका विरोध करने में सहयोग देने के लिए लोगों को बहुत बड़ी संख्या में संगठित अथवा जागरूक किया जाता है।"

इन परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि- "अपने पर्यावरण, संस्कृति एवं आर्थिक व्यवस्था से उपजी समस्यात्मक स्थितियों से उबरने के लिए जनजातीय समाजों द्वारा जो आन्दोलन किए जाते हैं, उन्हें जनजातीय आन्दोलन कहते हैं।"

जनजातीय आन्दोलन - विशेषताएँ (Tribal Movement - Characteristics)

आन्दोलन चाहे सामाजिक हों, किसानों से सम्बन्धित हों, छात्रों से सम्बन्धित हों, महिलाओं से सम्बन्धित हों या जनजातियों से। इन सब की प्रकृति और विशेषताएँ मोटे तौर पर एक सी होती हैं। इस सम्बन्ध में आन्दोलन से सम्बन्धित निम्न तत्वों की ओर ध्यान देना आवश्यक है-

(a) आन्दोलन का संरचनात्मक पहलू (Structural aspect of Movement), और

(b) आन्दोलन का कार्यात्मक पहलू (Functional aspect of Movement)।

जहाँ तक किसी भी आन्दोलन की संरचना का सम्बन्ध है, इसका तात्पर्य आन्दोलन की विषय-वस्तु से है। हर आन्दोलन की विषय-वस्तु अलग-अलग होती है। किसी आन्दोलन की विषय-वस्तु किसी जाति को अनुसूचित जनजाति में सम्मिलित करने का हो सकता है तो किसी आन्दोलन का उद्देश्य पिछड़ों को आरक्षण का लाभ दिलाना हो सकता है। आन्दोलन का दूसरा पहलू कार्यात्मक है। आन्दोलन को किस प्रकार संचालित करना है। आन्दोलन के संचालन में न्यूनतम भिन्नताओं के साथ एक ही प्रक्रिया को अपनाया जाता है। इसमें जो थोड़ा बहुत अन्तर आता है, वह आन्दोलन की विषय-वस्तु पर आधारित होता है। इस दृष्टि से प्रायः सभी आन्दोलनों की विशेषताएँ एक जैसी होती हैं। जनजातीय आन्दोलन की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. आन्दोलन का एक प्रकार (A Type of Movement) - आन्दोलन अनेक प्रकार के होते हैं- कृषक आन्दोलन, छात्र आन्दोलन, महिला आन्दोलन, कर्मचारी आन्दोलन आदि। जनजातीय आन्दोलन में सामाजिक आन्दोलन का एक प्रकार है। समाज में अनेक प्रकार के आन्दोलन होते हैं। इन आन्दोलन में जब जनजातियों द्वारा आन्दोलन किया जाता है, तो इसे जनजातीय आन्दोलन कहा जाता है।

2. एक निश्चित संगठन (A definite organization) - प्रत्येक आन्दोलन का एक निश्चित संगठन होता है। जनजातीय आन्दोलनों का भी एक निश्चित संगठन होता है। इस निश्चित संगठन में आन्दोलन को संचालित करने वाले व्यक्तियों का एक संगठन होता है, जो आन्दोलन को दिशा प्रदान करते हैं।

3. एक निश्चित यांत्रिकी (A definite mechanism)- प्रत्येक आन्दोलन को किस प्रकार से संचालित किया जाये, इसकी एक यांत्रिकी होती है। यांत्रिकी का तात्पर्य है- आन्दोलन की क्रियात्मक व्यवस्था। इस क्रियात्मक व्यवस्था के द्वारा आन्दोलन को सम्पादन किया जाता है। इस व्यवस्था के कारण इस आन्दोलन से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को अपनी क्रिषाओं की जानकारी होती है और सभी सदस्य इन क्रियाओं के आधार पर आन्दोलन को दिशा प्रदान करते हैं। जनजातीब आन्दोलनों की भी एक क्रियात्मक संरचना होती है।

4. सामाजिक परिवर्तन (Social Change) - कोई भी आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन की भावना से प्रेरित है। जनजातीय आन्दोलन भी समाज को परिवर्तित करने की भावना से किया जाता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित किया जाता है तथा नई सामाजिक व्यवस्था के लिए आधार प्रस्तुत किया जाता है।

5. सामुदायिक भावना (Community Sentiment) - जनजातीय आन्दोलनों में सामुदायिक भावना भी पाई जाती है। इस सामुदायिक भावना के कारण सदस्य 'हम की भावना' (We feeling) का अनुभव करते हैं। हम की भावना के कारण वे आन्दोलन में प्राणपण से एक रहते हैं तथा ऐसा व्यवहार और आचरण करते हैं, जिससे सदस्य एक प्रकार की विचारधारा को महत्व देते हैं।

6. मूल्य व्यवस्था (Value System)- जनजातीय आन्दोलन का एक मूल्य होता है, जिसे उद्देश्य कहा जाता है। उद्देश्य वह भावना है, जिसकी पूर्ति के लिए आन्दोलन किया जाता है और इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सदस्य संगठित रहते हैं। इस उद्देश्य के कारण भी जनजातियों में संगठन बना रहता है और यही संगठन सफलता का आधार है।

7. नेतृत्व की भूमिका (Role of Leadership) - कोई भी आन्दोलन नेतृत्व के अभाव में सफल नहीं हो सकता है। नेतृत्व वह आधार है, जो आन्दोलन को सफलता की ओर ले जाता है। नेतृत्व के अभाव में आन्दोलन को दिशा भी नहीं मिलती है। इस प्रकार जनजातियों के आन्दोलन का एक नेता भी होता है।

8. श्रम विभाजन (Division of Labour) - अन्य आन्दोलनों की तरह जनजातीय आन्दोलन में भी श्रम विभाजन पाया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि आन्दोलन के अनेक चरण तथा कार्यस्थितियाँ होती हैं। अनेक चरणों के कार्यों को कोई एक व्यक्ति सम्पादित नहीं कर सकता है। इन कार्यों के सम्पादन के लिए अनेक व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता होती है। इन अनेक व्यक्तियों के कार्यों का विभाजन कर दिया जाये तो आन्दोलन को संचालित करने में सुविधा होगी। यही कारण है कि आन्दोलनों में श्रम विभाजन पाया जाता है।

9. सामाजिक नियम (Social Rules)- जनजातियों के मध्य जो भी आन्दोलन हुए हैं, वे सामाजिक नियमों पर आधारित रहे हैं। ये सामाजिक नियम चाहे लिखित हो या अलिखित। नियमों के कारण आन्दोलन को संचालित करने में सुविधा रहती है। अनेक प्रथाएँ और परम्पराएँ (Custom and Traditions) होती हैं, जो नियमों का कार्य करती हैं और इनका पालन किया जाता है।

10. अन्य विशेषताएँ (Other characteristics)- जनजातीय आन्दोलन की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, इनके अतिरिक्त कुछ और विशेषताएँ हैं, जो इस प्रकार है-

(a) एक निश्चित वैचारिकी,

(b) उद्देश्यों की स्पष्टता,

(c) सामूहिकता की भावना,

(d) विकासवादी दृष्टिकोण।

9.4 भारत में जनजातीय आन्दोलन(Tribal Movement in India)

भारत में जनजातीय आन्दोलन का लम्बा इतिहास रहा है। आजादी के पूर्व से प्रारम्भ होकर जनजातीय आन्दोलन आजादी के बाद भी निरन्तर गतिशील रहा है। सुविधा की दृष्टि से भारत में जनजातीय आन्दोलन को निम्न दो शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जनजातीय आन्दोलन, और

(b) स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के जनजातीय आन्दोलन।

इन दोनों शीर्षकों के अन्तर्गत जनजातीय आन्दोलनों के संक्षिप्त विवरण को नीचे दिया जा रहा है-

(1) स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जनजातीय आन्दोलन

जनजातियों ने अपनी विशिष्ट संस्कृति, सांस्कृतिक सम्पदा, नैतिक प्रतिमान, धार्मिक मान्यताएँ, सम्पदा तथा निर्धारित भौगोलिक क्षेत्रों के अतिक्रमण के विरुद्ध समय-समय पर आवाज उठाई। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जनजातियों द्वारा जो विभिन्न आन्दोलन चलाये गये उनकी विवेचना संक्षेप में इस प्रकार है

(i) खानदेश आन्दोलन (1817-1846)- भारतीय जनजातीय आन्दोलन की पहली कड़ी में 1817 में हुआ खानदेश आन्दोलन प्रमुख है। यह आन्दोलन भीलों द्वारा चलाया गया था। यह आन्दोलन राजपूतों की साम्राज्यवादी नीतियों के खिलाफ भीलों द्वारा उस समय प्रारम्भ किया गया था जब राजपूतों ने भीलों की सांस्कृतिक विरासत पर भी प्रहार करने का प्रयास किया था। आन्दोलन के प्रारम्भिक चरण में तो भील पहाड़ी तथा जंगली प्रदेशों की तरफ बढ़ गये किन्तु शीघ्र ही उन्हें यह अहसास हुआ कि इस प्रकार का पलायन उनके अस्तित्व को समाप्त कर देगा। अतः वे आक्रमण पर उतर आये। अरावली पर्वत पर दोनों के बीच संघर्ष हुआ। जब भील, राजपूतों पर हावी होने लगे तो अंग्रेजों ने राजपूतों का साथ दिया, जिसके कारण कालान्तर में यह संषर्ष 'अंग्रेज बनाम भील' बन गया। परिणामस्वरूप इस संघर्ष को लोगों ने भीलों तथा राजपूतों का संघर्ष न कहकर भीलों तथा अंग्रेजों का संघर्ष कहा और स्थानीय लोगों ने इसे खानदेश आन्दोलन का नाम दिया। यह आन्दोलन लगभग 30 वर्षों तक चला और इसकी सीमाएँ धीरे-धीरे अरावली पर्वत की श्रेणियों को पार करती हुईं सतारा तथा मालवा तक पहुँच गयीं। सन् 1846 में अंग्रेजों ने इस आन्दोलन का बुरी तरह से दमन कर दिया।

(ii) बिरसा मुण्डा आन्दोलन (1890-1907) - सन् 1890 ई. को भारत राजनीतिक स्तर पर अंग्रेजों से, आर्थिक स्तर पर पूँजीपतियों तथा महाजनों से एवं सामाजिक स्तर पर

रूढ़िवादियों एवं पुरातन-पंथियों से घिरा हुआ था, वहीं वन्यजातीय जीवन प्रत्येक स्तर पर जीविकोपार्जन एवं अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में बिरसा मुण्डा आन्दोलन का सूत्रपात एक आदिवासी क्रान्तिकारी बिरसा के 'अंबुआ राज एते जना, महारानी टुंडूजना' के उद्घोष से प्रारम्भ हुआ। 23 अगस्त, सन् 1895 की एक असाधारण घटना ने इस आन्दोलन में आग में घी का काम किया। मालगुजारी वसूल करने आए सिपाहियों ने जब मुंडाओं के घर में प्रवेश करके गहने-बर्तन छीने तो महिलाओं ने विरोध किया। पुलिस के एक हेडकांस्टेबल ने जब एक महिला के साथ जबरदस्ती करने की कोशिश की तो बिरसा ने कुल्हाड़ी से उसकी हत्या कर दी। 6 अगस्त से उनकी गिरफ्तारी के बाद मुण्डाओं में बिरसा के प्रति श्रद्धा और अंग्रेजों के प्रति घृणा बढ़ती चली गयी। राँची में 2 वर्ष की सजा काटने के पश्चात् उसने बिरसा सेवा दल का गठन किया और 8 अगस्त, 1893 को चार-पाँच हजार आदिवासियों ने छोटा नागपुर में अंग्रेज सरकार के खिलाफ सामूहिक बगावत का नारा बुलन्द किया। अगस्त 1897 को खूँटी क्षेत्र में दोनों के बीच संघर्ष हुआ जिसमें एक थाने के लगभग दो सौ सिपाही मारे गये। आदिवासियों ने जंगलों में शरण ली और 'जंगलराज' की उद्घोषणा की। धीरे-धीरे यह आन्दोलन नन्दगाँव, तोरपा और मुरटू से बढ़ता हुआ जशपुर तथा रामपुर तक भी पहुँच गया। 24 दिसम्बर, 1899 को बिरसा के नेतृत्व में राँची पर धावा बोला गया। अनेक थाने नष्ट कर दिये गये। 12 कांस्टेबल तथा एक अंग्रेज अफसर मारा गया। अंग्रेज सरकार ने मुण्डाओं को सबक सिखाने के लिए डोमबरी में सामूहिक हत्याओं तथा बलात्कारों का सिलसिला शुरू किया। अनेक औरतें, बूढ़े एवं बच्चे मारे गये। सन् 1899 में ही बिरसा मुण्डा का अनन्य सहयोगी गया मुण्डा अंग्रेजों का शिकार हुआ। फरवरी, 1900 को बिरसा की गिरफ्तारी के साथ यह आन्दोलन समाप्त हो गया। 9 जून, 1900 को हजारीबाग की जेल में बिरसा की मृत्यु हो गई। इस प्रकार एक चमत्कारिक व्यक्ति ने अपने दम पर एक सशक्त आन्दोलन खड़ा किया। बिरसा सेवा दल के नरसिंह मुण्डा ने बिरसा के नाम पर इस आन्दोलन को आगे बढ़ाना चाहा किन्तु 1907 में वह भी मारा गया।

(iii) ताना भगत आन्दोलन (1913-1925) - धार्मिक आन्दोलन की कड़ी में सामाजिक जीवन के सुधारों को अपना मूल लक्ष्य मानने वाले आन्दोलन में ताना भगत आन्दोलन सबसे पहला आन्दोलन था। इस आन्दोलन का प्रवर्तक ओराँव जनजाति का जात्रा नामक एक वनवासी था। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत शोषण का साम्राज्य था अतः जनजातीय समाज जहाँ एक ओर गोरी सरकार के अत्याचारों से आक्रांत था वहीं दूसरी ओर महाजनों तथा देनदारों की लूट-खसोट नीति तथा अपने ही समाज में व्याप्त माँस-मदिरा के सेवन एवं जादू- टोने-टोटके के अन्धविश्वासों में उनका सामाजिक सांस्कृतिक जीवन पतनं की ओर अग्रसर हो रहा था।

इस स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से अनेक प्रयास किये गये, किन्तु कोई सकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं हो सका। सन् 1913 में जात्रा ने अपने समाज को सुधारने का बीड़ा उठाया। उसने सर्वप्रथम अपने जनजातीय बन्धुओं को यह समझाने का प्रयास किया कि विरोधी शक्तियों का सामना करने के लिए आत्मशक्ति पैदा करनी पड़ती है। उसने अपने साथियों को चार प्रमुख उपदेश दिये-

(a) जादू-टोने पर विश्वास न करना,

(b) शरीर तथा मन को स्वच्छ रखना,

(c) माँस-मदिरा का सेवन नहीं करना, और (d) एक ईश्वर पर विश्वास करना।

• उपर्युक्त उपदेशों की राह पर चलकर ताना भगत के आन्दोलन में हजारों ओराँवों ने भाग लिया। आगे चलकर महात्मा गाँधी के प्रभाव में आकर इस आन्दोलन ने स्वतंत्रता संग्राम में भी अपना-अपना सहयोग देने के लिए खादी वस्त्रों को अपनाया तथा स्थानीय भूपतियों से अपनी माँगों की लड़ाई से 'असहयोग' की नीति अपनाई।

(iv) भील भगत आन्दोलन (1903-1920) - ओराँवों का भगत आन्दोलन जहाँ सांस्कृतिक सुधारों से प्रेरित था वहीं भीलों का भगत आन्दोलन हिन्दू धर्म के प्रभावों से प्रेरित हुआ था। इस आन्दोलन को राजस्थान के भीलों ने चलाया था। इस आन्दोलन के अन्तर्गत यह मान्यता प्रस्तुत की गयी थी कि सामाजिक-आर्थिक जीवन की समस्याओं का प्रमुख कारण मौजूदा जीवन पद्धति थी। अतः हिन्दुओं की धार्मिक संरचना को अधिक सुखी

मानते हुए यह मान लिया गया कि बेहतर जीवन की प्राप्ति के लिए हिन्दुओं की भाँति जीवनयापन करना होगा। इस क्रम में आन्दोलन के दो पहलू हो गये। एक पक्ष ने पुरातन मान्यताओं के साथ-साथ नवीन हिन्दू मान्यताओं को भी स्वीकार करने पर बल दिया। दूसरे पक्ष में इस बात पर बल दिया कि पुरानी मान्यताओं में जो कुछ भी हानिकारक है उसे पूर्ण रूप से त्यागकर नवीन जीवन पद्धतियों को अपनाना चाहिये। द्वितीय पक्ष के लोगों का यह धार्मिक आन्दोलन अधिक मुखर हुआ क्योंकि उन्होंने अधिक प्रखर रूप से रूढ़िवादी मान्यताओं पर चोट पहुँचाई। धीरे-धीरे राजस्थान के भीलों का पारस्परिक आदिवासी जीवन लगभग हिन्दू जीवन का पर्याय बन गया और एक समय ऐसा भी आया कि भीलों ने कर्म, पुनर्जन्म, ईश्वर की धारणा, शाकाहारी भोजन, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि पर विश्वास करना प्रारंभ कर दिया। 1910 में यह आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था।

(v) संथाल आन्दोलन (1855-1858)- संथाल भारत की एक ऐसी वन्य जाति है जिसका प्रसार अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में है। आसाम, मेघालय, उड़ीसा, नेपाल तथा बंगलादेश के अतिरिक्त इनका बहुल समाज बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में पाया जाता है। संथाल आन्दोलन के प्रमुख कारण निम्न थे-

(1) महाजनों द्वारा संथाल को छल-कपट द्वारा चंगुल में फँसाने की नीति,

(2) कर्जे के लगातार बढ़ने के कारण बन्धुआ मजदूरी में वृद्धि,

(3) गोरी सरकार की पुलिस द्वारा महाजनी अत्याचारों में सहयोग प्रदान करना,

(4) कोर्ट-कचहरी के माध्यम से समस्याओं के समाधान में संथालों की निरीह असमर्थता।

जोसेफ मोइसी ने अपने लेख 'सोशल मूवमेंट्स अमंग दि संथाल्स' में लिखा है कि "संथालों को जब दामिन-इ-कोह में बसने का लालच दिया गया, तो वे इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि जब तक वे इस पहाड़ी पर कब्जा कर पायेंगे तब तक सवर्ण समाज में जमींदारों तथा भूपतियों की घुसपैठ उस क्षेत्र में हो जायेगी। संथाल के सीधे तथा सरल व्यवहार का लाभ उठाकर जमींदारों एवं महाजनों ने उन्हें पूरी तरह से अपनी जमीन से बेदखल कर दिया।" जब संथालों को न्याय मिलना सम्भव नहीं हुआ तो मोरगो-राजाह

नामक संथालों के सरदार ने पृथक् संथाल राज्य काम करने की योजना बनाई। सिद्धू तथा कान्हू नामक दो नवयुवकों ने घोषणा की कि संथालों के कुल देवता 'सूबा ठाकुर' ने उन्हें अलौकिक आदेश दिया है कि वे क्षेत्रीय राज्य अवस्था को हटाकर संथालों का राज्य कायम करें। इस घोषणा के पश्चात् आदिवासियों के आक्रोश को एक धार्मिक आयाम मिल गया। अतः आन्दोलन ने गति पकड़ ली।

30 मार्च, 1855 को अपनी माँगों के समर्थन में लगभग 35 हजार संथालों ने धनुष-बाण लेकर कलकत्ता की ओर कूच कर दिया। इस विशाल समूह को रोकने के लिए पुलिस आगे आई तो आन्दोलनकारी भड़क उठे और उन्होंने एक पुलिस प्लाटून के 9 जवान तथा एक अधिकारी की हत्या कर दी। आन्दोलन को कुचलने के लिए गोरी सरकार ने दमनचक्र चलाया। अनेक आन्दोलनकारियों को पुलिस ने मौत के घाट उतार दिया। बहुत से आन्दोलनकारी गिरफ्तार कर लिए गये। आन्दोलनकारियों ने गिरफ्तारी से बचने के लिए लुक छिपकर वार करने आरंभ कर दिये। आदिवासियों का यह आन्दोलन लगभग दो वर्षों तक चला। इस दौरान जान-माल की अनन्य हानि हुई। प्रमुख नेताओं को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया तथा कुछ को फाँसी दे दी गई। अन्ततः गोरी सरकार ने इस आन्दोलन को पूर्णतः दबा दिया।

(vi) झारखण्ड आन्दोलन (1920-2000) - इस आन्दोलन का प्रारम्भ लगभग सात दशक पूर्व संथाल परगना क्षेत्र के संथालियों ने किया था। उस समय यह आन्दोलन अंग्रेजों तथा स्थानीय जमींदारों से मुक्ति पाने के लिए प्रारम्भ किया गया था। इस आन्दोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि छोटा नागपुर से उभरती है। मैक्फर्सन के अनुसार "संथालों के आक्रोश का प्रमुख कारण उनमें उभर रही स्वतंत्रता की उमंग थी। वे उस संथाली राज्य की उम्मीद लगाये बैठे थे जो उनके पूर्वजों को प्राप्त था।"

शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने पर जब 1855-58 के विद्रोह को सरकार द्वारा कुचल दिया गया तो संथाल लम्बे समय तक बिखरे एवं नैतिक रूप से टूट गये। लोगों को पुनर्संगठित किया। इसमें कुम्हार, तेली, चर्मकार, अहीर तथा ग्वाला जैसी निम्न हिन्दू जातियों के अतिरिक्त जुलाहों की मोमिन जाति भी शामिल थी। ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से जब इस क्षेत्र में साक्षरता का प्रसार हुआ तो संथालियों में सामाजिक तथा

राजनैतिक चेतना अतिरिक्त रूप से जागृत हुई। अब वे यह महसूस करने लगे कि उनका कोई पृथक् संगठन होना चाहिए जो उनकी लड़ाई लड़ सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सन् 1920 में उन्होंने छोटा नागपुर में उन्नत समाज की स्थापना की।

सन् 1936 में उड़ीसा को जब बिहार से पृथक् कर अलग राज्य बना दिया गया तो इस संगठनों की कार्यक्षमता विभाजित हो गयी और इग्नैस बैंक नामक एक आदिवासी नवयुवक ने पुनर्जागरण तथा पुनर्मिलन की अलख जगाई। पूर्व संगठनों को समाप्त कर सम्मिलित रूप से आदिवासी महासभा की स्थापना की गयी। 1939 में इस संगठन का नेतृत्व जब जयपाल सिंह के हाथों में आया तो उन्होंने इस आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से आदिवासियों के अतिरिक्त उन समस्त गैर आदिवासियों का सहयोग लिया जो जमींदारों से पीड़ित थे। यहीं से झारखण्ड मुक्ति मोर्चा स्थापित हुआ जो 1951 तक एक पूर्ण राजनैतिक दल के रूप में झारखण्ड पार्टी बनकर उभरा तथा पहले आम चुनाव में बिहार की 32 विधान सभाई सीटों पर विजयी हुआ। उड़ीसा में भी इस पार्टी को काफी सीटें प्राप्त हुईं। इससे झारखण्डियों का मनोबल बढ़ा और यहीं से इस आन्दोलन में राजनैतिक मोड़ आ गया। 1955 में यह माँग उठने लगी कि जातीयता, भाषा तथा सांस्कृतिक आधार पर भिन्नता के कारण गैर- आदिवासियों की बढ़ती हुई जनसंख्या का दुष्प्रभाव झारखण्ड क्षेत्र पर पड़ रहा है। अतः भारतीय गणराज्य के अधीन झारखण्ड को पृथक् राज्य का दर्जा मिलना चाहिए तथा समस्त गैर-आदिवासियों को उस क्षेत्र से बेदखल किया जाना चाहिए। इस माँग के अन्तर्गत झारखण्ड क्षेत्र की सीमाओं को बिहार के छः जिलों, बंगाल के नौ, उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश के भी इतने ही जिलों को शामिल किया गया। सरकार द्वारा यह माँग अस्वीकार कर दी गई। सन् 1963 में झारखण्ड पार्टी ने कांग्रेस के साथ विलय किया। अनेक नेता इस विलय के खिलाफ थे, अतः इस आन्दोलन के तीन संगठनों- (i) अखिल भारतीय झारखण्ड पार्टी, (ii) झारखण्ड पार्टी, (iii) हल झारखण्ड पार्टी का निर्माण किया गया। इन विभाजनों के कारण चौथे आम चुनाव में झारखण्ड पार्टी के सभी संगठनों को करारी हार का सामना करना पड़ा। राजनीतिक दबावों तथा असहमति के आक्रोश के कारण 1973 में झारखण्ड मुक्ति मोर्चे के नाम पर पुनः एक संगठन का जन्म हुआ। 1974 में इस मोर्चे ने स्थानीय जमीदारों

तथा शासकीय अधिकारों से अपने संघर्ष को सर्वाधिक हिंसक रूप प्रदान किया। हजारी बाग, गिरीडीह तथा धनबाद के संथालों ने भी इस मुक्ति मोर्चे का भरपूर समर्थन किया।

9 जून, 1978 को बिरसा दिवस के अवसर पर आन्दोलनकारियों ने यह निश्चय किया कि यदि 15 अगस्त, 1978 तक पृथक् राज्य की माँग पूरी न हुई तो सत्याग्रह की नीति अपनाई जाएगी। शासन द्वारा माँग पूरी नहीं की गयी जिसके कारण 25 अगस्त से आन्दोलन में धरना तथा प्रदर्शन की नीति प्रारम्भ हुई। हजारों की संख्या में केन्द्रीय शासन कार्यालयों, राज्य सरकार संस्थानों, थानों, रेलवे स्टेशनों आदि के सामने धरने दिये गये। साल के पेड़ों को काटकर रास्ते जाम किये गये। सरकारी आँकड़ों के अनुसार वन प्रतिष्ठान को लाखो रुपये का नुकसान हुआ। नवम्बर में गोलीबारी की दो घटनाएँ हुईं। 1979 में यह राजनैतिक आन्दोलन धूमिल पड़ गया। 1980 के चुनाव में झारखण्ड मुक्ति मोर्चे को कांग्रेस के सहयोग से 13 सीटों पर विजय प्राप्त हुई, जिसके कारण इस आन्दोलन में थोड़ा-सा जीवन का संचार हुआ, किन्तु कोई विशेष आधार नहीं बन पाया।

अंततोगतवा आन्दोलन सफल हुआ और 15 नवम्बर, 2000 को झारखण्ड राज्य का गठन किया गया।

(vii) गोंडवाना आन्दोलन (1940) सतपुड़ा की पहाड़ियों तक फैला तथा गोदावरी के किनारे से लगा सम्पूर्ण क्षेत्र, गोंडों की सम्पत्ति मानी जाती है। गोंड भारत की सर्वाधिक जनसंख्या वाली जाति है। बस्तर, चाँदा, अदीलाबाद से लेकर इनका विस्तार दुर्ग, राजनांदगाँव तक है। 1855-57 के आस-पास जब भारत का अधिकांश वन्यजातीय समाज अंग्रेजों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ था तब भी गोंडों ने अपनी आवाज नहीं उठाई थी, किन्तु 1940 के बाद नगरीकरण के विस्तार के कारण अन्य कृषक जातियाँ गोंडों के वनों तथा भूमि क्षेत्रों पर बसने के लिए आईं तो गोंडों का विरोधी स्वर गूंज उठा। डॉ. के. एम. सिंह के अनुसार, "दण्डकारण्य पर्यावरण की संरचना समझने पर यह स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है कि गोंडवाना आन्दोलन भूमि के बजाय वनों पर केन्द्रित था।"

प्रारम्भ में विद्रोह की मशाल अदीलाबाद के गोंडों ने जलायी। कुर्मी भीमू नामक युवक ने इस विद्रोह को 'वनों के संरक्षण' के नाम पर उठाया। उसने गोंडों के अधिकार की लड़ाई को प्राथमिक स्तर पर केवल शोषण- मुक्ति से सम्बन्धित किया। उसने तीन प्रमुख बातों पर बल दिया-

(1) जंगल अधिकारियों की घुसपैठ पर पाबन्दी लगाई जाये।

(2) खेतों में हल चलाने एवं चारागाहों में पशुओं के चराने का निःशुल्क अधिकार होना चाहिए।

(3) अपने जंगल में रहने की छूट होनी चाहिए।

सन् 1947 के विभाजन के पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान से भागकर आये शरणार्थियों के लिए जब 1951-52 के दौरान इस क्षेत्र का चयन किया गया तो गोंडों में असुरक्षा का भावना घर कर गयी। 1963 में राजा नरेश सिंह, नारायण सिंह उइके तथा आदिवासी सेवा मण्डलों ने इस समस्या के समाधान हेतु शासकीय हस्तक्षेप की माँग की। किन्तु समस्या का कोई समाधान नहीं निकाला जा सका। 1940 के कुर्मी आन्दोलन के दमन के लगभग 30 वर्ष पश्चात् 1970-71 में गोंडों ने अपना आन्दोलन नक्सलवाद का सहारा लेकर पुनः प्रारम्भ किया। गोंडों को अपने वनों पर हक मिलना चाहिए, इसकी मान्यता के कारण इस आन्दोलन को गोंडवाना नाम दिया गया। इस आन्दोलन का हिंसक पक्ष 1981 में उस समय प्रकट हुआ जब पुलिस की मुठभेड़ में 13 गोंड गोली के शिकार हुए।

बस्तर के गोंडों ने तो गोंडवाना के नाम पर एक बार तत्कालीन राजा प्रवीरचन्द्र भंजदेव के नेतृत्व में दस हजार की संख्या लेकर तीर तलवारों सहित स्वतंत्र राज्य की घोषणा कर दी थी। सरकार ने गोंडों की इस माँग को सख्ती से दबा दिया। इस मुठभेड़ में प्रवीरचन्द्र भंजदेव सहित अनेक गोंड मारे गये जिनसे गोंडों का यह आन्दोलन क्षीण पड़ गया। गोंडवाना आन्दोलन मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तथा आन्ध्रप्रदेश की सीमाओं पर उभरा। अनेक हिंसक मुठभेड़ों के बाद भी गोंडवाना की समस्या आज तक ज्यों की त्यों बनी हुई है।

(2) स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के जनजातीय आन्दोलन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में जो जनजातीय आन्दोलन हुए उनकी विवेचना संक्षेप में इस प्रकार है-

(i) उदयाचल (बोदो) आन्दोलन (1950) आसाम के गोलपाड़ा, काम रूप तथा दर्गंग जिलों में निवास करने वाली बोदो जनजाति द्वारा चलाया गया आन्दोलन उदयाचल आन्दोलन अथवा 'बोदो आन्दोलन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आसाम के अन्य निवासियों की तुलना में बोदी समाज सदा ही पिछड़ा हुआ, निरक्षर एवं शोषित रहा है।

शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का कोई अन्य सशक्त माध्यम न मिलने पर समस्त बोदो भाषी जनजातीय व्यक्तियों को भाषाई आधार पर संगठित किया गया और 1950 से यह आन्दोलन अस्तित्व में आया। यह आन्दोलन प्राथमिक स्तर पर बोदो साहित्य सभा के माध्यम से बोदो समाज को संगठित करता रहा और इस माँग पर बल देता रहा कि इस भाषा को विद्यालयीन स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनाया जाए।

प्रदर्शन, घेराव एवं माँग पत्रों के माध्यम से आन्दोलन को गति प्रदान की गई। द्वितीयक स्तर पर राजनैतिक अधिकारों के अन्तर्गत पृथक् राज्य की माँग ने जन्म लिया। ब्रह्मपुत्र नदी के सम्बन्धित क्षेत्रों से लेकर भूटान तथा अरुणाचल की घाटियों तक पृथक् राज्य की माँग के आन्दोलन होते रहे।

1972 तक आते-आते इस आन्दोलन में रोमन लिपि को लेकर एक नया मोड़ लिया। जब आसाम में असमिया भाषा को समस्त विश्वविद्यालयों में प्रमुख दर्जा मिला तो बोदो समाज ने भी अपनी भाषा तथा पृथक् लिपि को लेकर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। 1963 में जहाँ राज्य सरकार ने सेकेण्डरी कक्षाओं तक बोदो भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया वहीं विश्वविद्यालयीन तौर पर इसे स्वीकार नहीं किया गया। जब असमिया भाषा को राज्य का दर्जा दिया तो बोदो समाज ने अपनी भाषा और पृथक् लिपि को लेकर आन्दोलन किये।

1974 में रोमन लिपि की माँग के सन्दर्भ में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के हस्तक्षेप के बाद बोदो लोगों ने देवनागरी लिपि पर समझौता कर लिया किन्तु पृथक उदयाचल राज्य की माँग बरकरार रखी। पी.टी.सी.ए. जैसे संगठनों तथा बोदो साहित्य सभा एवं बोदो छात्र सत्याग्रहों के माध्यम से होने वाले आन्दोलनों पर पुलिस के अत्याचारों का दबाव बढ़ गया। पृथक राज्य का आन्दोलन गुप्त रूप से अब भी चल रहा है।

(ii) नागा विद्रोह (1948-1975)- नागा विद्रोह आज के सामान्य भारतीय के लिए अत्यन्त परिचित नाम है। पृथकतावादी शक्तियों के बल पर भारत से अलग एक नागालैण्ड की माँग ही इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य रहा है। नागा विद्रोह आज भी गुप्त रूप से चल रहा है। नागा विद्रोह का इतिहास कोहिमा में नागा-क्लब के नाम पर एक संगठन के सन् 1918 में स्थापित होने के साथ प्रारम्भ होता है। नागा पहाड़ियों पर यह प्रथम महत्वपूर्ण संगठन था जिसकी छत्रछाया में नागा जनजाति को एक सामान्य धरातल उपलब्ध हुआ था। नाग-विद्रोही अपने आप को भाषा, संस्कृति व धर्म के आधार पर हिन्दू तथा मुसलमानों से किसी प्रकार भी सम्बन्धित नहीं मानते थे। इसलिए वे हिन्दू एवं मुसलमान-बहुल भारत के साथ अपना किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे। यही कारण है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अंग्रेजी राज्य से मुक्त होकर जब शेष समाज प्रफुल्लित था, तब नागा जनजाति एक संक्रमणकालीन स्थिति से गुजर रही थी, क्योंकि वह अंग्रेजों से प्राप्त संरक्षण एवं विशेषाधिकार की सुविधाओं की आदी बन चुकी थी।

1947 में स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् जब मुसलमानों को पाकिस्तान मिला तो नागाओं में भी यह विश्वास पनपा कि वे भी नागालैण्ड के हकदार हैं। अतः प्राथमिक स्तर पर उनकी माँग यह रही कि भारत में शामिल होने पर उनकी स्वायत्तता बनी रहनी चाहिए। द्वितीयक उन्होंने अपनी इस माँग को नकारते हुए भारतीय गणराज्य में शामिल होने से असहमति इस आधार पर व्यक्त की कि 40 करोड़ भारतीयों के बीच 10 लाख नागाओं को फेंक दिया जायेगा तो उनकी अस्मिता ही समाप्त जायेगी। 14 अगस्त, 1946 को क्षेत्रीय स्तर पर नागाओं ने अपने आपको स्वतंत्र देश के रूप में घोषित कर दिया और यहीं से नागा-आन्दोलन नागा-विद्रोह के रूप में पनपा। 1951 में प्रथम आम

चुनाव का नागाओं ने पूर्णतः बहिष्कार किया। 1954 में उन्होंने एक स्वायत्त सरकार 'हाँगकिंग' की घोषणा की। नागाओं का यह आन्दोलन 1954 में भूमिगत आन्दोलन में परिवर्तित हो गया और इसमें हिंसक तत्वों का प्रवेश हुआ। 1957, 1958 एवं 1969 में लगातार तीन नागा सम्मेलन हुए और अन्ततः यह तय किया गया कि पृथक राज्य न सही, भारतीय गणराज्य में ही पृथक राज्य की स्थापना का ही अधिकार मिल जाए। 1960 में सरकार ने उनकी यह माँग स्वीकार कर ली और नागालैण्ड को भारत के सोलहवें राज्य के रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

भूमिगत नागा नेताओं को यह समझौतावादी रुख पसन्द नहीं आया और उन्होंने अपना आन्दोलन जारी रखा जिसके कारण स्थिति बिगड़ती चली गयी। धीरे-धीरे यह आन्दोलन तीन भागों में विभक्त हो गया। 1969 में शासन तथा भूमिगत नेताओं के बीच समझौता हुआ और यह तय किया गया कि शान्तिमय तरीके से इस समस्या का समाधान निकाला जाए। 1975 में शिलांग समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत यह तय हुआ कि नागा विद्रोही भारतीय संविधान को स्वीकार करेंगे तथा भूमिगत नेताओं का आत्म-समर्पण होगा। नागा विद्रोहियों पर किसी प्रकार की वैधानिक कार्यवाही नहीं की जायेगी। इस समझौते को उग्रवादी नागा नेताओं ने स्वीकार नहीं किया। वृहद स्तर पर चला नागा विद्रोह तो अब समाप्त हो चुका है किन्तु नागा विद्रोहियों के अनेक साथी अब भी आक्रमण एवं प्रत्याक्रम की नीति अपनाये हुए हैं। मौका पाकर वे हमला करते हैं और विद्रोह की आवाज को पुनर्जागृत करने का प्रयास करते हैं। इस आन्दोलन के अब तक के इतिहास ने अनेक नागा नेताओं को उभारा जिनमें फिजी, रिशांग- किशांग लोंगशिय शैजा के नाम प्रमुख हैं।

(iii) राजमोहनी देवी सुधार आन्दोलन (1951-1956)- 1951 में सरगुजा तथा उसे लगे क्षेत्रों में लगभग अकाल की स्थिति पैदा हो गयी थी। ऐसी स्थिति में माँझी गोण्ड जाति की एक बूढ़ी महिला ने अपनी जनजाति को एक सुधारात्मक राह दिखाकर जो प्रेरणा दी, उससे उस क्षेत्र में एक सुधारात्मक आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ जिसे राजमोहनी देवी सुधार आन्दोलन के नाम से पुकारा गया।

राजमोहनी देवी के संदर्भ में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। विलियम एक्का ने अपने लेख 'रिफार्म मूवमेन्ट ऑफ राजमोहनी देवी' में अनेक किंवदन्तियों का उल्लेख किया है। एक किंवदन्ती के अनुसार अकाल से पीड़ित राजमोहनी देवी 10 जुलाई, 1951 को जब जंगल में खाने योग्य कुछ भी प्राप्त न कर सकी तो दुःखी होकर रोने लगी। उसे यकायक दिव्य दृष्टि मिली जिसमें महात्मा गाँधी ने उसे अपनी जीवन-शैली तथा सत्य अहिंसा की शिक्षा की ओर प्रेरित किया वहाँ से लौटकर आने पर उसने 21 दिन का उपवास रखा। संयोगवश 22 दिन पूर्ण होने पर वर्षा की फुहारें पड़ीं और राजमोहनी नामक उस महिला को लोगों ने राजमोहनी देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। उस क्षेत्र के गोण्ड, नागसिया, पनिका व खेरवार लोगों ने इस आन्दोलन के सदस्यों को चार नियमों- शराब बन्दी, माँसाहारी का त्याग, नित्य स्नान तथा सत्यवादिता का पालन करने पर जोर दिया था। इस आन्दोलन के प्रेरणास्रोत महात्मा गाँधी थे। अतः 1951 में उन्हीं के नाम पर बापू धर्म सभा आदिवासी सेवा मण्डल स्थापित की गयी, इस मण्डल ने वनवासियों में तंत्र चेतना जागृत की और लोगों को यह समझाया कि गरीबी का कारण शराब सेवन तथा उससे उत्पन्न समस्यायें ही हैं। राजमोहनी देवी और उसके अनुयायियों के प्रयास से शराब के अनेक ठेके बन्द हो गये। धर्म पर सच्ची आस्था के कारण तांत्रिकों-ओझाओं के जाल से आदिवासियों को मुक्ति मिली। यह आन्दोलन इतना बढ़ गया कि सेवा मण्डल के 24 मण्डल स्थापित हो गये, किन्तु अनेक स्वार्थी तत्वों ने व्यक्तिगत लाभ के लिए राजमोहनी देवी के आन्दोलन का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे कुछ अन्य लोगों का भी विश्वास राजमोहनी देवी से इसलिए भी उठ गया कि वह उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने चमत्कारों से नहीं कर पाती थीं। इस प्रकार धीरे-धीरे यह आन्दोलन अपनी अस्मिता खोने लगा। इस आन्दोलन के समर्थक दो भागों-भगतों और संगतों में विभाजित हो गये। इस विभाजन के कारण आन्दोलन का आधार ही नष्ट हो गया।

(iv) मिजो आन्दोलन (1961-1986) - लुशाई पहाड़ी पर निवास करने वाले जनजातीय लोग अपने आपको मिजो कहते हैं। इनकी मूल जनजाति पहले कूकीविन के नाम से जानी जाती थी किन्तु लुसाई पर्वत पर निवास करने के कारण मिजो घाटी से सम्बद्ध

होकर ये अपने आपको मिजो कहने लगे। भारत की आजादी के पश्चात् नागाओं की भाँति इस समाज ने भी समकालीन पृथकतावादी आन्दोलन चलाये किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। भारत सरकार ने जब नागा-बहुल क्षेत्रों में असमिया भाषा को लागू करने का विचार रखा तो समीपवर्ती क्षेत्रों के मिजो समाज भी सशंकित हो उठे कि उनकी भी पारस्परिक भाषा समाप्त कर दी जायेगी। अतः भाषा को आधार बनाकर प्रथम बार एक आन्दोलन का जन्म हुआ जिसे मिजो आन्दोलन कहते हैं। इस आन्दोलन का प्रभाव खासी तथा गारी क्षेत्रों पर भी पड़ा। भाषा के आधार पर आन्दोलनकारियों ने पृथक राज्य की माँग की। ई.आई.टी.यू. तथा ए.पी.एच.एल.सी. के संगठनों के माध्यम से यह आन्दोलन गति पकड़ने लगा। 22 नवम्बर, 1961 को लालडेंगा ने उत्साहित किया कि 1951 में हम लोगों ने सशर्त भारतीय गणराज्य में शामिल होने का फैसला किया था कि 10 वर्ष बाद हम अपना भविष्य स्वयं निर्धारित करेंगे। अतः अब (1961) वह समय आ चुका है जब हमें नियोजन मिलना चाहिए।

1965 तथा 1966 में आसाम से पृथक होने की माँग लगातार बढ़ती रही। इस समस्या के समाधान हेतु पारस्कर आयोग बैठाया गया, किन्तु कोई हल नहीं निकला। इसी बीच लालडेंगा ने मिजो नेशनल आर्मी के नाम पर अनेक उग्रवादी लोगों की एक सेना खड़ी कर ली। इस सेना एवं केन्द्रीय सैनिक कर्मचारियों के बीच अनेक मुठभेड़ें हुईं, जिसमें कई लोग मारे गये। जब स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ तो उस क्षेत्र को सेना के हवाले कर दिया गया। 1968 तक गुरिल्ला गतिविधियाँ लगातार रहीं और सरकार ने आन्दोलनकारियों में फूट डालने की नीति अपनाई। सरकार की फूट डालने की नीति के परिणामस्वरूप यह आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा और 1968 में लालडेंगा तथा उनके साथियों ने सीमा पार करके पूर्वी पाकिस्तान में शरण ली और वहीं से भूमिगत गतिविधियों का संचालन करने लगे। 1970 में जब मेघालय, मणिपुर तथा त्रिपुरा को पृथक राज्यों का दर्जा मिला तो मिजोरम की माँग पुनः उभर कर सामने आई। सरकार ने मिजो पहाड़ी क्षेत्रों को केन्द्र शासित क्षेत्र का दर्जा देना स्वीकार कर लिया। किन्तु लालडेंगा और उनके अन्य साथियों ने इसे मंजूर नहीं किया। 1972 में जब पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश भारत का समर्थक होने के कारण लालडेंगा के सारे मोर्चे जो

बांग्लादेश में थे, समाप्त हो गये। लालडेंगा मजबूर होकर पश्चिमी पाकिस्तान चले गये और यहीं से अपनी हिंसक गतिविधियों का संचालन करने लगे।

1 जुलाई, 1976 को एक समझौता हुआ जिसके अनुसार एक माह के अन्दर भूमिगत नेताओं से समर्पण की आशा की गई। समझौते के अनुसार सभी प्रमुख नेताओं ने समर्पण कर दिया किन्तु लालडेंगा नहीं माने और वे भूमिगत होकर इंग्लैण्ड भाग गये तथा वहीं पर उन्हें राजनीतिक शरण प्रदान कर दी गयी। 1984 में जब राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने पंजाब, आसाम तथा मिजो समस्या पर नरम रुख अपनाते हुए अनेक समझौते किये। उन्होंने ब्रिटेन से लालडेंगा को वार्ता के लिए आमंत्रित किया तथा भारतीय गणराज्य में मिजोरम को पृथक राज्य बनाने की घोषणा कर दी। परिणामस्वरूप 1986 में मिजोरम पृथक राज्य बन गया। नवम्बर 1986 में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री ललथंगहौला को हटाकर लालडेंगा को मुख्यमंत्री बनाया गया। इस प्रकार मिजो आन्दोलन पूर्णतः समाप्त हो गया।

(v) चिपको आन्दोलन (1973) उत्तराखण्ड से लगे इलाकों में अनेक ऐसे आन्दोलन हुए जो गढ़वाल तथा कुमाऊ क्षेत्रों के ग्रामवासियों ने किये, इसलिये ये आन्दोलन कृषक आन्दोलन की श्रेणी में आये, किन्तु पिछले कुछ वर्षों में एक नया आन्दोलन उभरकर आया है जिसका मूल सम्बन्ध भोटिया जनजाति से है। इस आन्दोलन का जन्म-स्थल चमोली जंगलों से आच्छादित है। इस क्षेत्र के भोटिया जनजाति के लोग अपनी परम्परानुसार जब एक पेड़ काटते थे तो एक नया पौधा जंगल में कहीं न कहीं अवश्य लगाते थे। अतः जंगलों के काटे जाने के बावजूद जंगलों की कमी नहीं होने पाती थी। जड़ी-बूटियाँ, सूखे मेवे तथा शहद जैसी चीजें भोटिया समाज को

जंगलों से प्राप्त होती थीं। इस क्षेत्र में जब लकड़ी के ठेकेदारों और जंगलों के अधिकारियों का आवागमन बढ़ा तो जंगल के अधिकार क्षेत्र को लेकर अनेक समस्याओं ने जन्म लिया।

1962 में चीनी आक्रमण के पश्चात् हिमालय के क्षेत्रों में जब सड़कों का निर्माण कार्य शुरू हुआ तो चमोली के लोगों के सामने वास्तविक समस्या उपजी। आवागमन की सुलभता के कारण व्यापारियों ने सरकार से पेड़ काटने के अधिकार लिए और इस

प्रक्रिया में भोटिया लोगों की सरलता का लाभ उठाकर अनिर्धारित वृक्षों को भी काटना शुरू कर दिया। जिसके कारण अब तक शान्त बैठे भोटिया समाज का आक्रोश भड़का और उन्होंने वनाधिकारियों एवं लकड़ी काटने वाले मजदूरों का विरोष्ट्र करना प्रारम्भ कर दिया किन्तु कोई सुनवाई नहीं होने के कारण भोटिया समाज ने हथियार डाल दिये। 1970 के अलकनन्दा बाढ़ में जब पूरा बेलाकूछी गाँव बह गया तो पर्यावरण के' इस समस्याजनक पहलू पर पूरे क्षेत्र के लोगों का ध्यान गया। इसी बीच वन विभाग ने एक ओर भोटिया लोगों को बैलों का जुआ बनाने के लिये भी जंगल से लकड़ी काटने की अनुमति नहीं दी तथा दूसरी ओर इलाहाबाद की एक कम्पनी को खेलकूद की सामग्री बनाने हेतु लकड़ी काटने का अधिकार दे दिया। वन विभाग के अधिकारियों के इस कार्य ने आग में घी का काम किया। इस घटना के परिणामस्वरूप दसौली ग्राम स्वराज संघ की स्थापना की गयी और चंडी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में जंगल बचाओ का नारा बुलन्द किया गया। सर्वोदयी विचारधारा में पनपे इस आन्दोलन ने अन्ततः यह फैसला सुनाया कि वे कोई हिंसक नीति न अपनाकर सत्याग्रह पर बल देंगे। अतः पेड़ काटने के लिये आये अधिकारियों व मजदूरों से लड़ाई-झगड़ा करने की अपेक्षा पेड़ से चिपक जाने की नीति अपनाई जिससे आरी या कुल्हाड़ा चलाने वाले व्यक्ति के हाथ रुक जाए। अप्रैल 1973 में त्रिजुगी नारायण तथा नवम्बर 1973 में रैली के जंगलों की नीलामी सरकार ने की तो औरतों ने जंगलों को बचाने का बीड़ा अपने कंधों पर उठाया। वन विभाग ने जब पुनः रैली के जंगलों की नीलामी 1974 में की तो इस क्षेत्र का भोटिया समाज खुलंकर सामने आ गया। रैली के विद्रोह का संचालन महिला मंगल दल की प्रमुख श्रीमती गौरा देवी ने यह आवाज उठायी कि जंगल हमारा मायका है, हम उसे अपनी जान की कीमत चुकाकर भी बचायेंगे। रैली की महिलाओं की साहस की गाथा धीरे- धीरे पूरे क्षेत्र में गढ़वाल तथा कुमाऊँनी इलाकों में फैल गयी और चिपको आन्दोलन हिमालय की चोटियों पर गूँज उठा। महिलाओं ने पेड़ों से राखी बाँधकर उनके प्रति अपनी संवेदना प्रकट की थी। श्री सुन्दरलाल बहुगुणा के आगमन से इस आन्दोलन को नयी दिशा प्राप्त हुई। अनशन एवं पद यात्राओं के माध्यम से भट्ट तथा बहुगुणा ने इस आन्दोलन को नया आयाम दिया।

9.5 जनजातीय आन्दोलन- कारण एवं परिणाम(Tribal Movement - Causes and Consequences)

आन्दोलन चाहे किसी प्रकार का हो, उसके निश्चित कारण होते हैं। इन कारणों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) स्थायी कारण (Permanent causes), और

(b) तत्कालिक कारण या अस्थायी कारण (Temporary causes)।

स्थायी कारणों को संस्थागत कारण Institutional causes के नाम से भी जाना जाता है। ये आदिकाल से उस समाज में व्याप्त रहते हैं और अस्थायी कारण वे हैं जो अचानक पैदा हो जाते हैं। भारतीय जनजातियाँ आदिकाल से गरीबी, भुखमरी और अशिक्षा से जूझ रही हैं। वन्यजीवन और नागरिक सुविधाओं का अभाव, उनमें जागरूकता की कमी आदि स्थायी समस्याएँ हैं। आज शासन द्वारा जनजातियों के कल्याण के लिए अनेक उपाय किए जा रहे हैं। इन उपायों का जनजातियों को कोई लाभ नहीं मिल रहा है और शासन स्तर पर इन योजनाओं की मात्र खानापूर्ति की जा रही है। इससे जनजातियों में असन्तोष की भावना है और इस असन्तोष के कारण जनजातियों द्वारा किए जाने वाला आन्दोलन।

जनजातीय आन्दोलन के प्रमुख कारणों को जो स्थायी प्रकृति के हैं, निम्न शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सामाजिक समस्याएँ- वन्यजातीय समाज की सामाजिक संरचना अपने आप में एक अनोखी धारणा है। सांस्कृतिक, प्रजातीय एवं राजनैतिक प्रभावों में वन्यजातीय समाज के आधारभूत स्तम्भों को इतना कमजोर कर दिया है कि अनेक सामाजिक संस्थाएँ लगभग समाप्त प्राय हैं। वन्यजातीय समाजों में हिन्दुओं के प्रभाव के कारण बाल विवाह की समस्या, मुसलमानों के प्रभाव के कारण कन्या मूल्य की समस्या, नगरीकरण के प्रभावों के कारण युवागृहों के पतन की समस्याएँ प्रमुख हैं। पश्चिमीकरण के प्रभावों के कारण सामाजिक जीवन में सम्बन्धों की जो विशिष्ट नातेदारी श्रेणियाँ वन्यजातीय समाजों में थी वे समाप्त हो चुकी हैं। साक्षरता के प्रसार ने जहाँ एक ओर उन्हें आधुनिक

बनाया है वहीं दूसरी ओर उनकी पारम्परिक अस्मिता को समाप्त करके पुरानी तथा नयी पीढ़ी के संघर्ष को जन्म दिया है।

(2) सांस्कृतिक समस्याएँ- आधुनिकीकरण एवं औद्योगीकरण के आवागमन के साधनों में वृद्धि करके जहाँ सभ्य समाजों के विकास का द्वारा खोला वहीं वन्यजातीय समाज इन्हीं सुविधाओं के कारण संस्कृतीकरण जैसी समस्याओं को झेल रहा है। भारत के सन्दर्भ में वन्यजातीय समाज की स्थिति और भी निन्दनीय है, क्योंकि उसकी पारम्परिक संस्कृति पर त्रिकोणीय प्रहार हुए हैं। हिन्दू संस्कृति तथा ईसाई संस्कृति ने इनकी चेतना को उस सीमा तक झकझोर दिया है कि एक ही वन्यजाति में भी विभेद, तनाव तथा विरोधी की स्थितियाँ पैदा हो गयी हैं।

वन्यजातीय ललित कलाओं का विनाश भी इनकी चेतना को उद्वेलित करता है। वन्यजातीय ललित कलाएँ, संगीत, नृत्य तथा अन्य शिल्प कलाएँ पश्चिमीकरण के प्रभाव में जिस प्रकार पतन के कगार तक पहुँच गयीं, उसके कारण पुरातनवादियों ने सांस्कृतिक संघर्ष को जन्म दिया। बाहरी संस्कृति के प्रभावों ने भाषा-समस्या को भी जन्म दिया।

(3) **आर्थिक समस्याएँ**- भारत का बन्यजातीय समाज अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मूलतः कृषि तथा वनों से प्राप्त भोजन सामग्री पर निर्भर करता है। जीवन-यापन के ये दोनों आधार समय-समय पर अनेक कारणों से समस्यामूलक सिद्ध हो रहे हैं। इनकी 'झूम खेती' की परम्परा ने जहाँ एक ओर इनके खेतों को बरबाद किया है वहीं दूसरी ओर कम उपज के कारण खाद्य समस्या भी आन्दोलन का कारण बनता है। शासकीय स्तर पर बन्यजातीय श्रमिकों का शोषण एक सामान्य घटना है। श्रम नियोजन की सोचनीय स्थिति, मकानों की अव्यवस्था, ठेकेदारों द्वारा प्रत्यक्ष भर्ती, बेगार एवं गुलामी आदि अनेक माध्यम हैं जे अमानवीय समाज का शोषण करते हैं और असन्तोष के जन्म के कारण बनते हैं।

(4) ईसाई मिशनरियाँ- अंग्रेजी काल में ईसाई मिशनरियों को आदिवासी क्षेत्र में प्रचार करने की विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं। दूसरे किसी धर्म ने इस दिशा में काम करने के प्रति कोई रुचि हीं दिखाई। ईसाई मिशनरियों ने वन्यजातीय क्षेत्र में जाकर स्कूल और

चिकित्सालय खोले। उनकी रणनीति यह थी कि आदिवासियों की सेवा करके उन्हें ईसाई धर्म की ओर आकर्षित किया जाये। परिणाम यह हुआ कि आदिव सी क्षेत्र में धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। भारत के उत्तर-पूर्व में तो धर्म परिवर्तन ने इतना जोर पकड़ा कि आदिवासियों के बड़े- बड़े समुदाय अपनी पुरानी संस्कृति को छोड़कर ईसाई धर्म के अनुयायी हो गये। अनेक आदिवासियों ने अपनी परम्परागत पोशाक छोड़कर ब्लाउज, फ्राक और स्कर्ट पहनना आरम्भ किया। ईसाई मिशनरियों ने आदिवासियों के मन में यह बात बैठा दी कि उनकी संस्कृति और धर्म घटिया किस्म की है, यदि उन्हें ऊँचा उठना है तो धर्म परिवर्तन उनके लिए हितकर होगा। कई आदिवासी समूहों की अपनी विकसित कला गायब होने लगी। उन्होंने अपने संगीत, नृत्य इत्यादि का परित्याग कर दिया। इनके मन में यह धारणा बना दी गयी कि यदि वे अपनी पुरानी प्रथाओं का पालन करते रहेंगे तो वे कभी प्रगति नहीं कर सकते। आदिवासी स्वभाव के जो गुण थे उनका धीरे- धीरे ह्रास होने लगा। बहुत-सी बुराइयाँ जो गैर-आदिवासी समाज में थीं उनमें आने लगीं। आदिवासी समाज में समानता की भावना धीरे-धीरे कमजोर होने लगी और आपस में मतभेद बढ़ने लगा। इस प्रकार आदिवासी समाज में असन्तोष की ज्वाला फैलने लगी।

(5) प्रशासकीय भ्रष्टाचार- वन्यजातीय समाज में न कोई जमींदार होते हैं, न महाजन, न शराब के ठेकेदार, न व्यापार, इस आधार पर आदिवासी समाज बँटा नहीं है। इसीलिए किसी के शोषित होने की सम्भावना बहुत कम होती है। गैर-आदिवासी क्षेत्रों के कुछ व्यक्ति आदिवासी इलाकों में जाकर सूदखोरी करने लगे हैं। शराब के ठेकेदार भी आदिवासियों को अनेक प्रकार से ठगते हैं। जैसे-जैसे शासन की गतिविधियाँ बढ़ रही हैं वैसे-वैसे शासकीय कर्मचारियों का भ्रष्टाचार भी आदिवासी समाज के लिए अभिशाप बनता जा रहा है। विकास के नाम पर सरकारी अधिकारियों द्वारा उन्हें ठगा जा रहा है। इस प्रकार वन्यजातीय क्षेत्रों में आदिवासियों का शोषण करने के लिए व्यापारियों, शराब के ठेकेदारों एवं सरकार कर्मचारियों का एक गिरोह तैयार हो गया है। इसका प्रमुख परिणाम यह हुआ कि शोषण कर रहे वर्ग की नापाक हरकतें आदिवासी समाज में घुसने लगी हैं। आदिवासी के बीच ही ठग पैदा होने लगते हैं। उनकी परम्परागत सरलता और

ईमानदारी विकृत हो रही है। स्वाभाविकता इसका दोष गैर-आदिवासी समाज पर मढ़ा जाता है और आदिवासियों के मन में रोष उत्पन्न होता है कि बाहर से आये व्यक्तियों ने उनके समाज का वातावरण दूषित कर दिया।

(6) राजनैतिक समस्याएँ- शासकीय स्तर पर अपनी जनजाति को अपेक्षित अधिकार दिलाने के लिए भौगोलिक क्षेत्रों की सीमा, निर्धारित करने के लिए तथा अपने क्षेत्र को प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य बनाने के लिए किये जाने वाले आन्दोलन इस बात के साक्षी है कि स्वतंत्रता, स्वायत्तता तथा विशेषाधिकारों की समस्या से वन्यजातीय समाज प्रायः जूझता रहा है। भारतीय राजनीति के नित नये आयामों से वन्यजातीय समाज समस्याग्रस्त रहा है। विभिन्न राजनीतिक दल अपने-अपने स्वार्थों की लड़ाई में इन्हीं आदिवासी समाजों को अपना मोहरा बनाते हैं। इनकी निर्धनता का लाभ उठाकर प्रायः धन के लाभ में इनका मनमाना शोषण किया जाता है, अनेक बार यह भी हुआ है कि दो-चार डबल रोटी के टुकड़े के लिए इनका महत्वपूर्ण वोट बार-बार मतपेटियाँ बदलता रहा है। अनेक सर्वेक्षणों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि अधिकांश वन्यजातियों को यह भी ज्ञात नहीं है कि वे 'भारत' नाम के किसी देश का हिस्सा है। उनके क्षेत्र में कौन-सी राज्य सरकार है? क्या सरकार उनकी समस्याओं को सुलझा रही है? चुनाव के बाद उनके क्षेत्र में नेता की क्या भूमिका है? उनके वोट का क्या महत्व है? इत्यादि प्रश्नों की झड़ी अधिकांश वनवासियों के लिए पूर्णतः असंगत होती है। निर्धनता, शिक्षा आदिवासियों का आक्रोश कब और कैसे फूट पड़ेगा, इसका उत्तर दे सकना आसान नहीं है।

(7) अन्य कारण- जनजातियों के आन्दोलन के लिए उत्तरदायी जिन कारणों की विवेचना की गई हैं, उनके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण हैं, जो जनजातीय आन्दोलनों को प्रोत्साहित करते हैं। इन कारणों में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

(a) जनजातियों के कल्याण के लिए शासन द्वारा अनेक योजनाएँ लागू की गई हैं। अशिक्षा और जागरूकता के अभाव के कारण जनजातियों को इन योजनाओं का लाभ नहीं मिल पाता है। ऐसी स्थिति में उनमें असन्तोष की भावना का विकास होता है और यह असन्तोष आन्दोलन का कारण बनता है।

(b) वनों से सम्बन्धित अनेक कानून बनाए गए हैं। इन कानूनों का जनजातियों के जीवन के तरीकों पर सीधा असर पड़ता है। किन्तु जनजातियों को यह नहीं समझाया जा सका है कि भविष्य में ये योजनाएँ इनके लाभ के लिए हैं। इससे भी जनजातियों में असन्तोष की भावना का विकास होता है।

(c) वनोपज का जनजातियों को सही लाभ नहीं मिल पाता। इसके कारण भी उनमें असन्तोष की भावना का विकास होता है। (6)

(d) जनजातीय जीवन में गरीबी (Poverty) और ऋणग्रस्तता (Indebtedness) प्रमुख समस्याएँ हैं। इन्हें जब शासन की योजनाओं का लाभ नहीं मिलता है, तो असन्तोष और आन्दोलन का सूत्रपात होता है। जिम् क्रि

(e) जनजातियों के भूमि का हस्तान्तरण एक समस्या है तथा इसके लिए कानून तो है, किन्तु अशिक्षा और अज्ञानता के कारण उन्हें इसका लाभ नहीं मिल पाता है। इस कारण भी उनमें असन्तोष की भावना का विकास होता है।

(f) जनजातियों के जीवन के तरीके, उनके मूल्य और मान्यताएँ, प्रथाएँ और परम्पराओं आदि पर जब किसी प्रकार का आघात होता है, तो जनजातीय समाज आन्दोलन की राह पर अग्रसर होता है।

(g) अन्त में, प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना और उसमें सहभागिता के अभाव के कारण भी जनजातीय आन्दोलन को प्रोत्साहन मिलता है।

जनजातीय आन्दोलन के परिणाम

(Results of tribal movement)]

प्रत्येक आन्दोलन के निश्चित परिणाम होते हैं। आन्दोलन चाहे किसी भी प्रकार हो, उसके दो परिणाम होते हैं-

(a) सकारात्मक परिणाम (Positive Consequences), और

(b) नकारात्मक परिणाम (Negative Consequences) ।

सकारात्मक परिणाम वह है, जिसमें आन्दोलन सफल हो जाता है और उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है। इसके विपरीत नकारात्मक परिणाम वह है, जिसमें आन्दोलन असफल हो जाता है तथा उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती है। परिणाम चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक इसका समाज पर असर पड़ता है। आन्दोलन से चाहे लाभ हो या हानि पर समाज पर अपना कुछ प्रभाव छोड़ता है। जनजातीय आन्दोलन के भी निश्चित परिणाम हैं, जो इस प्रकार हैं-

(1) जनजातीय परिवेश में परिवर्तन- आज जनजातीय परिवेश में परिवर्तन परिलक्षित, हो रहा है। यद्यपि इसका प्रत्यक्ष कारण आजादी और इसमें जनजातियों की सहभागिता है। आन्दोलन के कारण जनजातीय समाज बाहरी दुनिया के सम्पर्क में आता है और इस सम्पर्क के कारण उनके जीवन में परिवर्तन होता है। आज जो भी आन्दोलन हैं, उनका एक निश्चित नेटवर्क है और इसका सीधा असर उनके जीवन पर पड़ता है।

(2) संक्रमणकालीन स्थिति आन्दोलन के परिणामस्वरूप समाज में संक्रमणकालीन स्थिति का निर्माण होता है। एक पुराना समाज जो स्थायी है और एक आने वाला समाज, जिसकी एक कल्पना है। इस कल्पना और हकीकत के कारण जनजातीय समाज में सांस्कृतिक विलम्ब (Cultural Lag) की स्थिति का निर्माण हो जाता है। इस संक्रमण काल का प्रभाव उनकी संस्कृति और जीवन शैली पर पड़ता है।

(3) जागरूकता का विकास- आन्दोलन सोई हुई चेतना को जागृत करता है। उसे अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होता है। उसकी आकांक्षा ऊँची हो जाती है और वह अपनी परिस्थिति से ऊपर उठने का प्रयास करता है। जागरूकता के कारण वह समाज के अन्य वर्गों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे चलने की समर्थता विकसित करता है और इस प्रकार उसके जीवन में विकास के मार्ग प्रशस्त होते हैं।

(4) संस्कृतीकरण की प्रक्रिया- जनजातियों में संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का विकास हुआ है। ग्रिफिथ्स (Griffiths) ने अपने अध्ययन में पाया है कि जनजातियों में हिन्दूकरण की प्रक्रिया का विकास हो रहा है। इस कारण वे अनेक हिन्दू देवी-देवताओं को अपना

रहे हैं तथा हिन्दू पूजापाठ में सहभागिता का प्रदर्शन कर रहे हैं। अनेक हिन्दू व्रत और त्यौहारों को अपना रहे हैं और इस प्रकार उनके परम्परागत आर्थिक जीवन में परिवर्तन हो रहा है।

(5) अन्य परिणाम- जनजातीय आन्दोलन के कारण अन्य परिणामों के लिए आधार बनता है, जो इस प्रकार हैं-

(अ) नई पीढ़ी को अपनी विरासत के मूल्यांकन का अवसर प्राप्त होता है और वे उसके गुण-दोषों को समझने में सक्षम होते हैं।

(आ) जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए माहौल बनता है।

(इ) समाज के भावी निर्माण के लिए एक आधारशिला बनती है।

(ई) इससे जहाँ एक ओर व्यक्तियों के हितों की रक्षा की जाती है, वहीं दूसरी ओर उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति भी होती है।

(3) अन्त में, आन्दोलन समाज में जनजातियों की सहभागिता को सुनिश्चित करता है तथा भविष्य की नींव का निर्माण करता है।

9.6 आजादी के बाद का परिदृश्य-राजनैतिक, सामाजिक एवं विकास (Post Independence Scenario - Political, Social and Development)

पुरानी कहावत है- 'जैसा राजा, वैसी प्रजा।' सत्यनिष्ठा के क्षेत्र में राजा हरिश्चन्द्र का नाम और त्याग तथा बलिदान के क्षेत्र में पन्ना धाय का नाम इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि राज्य व्यवस्था समाज व्यवस्था की आधारशिला है और किसी भी समाज का भविष्य राज्य व्यवस्था के स्वरूप के आधार पर निर्धारित होता है। यदि राजा न्यायप्रिय है, तो प्रजा उसका अनुसरण करेगी और यदि राजा अन्यायी तथा अत्याचारी है, तो प्रजा को उसके अनुसार अपने आचरण और व्यवहार का निर्धारण करना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि राज्य व्यवस्था के आधार पर समाज व्यवस्था का निर्धारण होता है।

समाज का उद्विकास हुआ है। सामाजिक उद्विकास के साथ ही साथ राज्य व्यवस्था का भी उद्विकास हुआ है। सामाजिक उद्विकास की अवस्थाओं में आखेट अवस्था, पशुपालन की अवस्था, कृषि अवस्था और औद्योगिक अवस्थाएँ हैं। आज समाज इन अवस्थाओं से आगे निकलकर उत्तर आधुनिक अवस्था (Post Modern Stage) की अवस्थाओं को पार कर गया है। सामाजिक परिवर्तन इतनी तीव्र गति से हो रहा है कि आगे आने वाले परिवर्तनों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

राज्य व्यवस्था के प्रारम्भिक काल शक्ति, आतंक के काल थे। जो शक्तिशाली होता था, वह निर्बलों पर शासन करता था। कहा भी गया है कि 'वीर मोरया वसुंधरा' किन्तु यह धारणा स्थायी नहीं रह सकी। समाज में जागरूकता के विकास के साथ ही समानता, न्याय और भाईचारे की भावनाओं का विकास हुआ। शासन सत्ता को जनता की ओर उन्मुख करने के लिए प्रजातंत्र का विकास हुआ। अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने प्रजातंत्र की परिभाषा करते हुए इसे जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिए शासन की संज्ञा दी गई। कालान्तर में प्रजातंत्र समाज का अभिन्न अंग बनता गया और दुनिया के अधिकांश देशों ने इसे राज्य व्यवस्था के सर्वोत्तम स्वरूप के रूप में स्वीकार किया।

भारत भी 15 अगस्त, 1947 को आजाद हो गया। भारत में 'जनजातीय समाज' का आजादी के बाद का परिदृश्य क्या है? इसकी विवेचना करने से पहले आजादी के पूर्व के परिदृश्य की चर्चा आवश्यक है। भारत. में 'जनजातीय समाज' की 15 अगस्त, 1947 के पहले की स्थिति और 15 अगस्त, 1947 के बाद की स्थिति। 15 अगस्त, 1947 के पहले भारत में जनजातीय समाज का परिदृश्य क्या था? इसकी चर्चा इस पुस्तक में की जा चुकी है। उनकी आर्थिक स्थिति, उनकी सानाजिक सांस्कृतिक स्थिति, राजनैतिक तथा शिक्षा, रोजगार तथा प्रशासन में सहभागिता, आदि का विवरण विभिन्न अध्यायों में दिया जा चुका है। आजादी के बाद समाज में उनकी क्या स्थिति है, उस पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि जनजातीय समाज का परिदृश्य आजादी के बाद परिवर्तित हो रहा है, जो इस प्रकार है-

1. आजादी के बाद का जनजातीय समाज का सबसे बड़ा परिदृश्य यह है, जो जनजातीय समाज 'जंगल और जमीन' तक सीमित था तथा संचार साधनों से अलग थलग था, आज इस स्थिति से बाहर निकल रहा है और जीवन, समाज तथा राष्ट्र के विविध क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति को दर्ज करा रहा है।

2. भारतीय संविधान के बिना किसी भेदभाव के भारत के सभी नागरिकों को स्वतंत्रता, समानता, मातृत्व और न्याय की गारन्टी दी है, जनजातीय समाज इस गारन्टी का लाभ उठा रहा है, जो गुलाम भारत में उसे नहीं मिली थी।

3. भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। भारतीय संसद लोकतंत्र का सबसे बड़ा मन्दिर है। इस लोकतंत्र के सबसे बड़े संस्थान के उपाध्यक्ष माननीय श्री करिया मुण्डा जी हैं, जो जनजातीय समाज से सम्बन्धित है। यह राष्ट्र के लिए गौरव की बात है तथा जनजातीय समाज के लिए भी एक गौरव की बात है तथा एक उदाहरण है कि भारत में जनजातीय समाज के लिए एक अच्छी सोच और परिस्थितियों का निर्माण हो रहा है।:

4. जनजातीय समाज के अनेक नेता देश की विभिन्न पार्टियों और दलों में महत्वपूर्ण भूमिकाओं पर हैं तथा वे देश की नीतियों और कार्यक्रमों के संचालन में अहम् भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

5. अनेक जनजातीय क्षेत्रों के व्यक्ति देश की लोकसभा, राज्यसभा और राज्यों की विधान सभाओं के सदस्य हैं तथा समाज में उनकी अहम् भूमिका है।

6. अनेक जनजातीय समाज के व्यक्ति केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों में मंत्री तथा राज्य मंत्री हैं और देश तथा समाज में उनकी एक अलग पहचान है।

7. जनजातीय समाज के अनेक व्यक्ति देश के सबसे अधिक सम्मानित आई.ए.एस., आई.पी.एस., आई.एफ.एस, आदि महत्वपूर्ण पदों पर अपनी भूमिका निर्वहन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त देश के सभी राज्यों में राजकीय सेवाओं में उनकी भूमिका को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार ग्रामीण स्तर की सेवाओं से लेकर, राज्य

और राष्ट्रीय स्तर की सेवाओं में जनजातीय समाज अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

8. विभिन्न आयोगों, निगमों और मण्डलों में राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर जनजातीय समाज के व्यक्ति अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

9. आजादी के बाद जनजातीय समाज की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हो रहा है। अब उनकी अर्थव्यवस्था का आधार जंगल और जमीन नहीं है। आर्थिक जीवन के विविध क्षेत्रों में वे अपनी उपस्थिति दर्ज कर रहे हैं।

10. सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन भी बदल रहा है। अब वे समाज के अन्य वर्गों के साथ एकरूपता स्थापित करने की प्रक्रिया में हैं। उन्हें समाज में वही स्थान मिल रहा है, जो अन्य वर्गों को। यद्यपि यह प्रक्रिया अभी उतनी गतिशील नही हैं।

11. आरक्षण के कारण राजनैतिक स्थिति में जागरूकता आई है। यद्यपि यह जागरूकता अभी प्रारम्भिक अवस्था में है, फिर भी इसका भविष्य उज्जवल है।

12. शिक्षा के क्षेत्र में भी जनजातीय समाज ने प्रगति की है। यद्यपि योजनाओं का उतना लाभ उन्हें नहीं मिल पा रहा है, जितना मिलना चाहिए था। फिर भी एक जागरूकता का विकास हो रहा है। इस जागरूकता के कारण जनजातीय समाज शिक्षा प्राप्ति की ओर अग्रसर है।

13. स्त्री शिक्षा के प्रति भी जागरूकता विकसित हो रही है और जनजातीय समाज की लड़कियाँ स्कूल शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा संस्थानों, प्रोफेशनल संस्थानों, टेकनिकल संस्थानों में प्रवेश ले रही हैं और अनेक मामलों में अपना नाम रौशन कर रही हैं।

14. स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी जनजातीय समाज में जागरूकता आई है। आज प्रसव के लिए वे अस्पतालों में जाने लगी हैं। बीमारी से बचाव के उपायों की ओर अग्रसर हैं तथा इलाज के लिए अस्पताल और डॉक्टरों का सहारा ले रही हैं।

15. जनजातीय समाज के जीवन के विविध क्षेत्रों में सुधार हो रहा है और वे अपने समाज और जीवन के प्रति जागरूक हो रहे हैं।

16. अन्त में जनजातीय समाज आज राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ गया है। यह राष्ट्र की सबसे बड़ी उपलब्धि है। किन्तु जो चिंता है, वह संतुलित विकास न होने की है। आज देश में नक्सलवाद की समस्या है। यह समस्या जनजातीय क्षेत्रों में है। देश के जो जनजातीय क्षेत्र हैं, वे नक्सलवाद से पीड़ित हैं। इस समस्या का कारण उन क्षेत्रों का समुचित विकास न होना है। समुचित विकास के अभाव में उनमें असन्तोष की भावना का विकास होता है। इस असन्तोष की भावना के कारण उनमें प्रतिरोध का विकास होता है। इसलिए यह आवश्यक है, जो जनजातीय समाज नक्सलवाद की समस्या से ग्रस्त हैं उनका सन्तुलित और तीव्र विकास किया जाय तथा इस समस्या का समाधान किया जाय। यदि समय रहते इस समस्या का समाधान नहीं किया गया तो इसका परिणाम राष्ट्र के लिए और जनजातीय समाज के लिए घातक होगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय जनजातीय समाज का परिदृश्य आजादी के बाद से बदल रहा है तथा यह भविष्य के लिए अच्छा संकेत है।

स्व -प्रगति परिक्षण

1. किसने कहा- 'सामाजिक आन्दोलन ऐसा सामूहिक प्रयत्न है, जिससे जीवन की एक नई व्यवस्था निर्मित होती है।'

(अ) मैकलानिन (आ) ब्यूमर (इ) किंग (इ) ताच।

2. सत्य या असत्य लिखिए-

I. जनजातीय आन्दोलन सामाजिक आन्दोलन का एक प्रकार है।

II. संथाल आन्दोलन का सम्बन्ध संथाल जनजाति से सम्बन्धित है।

III.जनजातीय आन्दोलन एक गतिशील प्रक्रिया है।

IV. ताना भगत आन्दोलन समाज सुधार आन्दोलन था।

V गोडवाना आन्दोलन का सम्बन्ध गोंड जनजाति से था।

9.7 सार संक्षेप

जनजाति आंदोलन (Tribal Movement) भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसमें जनजातीय समाज ने अपनी पहचान, अधिकारों, और संस्कृति की रक्षा के लिए संघर्ष किया। यह आंदोलन औपनिवेशिक काल से लेकर आजादी के बाद तक चलता रहा। इस विषय का अध्ययन छात्रों को सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक दृष्टिकोण से जनजातीय समस्याओं और उनके समाधान को समझने में मदद करता है।

जनजाति आंदोलन भारतीय इतिहास में जनजातीय समाज के अधिकार, पहचान, और संस्कृति की रक्षा के लिए किए गए संघर्षों का प्रतीक है। इन आंदोलनों का उद्देश्य भूमि, जंगल, और संसाधनों पर अपने परंपरागत अधिकारों को पुनः प्राप्त करना, सामाजिक-आर्थिक शोषण को समाप्त करना, और अपने सांस्कृतिक अस्तित्व को बनाए रखना था। औपनिवेशिक शासन के दौरान हुए शोषण और स्वतंत्रता के बाद विकास की परियोजनाओं के कारण हुए विस्थापन ने इन आंदोलनों को प्रोत्साहित किया। आजादी के बाद जनजाति आंदोलन अधिक संगठित हुए, और राजनीतिक जागरूकता ने उन्हें अपने अधिकारों के लिए कानूनी और संवैधानिक उपायों का उपयोग करने में सक्षम बनाया। हालांकि इन प्रयासों से जागरूकता और कुछ सुधार हुए, लेकिन गरीबी, अशिक्षा, और विस्थापन जैसी समस्याएँ अब भी जनजातीय समाज को प्रभावित करती हैं। जनजाति आंदोलन ने भारतीय लोकतंत्र को उनकी समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने के लिए मजबूर किया और सामाजिक न्याय की अवधारणा को और मजबूत किया।

9.8 मुख्य शब्द

1. **जनजाति -** ऐसा समाज जो अपनी परंपरागत रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक पहचान के साथ रहता है।

2. **आंदोलन -** किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया गया संगठित और सामूहिक प्रयास।

3. **औपनिवेशिक -** विदेशी शासन, विशेष रूप से ब्रिटिश शासन से संबंधित।

4. **पारंपरिक अधिकार -** पीढ़ियों से समाज में चले आ रहे प्राकृतिक अधिकार।

5. **सांस्कृतिक रक्षा -** अपनी परंपराओं और रीति-रिवाजों को संरक्षित रखने का प्रयास।

6. **सामाजिक न्याय -** समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करना।

7. **विस्थापन -** किसी व्यक्ति या समुदाय को उनकी जगह से हटाकर दूसरी जगह बसाने की प्रक्रिया।

8. **शोषण -** किसी के श्रम, संसाधनों या अधिकारों का अनुचित लाभ उठाना।

9. **संरक्षण -** किसी वस्तु, परंपरा, या अधिकार को सुरक्षित रखने का कार्य।

10. **आधुनिकरण -** नई तकनीकों और व्यवस्थाओं का समावेश, जो पारंपरिक तरीकों को बदल देता है।

11. **वन अधिकार -** जंगलों पर आदिवासियों के पारंपरिक अधिकारों को मान्यता देने का कानून।

12. **अनुसूचित जनजाति -** भारतीय संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त जनजातीय समुदाय, जिन्हें विशेष अधिकार दिए गए हैं।

9.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1. (आ), 2.1. (सत्य), II. (सत्य), III. (सत्य), IV. (सत्य), V. (सत्य)

9.10 सन्दर्भ सूची

1. Bhowmik, S. K. (2008). Tribal Movements in India. Oxford University Press.

2. Guha, R. (1989). The Unquiet Woods: Ecological Change and Peasant Resistance in the Himalaya. University of California Press.

3. Singh, K. S. (1985). Tribal Society in India: An Anthropological Perspective. Manohar Publications.

4. Mahapatra, L. K. (1997). Modernization and Tribal Identity. Economic and Political Weekly, 32(20), 1215-1220.

5. Xaxa, V. (2008). State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India. Pearson.

9.11 अभ्यास प्रश्न

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. जनजातीय आन्दोलन की अवधारणा को समझाइए। इसकी विशेषताएँ लिखिए।

   Explain the concept of tribal movement. Write its characteristics.

2. भारत में जनजातीय आन्दोलन पर एक लेख लिखिए।

   Write an essay on tribal movement in India.

3. जनजातीय आन्दोलन की व्याख्या कीजिए। भारत में जनजातीय आन्दोलन के प्रमुख कारणों को लिखिए।

   Define tribal movement. Write the main causes of tribal movement in India.

4. भारत में जनजातीय आन्दोलन के कारणों तथा परिणामों की विवेचना कीजिए।

   Discuss causes and consequences of tribal movement in India.

5. आजादी के बाद जनजातीय समाज के परिदृश्य पर एक लेख लिखिए।

   Write an essay on scene of tribal society after independence.

6. आजादी के बाद जनजातीय समाज पर एक लेख लिखिए।

   Write an essay on tribal society after independence.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें:

1. जनजातीय आन्दोलन। Tribal Movement.
2. जनजातीय आन्दोलन की विशेषताएँ। Features of tribal movement.
3. बिरसा मुंडा आंदोलन. SBirsa Munda movement.
4. संथाल आन्दोलन। Santhal Movement
5 झारखंड आंदोलन. Jharkhand Movement.
6. ताना भगत स्मारक। Tana Bhagat Memorial.
7. बोडो आन्दोलन। Bodo Movement.
8. मिजो आन्दोलन। Mizo Movement.

ब्लॉक - IV

इकाई -10

जनजातियाँ मध्यप्रदेश में परिदृश्य

(Tribes-Scenario of Madhya Pradesh)

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 मध्य प्रदेश की अनुसूचित जनजातियों संशोधन (1976)

10.4 मध्य प्रदेश की जनजातियों की सामान्य विशेषताएं

10.5 मध्य प्रदेश में जनजाति समस्याएं

10.6 सार संक्षेप

10.7 मुख्य शब्द

10.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.9 सन्दर्भ सूची

10.10 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

भारत की जनसंख्या का कुछ भाग देश की शेष जनसंख्या से आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से काफी पिछड़ा है। इनके पिछड़ेपन के कारण ही इन्हें भारतीय संविधान की विशेष सूची में रखा गया है तथा इनको अनुसूचित जनजाति का नाम दिया गया है। इसका कारण इन अनुसूचित जनजातियों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना था, ताकि वे भी देश की अन्य जनसंख्या के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सके तथा राष्ट्र की प्रगति में सहभागी बने। अनुसूचित जनजातियों में आदिवासियों को सम्मिलित किया गया है तथा इनकी पहचान के लिए समय-समय पर महामहिम राष्ट्रपति जी द्वारा अधिसूचना जारी की जाती है। भारत में कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों

का प्रतिशत 8.08 है। मध्य प्रदेश में अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक संख्या में अनुसूचित जातियाँ निवास करती हैं, जिनका प्रतिशत 23.70 है। भारत सरकार द्वारा मध्यप्रदेश के लिए जारी की गई अनुसूचित जनजातियों को 46 समूहों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है। मूल जनजाति के साथ इनकी उपजाति या मूल जाति से उत्पन्न उपजाति, जो वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में स्वतंत्र अस्तित्व ले चुकी है, इन्हें रखा गया है।

10.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- छात्रों को मध्य प्रदेश के जनजातीय समाज की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना से परिचित कराना।
- जनजातीय समाज की समस्याओं, जैसे शोषण, विस्थापन और गरीबी को समझाना।
- मध्य प्रदेश में जनजातियों के विकास के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयासों और उनकी प्रभावशीलता का आकलन करना।
- जनजातीय समाज की संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण के महत्व को उजागर करना।

10.3 मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातियाँ (संशोधन 1976)

1976 के संशोधन के परिणामस्वरूप मध्य प्रदेश में जनजातियों की कुल संख्या 46 है। साथ ही जनजातियों के अलग उपभाग हैं, जिन्हें इस संशोधन में सम्मिलित किया गया है। सबसे अधिक उपजातियाँ या शाखाएं गोंडी की हैं, जो कुल 54 है। मध्यप्रदेश में अधिसूचित जनजातियों के विवरण को निम्न तालिका में दर्शाया गया है :-

मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातियाँ (संशोधन 1976)

1. अगरिया	2. आन्ध	3. बैगा	4. भैना

5. भारिआ भूमिआ, भुईआर भूमियाँ, भूमिआ, भारिया, पालिहा, पांडो

6. भतरा 7. भील, भिलाला, बरेला, पटलिया 8. भील मीण

9. भूजिया 10. बीर, बीर 11. बिंझवार 12. बिरहुल, बिरहोर

13. दमोर, दामरिया 14. धनवार 15. गदाबा, गदबा

16. गोंड, अरख, आरख, अगरिया, असुर, बड़ी मारिया, बड़ा मारिया, भटोला भीमा, भुता, कोइलाभुता, कोइलाभुती, भार, विसोनहार्न मारिया, छोटा मारिया, दंडामी मारिया, धुरु, धुरंवा, धैबा, दुलिया, डोरला, गायकी, गट्टा-गट्टी, गैटा, गोड गोवारी, हिल मारिया, कंडरा, कलंगा, खोला, कोइतर, कोया, खिरवार, खिरवारा, कुचामारिया, कुचाकी मारिया, माडिया, मारिया, माना, मन्नेवार, मोहया, मोगिया, गोधया, मुड़िया, मुरिया, नगारची-नागवंशी, ओझा, राज, सोन्झारी, झरेका, थाटिया, थोटया, वाडे-माडिया, वडेमाडिया, दरोई

17. हलबा, हलबी 18. कमार 19. कारकू

20. कवर, कंवर, कौर, चेरवा, राठिया, तंवर, छत्री,

21. कीर, (भोपाल, रायसेन और सीहोर जिलो में)

22. खैरवार, कोदर 23. खरिया 24. कोंध, खोंड, कंघ

25. कोल 26, कोलम 27. कोरकू, बोपची, मवासी, निहाल, नाहुल, बौंधी, बोंडेया

28. कोरवा, कोडाकू 29. माझी 30. मझवार 31. मवासी

32. मीण (विदिशा जिले के सिरोंज सब-डिवीजन में)

33. मुंडा 34. नगेसिया, नगासिया, 35. उरांव, धानका, धनगड़

36.पनिका (छतरपुर, दतिया, पन्ना, रीवा, सतना, शहडोल, सीधी और टीकमगढ़ जिलों में) 37. पाव 38. परधान पथारी, सरोती

39. पारधी, (भोपाल, रायसेन और सीहोर जिलों में)

40. पारधी, बहेलिया, बहेल्लिया, चिता पाधी, लंगोली पारधी, फांस पारधी, शिकारी, टाकनकर, टाकिया [(1) बस्तर, छिन्दवाड़ा, मंडला, रायगढ़, सिवनी और सरगुजा जिलों में (2) बालाघाट जिले की बैहर तहसील में (3) बैतूल जिले के बैतूल और भैंसदेही तहसीलों में (4) बिलासपुर जिले की बिलासपुर और कटघोरा तहसीलों में (5) दुर्ग जिले की दुर्ग और बालोद तहसीलों में (6) राजनांदगाँव जिले के चौकी मानपुर और महाला राजस्व निरीक्षकों के क्षेत्रों में (7) जबलपुर जिले के मुरवारा, पाटन और सीहोरा तहसीलों में (8) होशंगाबाद जिले की होशंगाबाद और सोहागपुर तहसीलों में और नरसिंहपुर जिले में (9) खण्डवा जिलेकी हरसूद तहसील में (10) रायपुर जिले की बिन्द्रा नवागढ़, धमतरी और महासमुन्द्र तहसीलों में.]

41. परजा 43. सौता, सौता

42. सहारिया, सहरिया, सेहरिया, सेहिया, सोसिया, सोर

44. सौर 45. सावर, सावरा 46. सौंर

मध्यप्रदेश विशाल राज्य है तथा यहाँ जनजातियों का प्रतिशत भी अधिक है। साथ ही ये जनजातियाँ प्रायः पूरे प्रदेश में फैली हुई हैं। अनेक जिले ऐसे हैं, जहां जनजातियों का प्रतिशत 80 से भी अधिक है। उदाहरण के लिए झाबुआ। कुछ जिले में जनजातियाँ अत्यन्त ही अल्प मात्रा में हैं। निम्न तालिका में मध्यप्रदेश में जनजातियों के साथ उन जिलों को दिखाया गया है, जहाँ इनका निवास स्थल है-

मुख्य निवास क्षेत्र (जिले), (नवीन 16 जिलों के गठन के पूर्व की स्थिति)

क्रमांक	**जनजाति का नाम**	**मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)**
1	**अगरिया**	**सरगुजा, शहडोल, बिलासपुर, मंडला, रायगढ़**
2	**आन्ध**	**महाराष्ट्र (म.प्र. में अल्पसंख्या में आवर्जित)**

क्रमांक	जनजाति का नाम	मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)
3	बैगा	शहडोल, मंडला, सीधी, बिलासपुर, बालाघाट, सरगुजा, राजनांदगाँव, जबलपुर
4	भैना	बिलासपुर, रायगढ़, शहडोल, मंडला, रायपुर
5	भारिया,भुमिया, भुईआर, पांडो	जबलपुर, सरगुजा, रायगढ़, शहडोल, छिंदवाड़ा, बिलासपुर, मंडला, सिवनी
6	भतरा	बस्तर
7	भील, भिलाला, बारेला, पटलिया	झाबुआ, धार, खरगोन, रतलाम, मंदसौर
8	भील मीणा	मंदसौर, रतलाम
9	भुजिया	रायपुर
10	बियार, बीआर	सीधी, सरगुजा, बिलासपुर, रायगढ़
11	बिंझवार	रायपुर, बिलासपुर, रायगढ़, सरगुजा
12	बिरहुल, बिरहोर	रायगढ़
13	डामोर, डामरिया	झाबुआ, रतलाम, मंदसौर
14	धनवार	बिलासपुर, सरगुजा, रायगढ़
15	गदबा, गदाबा	बस्तर

क्रमांक	जनजाति का नाम	मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)
16	गोंड (उपजातियाँ - मारिया, मुरिया आदि)	बस्तर, मण्डला, रायपुर, बिलासपुर, सरगुजा, बालाघाट, छिंदवाड़ा, सिवनी, बैतूल, जबलपुर, रायसेन, पन्ना, सतना, दमोह आदि
17	हलबा, हलबी	दुर्ग, बस्तर, रायपुर, राजनांदगाँव
18	कमार	रायसेन, सीहोर
19	कारकू	बिलासपुर, रायगढ़, सरगुजा, रायपुर
20	कंवर (उपजातियाँ - राठिया, तनवर)	बिलासपुर, रायगढ़, सरगुजा
21	खैरवार, कोंदर	रायगढ़, बिलासपुर, सरगुजा
22	खरिया	रायपुर, रायगढ़
23	कोरवा, कोडाकू	रायगढ़, बिलासपुर, सरगुजा
24	माझी	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
25	मुंडा	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
26	नगेसिया	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
27	उराव, धानका	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
28	पनिका	सीधी, शहडोल

क्रमांक	**जनजाति का नाम**	**मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)**
29	**परधान**	**मंडला, सिवनी, बालाघाट, जबलपुर**
30	**परजा**	**बस्तर**
31	**सहारिया**	**गुना, शिवपुरी, मुरैना, सीहोर**
32	**सावरा**	**रायगढ़, रायपुर, बिलासपुर**
33	**सोर**	**रायगढ़, रायपुर**

तालिका 2: छत्तीसगढ़ के अनुसार मुख्य जनजातीय समूह

क्रमांक	**जनजाति का नाम**	**मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)**
1	अगरिया	सरगुजा, रायगढ़, कोरबा, जशपुर
2	बैगा	कवर्धा, मुंगेली, बिलासपुर
3	भैना	बिलासपुर, रायगढ़, कोरबा
4	भतरा	बस्तर, दंतेवाड़ा, कांकेर
5	भील, भिलाला	रायपुर, दुर्ग (आवर्जित रूप से)
6	भुजिया	रायपुर, महासमुंद
7	बियार, बीआर	सरगुजा, रायगढ़

क्रमांक	जनजाति का नाम	मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)
8	बिंझवार	रायगढ़, बिलासपुर, कोरबा
9	बिरहुल, बिरहोर	रायगढ़, सरगुजा
10	धनवार	सरगुजा, जशपुर
11	गदबा, गदाबा	बस्तर, दंतेवाड़ा

तालिका: मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजातियाँ और उनके निवास क्षेत्र

क्रमांक	जनजाति का नाम	मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)
1	अगरिया	सरगुजा, शहडोल, बिलासपुर, मंडला, रायगढ़
2	आन्ध	महाराष्ट्र (अल्पसंख्या में म.प्र. और छत्तीसगढ़ में)
3	बैगा	शहडोल, मंडला, सीधी, बिलासपुर, बालाघाट, सरगुजा, राजनांदगाँव, कवर्धा, मुंगेली
4	भैना	बिलासपुर, रायगढ़, शहडोल, मंडला, रायपुर, कोरबा
5	भारिया, भुमिया, भुईआर, पांडो	जबलपुर, सरगुजा, रायगढ़, शहडोल, छिंदवाड़ा, बिलासपुर, मंडला, सिवनी
6	भतरा	बस्तर, दंतेवाड़ा, कांकेर

क्रमांक	जनजाति का नाम	मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)
7	भील, भिलाला, बारेला, पटलिया	झाबुआ, धार, खरगोन, रतलाम, मंदसौर
8	भील मीणा	मंदसौर, रतलाम
9	भुजिया	रायपुर, महासमुंद
10	बियार, बीआर	सीधी, सरगुजा, बिलासपुर, रायगढ़
11	बिंझवार	रायपुर, बिलासपुर, रायगढ़, सरगुजा
12	बिरहुल, बिरहोर	रायगढ़, सरगुजा
13	डामोर, डामरिया	झाबुआ, रतलाम, मंदसौर
14	धनवार	बिलासपुर, सरगुजा, रायगढ़
15	गदबा, गदाबा	बस्तर
16	गोंड (उपजातियाँ - मारिया, मुरिया आदि)	बस्तर, मण्डला, रायपुर, बिलासपुर, सरगुजा, बालाघाट, छिंदवाड़ा, सिवनी, बैतूल, जबलपुर, रायसेन, पन्ना, सतना, दमोह आदि
17	हलबा, हलबी	दुर्ग, बस्तर, रायपुर, राजनांदगाँव
18	कमार	रायसेन, सीहोर, गरियाबंद, धमतरी
19	कारकू	बिलासपुर, रायगढ़, सरगुजा, रायपुर

क्रमांक	जनजाति का नाम	मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)
20	कंवर (उपजातियाँ - राठिया, तनवर)	बिलासपुर, रायगढ़, सरगुजा
21	खैरवार, कोंदर	रायगढ़, बिलासपुर, सरगुजा
22	खरिया	रायपुर, रायगढ़
23	कोरवा, कोडाकू	रायगढ़, बिलासपुर, सरगुजा
24	माझी	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
25	मुंडा	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
26	नगेसिया	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
27	उराव, धानका	रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर
28	पनिका	सीधी, शहडोल
29	परधान	मंडला, सिवनी, बालाघाट, जबलपुर
30	परजा	बस्तर
31	सहारिया	गुना, शिवपुरी, मुरैना, सीहोर
32	सावरा	रायगढ़, रायपुर, बिलासपुर
33	सोर	रायगढ़, रायपुर

क्रमांक	जनजाति का नाम	मुख्य निवास क्षेत्र (जिले)
34	कोरकू	बैतूल, खंडवा, होशंगाबाद, खरगोन, छिंदवाड़ा
35	अबुझमाड़िया	बस्तर (अबुझमाड़ क्षेत्र

मध्य प्रदेश में गोंडों की जनसंख्या सबसे अधिक है। प्रदेश में इनका स्थान पहले नम्बर पर है तथा कुल जनसंख्या में इनका प्रतिशत 44.63 है। गोंडों के बाद दूसरा और तीसरा स्थान क्रमशः भील-भिलाला और कवर का है, जो कुल जनजातीय जनसंख्या के 20.87 और 4.69 प्रतिशत हैं। कुछ ऐसी भी जनजातियाँ हैं, जिनका प्रदेश की कुल जनसंख्या में प्रतिशत 00.10 से कम है। इन जनजातियों के नाम हैं- आंध, भील-मीणा, भुंजिया, वियार, बिरहुल-विहोर, उमोर, गदवा, कारकू, कीर, खरिया, कोलम, मांझी, मम्मवार, मवासी, मीना पाव, सोता, आदि।

मध्यप्रदेश की जनजातियों में साक्षरता का प्रतिशत भी कम है। हलवा प्रदेश की सबसे अधिक साक्षर जनजाति है। इनका प्रदेश में पहला स्थान है तथा साक्षरता का प्रतिशत 28.76 है। हलवा के बाद दूसरा स्थान उरांव का तथा तीसरा स्थान आंध का है। इनका साक्षरता प्रतिशत क्रमशः 22.61 तथा 22.22 प्रतिशत है। गोंड जो सबसे बड़ी जनजाति है उसमें साक्षरता का प्रतिशत मात्र 12.46 है।s

10.4 मध्य प्रदेश की जनजातियों की सामान्य विशेषताएँ (General characteristics of the tribes of Madhya Pradesh)

मध्यप्रदेश की जनजातियों की कुछ प्रमुख सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) सामान्यतया सभी जनजातियाँ सम्यक् जनसंख्या से दूर निवास करती हैं। वे सामान्यतया जंगलों, पहाड़ों और घाटियों में निवास करती हैं।

(2) मध्यप्रदेश की 90% से भी अधिक जनजातियाँ प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में निवास करती हैं।

(3) जहाँ तक उनकी प्रजातीय विशेषताओं का सम्बन्ध है, सामान्यतया, वे या तो मंगोलायड स्कन्ध की हैं या निग्रोयाड या आस्ट्रेलायड स्कन्ध की। गाने एकाकी

(4) मध्यप्रदेश की सभी जनजातियाँ अपनी जनजातीय बोली बोलती हैं। अधिकांश जनजातियाँ 'गोंडी' भाषा बोलती हैं।

(5) सभी जनजातियों का उनके धर्म में विश्वास हैं। एक जनजाति में धर्म के स्वरूप और उसकी प्रकृति में दूसरों से भिन्नता है। भूत-प्रेतों का जनजातियों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।

(6) जहाँ तक व्यवसाय या जनजातीय अर्थव्यवस्था का सम्बन्ध है, सामान्यतया वे शिकारी, फल-फूल इकट्ठा करने वाले, पशुपालक, स्थानान्तरित कृषक, व्यवस्थित कृषक हैं। प्रौद्योगिकीय विकास और आधुनिक आवागमन और संचार साधनों के परिणामस्वरूप जनजातियाँ कारखानों और उद्योगों में कार्य कर रही हैं। उनको शासकीय नौकरियों में भी उचित प्रतिनिधित्व मिल रहा है।

(7) जहाँ तक उनके भोजन का सम्बन्ध है, वे मांस खाते हैं। इसके साथ ही वे जंगली उत्पादनों-फल, जड़, पत्तियाँ और फूल को ग्रहण करते हैं। वे अन्न का भी भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं, किन्तु ये अन्न सामान्यतया मोटे किस्म के होते हैं।

(8) वे शरीर-सज्जा के प्रेमी है। वे वस्त्रों को धारण करते हैं, किन्तु आज भी मध्यप्रदेश की अनेक जनजातियाँ हैं, जो अर्धनग्नावस्था में रहती हैं।

(9) यद्यपि अधिकांश जनजातियाँ व्यवस्थित रूप से एक स्थान में निवास करने लगी हैं, फिर भी आज भी अनेक जनजातियाँ घुमन्तु जीवन व्यतीत करती हैं और जिन्हें 'नशा और नृत्य' से प्रेम है।

(10) आधुनिक संचार साधनों के परिणामस्वरूप जनजातियों का क्षेत्रीय जीवन विस्तृत होता जा रहा है और वे अन्य जनजातियों तथा अजनजातीय जनसंख्या के सम्पर्क में आती जा रही हैं।

10.5 मध्य प्रदेश में जनजातीय समस्याएँ (Tribal Problems in Madhya Pradesh)

भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रदेशों और केन्द्र शासित क्षेत्रों में जनजातियाँ न्यूनाधिक मात्रा में पाई जाती हैं। मध्यप्रदेश की प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ सबसे अधिक जनजातियाँ निवास करती हैं और इनका सम्पूर्ण प्रदेश की जनसंख्या में 3/5 वाँ भाग है। इसके साथ ही यहाँ पर अत्यधिक सभ्यता से दूर तथा पूर्ण सभ्य दोनों प्रकार की जनजातियाँ निवास करती हैं।

जहाँ तक मध्य प्रदेश में जनजातीय समस्याओं का प्रश्न है यहाँ की समस्याएँ भी उसी प्रकृति की है, जिस प्रकार की समस्याएँ सम्पूर्ण भारतीय जनजातियों की हैं। इसलिए मध्यप्रदेश के जनजातियों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए 'भारत में जनजातीय जीवन' नामक अध्याय में भारत में जनजातीय समस्याओं की सामान्य जानकारी प्राप्त करें। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश में निवास करने वाली जनजातियों की जो प्रमुख समस्याएँ हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

(1) स्थानान्तरित कृषि- मध्यप्रदेश की जनजातियों की समस्याओं में स्थानान्तरित कृषि (Shifting cultivation) की समस्या प्रमुख हैं। मध्यप्रदेश में करीब 30000 जनजातियाँ इस प्रकार की कृषि करती है और ऐसी खेती में करीब 44000 एकड़ भूमि का उपयोग किया जाता है।

मध्यप्रदेश में इतनी अधिक मात्रा में स्थानान्तरित कृषि की जाती है। इससे अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा होती हैं। इन समस्याओं में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं -

(a) मानव श्रम के बर्बादी की समस्या,

(b) जंगलों के पतन की समस्या,

(c) कम पैदावार की समस्या, और

(d) खाद्य पदार्थों के अभाव की समस्या।

(2) संचार साधनों का अभाव मध्य प्रदेश के जनजातियों की जो दूसरी प्रमुख समस्या है, वह यहहै कि यहाँ आवागमन तथा संचार के साधनों की कमी है। पूरा मध्य प्रदेश जंगलों और पहाड़ों से घिरा है, विशाल नदी और नाले हैं तथा हिंसक पशु निवास करते हैं। रेलमार्गों की तो कमी है ही, सड़क यातायात का भी अभाव है। यातायात के अभाव की यह समस्या वर्षा में और भी उग्र हो जाती है, जब कच्ची सड़कें बन्द हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जन्मजातियाँ अन्य जनसंख्या के सम्पर्क में नहीं आ पाती हैं। इस प्रकार उनमें जागरूकता का विकास नहीं हो पाता है।

(3) अशिक्षा- अशिक्षा तीसरी बड़ी समस्या है। अशिक्षा के कारण उनका मानसिक विकास नहीं हो पाता है इससे वे पुरानी परम्पराओं और प्रथाओं से चिपके रहना चाहते हैं। उन्हें समाज, देश तथा विश्व के बारे में जानकारी नहीं हो पाती है। इससे भी वे प्रगति नहीं कर पाते हैं।

(4) आर्थिक समस्याएँ- मध्यप्रदेश के जनजातियों की जो प्रमुख समस्या है, वह आर्थिक है। इनकी जो प्रमुख आर्थिक समस्याएँ हैं, उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) ऋणग्रस्तता की समस्या,

(b) वस्त्राभाव की समस्या,

(c) भोजन की समस्या,

(d) औद्योगिक क्षेत्रों की समस्याएँ।

(5) सामाजिक समस्याएँ- मध्य प्रदेश की जनजातियों में सामाजिक समस्याएँ भी अत्यधिक मात्रा में हैं। उनके सामाजिक जीवन से सम्बन्धित जो प्रमुख समस्याएँ हैं, उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) बाल विवाह की समस्या,

(b) कन्यामूल्य की समस्या,

(c) स्त्रियों की निम्न स्थिति,

(d) युवागृहों की पतन।

(6) अन्य समस्याएँ- मध्यप्रदेश की जनजातियों का जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं से भरा हुआ है। ऊपर जिन समस्याओं की चर्चा की गई है, उनके अतिरिक्त जनजातियों के जीवन में अनेक समस्याएँ हैं। इन समस्याओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) धार्मिक समस्याएँ,

(b) भाषा सम्बन्धी समस्याएँ,

(c) आवास समस्याएँ,

(d) परिस्थिति से सम्बन्धित समस्याएँ,

(e) जंगलों से सम्बन्धित समस्याएँ,

(f) स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं,

(g) ललित कलाओं के पतन की समस्या।

मध्यप्रदेश में जनजातीय कल्याण

(Tribal Welfare in Madhya Pradesh)

मध्यप्रदेश में उपर्युक्त समस्याओं के सन्दर्भ में शासकीय और गैर शासकीय संस्थाओं द्वारा अनेक कार्य किए गए हैं। इससे पहले वाला अध्याय 'भारत में जनजातीय जीवन' के अन्तर्गत भारत में किए गए जनजातीय कल्याण कार्यों की विवेचना की गई है। उसमें जनजातियों के कल्याण से सम्बन्धित जो संवैधानिक व्यवस्थाएँ, प्रशासकीय व्यवस्थाएँ, पंचवर्षीय योजनाओं आदि में व्यवस्थाएँ हैं, वे मध्यप्रदेश में भी लागू होती हैं। अतः विस्तृत अध्ययन उसी अध्याय से किया जाय। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश में जनजातियों के कल्याण की जो विशिष्ट व्यवस्थाएँ हैं, उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जात सकता है-

(1) जनजातीय विकास खण्ड (Tribal Blocks)- मध्यप्रदेश में सामुदायिक योजनाएँ 1953-54 में प्रारम्भ की गई थीं। जनजातियों के कल्याण को ध्यान में रखकर शासन ने जनजातीय बहुल क्षेत्रों में 'विशेष बहुउद्देशीय जनजातीय विकास खण्ड' (Speical Multipurpose Tribal Blocks) स्थापित किए थे। मध्यप्रदेश के जिन ब्लाकों को विशेष बहुउद्देशीय जनजातीय विकास खन्ड में परिवर्तित किया गया था, वे निम्न हैं-()

(a) बस्तर जिला (b) बिलासपुर जिला का

(i) दन्तेवाड़ा,. (i) पीड़ी उपरोरा (ii) नारायणपुर

(c) रायगढ़ जिला (d)सरगुजा जिला

(i)बगीचा (i) जनकपुर

(e) शहडोल जिला (b) बैतूल जिला

(i) पुष्पराजगढ़ (i) भीमपुर

(g) छिंदवाड़ा जिला (h) झाबुआ जिला

(i) तामिया (i) अलीराजपुर

(i) पश्चिमी निमाड़

(i) बड़वानी

(2) गैर सरकारी संस्थाएँ- मध्यप्रदेश में कुछ अशासकीय संस्थाएँ भी हैं, जो जनजातियों के कल्याण- कार्यों में लगी हुई हैं। इन संस्थाओं में प्रमुख निम्न हैं-

(a) ग्राम भारती आश्रम, तलबाई, जिला धार।

(b) कस्तूरबा वनवासी कन्या आश्रम, निवाली, जिला पश्चिमी निमाड़ (खरगौन)।

(c) आदिवासी विकास केन्द्र, बलवाई, जिला पश्चिमी निमाड़ (खरगौन)।

(d) मध्यप्रदेश सहरिया सेवा संघ, ग्वालियर।

(e) आदिवासी सेवा संघ, भोपाल।

(f) बस्तर जिला महिला मण्डल, जगदलपुर।

(g) भारतीय आदिवासी सेवक संघ, भोपाल।

(j) मध्य प्रदेश खादी एवं ग्रामोद्योग मंडल, मसाबामा

(i) वनवासी सेवा मंडल, मंडला।

(3) अनुसंधान संस्थान - मध्यप्रदेश में जनजातियों की संस्कृति, परम्परा और साहित्य का अध्ययन करने के लिए राज्य सरकार ने छिन्दवाड़ा में 'जनजातीय अनुसंधान केन्द्र' (Tribal Research Centre) की स्थापना की है। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य जनजातियों का गम्भीरता से अध्ययन करना और कल्याणकारी योजनाओं को प्रस्तुत करना होता है। इस संस्था में उन व्यक्तियों को प्रशिक्षण भी दिया जाता है, जो जनजातीय क्षेत्रों में कल्याण- कार्यों का सम्पादन करते हैं।

मध्यप्रदेश के अनेक विश्वविद्यालय जनजातीय अनुसंधान से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इन विश्वविद्यालयों में सागर, जबलपुर और रायपुर विश्वविद्यालायों के कार्य सराहनीय है।

(a) शिक्षा के प्रसार के लिए जनजातीय क्षेत्रों में विद्यालयों की स्थापना। edbeM

(b) निःशुल्क शिक्षा-व्यवस्था।

(c) जनजातीय छात्रों को वजीफा, पुस्तकें, ड्रेस तथा अन्य शिक्षण सुविधाएँ। ठिका

(d) छोटे विद्यालयों में दोपहर के खाने की व्यवस्था। जर पत्रকজানাকানটা রিচাজ্যের

(e) छात्रावास की व्यवस्था।

(f) छात्रावास में रहने वाले छात्रों के लिए ट्यूशन की व्यवस्था।

(5) सरकारी सेवाओं में स्थान जनजाति के व्यक्तियों को सरकारी सेवाओं में स्थान दिलाने के लिए मध्यप्रदेश सरकार ने निम्न व्यवस्था की है-

(a) सरकारी सेवाओं में जनजातियों के लिए 18% स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था।

(b) जनजातियों को आयु के सम्बन्ध में विशेष छूट देना।

(c) साक्षात्कार के लिए आने वाले जनजाति के सदस्यों को मार्ग-व्यय देना।

(6) आर्थिक कल्याण- मध्यप्रदेश में जनजातियों के आर्थिक कल्याण की दृष्टि से शासन ने जो कार्य किये हैं, उनका विवरण निम्नलिखित है-

(a) भूमिहीन जनजातियों को भूमि का वितरण।

(b) कृषि के लिए ऋण, अच्छे खाद-बीज तथा अच्छी नस्ल के पशु और उन्नत औजार प्रदान करना।

(c) कृषि सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रदान करना।

(d) पशु-चिकित्सालयों की स्थापना करना।

(e) साहूकारों के चंगुल से छुड़ाना और ऋणमुक्त करना।

(f) विभिन्न उद्योगों तथा कार्यों के लिए ऋण देना।

(g) स्थानान्तरित कृषि पर रोक लगाना।

(h) सहकार खेती को प्रोत्साहित करना।

(i) जनजातीय क्षेत्रों में विभिन्न उद्योगों की स्थापना करना।

(7) प्रजातन्त्र में सहभागिता प्रजातन्त्र के कार्यों में जनजातियों को उचित प्रतिनिधित्व मिले, इसके लिए विधान सभा क्षेत्रों को जनजातियों के लिए सुरक्षित कर दिया गया है। उन्हें पंचायतों में उचित स्थान दिया गया है तथ उनके स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं।

(8) अन्य कल्याण कार्य- उपर्युक्त कल्याण कार्यों के अतिरिक्त जनजातियों के कल्याण की दृष्टि से जो कार्य किये जा रहे हैं, वे निम्न हैं-

(a) जनजातीय क्षेत्रों में आवागमन और संचार की सुविधाओं का विकास।

(b) रेडियों के द्वारा जागरूकता।

(c) चलचित्रों के माध्यम से कल्याण-कार्यों को प्रोत्साहन ।

(d) स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करना।

(e) कानूनी सलाह और सहायता देना।

10.6 सार संक्षेप

मध्य प्रदेश भारत का एक प्रमुख राज्य है, जहाँ जनजातीय समाज की बड़ी आबादी निवास करती है। यहाँ गोंड, भील, कोरकू, बैगा, और सहरिया जैसी प्रमुख जनजातियाँ पाई जाती हैं। जनजातीय समाज अपनी अनूठी संस्कृति, परंपराओं, और रीति-रिवाजों के लिए प्रसिद्ध है। हालांकि, औपनिवेशिक काल और स्वतंत्रता के बाद भी ये समाज शोषण, विस्थापन और गरीबी का सामना करता रहा है। मध्य प्रदेश में जंगल और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता जनजातीय जीवन का आधार है, लेकिन विकास परियोजनाओं, वन अधिनियम, और बाहरी हस्तक्षेपों ने उनकी आजीविका पर गंभीर प्रभाव डाला है।

आजादी के बाद राज्य और केंद्र सरकार ने इनके विकास के लिए कई नीतियाँ बनाई, जैसे वन अधिकार अधिनियम, विशेष क्षेत्रीय योजनाएँ और आरक्षण, लेकिन इन प्रयासों के बावजूद जनजातीय समाज अब भी शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार के क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ है। इस इकाई का अध्ययन छात्रों को मध्य प्रदेश में जनजातीय समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को समझने में मदद करता है।

स्व -प्रगति परिक्षण

प्रश्न 1. मध्य प्रदेश में प्रमुख जनजातियाँ कौन-सी हैं?

प्रश्न 2. जनजातीय संस्कृति के प्रमुख तत्व क्या हैं?

प्रश्न 3. जनजातीय क्षेत्रों में मुख्य आजीविका का साधन क्या है?

10.7 मुख्य शब्द

1. **जनजाति -** पारंपरिक रीति-रिवाजों और संस्कृति के साथ रहने वाला समुदाय।

2. **विस्थापन -** किसी व्यक्ति या समुदाय को उनकी जगह से हटाकर अन्यत्र बसाने की प्रक्रिया।

3. **शोषण -** किसी के श्रम या संसाधनों का अनुचित लाभ उठाना।

4. **वन अधिकार अधिनियम -** जंगलों पर आदिवासियों के पारंपरिक अधिकारों को मान्यता देने का कानून।

5. **आरक्षण -** सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा, रोजगार आदि में विशेष अवसर प्रदान करना।

10.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर;1 गोंड, भील, कोरकू, बैगा, सहरिया।

उत्तर;2 नृत्य, संगीत, कला, और प्रकृति पूजा।

उत्तर;3 कृषि, वनोपज संग्रह, और पशुपालन।

10.9 सन्दर्भ सूची

1. Bhowmik, S. K. (2008). Tribal Movements in India. Oxford University Press.

2. Singh, K. S. (1985). Tribal Society in India: An Anthropological Perspective. Manohar Publications.

3. Mahapatra, L. K. (1997). Modernization and Tribal Identity. Economic and Political Weekly, 32(20), 1215-1220.

4. Xaxa, V. (2008). State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India. Pearson.

5. Government of Madhya Pradesh. (2016). Status Report on Tribal Welfare in Madhya Pradesh. Tribal Welfare Department.

10.10 अभ्यास प्रश्न

1. मध्य प्रदेश के जिलों की सामान्य सुविधाएँ।

Write the general characteristics of the tribes of Madhya Pradesh.

2. मध्य प्रदेश में जनजातीय समस्याएँ लिखें।

Write the problems of the tribals of Madhya Pradesh. Tribals.

3. मध्यप्रदेश में जनजातीय कल्याण पर टिप्पणी लिखिए।

Write short note on Tribal welfare schemes in M.P.

इकाई -11

जनजातियाँ-छत्तीसगढ़ में परिदृश्य

(TRIBES- SCENARIO IN CHHATTISGARH)

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 भारत के राज्य व अनुसूचित जनजाति जनसंख्य 1991

11.4 छत्तीसगढ़ के जिलो का क्षेत्र फल

11.5 छत्तीसगढ़ में जनजातीय समस्याएँ (कंवर, उरांव)

11.6 सार संक्षेप

11.7 मुख्य शब्द

11.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.9 सन्दर्भ सूची

11.10 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारत की अनुसूचित जनजातियाँ देश की जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान के साथ राष्ट्र की विविधता को समृद्ध करती हैं। भारतीय संविधान ने इन्हें विशेष संरक्षण प्रदान किया है ताकि ये आर्थिक, सामाजिक, और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर कर मुख्यधारा में शामिल हो सकें।

अनुसूचित जनजातियों की पहचान के लिए समय-समय पर भारत के राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचनाएँ जारी की जाती हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार, अनुसूचित जनजातियों

का भारत की कुल जनसंख्या में 8.08% योगदान था। इन जनजातियों का जीवन मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों, वनों और पहाड़ी इलाकों में केंद्रित है।

अनुसूचित जनजातियों के लिए सरकार की प्रमुख पहलें

संवैधानिक संरक्षण: संविधान में अनुच्छेद 46 के तहत अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों की सुरक्षा के प्रावधान हैं।

विशेष योजनाएँ: शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार में सुधार के लिए विशेष प्रयास किए जाते हैं।

आर्थिक सहयोग: जनजातियों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए वन अधिकार अधिनियम और लघु वनोपज प्रोत्साहन जैसी नीतियाँ लागू की गई हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- छत्तीसगढ़ की जनजातियों और उनकी सामाजिक संरचना को समझ सकेंगे।
- जनजातीय जीवन की प्रमुख समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- विकास परियोजनाओं के प्रभाव को समझने के लिए संसाधनों के वितरण की दिशा तय कर सकेंगे।
- जनजातीय समाज में रोजगार और सामाजिक समानता के लिए आवश्यक नीतियों का निर्माण कर सकेंगे।
- जनजातीय संस्कृति और उनके संरक्षण के उपायों का आकलन कर सकेंगे।

11.3 भारत के राज्य व अनुसूचित जनजाति जनसंख्य 1991

1991 की जनगणना के अनुसार छत्तीसगढ़ की कुल जनसंख्या 1,76,14,928 है जिसमें से 21,46,000 (12.1 प्रतिशत) अनुसूचित जातियों तथा 57,17,124 (32.46 प्रतिशत) अनुसूचित जनजातियों का है। भारत में राज्यवार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या को निम्न तालिका में दिखाया गया है-

क्रभारत की राज्यवार अनुसूचित जनजाति जनसंख्या, 1991

Sl. No.	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	कुल जनसंख्या	अनु. जनजाति जनसंख्या	कुल जनसंख्या में % व क्रम	कुल जनजातीय जनसंख्या का % व क्रम
1	आंध्रप्रदेश	6,55,08,008	41,19,481	6.31 (19)	6.08 (7)
2	अरुणाचल प्रदेश	8,64,558	5,50,351	63.66 (6)	0.81 (16)
3	असम	2,24,14,322	28,74,441	12.82 (13)	4.24 (9)
4	बिहार	8,63,74,465	66,16,914	7.66 (18)	9.76 (4)
5	गो	11,69,793	376	0.03 (26)	0.001 (26)
6	गुजरात	4,13,09,582	61,61,775	14.92 (12)	9.09 (5)
7	हरियाणा	1,64,63,648	निरंक	निरंक	
8	हिमाचल प्रदेश	51,70,877	2,18,349	4.22 (22)	0.32 (19)
9	जम्मू और कश्मीर	77,18,700	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	

10	कर्नाटक	4,49,77,201	19,15,691	4.26 (21)	2.83 (10)
11	केरल	2,90,98,518	3,20,967	1.10 (23)	0.47 (17)
12	मध्यप्रदेश	6,61,81,170	1,53,99,034	23.27 (9)	22.73 (1)
13	महाराष्ट्र	7,89,37,187	73,19,281	9.27 (17)	10.80 (2)
14	मणिपुर	18,37,149	6,32,173	34.41 (7)	0.93 (14)
15	मेघालय	17,74,778	15,17,927	85.53 (4)	2.24 (11)
16	मिजोरम	6,89,756	6,53,565	94.75 (1)	0.96 (13)
17	नागालैण्ड	12,09,546	10,60,822	87.70 (3)	1.57 (12)
18	उड़ीसा	3,16,59,736	70,32,214	22.21 (11)	
19	पंजाब	2,02,81,969			
20	राजस्थान	4,40,05,980	54,74,881	12.44 (14)	
21	खंड	4,06,457	90,901	22.36 (10)	
22	तमिलनाडु	5,58,58,946	5,74,194	1.03 (24)	
23	त्रिपुरा	27,57,205	85,345	30.95 (8)	
24	उत्तरप्रदेश	13,91,12,287	2,87,901	0.21 (25)	

25	पश्चिम बंगाल	6,80,77,965	38,08,760	5.59 (20)	10.38 (3)
26	अण्डमान एवं निकोबार	2,80,661	26,770	9.54 (16)	0.04 (24)
27	चंडीगढ़	6,42,015			
28	दादर और नगर हवेली	1,34,477	1,09,380	78.99 (5)	0.16 (20)
29	दमन और दीव	1,01,586	11,724	11.54 (15)	0.02 (25)
30	दिल्ली	94,20,644			
31	लक्षदीप	51,707	48,163	93.15 (2)	0.07 (23)
32	पांडिचेरी	8,07,785			
33	भारत	84,63,02,688	6,77,58,380	8.08	

11.4 छत्तीसगढ़ के जिलो का क्षेत्र फल

छत्तीसगढ़ राज्य, जो 1 नवंबर 2000 को अस्तित्व में आया, वर्तमान में 33 जिलों में विभाजित है। राज्य का कुल क्षेत्रफल लगभग 135,194 वर्ग किलोमीटर है, जो इसे भारत के बड़े राज्यों में से एक बनाता है।

प्रमुख जिलों और उनके क्षेत्रफल की जानकारी:

- **बस्तर जिला**: यह जिला अपने घने जंगलों और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए प्रसिद्ध है।
- **दंतेवाड़ा जिला**: यह जिला प्राकृतिक सौंदर्य और धार्मिक स्थलों के लिए जाना जाता है।
- **सुकमा जिला**: यह जिला अपने वन्य जीवन और प्राकृतिक संसाधनों के लिए महत्वपूर्ण है।
- **राजनांदगांव जिला**: यह जिला ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व रखता है।
- **रायपुर जिला**: यह जिला राज्य की राजधानी होने के साथ-साथ व्यापारिक केंद्र भी है।
- **बिलासपुर जिला**: यह जिला शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के लिए प्रसिद्ध है।
- **कोरबा जिला**: यह जिला ऊर्जा उत्पादन के लिए जाना जाता है।
- **सरगुजा जिला**: यह जिला आदिवासी संस्कृति और प्राकृतिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है।
- **जशपुर जिला**: यह जिला प्राकृतिक दृश्यावलियों और जनजातीय संस्कृति के लिए जाना जाता है।
- **कांकेर जिला**: यह जिला ऐतिहासिक किलों और प्राकृतिक संसाधनों के लिए महत्वपूर्ण है।
- **महासमुंद जिला**: यह जिला कृषि और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए प्रसिद्ध है।
- **दुर्ग जिला**: यह जिला औद्योगिक विकास और शिक्षा के लिए जाना जाता है।
- **कवर्धा (कबीरधाम) जिला**: यह जिला धार्मिक स्थलों और प्राकृतिक सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है।
- **धमतरी जिला**: यह जिला जल संसाधनों और कृषि के लिए महत्वपूर्ण है।

- **गरियाबंद जिला**: यह जिला वन्य जीवन और प्राकृतिक संसाधनों के लिए जाना जाता है।
- **बलौदाबाजार-भाटापारा जिला**: यह जिला कृषि उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है।
- **बलरामपुर-रामानुजगंज जिला**: यह जिला प्राकृतिक संसाधनों और जनजातीय संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण है।
- **बीजापुर जिला**: यह जिला वन्य जीवन और प्राकृतिक सौंदर्य के लिए जाना जाता है।
- **नारायणपुर जिला**: यह जिला जनजातीय संस्कृति और प्राकृतिक संसाधनों के लिए प्रसिद्ध है।
- **कोंडागांव जिला**: यह जिला हस्तशिल्प और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए जाना जाता है।
- **सूरजपुर जिला**: यह जिला प्राकृतिक संसाधनों और कृषि के लिए महत्वपूर्ण है।
- **मुंगेली जिला**: यह जिला शिक्षा और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए प्रसिद्ध है।
- **सुकमा जिला**: यह जिला वन्य जीवन और प्राकृतिक संसाधनों के लिए महत्वपूर्ण है।
- **सारंगढ़-बिलाईगढ़ जिला**: यह जिला सांस्कृतिक धरोहरों और कृषि उत्पादन के लिए जाना जाता है।
- **सक्ति जिला**: यह जिला प्राकृतिक संसाधनों और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए प्रसिद्ध है।
- **मोहला-मानपुर-अंबागढ़ चौकी जिला**: यह जिला वन्य जीवन और प्राकृतिक सौंदर्य के लिए महत्वपूर्ण है।
- **खैरागढ़-छुईखदान-गंडई जिला**: यह जिला सांस्कृतिक धरोहरों और प्राकृतिक संसाधनों के लिए जाना जाता है।

- **गौरेला-पेंड्रा-मरवाही जिला**: यह जिला प्राकृतिक सौंदर्य और जनजातीय संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है।
- **बेमेतरा जिला**: यह जिला कृषि उत्पादन और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए महत्वपूर्ण है।
- **बालोद जिला**: यह जिला प्राकृतिक संसाधनों और कृषि के लिए जाना जाता है।
- **सूरजपुर जिला**: यह जिला वन्य जीवन और प्राकृतिक संसाधनों के लिए प्रसिद्ध है।
- **बलरामपुर-रामानुजगंज जिला**: यह जिला जनजातीय संस्कृति और प्राकृतिक संसाधनों के लिए महत्वपूर्ण है।
- **मनेन्द्रगढ़-चिरमिरी-भरतपुर जिला**: यह जिला प्राकृतिक सौंदर्य और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए जाना जाता है।

इन जिलों का गठन प्रशासनिक सुविधा, विकास कार्यों के सुगम संचालन, और स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया गया है। प्रत्येक जिले की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक, भौगोलिक, और आर्थिक विशेषताएँ हैं, जो छत्तीसगढ़ की समृद्ध विविधता में योगदान करती हैं।

छत्तीसगढ़ के जनजातियों की आर्थिक संरचना

छत्तीसगढ़ में जनजातीय समुदायों की आर्थिक संरचना उनके पारंपरिक जीवनशैली और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है। उनकी अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भरता, स्थानीय संसाधनों का उपयोग, और सामुदायिक सहभागिता पर केंद्रित है। राज्य में प्रमुख जनजातियों में गोंड, कंवर, उरांव, हल्बा, बैगा, और मुरिया शामिल हैं, जिनकी आर्थिक गतिविधियाँ विविध लेकिन प्राथमिक रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित हैं।

1. कृषि आधारित जीवन

जनजातियों की अर्थव्यवस्था में कृषि एक प्रमुख भूमिका निभाती है। वे मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर रहते हुए पारंपरिक तरीके से खेती करते हैं। फसल उत्पादन में धान,

दालें, और मोटे अनाज शामिल हैं। झूम खेती, जो पर्यावरण के अनुकूल होती है, कई जनजातियों द्वारा अपनाई जाती है। हालांकि, सिंचाई सुविधाओं की कमी और उन्नत तकनीकों की अनुपलब्धता उनके उत्पादन को सीमित करती है।

2. वनोपज संग्रहण और वाणिज्य

वन उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। तेंदूपत्ता, महुआ के फूल, लाख, साल बीज, और अन्य वनोपज उनकी आय का मुख्य स्रोत हैं। इन उत्पादों का संग्रहण और बिक्री स्थानीय और राज्य स्तरीय बाजारों में होती है। हालांकि, बिचौलियों के कारण उन्हें उचित लाभ नहीं मिल पाता।

3. हस्तशिल्प और पारंपरिक कला

जनजातीय समुदाय अपनी कला और शिल्प के लिए प्रसिद्ध हैं। बाँस शिल्प, लकड़ी की मूर्तियाँ, धातु की कलाकृतियाँ, और कपड़े पर पारंपरिक डिजाइन उनके कौशल का उदाहरण हैं। इन उत्पादों का विपणन राज्य के बाहर भी होता है, लेकिन इन्हें संगठित बाजार की आवश्यकता है।

4. मजदूरी और खनन

कई जनजातियाँ मजदूरी और खनन जैसे क्षेत्रों में कार्यरत हैं। खनिज संपदा से भरपूर छत्तीसगढ़ में कोयला और लौह अयस्क खनन में जनजातीय समुदायों का बड़ा योगदान है। हालांकि, इन उद्योगों में काम करने से उन्हें स्वास्थ्य और पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

5. पशुपालन और मछलीपालन

कुछ जनजातियाँ पशुपालन और मछलीपालन में भी संलग्न हैं। यह उनकी आय और पोषण सुरक्षा में सहायक है।

6. आर्थिक चुनौतियाँ

जनजातीय समुदायों को अपनी आर्थिक संरचना में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जैसे:

- संसाधनों की सीमित उपलब्धता।
- शिक्षा और कौशल का अभाव।
- आधुनिक कृषि और तकनीकी ज्ञान की कमी।
- वनोपज के लिए उचित बाजार का अभाव।

7. सरकारी प्रयास

सरकार ने जनजातीय समुदायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कई योजनाएँ शुरू की हैं, जैसे वन अधिकार अधिनियम, रोजगार गारंटी योजना, और आजीविका मिशन। वन उत्पाद सहकारी समितियाँ और शिल्प मेलों का आयोजन भी उनकी आर्थिक प्रगति में सहायक है।

छत्तीसगढ़ के जनजातीय समुदायों की आर्थिक संरचना उनकी सांस्कृतिक और प्राकृतिक धरोहर से जुड़ी है। उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए सतत प्रयास, तकनीकी नवाचार, और उनके पारंपरिक कौशल को बढ़ावा देना आवश्यक है।

11.5 छत्तीसगढ़ में जनजातीय समस्याएँ (कंवर, उरांव)

छत्तीसगढ़ में जनजातीय समस्याएँ (कंवर और उरांव)

छत्तीसगढ़ आदिवासी बहुल राज्य है, जहां कंवर और उरांव जैसी प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं। ये जनजातियाँ अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, रीति-रिवाजों और परंपराओं के लिए जानी जाती हैं। हालांकि, आधुनिक विकास की दौड़ में इन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

1. आर्थिक समस्याएँ

गरीबी और बेरोजगारी: कंवर और उरांव जनजातियाँ आमतौर पर कृषि, वनोपज संग्रहण और पारंपरिक शिल्प पर निर्भर हैं। आधुनिक तकनीकों और संसाधनों की कमी के कारण उनकी आय सीमित रहती है।

भूमि अधिग्रहण: विकास परियोजनाओं के लिए उनकी भूमि का अधिग्रहण होने से उनकी आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. शैक्षणिक समस्याएँ

कंवर और उरांव जनजातियों में शिक्षा का स्तर बहुत कम है।

शिक्षण संस्थानों तक पहुंच की कमी और शिक्षा के प्रति जागरूकता के अभाव से उनकी प्रगति बाधित होती है।

3. सामाजिक समस्याएँ

भेदभाव और अलगाव: समाज के मुख्य धारा में इन्हें उपेक्षा का सामना करना पड़ता है।

संस्कृति का क्षरण: बाहरी प्रभाव और शहरीकरण के कारण उनकी पारंपरिक संस्कृति, रीति-रिवाज और भाषाएँ विलुप्त हो रही हैं।

4. स्वास्थ्य समस्याएँ

स्वास्थ्य सेवाओं की कमी के कारण कंवर और उरांव जनजातियाँ कुपोषण, मलेरिया और अन्य बीमारियों का शिकार होती हैं।

स्वच्छ पेयजल और पोषण की कमी उनकी समस्याओं को बढ़ाती है।

5. सामाजिक संघर्ष

औद्योगिक और खनन परियोजनाओं के कारण विस्थापन और संघर्ष बढ़ रहे हैं।

छत्तीसगढ़ सरकार और केंद्र सरकार द्वारा कंवर और उरांव जैसी जनजातियों की समस्याओं को सुलझाने के लिए विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, और आजीविका के क्षेत्र में सुधार के प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन इन समस्याओं के समाधान के लिए अधिक समग्र और संवेदनशील दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

11.5.1 कंवर जनजाति

1. उत्पत्ति:

कंवर जनजाति छत्तीसगढ़ की एक प्रमुख जनजाति है, जो राज्य के बस्तर, बिलासपुर और रायगढ़ जिलों में निवास करती है। इनकी उत्पत्ति परंपरागत रूप से राजा कंश के वंशजों से मानी जाती है। कंवरों का संबंध कृषि और वनोपज से रहा है।

2. सामाजिक संरचना:

कंवर समाज पितृसत्तात्मक है। इनमें कुटुंब और वंश की परंपरा का विशेष महत्व है। विवाह और सामाजिक संबंधों के नियम स्पष्ट हैं।

3. भौतिक संस्कृति:

इनका पारंपरिक पहनावा सरल होता है। पुरुष धोती और गमछा पहनते हैं, जबकि महिलाएँ साड़ी पहनती हैं। इनके घर मिट्टी, लकड़ी और फूस से बने होते हैं।

4. आर्थिक जीवन:

कंवर मुख्यतः कृषि और वनोपज पर निर्भर हैं। वे धान की खेती करते हैं और जंगल से लकड़ी, तेंदू पत्ता और महुआ इकट्ठा करके अपनी आजीविका चलाते हैं।

समस्याएँ: भूमि अधिग्रहण और बेरोजगारी।

खेती के लिए उन्नत तकनीकों का अभाव।

5. धार्मिक और राजनीतिक जीवन:

कंवर अपने पारंपरिक देवताओं जैसे बूढ़ादेव और ग्राम देवी की पूजा करते हैं। राजनीतिक दृष्टि से वे ग्राम पंचायत में सक्रिय भूमिका निभाते हैं, लेकिन राज्य या राष्ट्रीय राजनीति में उनकी सहभागिता सीमित है।

11.5.2 उरांव जनजाति

1. उत्पत्ति:

उरांव जनजाति छत्तीसगढ़ के सरगुजा और जशपुर जिलों में पाई जाती है। इनकी उत्पत्ति झारखंड के छोटा नागपुर क्षेत्र से मानी जाती है। इन्हें कुडुख भाषा बोलने के कारण "कुडुख" भी कहा जाता है।

2. सामाजिक संरचना:

उरांव समाज भी पितृसत्तात्मक होता है। इनके समाज में समूह विवाह और पारिवारिक परंपराएँ महत्वपूर्ण हैं।

3. भौतिक संस्कृति:

उरांव जनजाति के लोग रंगीन कपड़े पहनते हैं। महिलाएँ विशेष प्रकार की साड़ियाँ पहनती हैं और गहने धारण करती हैं। इनके घर मिट्टी और बांस से बने होते हैं।

4. आर्थिक जीवन:

उरांव जनजाति कृषि, मवेशी पालन और वनोपज पर निर्भर करती है।

समस्याएँ: इनकी भूमि का अधिग्रहण, बेरोजगारी और कुपोषण।

रोजगार के अवसरों की कमी।

5. धार्मिक और राजनीतिक जीवन:

उरांव जनजाति अपने पारंपरिक धार्मिक विश्वासों के साथ-साथ ईसाई धर्म को भी अपनाती है। इनके धार्मिक स्थल "सरना" कहलाते हैं। राजनीतिक दृष्टि से इनकी भागीदारी पंचायत स्तर पर सक्रिय रहती है।

प्रमुख समस्याएँ

भूमि अधिग्रहण: दोनों जनजातियाँ भूमि के अधिकारों से वंचित हैं।

शिक्षा और स्वास्थ्य: शिक्षा का स्तर बहुत कम है और स्वास्थ्य सेवाएँ दुर्लभ हैं।

आर्थिक पिछड़ापन: रोजगार के अवसर सीमित हैं।

संस्कृति का क्षरण: आधुनिकता और बाहरी प्रभावों के कारण पारंपरिक संस्कृति विलुप्त हो रही है।

इन समस्याओं को सुलझाने के लिए सरकारी प्रयास जैसे वन अधिकार अधिनियम और विकास योजनाएँ चल रही हैं, लेकिन इनके प्रभावी क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

स्व -प्रगति परिक्षण

Multiple Choice Questions:

छत्तीसगढ़ में प्रमुख जनजाति कौन-सी है?

(a) भील

(b) गोंड

(c) सहरिया

(d) संथाल

उत्तर: (b) गोंड

छत्तीसगढ़ में जनजातियाँ किस परंपरागत व्यवसाय में संलग्न हैं?

(a) कृषि

(b) खनन

(c) उद्योग

(d) वाणिज्य

उत्तर: (a) कृषि

Fill in the Blanks:

- छत्तीसगढ़ में जनजातियों का प्रमुख त्योहार ________ है।

  उत्तर: बस्तर दशहरा

- जनजातीय अधिकारों की रक्षा के लिए ________ अधिनियम लागू किया गया।

  उत्तर: पेसा अधिनियम

11.6 सार संक्षेप

छत्तीसगढ़ में जनजातियाँ राज्य की सांस्कृतिक विविधता का महत्वपूर्ण भाग हैं। इस इकाई में जनजातीय समाज की संरचना, उनकी परंपराएँ, रीति-रिवाज, और आर्थिक

गतिविधियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जनजातियों का सामाजिक और आर्थिक योगदान छत्तीसगढ़ की विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जनजातियों के विकास के लिए सरकार की योजनाएँ और स्थानीय प्रयास कितने प्रभावी हैं।

11.7 मुख्य शब्द

- **जनजातियाँ:** सामाजिक समूह जो विशेष सांस्कृतिक पहचान रखते हैं।
- **पारंपरिक व्यवसाय:** कृषि, शिकार, और हस्तशिल्प जैसे व्यवसाय।
- **सामाजिक संरचना:** जनजातीय समाज की आंतरिक व्यवस्था।
- **अधिकार:** भूमि, जल, और जंगल पर जनजातीय अधिकार।
- **संरक्षण:** जनजातीय परंपराओं और संस्कृति का संरक्षण।

11.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: (b) गोंड

उत्तर: (a) कृषि

उत्तर: बस्तर दशहरा

उत्तर: पेसा अधिनियम

11.9 सन्दर्भ सूची

- गुप्ता, ए. (2023). *छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ और उनकी संस्कृति*. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग।
- शर्मा, वी. (2021). *भारतीय जनजातीय समाज का अध्ययन*. भोपाल: राष्ट्रीय प्रकाशन गृह।
- यादव, आर. (2019). *जनजातीय विकास और सांस्कृतिक संरक्षण*. रायपुर: छत्तीसगढ़ पब्लिकेशन।

- सिंह, पी. (2018). *छत्तीसगढ़ का सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य*. दिल्ली: पब्लिकेशन इंडिया।
- मिश्रा, के. (2017). *भारत में जनजातीय नीतियाँ और योजनाएँ*. मुंबई: सागर पब्लिकेशन।

11.10 अभ्यास प्रश्न

1. छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजातियों की सूची बनाइए और उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. जनजातियों के आर्थिक विकास के लिए सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं पर चर्चा कीजिए।
3. छत्तीसगढ़ में जनजातीय समाज और शेष समाज के बीच संबंधों का विश्लेषण कीजिए।
4. छत्तीसगढ़ की जनजातियों पर शहरीकरण और औद्योगिकीकरण का प्रभाव समझाइए।

इकाई - 12

जनजातियाँ-गोंड, भील, कोरकू, भारिया एवं मारिया

(TRIBES-GOND, BHIL, KORKU, BHARIYA AND MARIYA)

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 गोंड (Gond)

12.4 भील (BHEEL)

12.5 कोरकू (Korku)

12.6 रीति-रिवाज तथा संस्कार

12.7 भारिया (Bhariya)

12.8 मारिया

12.9 सार संक्षेप

12.10 मुख्य शब्द

12.11 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.12 सन्दर्भ सूची

12.13 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

भारत में जनजातियाँ अपनी विशेष सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान के लिए जानी जाती हैं। इनमें से गोंड, भील, कोरकू, भारिया और मारिया प्रमुख जनजातियाँ हैं, जिनका इतिहास और समाज अत्यधिक विविध है। इन जनजातियों का जीवन मुख्य रूप से

कृषि, शिकार, और पारंपरिक कारीगरी पर आधारित है। भारतीय समाज में इनका महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इनकी सांस्कृतिक धरोहर और परंपराएँ भारतीय समाज की विविधता में योगदान करती हैं। यह जनजातियाँ अपने अद्वितीय रीति-रिवाजों और जीवनशैली के कारण भारतीय समाज में एक विशेष स्थान रखती हैं। इनकी आर्थिक गतिविधियाँ, शिक्षा, और सामाजिक बदलावों के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है, जिससे इन जनजातियों के विकास की दिशा और चुनौतियों को समझा जा सके।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. गोंड, भील, कोरकू, भारिया, और मारिया जनजातियों के सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ को समझ सकेंगे।
4. भारतीय जनजातियों के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए योजनाओं और नीतियों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
5. इन जनजातियों की पारंपरिक जीवनशैली और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
6. जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के सुधार के लिए रणनीतियाँ निर्धारित कर सकेंगे।
7. भारतीय जनजातियों के संरक्षण और विकास में सरकार की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।
8. जनजातीय समाज में सामाजिक और आर्थिक समानता की दिशा में सुधार के उपायों को समझ सकेंगे।

9. भारतीय समाज में जनजातियों के योगदान और उनकी चुनौतियों को पहचान सकेंगे।

12.3 गोंड (Gond)

1. सामान्य विवरण गोंड़ भारत की सबसे बड़ी जनजाति है। मध्यप्रदेश में गोंड जनजाति का निवास सबसे अधिक है। मध्य प्रदेश के आधे से अधिक भाग में आदिवासी का निवास सबसे अधिक है। गोंड एक संस्कृति सम्पन्न और प्रभाव की दृष्टि से एक सुदृढ़ जनजाति है। गोंड प्रकृति की कोख में किसी पहाड़ी पर या नदी किनारे रहना पसंद करते हैं। गोंडों के अधिकांश गाँव सड़क से दूर जंगलों में बसे होते हैं। गोंड प्रकृति प्रेमी होते हैं। प्राकृतिक जीवन उनका आदर्श जीवन होता है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि भारत के मूल निवासी आदिवासी ही है। गोंड जनजाति उनमें सबसे प्रभावशाली, पुरातन एवं व्यापक समूह है।

2. उत्पत्ति एवं इतिहास गोंड मूल रूप से तेलगू-द्रविड़ भाषा का शब्द है जो कोण्ड का अपभ्रंश है। तेलगू में 'कोण्ड' शब्द का अर्थ पेड़-पौधों से आच्छादित पर्वत से है। ऐसे कोण्ड पानी पर्वतों में रहने वाले गोड कहलाये। गोंड जनजाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सुदूर ऐतिहासिक साधन नहीं मिलते लेकिन आदिमपुरा आख्यानों में गोंड जनजाति का प्रमुखता से उल्लेख मिलता है। बिहार और पश्चिम बंगाल के एक ऐतिहासिक 'गोंड' क्षेत्र के मूल निवासी होने के कारण ये लोग गोंड कहलाये। मध्यप्रदेश में गोंडों के कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य भी मिलते हैं। एक समय में गोंडवाना एक बड़ा राज्य था। मध्यप्रदेश में गोडवाना क्षेत्र का नाम गोंड शासकों और गोंड जनों से अभिहित है। इस जनजाति का गोंडवाना भूमि पर सम्पूर्ण शासन और आधिपत्य का। रानी दुर्गावती इस जनजाति की प्रमुख वीरांगना एवं कुशल शासिका थीं। आज भी मध्यप्रदेश की जितनी जनजातियाँ हैं उनकी कुल जनसंख्या में से आधे से अधिक गोंड लोगों की हैं। गोंड सर्वाधिक प्रभावशाली जनजाति है। गोंड जनजाति की पचास से अधिक उपशाखाएँ हैं जिनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व, स्थान, बोली और संस्कृतिक सामाजिक क्रियाकलाप है।

गोंड जनजाति कभी पूर्वी क्षेत्र से भारत के मध्य क्षेत्र की ओर से घने जंगलों पर्वतों एवं कुछ मैदानी क्षेत्रों

में प्रसारित होती गई। कुछ भाषाई प्रमाणों के आधार पर पहले गोंड जनजाति का फैलाव दक्षिण भारत में हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे गोंडों का मध्य क्षेत्र में आगमन हुआ। इस तथ्य का प्रभाव गोंडों की गोंडी बोली से मिलता है। मध्यप्रदेश के गोंडजन जो बोली बोलते हैं वह द्रविण भाषा परिवार की गोंडी बोली है। क्रिस्टोफ वानफ्यूर, हेमेन डार्क ने ठीक ही लिखा है कि "यद्यपि द्रविणों का मूल इतिहास अनिश्चित है किन्तु वे भी यह मानते हैं कि द्रविण उसी समय समुद्र मार्ग से भारत के पश्चिमी समुद्र तट से इस देश में आये जब आर्य लोगों का आगमन हुआ। धीरे-धीरे ये लोग दक्षिण भारत से मध्यभाग के जंगलों और पहाड़ियों में खदेड़ दिये गये। और वे ही भारत के आदिवासियों के विभिन्न रूपों में हैं। इस तथ्य को प्रमाणिक माना जाये तो मध्य भाग के आदिवासी दक्षिण के मूल निवासी हैं। द्रविण एवं आर्यों का विवाद बहुत पुराना है। कोई कहीं से भी आया हो लेकिन यह निश्चित है कि द्रविण और आर्य पुरातन भारत की दो भिन्न-भिन्न सुप्रसिद्ध संस्कृतियाँ रही हैं। एक अधिक आदिम और

दूसरी सुपरिष्कृत संस्कृति गोंड द्रविण संस्कृति का एक अंग है।"

3. जनसंख्या एवं भौगोलिक विवरण गोंड जनजाति मध्यप्रदेश की ही नहीं बल्कि भारत की सबसे बड़ी जनजाति है। मध्य प्रदेश में इनकी जनसंख्या वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार 5349883 आँकी गई थी। जो प्रदेश की कुल जनजातीय जनसंख्या का 34.74 प्रतिशत थी। इसके बाद के वर्षों के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं लेकिन निश्चित रूप से इन वर्षों में गोंड जनजाति की जनसंख्या में वृद्धि अवश्य हुई होगी। मध्यप्रदेश में विंध्य, सतपुड़ा क्षेत्र, नर्मदा नदी के किनारे तथा छत्तीसगढ़ में इसका प्रमुख निवास क्षेत्र बस्तर, काँकेर, दन्तेवाड़ा, मंडला, डिंडोरी, रायपुर, धमतरी, बिलासपुर, कोरबा, सरगुजा, कोरिया, राजनांदगाँव, दुर्ग, कवर्धा आदि क्षेत्रों में गोड अथवा गोड जनजाति की कोई न कोई शाखा का एक निवास अवश्य देखा जा सकता है। मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी के उद्गम अमरकंटक (शहडोल), सीधी, सतना, पन्ना, सागर, दमोह, खण्डवा (पू.नि.) सिहोर,

नरसिंहपुर बुरहानपुर, रायसेन, उमरिया, जबलपुर, होशंगाबाद एवं हरदा आदि जिलों में पाये जाते हैं। प्रदेश के अन्य जिलों में इनकी जनसंख्या कम है।

4. भौतिक संस्कृति (आवास, पहनावा आदि) गोंड प्रकृति की कोख में किसी पहाड़ी, घाटी, जंगल या नदी के किनारे रहना पसंद करते हैं। गोंडों के अधिकांश गाँव सड़क से दूर जंगलों में बसे होते है। गोंड स्वभाव से प्रकृति प्रेमी होते हैं। प्राकृतिक जीवन उनका आदर्श जीवन है। गोंड आदिवासी होते हुए भी समुन्नत और समृद्ध किसान कहलाते हैं। मण्डला में गोंडों को 'किसान' सम्बोधन सम्मान सूचक समझा जाता है। गोंड लोग भी इस सम्बोधन से अपने आपको को गौरवान्वित महसूस करते हैं। गाँवों में गोंडों की बहुलता के कारण सारे गाँव गोंड गाँव ही कहलाते हैं। लेकिन प्रत्येक गाँव के गोंडों के अतिरिक्त अन्य जनजाति के लोग भी सामाजिक सामन्जस्य के साथ निवास करते हैं।

गोंडों के घर छोटे-छोटे झोपड़ीनुमा व मिट्टी के बने हुए होते हैं, मकान की छत घास-फूस या देशी खपरैल की बनी होती है। घर का निर्माण वे स्वयं करते हैं। घर के सामने पर ही बरामदा होता है, दरवाजे बाँस या लकड़ी के बने होते हैं। घर के सामने दीवारों से घिरा आँगन होता है। पीछे का भाग बाड़ी कहलाता है। इसमें सब्जी-भाजी लगाते हैं। घर के अन्दर अनाज रखने की कोठी मिट्टी से बनी होती है। एक किनारे में देवी देवता का स्थान होता है। एक झोपड़ी या मकान बनाने के लिये मिट्टी, पुआल, लकड़ी, बाँस, खपरैल व छीद आदि गाँव जंगल से जुटा लिया जाता है। दीवाल की मिट्टी को पक्की बनाने के लिये कोदो का पैरा या भूसा मिलाकर गूँथ लिया जाता है। गोंड अपने मकान परम्परा के अन्तर्गत चली आ रही ग्रामीण वास्तुकला के अनुरूप बनाने में दक्ष होते हैं। गोंड अपने मकान स्वयं अपने हाथों से बनाते हैं। एक मकान 30 से 35 फिट लम्बा और 15-20 फिट चौड़ा होता है। यूँनी, मयार, थमोलवा, वंडेरी, पटौही या दाखी, मगला और ठाठ से पूरा घर बनता है। गोंडों के घर का मुख्य द्वारा काफी साफ-सुथरा होता है। प्रत्येक गोंड मकान में एक बंगला होता है जहाँ पर अतिथि ठहराये जाते हैं। घर की दीवारों पर दीवार बनाते समय ही स्त्रियाँ मिट्टी से विभिन्न कलात्मक 'नोहडारो' बना देती हैं। इसमें फूल- पत्ते एवं पशु-पक्षियों की आकृतियाँ प्रमुख होती हैं। मकान बनाते

समय गोंड शुभ-अशुभ का विचारक रहते हैं। मकान का काम शुरू करने के पूर्व पारम्परिक पूजा-पाठ का निर्वाह भी गोंड लोग अनिवार्य रूप से करते हैं।

गोंडों का प्रिय भोजन पेज है। पेज खान-पान का प्रमुख अंग है। गोंडों का सर्वाधिक प्रिय पेय पदार्थ दारू है जिसे बच्चे, बूढ़े, युवक और महिला ये सभी पीते हैं। कोई भी सामाजिक एवं अनुष्ठानिक कार्य महुआ दारू के बिना शुरू नहीं होता है। महुआ गोंडों के लिये देव अन्न भी है। गोंडों का मुख्य आहार कोदों अर्थात् कोदई का भात है। गोंड कई प्रकार की सब्जियों तथा कन्दमूल का उपयोग करते हैं। ये दिन भर में तीन बार भोजन करते हैं। गोंड माँसाहारी होते हैं। ये सभी पशु एवं पक्षियों का माँस खाते हैं।

गोंड पुरुष घुटने तक धोती बंडी कंधे पर पिछौरा सिर पर मुरैठा बाँधते हैं। कलाई में चाँदी का चूड़ा, गले में मोहर तथा कान में बूँदा अवश्य पहनते हैं। गोंड स्त्रियाँ छः से आठ गजी साड़ी घुटने तक काँछ लगाकर पहनती है। पुरुषों में नीली या काली बंडी पहनने की विशेष परम्परा है जबकि महिलायें लाल, जामुनी, गहरे रंग के साथ सफेद भी खूब पसंद करती हैं। गोंड स्त्रियाँ चुरिया-जुरिया, पटा, बहुटा, चुटकी, तोड़ा, पैरी, सतुवा, हमेल, ढरि- झरका, तरवी, बारी टिकुसी आदि आभूषण पहनती हैं। पुरुष एवं स्त्रियाँ दोनों में अंगूठी पहनने का शौक समान रूप से प्रचलित है। गोंड की प्रत्येक उपशाखा की वेशभूषा और गहने अलग-अलग होते हैं। गोंड महिलायें विभिन्न प्रकार के मुडने शरीर पर धारण करना पसंद करती हैं।

5. आर्थिक जीवन - गोंडों के आर्थिक जीवन का आधार कृषि है। यही इनका प्रमुख व्यवसाय भी है। आदिम खेत (वेबर) शिकार, वनोपज संग्रह और मजदूरी गोंड जनजाति के लोग हमेशा से करते चले आ रहे हैं। गोंड लोग तथा उसकी उपशाखायें सीढ़ीनुमा खेती समतल मैदानी इलाकों में करते हैं। खेती की मुख्य फसलों में कोदों, कुटकी, रागी, मड़िया, धान, ज्वार, तुअर, उड़द, मूँग, कुलथी, बेलिया, खेसरी-तिलहन जगनी आदि हैं। वनोपज में तेंदूपत्ता, आचार, हर्रा, बहेड़ा, आँवला, महुआ, गुल्ली, सालबीज, मोहलाइन पत्ता आदि हैं। गोंड मेहनतकश किसान स्वयं मजदूर हैं। जिन गोंडों के पास कृषि योग्य भूमि नहीं है वे लोग हरवाही करते हैं। गोंडों के शिकार करने का बेहद शौक है। यद्यपि जंगली जानवरों का शिकार आजकल प्रतिबन्धित है फिर भी कुछ छोटे पशु पक्षियों का

शिकार गोंड अवश्य करते हैं। मछली मारना गोंडों का दूसरा बड़ा शौक है। पशु-पक्षियों और मछलियों को फंसाने के लिये गोंड लोग विभिन्न प्रकार के फन्दों का इस्तेमाल करते हैं। इन फन्दों को तैयार करने में गोंडों के बुद्धि कौशल्य को देखौं एवं परखा जा सकता है। गोंडों के आर्थिक स्रोतों को देखने से यह निष्कर्ष निकलता है कि गोंड लोग बारहों महीने आमदनी कम एवं खर्च ज्यादा करने से हमेशा अभाव की जिंदगी जीते हैं। लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा के प्रसार एवं विकास के नये आयामों के चलते कई गोंड परिवारों ने अपनी आर्थिक स्थिति पर पूरा ध्यान दिया है। जिसके कारण आज वे आर्थिक रूप से संपन्न जीवन जी रहे हैं। गोंड एक प्रगतिशील जनजाति है। समय के साथ गोंड, जनजाति में बहुत सुधार हुआ है।

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

6. सामाजिक संगठन गोंडों की शारीरिक रचना सुगठित होती है। इनका चेहरा कुछ चपटा, माथा चौड़ा कुछ लम्बा, नाक कुछ चपटी नथुने चौड़े होते हैं। इनकी आँखें काली, पलकें पुष्ट एवं बाहर की ओर औसतन उभरी होती हैं। इनका कद प्रायः मध्यम और रंग काला होता है। गोंड स्त्रियाँ औसतन काली, पुष्ट और चपल होती हैं। स्वभाव से गोंड पुरुष कुछ लचीले, सुस्त किन्तु, सहृदय, सच्चे और विश्वसनीय होते हैं। उनमें सहनशक्ति भरपूर होती है।

गोंड समाज पितृसत्तात्मक होते हैं। गोंडों का विश्वास है कि बीज खेती से अधिक महत्वपूर्ण है। 'पुरुष बीज है और नारी खेती है।' पुरुष परिवार का मुखिया होता है। गोंडों के यहाँ संयुक्त परिवार बहुत कम देखने को मिलते हैं। इसका कारण विवाह के पश्चात लड़के-बहू के अपने मूल परिवार से अलग होने की परम्परा है। लमसेनहाई में लड़की दामाद को ससुर अलग मकान और खेत की व्यवस्था कर स्वतंत्र परिवार बना देता है।

गाँव का मुखिया मुकद्दम होता है। मुकद्दम की नियुक्ति परम्परागत होती है- मुकद्दम को गौटिया भी कहते हैं। कोटकर यद्यपि शासन का व्यक्ति होता है फिर भी वह मुकद्दम की हर सम्भव सहायता करता है। गाँव के दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्तियों में मुखिया, बरुआ या पण्डा होता है। पंचायत के निर्णय सभी को मान्य होते हैं।

घर में मुखिया और वृद्धि लोगों की आज्ञा सभी मानते हैं। घर में सास का महत्व दूसरा स्थान रखता है। वह घर की मालकिन होती है। घर में छोटी बहन के बड़या बड़ी बहन के दीदी बड़े भाई को बाबू, ससुर को राऊत सास के रऊताइन और भाभी को भौजी कहते हैं। माता-पिता को दाऊ, दाई, भानजे को को भाँचा एवं बहनोई को झाँटो कहते है। गोंडों में पर्दा प्रथा नहीं है। इसका कारण यह है कि स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर के भीतर ही नहीं घर के बाहर भी होता है। गोंड स्त्री सच्चे अर्थों में पति की सहचरी होती है। बड़ों की मान मर्यादा रखना घर की बहू का कार्य है। समाज की बैठकों में सभी को बुलाया जाता है। सबकी राय से निर्णय लिये जाते हैं।

गोंड गोंडी बोली बोलते हैं। गोंडी द्रविड़ परिवार की मध्यवर्ती वर्ग की भाषा है। छिंदवाड़ा, सिवनी, बैतूल, होशंगाबाद, पूर्वी निमाड़ और बालाघाट के गोंड लगभग शुद्ध गोंडी बोलते हैं। परन्तु शहडोल, रीवा तथा मण्डला में गोंडी का वह रूप दिखाई नहीं देता है। मण्डला की बोली छत्तीसगढ़ी से प्रभावित है। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मण्डला के गोंड छत्तीसगढ़ी बोलते हैं जबकि शहडोल, रीवा और सीधी की गोंडी में बघेली का अधिक प्रभाव है। बैतूल में गोंड शुद्ध गोंडी का प्रयोग आज भी दैनिक जीवन में करते हैं। गोंडों की उपजाति मुरिया एवं माड़िया लोग गोंडी के साथ हल्बी का भी प्रयोग सरलता से करते हैं। हिन्दी का व्यवहार प्रत्येक आदिवासी सामान्य बोल-चाल में करना जानते हैं।

गोंडों की वाचिक परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। संस्कार गीत ऋतु पर्व-त्योहार तथा अन्य सामाजिक गीत

गाने की परम्परा गोंड समाज में है। गोंडों के प्रसिद्ध गीतों में करमा, ददरिया, सुआ, फाम, रीना, भड़ौनी, सजनीं, जश आदि है। गोंडों में गाथा सुनने की प्रथा है। गोंडों में परधान गाना गायन करते हैं। गोंडों की तीन सुप्रसिद्ध आड़िम गाथायें हैं। पंडवानी, रामपणी और गोंडवानी। पंडवानी भी गाथा है। रामायणी राम का चरित्र है और गोंडवानी गोंडों के इतिहास कथा है। परधान के दसौधी कहते हैं। गोंड परिधानों के पजमान है। परधान इसके अलावा और भी कई छोटी-छोटी गीत कथायें बाने पर गाते हुए मिल जाते हैं। गोंड लोक कथाओं के किस्सा कहते हैं। गोंडी लोक में कई किस्से कहानियाँ प्रचलित

हैं। इन कथाओं में गोंड आदिवासियों की भोली कल्पना की उड़ान के साथ उनके रीति-रिवाजों, धार्मिक सामाजिक विश्वासों, देवी देवताओं, भूत प्रेतों और परम्पराओं का समावेश सहज रूप से देखा जा सकता है। पहेलियों का प्रचलन बुद्धि कौशल बढ़ाने के लिये गोंड समाज में प्रचलित है। ये शुद्ध मनोरंजन और अपने सांस्कृतिक संज्ञान को बढ़ाने के लिये बड़ों से लेकर बूढ़ों तक लोकप्रिय होती हैं। गोंड पहेलियों को धंधा कहते हैं। गाँव में फुर्सत के क्षणों में गोंड बालकों बढ़ों और नौजवानों सभी के लिये 'धंधा' मनोरंजन का साधन है। पहेलियों के द्वारा वस्तुओं के रूप, गुण, रंग और आकार प्रकार का सांकेतिक वर्णन भर होता है। इन पहेलियों के उत्तर ढूँढ़ने में पढ़े लिखे लोग तक पानी भरते नजर आते हैं।

किसी उचित अवसर अथवा नीतिगत निर्णायक बात करते समय गोंड लोग खरी और प्रभावकारी उक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग करते हैं, जिन्हें गोंड लोग कहावत या कहन कहते हैं। लोकोक्तियाँ सच्चे अनुभव की खरी डिबियाएँ हैं। शानक ड

कली गोंडों के सामाजिक जीवन में मिथिकाओं का विशेष महत्व महाबलय की कथा से लेकर धरती, आकाश, सूर्य, चन्द, पशु-पक्षी, पेड़ पौधे, जलवायु, नृत्य, वाद्य, संगीत आदि आदि की उत्पत्ति सम्बन्धी कथायें गोंड और अन्य आदिवासियों के दैनिक जीवन का हिस्सा हैं। गोंडों में उत्पत्ति विषयक अनेक कथाओं में कही पुराणों

की कथाओं का प्रभाव दिखाई देता है तो कई कथाओं में अपेक्षाकृत उनकी आदिम मौलिक कल्पना और कौतूहल का सामन्जस्य दिखाई देता है। मिथक कथाओं के व्यहृयत प्रतीक गोंडी के निजी जीवन से आये है। इसलिये प्रत्येक स्थान पर गोंडों के जीवन की व्याख्या उनमें छिपी मिलती है। गोंड जनजाति में इस तरह की अनेक मिथक कथाएँ प्रचलित हैं। ये मिथकथायें कथायें मात्र नहीं हैं बल्कि गोंडों के समस्त विश्वास और आस्था को भी उजागर करती हैं। साथ ही यह भी सिद्ध करती हैं कि जीवन के प्रत्येक निष्कर्ष को गहराई से सोचा ही नहीं गया है बल्कि उसके अन्तिम सच को पहचान लिया गया है।

7. धर्म एवं देवी देवता गोंडों के अनेक देवी देवता हैं। उनमें बड़ा देव प्रमुख हैं। ठाकुर देव, नारायण देव, धमसेन देव, नागेश्वर देव, लिंगो देव, खैर-खुटिया, मुठिया, खेरमाई,

बनजारिन भाई, रातभाई, गंगाइन भाई, शारदा माई, बूढ़ी माई, मरही, शीतलामाई, आदि की पूजा अर्चना गोंड लोग करते हैं। गोंड लोग तन्त्र- मन्त्र, जादू-टोना, भूत-पिशाच आदि में विश्वास करते हैं। आत्मा पर भरोसा करते हैं। और चराचर जगत किस ईश्वर ने बनाया है। इसको मानते हैं। बड़ादेव के सम्बन्ध में गोंडों का विचार है कि वह ब्रह्मचारी है सत्ताधारी है उपकार करने वाला है वह फूल से पैदा हुआ है। इसलिये उसका स्वभाव फूल जैसा कोमल है और फूल की सुगन्ध जैसा पश है। वह केसर और हल्दी के बिस्तर पर खेला-कूदा है इसलिये उसका रूप सौम्य और सुन्दर है। उसने काँटे बिछौने पर बैठकर तपस्या की है इसलिये उसकी जहाँ मानता होती है झूले के पटे पर लोहे की कीलें गड़ा दी जाती हैं। इस प्रकार आदिवासियों का लिंगोराय देव सर्वगुण संपन्न माना जाता है।

8. रीति-रिवाज गोंड समाज अपने रीति-रिवाज एवं परम्पराओं से बँधा हुआ है। युगों से प्रचलित रीति-रिवाजों और परम्पराओं के गोंड लोग बेहद प्यार करते हैं। उनसे तनिक भी अलग नहीं होना चाहते। इस तरह गोंड समाज जन्म से लेकर मृत्यु तक कई परम्पराओं का निर्वाह करता है।

जन्म संस्कार- नवजात शिशु का जन्म गोंड समाज के अन्य आदिवासियों की तरह शुभ माना जाता है। आदिवासी लोग प्राप्ति की कामना से अधिक प्रफुल्लित होते हैं। अधिक सन्तान को गोंड लोग परिवार की समृद्धि की निशानी मानते हैं। गोंडों में पुत्र एवं पुत्री को समभाव से देखा जाता है। गर्भाधान के लक्षण प्रकट होते ही गर्भिणी स्त्री का सम्मान बढ़ जाता है। राजगोंडों में प्रथम बार गर्भाधान के लक्षण दिखते ही कुलदेवी एवं कुलदेवता के पूजन का उत्सव मानाया जाता है। प्रसव के लिये घर के एक कोने में या परछी में कुछ आड़ करके सौर गृह बना लिया जाता है। यहीं पर जच्चे-बच्चे के खटिया या जमीन पर पुआल बिछाकर सुला देते हैं। प्रसव के बाद प्रसूता को एक जंगली जड़ी-बूटी उसवाँ देते हैं। साथ ही नारियल और गुड़ भी खाने के देते हैं। हल्दी, सोंठ और गुड़ के घोल को घी से बघार कर पिलाते हैं।

बारहवें दिन नामकरण होता है। उसी दिन नाते-रिश्तेदारो को आमंत्रित करके भोजन करवाया जाता है। रात्रि में गौरी-गणेश की पूजा की जाती है। जच्चा-बच्चा के माथे पर

हल्दी व अक्षत या टीका लगाया जाता है। पुरोहित घर के सामने लोग बच्चे का नामकरण करते हैं।

विवाह संस्कार - आदिवासियों में विवाह न केवल वंशवृद्धि के लिये रचाये जाते हैं बल्कि विवाह आदिम

प्रेम, परस्पर सहयोग और सहज आकर्षण की अभिव्यक्ति होते हैं। आदिवासियों में महिलाओं का स्थान केवल घर के भीतर ही नहीं बल्कि वे घर के बाहर भी पुरुष कन्धे से कन्धा मिलकर जीवन तथा जीविकोपार्जन का हर कार्य करती हैं। वे सच्चे अर्थ में पुरुष के अर्धांगिनी होती हैं। गोंडों में बाल-विवाह प्रथा का चलन है। पहले रजस्वला होने के पूर्व लड़की का विवाह करना गोंड लोग पवित्र कार्य मानते थे। गोंडों में सगोत्री विवाह नहीं होते हैं। ददिहाल एवं ननिहाल में विवाह करना गोंड अपना नैतिक अधिकार मानते हैं। भाई अपनी बहिन की लड़की से विवाह करने का पहला हकदार होता है। इस रिश्ते को दूध लौटाना कहा जाता है। विवाह में लड़का-लकड़ी की अपेक्षा माता- पिता की रजामन्दी सर्वोपरि होती है। विवाह पूर्व लड़के-लड़की मिल सकते हैं लेकिन उनके बीच शारीरिक संबंध नहीं होते हैं। लड़के वाले जब लड़की के रिश्ते के बारे में पूँछने आते हैं उसे बेटी-पुछौनी या मंगनी कहते हैं। मँगनी गाँव के पंच लोग मिल बैठकर तय करते है। मँगनी हो जाने के बाद सगाई या बरोखी रस्म की जाती है। सगाई बारात में दूल्हा नहीं होता परन्तु रिश्तेदार और गाँव दस बारह लोग होते हैं।

सगाई होने के बाद पंच विवाह की तिथि निश्चित करने के पहले लगुन विचार करते हैं। राजगोंडों में लगुन पुरोहित हिन्दू पद्धति के अनुसार निकलता है। अन्य गोंडों में गुनिया, बैगा या दोषी द्वारा इस कार्य को सम्पन्न किया जाता है। मण्डप गड़ाने का शुभ दिन लगुन के समय ही निश्चित कर दिया जाता है। ये दिन सोम, बुद्ध या गुरु होते हैं। मण्डप गड़ाने की शाम को महिलायें मिट्टी लाने जाती हैं जिसे 'माँमर-माटी' कहते है। पाँच या सात कुँआरी कन्याओं के सिर पर टोकरियाँ होती हैं जिनमें सुआँसा के हाथ से खोदी गई मिट्टी भरकर लाई जाती है। सुआसिन के सिर पर कलश होता है। घर की मालकिन दिया जलाकर भूमि की पूजा करती है। कन्याओं द्वारा लाई गई मिट्टी से मनमोहन का चबूतरा और कलश रखने का रेहना और छोटे-छोटे पाँच या सात चूल्हे

बनाये जाते हैं। खम्ब के पास लीपकर गोबर से गौरी-गणेश बनाये जाते हैं। पास में ही कलश का दीया जला कर रखा जाता है। मण्डप के नीचे एक चूल्हा, सिल और लोढ़ा रख दिया जाता है।

गोंड दूल्हे का श्रृंगार परम्परागत होता है। हल्दी में रंगी हुई पिपरी धोती, शरीर में सफेद झंगा कमर में पिछौरा या उमेठा, सिर पर सफेद पीले रंग का साफा साफे पर बाँस की नेर से बना मोर बँधा होता है। गले में सुन्दर सुतिया हमेल, कमर में तलवार या कटार या सरोता हाथ में बाँस का पंखा लिये जब गोंड दूल्हा निकलता है तो उसकी इस छवि के दूर से ही पहचाना जा सकता है।

सुआसा दूल्हे को गोद में उठाकर घोड़े में सवार कराता है। बारात गाजे-बाजे के साथ पैदल ही रवाना होती है। गोंडों की बारात में महिलायें भी होती हैं। वे रास्ते में गीत गाती चलती है। बारात गाँव के पास पहुँचकर किसी वृक्ष की छाया में या जलाशय के किनारे ठहर जाती है। बारात पहुंचने की खबर देने के लिए एक व्यक्ति मण्डप की डाल हाथ में लिये कन्या पक्ष के घर जाता है। इसे मिष्ट्या कहते हैं। मिष्ट्या हाथ की डाल को लड़की के मण्डप में फेंक देता है। लड़की वाले मिष्ट्या की खूब आव-भगत करते है। पेड़ की छाया में बारात के जनवासे में आदर के साथ लाया जाता है। जनवासे में दूल्हे की साली दूल्हे को अपने हाथ से पाँच कोर भोजन कराती है। दूल्हा मुहजोई नेग देता है। इसके बाद बाँस छिंकाई, समधी मिलौकी बाजा-मिलन आदि की रस्में होती हैं। बरजोरी प्रथा में दूल्हा सखियों से घिरी दुल्हन की अंगुली में अंगूठी पहनाता है। यह कार्य खुले आँगन में होता है। द्वारचार होने के पश्चात् लड़की को नहलाकर ससुराल से आये रैनी कंगन और कपड़े पहनाये जाते हैं। इसे चढ़ावा कहते हैं। कन्या का मामा और मामी कनहर लेते हैं। दुल्हन को गोद में बिठाते हैं। उसके खुले बालों पर दुल्हन का भाई पानी डालता है और मामा-मामी दुल्हन के बालों से टपकते पानी का आचमन करते हैं। यहाँ मामा-मामी लड़की के चरण स्पर्श भी करते हैं। इसके बाद मण्डप में लड़की के माता पिता कन्या दान भी करते हैं। दहेज देते हैं तत्पश्चात् दूल्हा दुल्हिन की माँग में सात बार सिंदूर भरता है। सुआसिन दूल्हा दुल्हिन की गाँठ जोड़ती है। गाँठ जुड़ जाने के बाद भाँवर होते हैं। गोंडों में सात या पाँच भाँवर फिराने का रिवाज है। भाँवर के

समय दूल्हा आगे और दुल्हन पीछे-पीछे चलती है। फेरे या भाँवर लड़की के माता-पिता नहीं देखते वे वहाँ से कहीं चले जाते हैं। भाँवर हो जाने के पश्चात् दूल्हा-दुल्हिन के गाते-बजाते जनवासे ले जाते हैं। इसे रहस बघाव कहते हैं। कन्या पक्ष की महिलायें बतासे का नेग लेकर घर वापस जाती हैं। साथ ही दुल्हन भी वापस आ जाती है। विदा से पूर्व बारात को भोजन करवाया जाता है। इस समय कन्या पक्ष की महिलायें समधियों को जमके गाली गीत सुनाती हैं।

विदाई लड़की की विदाई के क्षण अत्यन्त मार्मिक होते हैं। भोजन के पश्चात् विदाई की तैयारी की जाती है। कन्या पक्ष के लोगों का मन भारी हो जाता है। वर पक्ष में विवाह सम्पन्न होने को खुशी के क्षण देखे जा सकते हैं। वधू को लेकर बारात घर वापस लौटती है। सबसे पहले दूल्हे की बहिन वापस आई बारात का स्वागत करती है। लड़की की दाई नववधू को जेवर का नेग देती है। वर वधू के पहली बार प्रवेश पर मुँह चायना, द्वार छिंकाई, पौर पूजन, दूधा भाती, पैला भरना, लोढ़ झेलना, कंगन छोड़ना, हरदी छुड़ावन जैसी रस्में सम्पन्न होती है। गोंडों में सुहागरात मनाई जाती है। विभिन्न रस्मों से सम्बन्धित गीत महिलायें गाती हैं। तीसरे दिन लड़की को लेने के लिये कन्या पक्ष के लोग आ जाते हैं। चौथे दिन लड़की को मैके भेज देते हैं। इसे चौथी लिवौवा कहते हैं। कुछ दिन बाद दूल्हे पक्ष के दो चार व्यक्ति दुल्हिन को लेने पहुँच जाते हैं इसे गमन की बारात और लड़की भेजने के गमनाचार कहते हैं। इस तरह विवाह के बाद कई दिनों तक कुछ प्रथायें चलती रहती हैं। समधौरा, मौर विसर्जन, बहुरिया खिचड़ी, खम्ब उखाड़ना ऐसी ही प्रथायें हैं। गोंड समाज में विवाह के दौरान सर्वाधिक खर्च दारू पर होता है। विवाह का आकर्षण विवाह के होते हैं जो पूरे समय विवाह का वातावरण बनाने में सक्षम होते हैं। ये आदिम वाद्य हैं- नगाड़े, नगड़िया, सींगबाजा, और शहनाई। नगाड़ा और सींगबाजा दुलिया बजाते हैं। गोंडों में मण्डप के नीचे तीन तरह के विवाह होते हैं। पहला पठौनी विवाह, दूसरा चढ़ विवाह, तीसरा लमसना। गोंडों में सर्वाधिक प्रचलित चढ़विवाह है।

पठौनी विवाह - इस विवाह प्रथा में लड़की की बारात लड़के के यहाँ जाती है। लड़कें के मण्डप में भाँवरे होती हैं। लड़की अपने दूल्हे को विदा कराके अपने घर लाती है। गोंडों में पठौनी विवाह प्रथा अब देखने को नहीं मिलती है। 18

चढ़ विवाह - चढ़ विवाह में दूल्हा बारात लेकर जाता है। चढ़ विवाह विधि-विधान और परम्परागत ढंग से होता है।जोर लिएकाला

लमसना - लमसना को घर जमाई भी कहते हैं। इसमें लड़का विवाह के पूर्व ही ससुराल में रहता है। घर, खेत और जंगल का काम करता है। सास-ससुर की सेवा करता है। यह स्थिति तीन वर्ष तक रहती है। लमसना की अवधि समाप्त होने और दामाद के खरे उतरने पर लड़की का पिता स्वयं सब खर्च उठाकर अपनी बेटी का विवाह लमसन के साथ कर देता है। इसे लमसनाई जीतना कहते हैं। इन विवाह प्रथाओं के अतिरिक्त गोंडों में मगेली विवाह एवं बलात् विवाह प्रथायें भी प्रचलित हैं। मगेली विवाह केवल लड़के एवं लड़की की राजी बाजी से होता

008

बलात् विवाह - इस प्रथा ने जबरन लड़का-लड़की को अपने घर में घुसेड़ लेता है या हाट बाजार में हल्दी छींट देता है। अब लड़का-लड़की से विवाह करने का हकदार हो जाता है। ऐसा तब होता है जब लड़के एवं लड़की के माँ-बाप किसी तरह विवाह करने के लिये राजी नहीं होते। ऐसी स्थिति में रात में ही मण्डप गाड़कर बाजे-गाजे और नाच के साथ भाँवरें फिर जाती हैं गोंडों में विधवा विवाह प्रचलित है। इस तरह रखैली विवाह और अन्तर्जातीय विवाह पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। गोंड जनजाति में विधवा भौजाई को देवर चुरियाँ पहिनाकर पत्नी के रूप में रख सकता है। कागडि।

मृतक संस्कार - गोंड पुनर्जन्म को स्पष्ट रूप से नहीं मानते। मरने के बाद अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा। इस बात पर गोंड कभी विश्वास नहीं करते इसीलिये स्वर्ग एवं नरक की अवधारणा भी गोंडों में बहुत क्षीण है। ये देव योनि और भूतयोनि में विश्वास रखते हैं। कर्म के अनुसार आत्मा भूतयोनि एवं देवयोनि प्राप्त होती है। देव मिलौकी

पूजा करने में मृतक की आत्मा देवत्व प्राप्त कर लेती है। वे आत्मायें देव पितरों में नहीं मिलाई जा सकती हैं, जिनकी मृत्यु किसी दुर्घटना में होती है। प्र. टीम मे

गोंडों में अग्निदाह और दफनाने की प्रथा है। स्वाभाविक मौत से मरे व्यक्ति का अग्निदाह किया जाता है और प्लेग, हैजा तथा सर्पदंश आदि के प्रभाव से होने वाली मृत्यु में मृतक को दफनाते हैं। छोटे बच्चों को भी दफनाया जाता है। मतृक का दाहसंस्कार करने के बाद मृतक की पत्नी आगे-आगे चलती है। पीछे कतारबद्ध अन्य महिलायें चलती हैं। जलाशय के तट पहुँचकर घाट पर मृतक की पत्नी की चूड़ियाँ फोड़ी जाती हैं। सबसे पहले वही स्नान करती है। तत्पश्चात् अन्य लोग स्नान करके घर लौटते हैं। अग्नि देने वाला व्यक्ति तीन दिन तक अछूत माना जाता है। तीन दिन खारी उठाने के बाद यह व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। बीनी हुई हड्डियों को पोटली में किसी पेड़ पर लटका देते हैं। मृतक संस्कार में दशमानी या दशमान की प्रथा गोडों का महत्वपूर्ण क्रिया कर्म है। इस दिन महिलायें घर लीप-पोतकर शुद्ध करती है। आँगन में मंडल बनाते हैं। मंडल में रात-रात भर नाच गाना होता है। गोत्र एवं परिवार के लोग सिर, दाढ़ी एवं मूँछ मुड़वाते हैं। इसके बाद पुरुष एवं महिलायें नदी घाट पर स्नान करने जाती है। दशगान में गंगा पूजा, पग बघी और मृतक भोज अवश्य होता है। भोजन के बाद रात भर गाना-बजाना और नृत्य चलता है। दसगान में विधवा स्त्री के देवर के नाम से चूड़ियाँ पहनाई जाती है। नियम के अनुसार देवर का प्रथम अधिकार भाभी पर होता है। यदि सगा देवर नहीं है तो पंच लोग किसी अन्य व्यक्ति के नाम से चूड़ी पहना देते हैं। नाम की चूड़ी पहनने के बाद उस पुरुष की पत्नी बनकर रहना या न रहना विधवा की इच्छा पर निर्भर करता है। केगी

9. राजनैतिक संगठन - गोंड समाज पुरुष प्रधान समाज होते हैं। गाँव का मुखिया मुकद्दम होता है। मुकद्दम सरकार के लगान वसूल कर देता है। मुकद्दम की नियुक्ति परम्परागत होती है। मुकद्दम के गौटिया भी कहते हैं। कोटवार यद्यपि शासन का व्यक्ति होता है। फिर भी वह मुकद्दम की हर संभव सहायता करता है। गाँव की पंचायत के निर्णय को सभी लोग मानते हैं। इस तरह गोंडों में परम्परागत राजनीतिक संगठन अभी भी विद्यमान है।

10. परिवर्तन की प्रक्रिया गोंडों का जीवन समय के साथ बदल रहा है। इसका सब से बड़ा कारण गोंड भूमिद्वार किसान और मध्यम श्रेणी के परिवारों में शिक्षा स्तर बढ़ा है। गोंड नौकरियों से लेकर राजनीतिक तक में आगे आये हैं। शासकीय सहायता का लाभ गोंड समाज भरपूर रूप से ले रहा है। (ईक निं)

12.4 भील (BHEEL)

1. सामान्य विवरण- भील जनजाति मध्यप्रदेश की गोंड के बाद दूसरी सबसे बड़ी जनजाति है। भील मध्यप्रदेश के अलावा राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र में भी पाये जाते हैं। मध्यप्रदेश में मुख्य रूप से भील- धार, झाबुआ, खरगौन, रतलाम, भीलाला-धार, झाबुआ, बारेला-खरगौन तथा पटेलिया-धार, झाबुआ में पाये जाते

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

हैं। मध्यप्रदेश के पर्वतीय वनखण्डों में भीलों के विस्तार अधिक है। यहाँ ये लोग याबुआ, प.निमाड़, धार और रतलाम जिलों में प्रमुख रूप से बसे हुए हैं। इस क्षेत्र में भीलों की उपजातियाँ भिलाला एवं पटेलिया आदि भी निवास करती हैं।

टिप्पणियाँ

2. उत्पत्ति एवं इतिहास- भील जनजाति के सम्बन्ध में हमारे प्राचीन साहित्यों में उल्लेख मिलता है। रामायण में शबरी भीलनी का उल्लेख तथा महाभारत में एकलव्य भील का उल्लेख सर्वविदित है। भील शब्द की उत्पत्ति द्रविड़ भाषा परिवार के अन्तर्गत कन्नड़ के 'बील' शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है धनुष तीर कमान में निपुण होने के कारण भी संभवतः यह जनजाति भील कहलाई। इस जनजाति के लोग अपने धनुष कौशल में कोई सानी नहीं रखते हैं। भील जनजाति भारत की प्राचीन जनजाति है जो आर्य और द्रविड़ के पूर्व के माने जाते हैं। भागवत पुराण में इन्हें वेज राजा की संतान बताया गया है। रसेल और हीरालाल के अनुसार सन् 600 ई. से ही यह शब्द प्रयोग में आया है इसके पूर्व यहाँ जनजाति संभवतः पुलिन्द तथा वन-पुत्रादि नामों से विख्यात थी।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि यह शब्द संस्कृत भाषा के भिल्ल शब्द का तद्भाव रूप है जिसका तात्पर्य भेदने की प्रक्रिया से है। मूल निवास के सम्बन्ध में किंवदंती के अनुसार सबसे पहले भील दामोर लोग थे। दामोरों के साथ बरकिरिया लोग भी रहते थे। एक बार दोनों में युद्ध छिड़ गया जिसमें दामोर लोग पराजित हुए और अपना मूल स्थान छोड़ दिया। वे राजस्थान के कुशलगढ़ के क्षेत्र के ढोल नामक स्थान में आ बसे। तब से भील इस 'ढोलका' स्थान को ही अपना मूल स्थान मानने लगे।

3. जनसंख्या एवं भौगोलिक विवरण- वर्तमान समय में भीलों का निवास मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात व महाराष्ट्र राज्यों में प्रमुख रूप से हैं। मध्यप्रदेश के पर्वतीय वनखण्डों में भीलों का विस्तार अधिक है। यहाँ ये लोग झाबुआ, धाँदला, पेटलावद, अलिराजपुर, जोबट, नारकुंडी, बाग, छोटा उदयपुर, धार, बड़वानी, खरगौन, तलोद, शाहदा, सिरपुर, अमझेरा एवं रतलाम प्रक्षेत्र में निवास करते हैं।

गुजरात, राजस्थान के सिरोही, उदयपुर, कोटरा, सरसो, दाता, विलरिया, ईडर, दुसारिया, बावलिया, चंदोर-कलवन, खैरवाड़ा, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, मालपुर, बलसिमोर, कुरनो, सूंथ, लूणावाड़ा, झालोर आदि क्षेत्र में प्रमुख रूप से बसे हुए हैं। महाराष्ट्र के नंदुरवार, नांदेड़, नासिक, पोन, खरगना आदि ग्रामीण क्षेत्रों में बसे हैं।

जनसंख्या- सन् 1971 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश में भीलों की आबादी 1595508 थी। राजस्थान में 908768, गुजरात में 1124282 तथा महाराष्ट्र में 575022 भील जनसंख्या थी। इस प्रकार चारों राज्यों में जनसंख्या की दृष्टि से भारत की अनुसूचित जनजातियों में भीलों का स्थान तीसरा है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश में भीलों की जनसंख्या 2500530 थी जो कि प्रदेश की जनजातीय जनसंख्या का 20.86 प्रतिशत है। भील की जनसंख्या के साथ उसकी उपजातियां, भिलाला, बारेला तथा पटेलिया की जनसंख्या भी शामिल हैं।

4. भौतिक संस्कृति (आवास, मकान, पहनावा) का विवरण पहनावा : भीलों का शरीर सुगठित होता है। भील देखने में सुन्दर तथा ताम्रवर्णी होते हैं परन्तु जंगलों में रहने के कारण इनका रंग काला होता है। आँखें भूरी और काली होती हैं। चेहरा गोल और नैन नक्श सुडौल होते हैं। दाँत सुन्दर और मजबूत होते हैं। भील इन विशेषताओं के कारण

आदिम समूह में अपनी अलग पहचान रखते हैं। भील निर्धनता के कारण बहुत ही कम वस्त्र धारण करते हैं। निर्धन भील एक लंगोटी (कोस्टी) में ही अपने वस्त्रों की पूर्ति कर लेता है। संपन्न भील सिर पर लाल हरे, नीले रंग के (लगभग 20 हाथ लम्बे) साफे, रंग-बिरंगी कमीज व धोती पहनते हैं। स्त्रियाँ चोली काँचली, घाघरा (लगभग 20 हाथ घेरे का) और क्रमशः ओढ़नी (6 हाथ लम्बी और चार हाथ चौड़ी) पहनती हैं।

आभूषण : भील स्त्री पुरुष विभिन्न प्रकार के गहने पहनते हैं। ये गहने कथीर, चाँदी और कांसे के बनते हैं। बहुधा कथीर का प्रचलन सर्वाधिक है।

भील पुरुष कानों में मुदड़े, कर्णबालियाँ (टोखा) गले में वन जारीया साँकल (सांकली) हाँथ में नाहर मुखी (चाँदी के कड़े), भुजा में हठके व पाँव में बेड़ी पहनते हैं। महिलायें पैर में कंड़ला, नाक में कांटा, गले में हसली, साकड़ी, माथेय बोरियुं, कान में बेड़ला, भीड़ली, हाँथ में गुजरिया, भरीया पहनती है, जो चाँदी पा गिलट के होते हैं। गले में कॉच की मोती की माला तथा हाँथ में प्लास्टिक की चूड़ियाँ पहनती है। हाथ, पैर, चेहरे, मस्तक, कपोल, ठुड्डी पर गुदना (कुंदना) गुदवाती है। पुरुष भी हाथ पर विभिन्न आकृतियाँ गुदवाते हैं। इनके अलावा साख, पाटली, काकन (कंकण), लोड़िया, विट्पा, घुंघरिया, कठिया पहनने की प्रथा भी भीलों में पाई जाती है। भील अपने श्रृंगार आभूषण हाट बाजारों से खरीदते हैं।

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

टिप्पणियाँ

आवास एवं रहन सहनः इनके घर अत्यन्त साधारण होते हैं। भील लोग पहाड़ी टेकरियों पर झोपड़ियाँ बनाना पसंद करते हैं। अपने अपने खेत में अपनी झोपड़ी बनाते हैं। इनके मकान लकड़ी के बने होते हैं, जिसमें बाहर से गोबर-मिट्टी का लेप होता है। छत घास या देशी खपरैल की होती है। फर्श मिट्टी का बना होता है। घर में तीन-चार कमरे होते हैं। जानवरों के लिये अलग से कमरा होता है। अनाज रखने के लिये बाँस से बनी कोठी होती है। घरेलू वस्तुओं में चारपाई, घट्टी (चक्की) मूसल, तीर, धनुष, घारिया कुल्हाड़ी, दुल्यों पर खाटली बिछाने के लिऐ गोदड़ी एवं ओढ़ने के लिए कम्बल होता है। भोजन

बनाने के बर्तन जो मिट्टी एवं एल्यूमिनियम आदि के होते हैं। कृषि उपकरणों में खेती करने के औजार हल आदि होते हैं। तीर-धनुष प्रत्येक घर में पाया जाता है। जिसे जंगल जाते समय हमेशा अपने साथ रखते हैं। बाजार में सामान लाने के लिए बाँस से बनी हुई कलात्मक ओडई होती है। जो टोपलीनुमा ढक्कनदार बाँस की बारीक चिपों से बनती है। रोटी बनाने के लिये तवा (खपरा) सब्जी बनाने के लिये मिट्टी के तवला, रोटी रखने के लिए बाँस का मस्क रहता है। पानी के लिये मटका (गोलो) वटलोई, गुंडी (पीतल की) होती है। पानी पीने के लिये पीतल का कलस्या या गिलास होता है, लौकी की ओखली भी होती है जिसमें पानी पीते हैं। भोजन पीतल पर काँसे की परात में करते हैं। पानी के बर्तन लकड़ी की माच पर रखते हैं जिसे मुहालदा कहते हैं। भील लोग परिश्रमी एवं स्वावलम्बी होते हैं अतः वे सम्मानपूर्व जीवन जीने के आदि होते हैं। भीलों में कहावत प्रचलित है कि "जुग जैरी तो मलक बैरी" अर्थात् कड़वी जुबान से ही सारा संसार हमारा दुश्मन बन जाता है। चाहे कुछ न मिले लेकिन मधुर वाणी मिले तो वही पर्याप्त है।

खान-पानः भील लोग अपने भोजन में मुख्य रूप से मकई, गेहूँ, चना, बाजरा एवं कोदरया आदि का उपयोग करते हैं। त्योहार एवं उत्सवों के समय चावल, गुड़-घी मिलकर गुड़ भात्या खाते एवं खिलाते हैं। ग्वारफली, भटा (इगना) चवली, रजा, वल्लर इत्यादि मौसमी शाक-सब्जियों का उपयोग करते हैं। अनाज के अतिरिक्त भोजन के रूप मे ये लोग नदी-तालाबों से पकड़ी हुई मछलियाँ, घर में पाली गई मुर्गी, बकरा तथा वन्य शिकार खरगोश, तीतर, केकड़ा, हिरन आदि के अलावा कंदमूल वगैरह का उपयोग भी भोजन के रूप में करते हैं।

महुआ की शराब का उपयोग भीलों में बहुतायत में किया जाता है। ताड़ी भीलों का सर्वप्रिय पेय है। शाम के समय ताड़ के वृक्षों में हंडी बाँध दी जाती है और सुबह उतार ली जाती है। ताजी ताड़ी में कोई नशा नहीं होता है किन्तु पाँच से छः घन्टे बाद उसमें नशे का अंश आ जाता है। सर्दी के प्रारम्भ होते ही ताड़ी बनना शुरू हो जाती है। इस ठण्डी के मौसम में भील भरपूर मात्रा में ताड़ी का उपयोंग करते हैं। इसके अलावा नशे के रूप में भील लोग बीड़ी, तम्बाकू, चिलम तथा गाँजा-भांग का सेवन भी कभी-कभी नशे के रूप में करते हैं।

अस्त्र-शस्त्रः धनुष-बाण भीलों की पहचान हैं। भील सदैव अपने पास धनुष-बाण रखते हैं। जंगली जानवरों से रक्षा के लिये भीलों के पास धनुष-बाण ही एक मात्र सहारा है। ये लोग अंधेरे में भी अचूक निशाना लगाने में प्रवीण होते हैं। बाण को विल्खी तथा धनुष को धनली या कामठी के नाम से जानते हैं। बाण के लिये पतले बाँस की लकड़ी का इस्तेमाल किया जाता है। जिसके अगले हिस्से पर लोहे की नुकीली फाल लगी होती है जिसे विल्खी कहते हैं। विल्खी को सर के साथ लाख की सहायता से चिपकने के बाद मजबूत सुतली (रेशम के कीड़े के घर) से बाँध देते हैं। बाण के पिछले हिस्से में चील के पंख तीन समानान्तर रेखाओं में मेंद से चिपकाकर कोशे की सुतली से बाँध देते हैं। पिछले हिस्से में दो चिपें निकली रहती है जो कि प्रत्यांचा में फंसाने के काम आती है। बाण जैसा एक विटलो होता है जिसके अग्रभाग पर विल्खी जैसी फल की जगह एक गोल मुँह वाली लोहे की बीट लगी होती। विटलो पक्षियों को मारने के लिये प्रयोग में लाते हैं। धनुष-बाण के अलावा भील लोगों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले प्रमुख अस्त्र-शस्त्र, क्रमशः फालिया या धारिया, तलवार, लट्ठ, फरसा एवं कुल्हाड़ी इत्यादि हैं।

5. आर्थिक जीवन - भील जनजातियों का आर्थिक जीवन पूर्णतः कृषि के साथ ही जंगली उपज संग्रह एवं मजदूरी पर आधारित है। कृषि में मक्का इनकी मुख्य फसल है। पथरीली एवं असिंचित भूमि होने के कारण अरहर, कोदों एवं उड़द की फसलें भी बोई जाती हैं किन्तु पैदावार पर्याप्त मात्रा में नहीं हो जाती। ऊबड़-खाबड़ एवं अनुपजाऊ जमीन होने के कारण अन्य फसले जैसे गेहूँ, चना, तुअर आदि की पैदावार बहुत कम होती है। जंगली उपज संग्रह में महुआ, गुल्ली, लाख लकड़ी आदि का संग्रह कर बाजार में बेचते हैं। कृषि क्षेत्र में भीलों द्वारा मुख्य रूप से हल, ओखर, कोल्पा (कुपो) तीरफन आदि कृषि औजारों का प्रयोग किया जाता है। फसल की बुवाई, निंदाई एवं कटाई के समय भील परिवार एवं दूसरे की मदद करते हैं जिसे हल्मा कहते हैं। कृषि से पर्याप्त आमदनी नहीं होने के कारण भील लोग अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिये कृषि के अलावा वन विभाग में लकड़ी काटने से लेकर चौकीदार तक का कार्य पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से करते हैं। विभिन्न योजनाओं के माध्यम से क्षेत्रीय गाँवों में कराये जा रहे निर्यात एवं विकास कार्यों में भी भील अनथक परिश्रम कर खरे पसीने की कमाई करते

हैं, साथ ही गाँव एवं क्षेत्र के सम्पन्न कृषकों के यहाँ कृषि मजदूरी जैसे बुवाई, निंदाई और कटाई का कार्य भी मजदूरी के रूप में करते हैं। अनेक भील स्त्री-पुरुष फसल कटने के बाद इन्दौर, भोपाल, उज्जैन आदि शहरों में मजदूरी करने जाते हैं।

अधिकांश भील परिवारों में बकरी एवं मुर्गी पालन किया जाता है, जिनके दूध एवं अंडे आदि बेचकर आय प्राप्त करते हैं। नदी से मछलियाँ, जंगल से शहद, गोद, महुआ एवं लकड़ियाँ एकत्रित कर बाजार में बेचते हैं। महुआ की शराब और ठंड के मौसम में ताड़ी बेचकर अपनी आय में वृद्धि करते हैं।

6. सामाजिक संगठन जाति व गोत्र भील जनजाति में मुख्य रूप से चार उपजातियाँ पाई जाती हैं। इनकी प्रमुख उपजातियाँ भील, भिलाला, बारेला, पटेलिया, तड़वी नापकड़ा एवं मानकर आदि हैं। वर्तमान में अनेक उपजातियाँ स्वतन्त्र अन्तः विवाही जाति का स्वरूप ग्रहण कर चुकी हैं। प्रत्येक वर्ग में अनेक जनजातियाँ हैं। इनके कुल 71 गोत्र प्रकाश में आये हैं। जो निम्नलिखित हैं:

क्र.	गोत्र	टोटेम	मान्यताएँ
1	अलावा	आम का अलाव	अलाव की राख से बर्तन नहीं मांजते। विशेष अवसरों पर माटी की टिड्डी का पूजन करते हैं।
2	अवाथ	टिड्डी	टिड्डियों को नहीं मारते।
3	अखाड़ूपा	आग जलाने का स्थान	पवित्र मानकर उसकी देखभाल करते हैं।
4	अजनाराय	अजवाइन	अजवाइन का सेवन नहीं करते।
5	अमलाह	खसखस के बीज	खसखस का सेवन नहीं करते।
6	अमलियाँ	इमली	इमली का सेवन नहीं करते।
7	अवलियाँ	आँवला	आँवला फल नहीं खाते; वृक्ष का पूजन करते हैं।

8	अजराविणियाँ	अजन वृक्ष	वृक्ष को नहीं काटते।
9	ओस्सन्पा	वक्षणवेल	मवेशियों को वक्षणवेल नहीं खिलाते।
10	ईट	ईट	ईट से बने दीवान का उपयोग नहीं करते।
11	कटारा	वाणासुर की मां कोटरा	कोटरा का सम्मानपूर्वक स्मरण करते हैं।
12	किक	केकड़ा	केकड़ा नहीं खाते।
13	खपड़िया	कवेलू	घर की छत पर कवेलू नहीं लगाते।
14	खराड़िया	खड़ी घास	तीर में खड़ी घास का उपयोग नहीं करते।
15	गजावा	जंगली सुअर	सुअर का मांस नहीं खाते।
16	गुरिया	खाट की गूँथ	खाट नहीं बुनते।
17	गोबर्या	गोबर	गोबर से घर नहीं लीपते।
18	घट्टापा	घट्टी (चक्की)	चक्की का पिसा आटा खाते हैं।
19	घोड़मारिया	घोड़ा मारने वाला	घोड़े की सवारी नहीं करते।
20	चांगड्या	अचार वृक्ष	वृक्ष का फल नहीं खाते और उसे नहीं काटते।
21	चवन्पा	चावल	चावल खाते हैं।
22	जमनियाँ	जामुन का वृक्ष	वृक्ष का पूजन करते हैं।
23	डाबरिया	मक्की का भुट्टा	मक्की का भुट्टा खाते हैं।
24	देवका	पत्थर	पत्थर को पवित्र मानकर ठोकर नहीं मारते।
25	भूरिया	धूल	धूल भरे पैरों से घर में प्रवेश नहीं करते।

क्र.	गोत्र	टोटेम	मान्यताएँ
26	निगवालिया	मछली	मछली का सेवन नहीं करते।
27	पचावा	छोटी घास	छोटी घास नहीं काटते।
28	परमार	पीपल का पेड़	पीपल के पेड़ का पूजन करते हैं।
29	बामनिया	बामणी	बामणी को नहीं मारते।
30	बाँसकेली	बांस	बांस नहीं काटते।
31	बुंधुड्पा	जमीन	धरती का पूजन करते हैं।
32	भूरिया	धूल	धूल भरे पैरों से घर में प्रवेश नहीं करते।
33	मओली	देवी का नाम	देवी का पूजन करते हैं।
34	मसान्या	श्मशान	श्मशान भूमि का पूजन करते हैं। शोक शाला नहीं बनाते।
35	मछाऱ्या	मछली	मछली का सेवन नहीं करते।
36	मकवाना	माखन	माखन का सेवन नहीं करते।
37	मावी	मावा	मावा का सेवन नहीं करते।
38	मावड़ा	वाम मछली	मछली का सेवन नहीं करते।
39	मीनावा	बिल्ली	बिल्ली को अपवित्र मानते हैं, उसका छुआ कुछ भी नहीं खाते।
40	मुंझलाडा	वृक्ष	वृक्ष का पूजन करते हैं, काटते नहीं।
41	मेहड़ा	वृक्ष	वृक्ष को नहीं काटते, इसका पूजन करते हैं।

42	मोरी	मोर	मोर को नहीं मारते, इसका सम्मान करते हैं।
43	मोहरिया	देवी का नाम	देवी का पूजन करते हैं, इसे एक पवित्र मान्यता मानते हैं।
44	मंदली	मंदिर	मंदिर का पूजन करते हैं, शांति के प्रतीक के रूप में इसे मानते हैं।
45	रना	पहाड़ पावन	पहाड़ को देवता स्वरूप मानकर पूजन करते हैं।
46	रोहिनी	रोहनवृक्ष	रोहनवृक्ष का पूजन करते हैं।
47	ललावा	लट्ठ	लट्ठ का पूजन करते हैं, विशेष अवसरों पर इसका उपयोग होता है।
48	सन्यान	बिल्ली	बिल्ली का छुआ कुछ भी नहीं खाते, उसे अपवित्र मानते हैं।
49	सिंगाड़्या	सींग	विवाह के अवसर पर सींगों का पूजन करते हैं।
50	सोल्या	बोर की झाड़ी	बोर की झाड़ी का पूजन करते हैं, इस पर लाल कपड़ा चढ़ाकर धार्मिक समारोह करते हैं।
51	सेमल्या	सेमल वृक्ष	सेमल वृक्ष का पूजन करते हैं, इसे विशेष धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व देते हैं।
52	हिटल्या	नीची जमीन	नीची भूमि का पूजन करते हैं, यह सामूहिक रूप से सम्मान का प्रतीक माना जाता है।

इनके अलावा कतीजा, गमारिया, गुंड्या, घरव्या, नलवापा, पीथरेपा, विलवालिया, भावरिया मेढ़ा, मोहनियाँ, रावन, वाखला, सरपोटा, सोलंकी और दुहार गोत्र भी प्रचलित है,

जाति गोत्र के पीछे अक्सर कोई न कोई किंवदन्ती होती है। भील क्षेत्रों में आज भी ये तत्व अक्षत रूप से विद्यमान हैं। सन्यान गोत्र के उद्भव भी कुछ इस प्रकार हैं:

एक बार एक भील शिकार करने के लिये जंगल में गया। शाम होते-होते अचानक उसे एक बिल्ली दिखाई दी उसने बिल्ली का पीछा किया किन्तु वह बिल्ली रूप बदल कर प्रस्तर प्रतिमा बन गई उसने उस प्रतिमा को नमस्कार किया तब से उस व्यक्ति के वंशज सन्यान गोत्र के कहलाये।

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

इस गोत्र के व्यक्ति बिल्ली को नहीं छूते एवं उसका छुआ कोई भी पदार्थ भोजन नहीं करते। इसी प्रकार प्रत्येक गोत्र के पीछे कोई न कोई किंवदंती छिपी हुई है।

टिप्पणियाँ

भीली बोली- भीलों द्वारा बोली जाने वाली बोली को भीली बोली के नाम से जानते हैं। भीली का पूर्ववर्ती रूप जो अब लुप्त हो गया है। इसके वर्तमान रूप से सर्वथा भिन्न था, जिसके अवशेष आर्येत्तर शब्द संपत्ति के रूप में अद्यतन उपलब्ध हैं, किन्तु जिनके द्वारा प्रगार्य भीली का एक धुंधलका का अनुमान ही लगाया जा सकता है। सर्वप्रथम पादरी थामसन ने भीली शब्द का प्रयोग सन् 1835 में किया था इसके पश्चात जार्ज ग्रियर्सन ने विकल्प के रूप में भिलोड़ी शब्द का प्रयोग भी किया है। राजस्थानी भाषा ने भीली के अपने दक्षिण-पश्चिम और गुजराती ने उत्तर-पूर्व में प्रभावित किया हैं। मध्यप्रदेश के धार-रतलाम और झाबुआ (अलीराजपुर के निकटवर्ती भागों में) जिलों में प्रयुक्त भीली पर मालवी का प्रभाव है। खरगौन जिले में रहने वाले भील अपनी भाषा में निमाड़ी का उपयोग करते हैं।

उत्सव और पर्व- भील लोग अपने त्योहार अत्यन्त उल्लास पूर्वक पारंपरिक रूप से मनाते हैं। भीलों में पारम्परिक त्योहार आखातीज, होवणमाता की चलावणी, सावणमाता की जातर, नवई, नवणी, दिवासा, भगोरिया, गाय गोहरी, गल, गढ़ आदि के अलावा दशहरा, दीपावली, होली एवं रक्षाबंधन के त्योहार भी अपने ढंग से मनाते हैं। कुछ प्रमुख त्योहारों की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित है:

1. भगोरियाः भगोरिया शब्द भीलों के भगोर देव के नाम पर प्रसिद्ध होने के कारण प्रचलित है। फाल्गुन मास के अन्तिम सप्ताह में मनाया जाने वाला सरस लोक पर्व या प्रणय पर्व है। भील तरुण-तरुणियों के लिये चयन और चुनौती तथा नयी फसल की दृष्टि से यह उमंग और उल्लास का प्रतीक है। होली के एक सप्ताह पूर्व से भगोरिया हाट प्रारम्भ होते हैं। भील युवक युवतियाँ रंग-बिरंगे परिधानों से सजे-धजे ताड़ी व शराब के सुरुर में आदिम कुरीतियाँ भरते हुए गाते-बजाते, झूमते-नाचते सामूहिक नृत्यदल गेहर के साथ हाट में शामिल होते हैं। नृत्य को भगोरिया कहते हैं।

होली: शीत ऋतु की समाप्ति के बाद रंग-बिरंगे फूलों के बीच, सरसो के लहलहाते खेतों तथा आम के गौराये हुए महकते वातावरण में यह उत्सव प्रारम्भ होता है। होली के त्योहार पर ये प्यार और मस्ती के रंग में रंगकर अपने सभी कष्ट व पारस्परिक मतभेदों एवं वैमनस्य को भुला देते हैं। इस प्रकार होली रंग-राग, उत्साह, उल्लास और मेल-मिलाप का त्योहार है।

फाल्गुनमास की संध्या समय निर्धारित स्थान पर गड्ढा खोदकर उसमें एक सुपाड़ी, तामे का पैसा, कुंकुम, चावल, आदि छोड़कर पटेल या तड़वी होली के डांडे को रोपता है। रोपित शाखा पर दारु की धार दी जाती है। होली स्थल पर जामुन-पत्तों से आच्छादित मंडप बनाते हैं। केसवड़ी से वंदनवार सजाये जाते हैं। सभी ग्रामवासी एक दूसरे के यहाँ शराब व भोजन लेकर आते-जाते हैं। सारा दिन मेल-मिलाप व खान-पान में ही व्यतीत होता है। मादक व उल्लास पूर्ण वातावरण में युवक-युवती लोक-लाज भूलकर नृत्य की रंग भूमि पर उतरते हैं। नृत्य में समय का बाँध टूट जाता है। ढोल काँसे की थाली व बीन के स्वरों पर अश्लील गीतों के गायन के साथ युवक- युवतियाँ उन्मुक्त होकर नाचते हैं। दूसरे दिन प्रातः होली स्थल पर मुर्गे या बकरे की बली दी जाती है। होली पडवाँ के दिन से रंगपंचमी तक गाँव में लोग प्रत्येक के यहाँ जाकर नृत्य गीत गाते हुए फगुवा माँगते हैं।

गलः भील जनजाति के सबसे बड़े मनौती पर्व के रूप में 'गल' होली के दूसरे दिन मनाया जाता है। भील लोग अपने परिवार को सभी प्रकार की रोगवाधियाँ से मुक्त रखने के लिये अथवा किसी प्रकार के कार्य सिद्ध होने के प्रयोजन से ली गई मनोतियाँ

गल डेहर के दिन उतारते हैं। गल नरसिंह भगवान का स्वरूप है। जो प्रत्येक प्रकार की इच्छाओं एवं मनौतियों को पूर्ण करता हैं। 'गल' एक प्रकार के संरक्षक देव है, इसलिये भील लोग गल देवता को पितृ देव भी कहते हैं। मन्नत मानने वाले भील पूरे शरीर पर हल्दी लगाये, सफेद या लाल वस्त्र धारण कर सात दिन तक उपवास रखते हैं। तीन लड़कों को एक कमरे में दूसरे दिन प्रातः तक के लिये बंद कर दिया जाता है। इन्हें नंग्पा कहते हैं। नंग्पा दूध और पानी ही ग्रहण करते हैं। बच्चे एवं पुरुष अलग-अलग समूहों में कलम वृक्ष की रोपित शाखाओं के आस-पास नृत्य करते हैं। नृत्य में स्त्रियाँ शामिल नहीं होती हैं। वे पास बैठकर इंदल के गीत गाती है।

गल चार बड़ी-बड़ी लकडियों से बना लगभग पचास फुट ऊँचा मंच होता है। लकड़ियाँ लालरंग से पुती होती है। नीचे देवता का स्थान होता है। गल के ऊपर के हिस्से पर एक आड़ी लकड़ी होती है, जिससे मनौती मनाने वाले भील के पीठ के सहारे लटकाया जाता है उस लकड़ी के दूसरे सिरे पर रस्सी बंधी होती है जिसे नीचे

से लोग घुमाते हैं। मनौती धारक के अधर में लटका कर चारों ओर पाँच या सात बार घुमाया जाता है। निर्दिष्ट फेरे होने पर यह माना जाता है कि गल देवता ने मनौती स्वीकार कर ली है।

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

निर्दिष्ट फेरे पूरे होने पर सभी लोग शराब की धार डालकर उन्मुक्त रूप से शराब पीते हैं। बकरे या मुर्गे की बलि दी जाती है। सिर पुजारी को प्राप्त होता है तथा धड़ परिवार वालों को प्राप्त होता है। गल के पास ही दो आयताकार कम गहरे गड्ढों में से एक में दहकते अंगारे तथा दूसरे में जल से बुझे अंगारे बिछाये जाते हैं। मनौती धारी भील धधकते चूल पर नंगे पैर चलते हैं।

टिप्पणियाँ

सामाजिक व्यवस्था : समाज को संचालित करने के लिये परमेश्वर स्वरूप पटेल, तड़वी, डाहला, पुजारा और बड़वा गाँव के मुख्य एवं सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। इनके द्वारा गाँव एवं समाज का मार्गदर्शन किया जाता है। इनके अलावा कोटवार,

वारती एवं गायक भी है। इनके मध्य धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों का विभाजन इतने अच्छे ढंग से किया होता है कि कहीं कोई विरोधाभास नहीं होता है।

पटेल : पटेल गाँव में सामाजिक दृष्टि से सर्वाधिक शक्तिशाली एवं सम्मानित व्यक्ति होता है। सभी लोग उसकी इज्जत करते हैं। सभी ग्रामवासी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में पटेल द्वारा लिये गये निर्णय का तन-मन से स्वागत करते हैं। पटेल की आज्ञा के बिना कोई भी पर्व एवं त्योहार नहीं मनाया जाता है। शादी विवाह के झगड़े एवं कृषि सम्बन्धी विवादों के निराकरण में पटेल का निर्णय अन्तिम होता है।

तड़वी : गाँव में पटेल के बाद तड़वी की स्थिति होती है। पटेल की अनुपस्थिति में पटेल द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों का सम्पादन तड़वी द्वारा ही किया जाता है। पटेल के कार्यों में सहयोग देने के साथ-साथ लगान की वसूली भी तड़वी ही करता है।

डाहला : डाहला गाँव का सर्वाधिक सयाना (वयोंवृद्ध) व्यक्ति होता है। गाँव के सभी लोग उसकी इज्जत

करते हैं। शादी-विवाह एवं त्यौहारों के अवसर पर भोजन एवं भण्डार गृह का सम्पूर्ण कार्य उसी के निर्देशन पर किया जाता है। कितनी खाद्य सामग्री लगेगी इसका अनुमान डाहला ही लगाता है। खाद्य सामग्री से लेकर भोजन तक का सारा कार्य डाहला के निर्देशन में ही किया जाता है। कि

पुजारा : पुजारा का पद वंशानुगत होता है। इसके द्वारा पर्व-त्योहार तथा शादी-विवाह के अवसर पर पूजा-पाठ का कार्य सम्पन्न कराया जाता है। पुजारा गाँव के धार्मिक स्थलों की सुरक्षा करता है। साथ ही उन्हें व्यवस्थित भी रखता है।।कारहर

बड़वा : बड़वा गाँव का चिकित्सक होने के कारण एक अलग अहमियत रखता है। इसके पास जड़ी- बूटियों के द्वारा भूत-प्रेत एवं रोग आदि की चिकित्सा की जाती है। भीलों का विश्वास है कि जादू-टोना का उपचार मंत्र-तंत्र के माध्यम से बड़वा ही कर सकता है।

कोटवार : गाँव के चौकीदार एवं हरकारे के रूप में कोटवार की नियुक्ति की जाती है। इसकी नियुक्ति पटेल या तड़वी के द्वारा की जाती है। किसी शासकीय कर्मचारी या

बाहरी व्यक्ति के आने पर उसकी व्यवस्था व जिम्मेदारी कोटवार के द्वारा ही की जाती है।

मम गायक : बड़वे के सहायक के रूप में गायक की नियुक्ति की जाती है। यह कमाड़ी (बाँस की चिपों से बना वाद्य) के स्वर पर देवी देवताओं की गाथायें गाता है। ढाँक और कामठी के स्वरों से रोमांचक वातावरण उत्पन्न होता है। 15 माह । মাতাল

वारती : सामूहिक जाति भोज के अवसर पर वितरण की सारी व्यवस्था वारती की होती है।

7. धर्म एवं देवी देवता- भील जनजाति के मुख्य देवी देवता काका वलिया, शिकोवटी, इंदराज, सिमारियों देव, मेलड़ी कालका, बाघदेव और जोगण है। इनके अतिरिक्त भील लोग सभी हिन्दू देवी-देवताओं की भी पूजा करते हैं। इनके मुख्य त्योहार होली, नवरात्र दिवसों, दिवाली और रक्षाबंधन आदि हैं। त्योहारों के समय देवी-देवताओं की पूजा करते हैं; बलि के रूप में बकरा, मुर्गा चढ़ाते हैं। भूत-प्रेत, जादू-टोना में विश्वास करते हैं।

8. रीति-रिवाज- भील आदिवासियों के अपने विशिष्ट रीति रिवाज है, संस्कार औपचारिक मात्र नहीं है बल्कि भीलों के जीवन की वास्तविकता के धरातल पर सही मायने में जीवन की एक पद्धति एवं कला है।

13 जन्मसंस्कारः शिशु के जन्म को भीलों में शुभ माना जाता है। पुत्र को भील लोग कुलदीप मानते हैं। प्रसव का कार्य बहुधा परिवार की सयानी महिलाओं द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। आगामी पाँच या सात दिन

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

तक प्रसूता को अकेले नहीं छोड़ा जाता है। दूसरे या तीसरे दिन शिशु का नाड़ा रिवरने पर मुखियां उसे घर की दहलीज पर गाड़ता है। शिशु जन्म के सातवें दिन घर की लिपाई-पुताई के साथ ही प्रसूता को हल्दी लगाकर स्नान कराया जाता है। प्रसूता तीन बार शीश झुकाकर सूर्य देवता को नमन करती है जिसे सूर्य पूजा कहते हैं। सूर्य पूजा में सगे सम्बन्धी भी सम्मिलित होते हैं। सूर्य पूजा के दिन की ही बुजुर्गों की सलाह पर बच्चे का नामकरण होता है। तिथि, वार, महीनों आदि के नाम पर शिशु का नाम रखा

जाता है। जब बच्चा बारह वर्ष का होता है तब उसके दाहिने हाथ की भुजा और कलाई पर तपता हुआ तीर दागा जाता है। डाम देने की इस प्रथा के पीछे अनेक लोक विश्वास है। जैसे डाम देने से शारीरिक व्याधियाँ पास नहीं फटकती हैं। धनुष चलाने में दक्षता प्राप्त होती है।

टिप्पणियाँ

विवाह प्रथायें : सभी समाजों की भाँति भील समाज में भी शादी (विवाह) के अपने विशिष्ट रीति-

रिवाज है। विवाह तय करने के लिए लड़के वाले को ही बात-चीत के लिये पहल करनी पड़ती है। विवाह की शुरुआत सगाई की रस्म मंगनी से होती है। सगाई की बात पक्की होने पर दोनों तरफ की सुविधा देखकर दाया (वधूमूल्य) तय कर लिया जाता है। दाया लड़के पक्ष से लड़की वालों को दिया जाता है। दाया में मुर्गा, बकरा, गाय-बैल, भैंस अनाज और निश्चित रूपये होते हैं। दाया की कोई निश्चित सीमा समाज द्वारा तय नहीं है।

साउंग भरना : आठ से पन्द्रह दिन बाद लड़के वाले लड़की वालों के यहाँ दाया में तय अनाज लेकर जाते हैं जिसे साँवा या भरना मरना कहते हैं। साँवा ले जाने वालों को संवग्या कहते हैं। यह अनाज पाँच से सवा पाँच मन तक होता है।

हल्दी पीठी : विवाह का शुभारंभ हल्दी पीठी से होता है। दोनों पक्ष के ग्राम पुजारी और पटेल, रानी काजल माता के देवरे पर विवाह का आमन्त्रण देने जाते हैं। हल्दी से पूजन कर हल्दी लगा एक कपड़ा चढ़ाते हैं। लड़की के विवाह में लाल या नीले रंग के कावल्या (चूड़ियाँ) चढ़ाते हैं। लड़के को लड़की से एक दिन पहले हल्दी चढ़ा दी जाती है।

बाना बिठाना : लड़के एवं लड़की दोनो को स्नान कराकर नये वस्त्र पहनाये जाते हैं। लड़के के हाथ में तलवार देते हैं। उसके गले में चाँदी की हसली या हार पहनाते हैं। लड़की के हाथ में लौहे की बरकी देते हैं। तदुपरांत घर में घिरसिरी देव के पास पाट या गादी पर बैठाते हैं। इसे बाना-बिठाना कहते हैं।

मण्डप : बान-बिठाना के चार-पाँच दिन बाद मंडप होता है। प्रायः वर या वधू या जीजा जंगल में जाकर काकड़ वृक्ष के आस-पास कच्चा सूत लपेट कर नाड़े बँधी सुपाड़ी को फोड़कर पूजन करता है। जंगल से चार छोटी-छोटी लकड़ियाँ काटकर व एक चौरी खम्ब बनाकर घर वापस आ जाता है। घर आँगन में चारों कोनों पर चार बल्लियाँ गाड़कर उन पर लम्बी लकड़ियों से आड़ा रखते हैं। पलास या जामुन के पत्तों से मंडप को छा देते हैं।

पहरावड़ी : मंडप के दूसरे दिन दूल्हा-दुल्हन के मामा द्वारा कुटुम्ब पहरावड़ी होती है। मामा के अलावा सगे संबंधी दूल्हा-दुल्हन और उनके माता-पिता को नये वस्त्र पहनाते हैं। इसके बाद सगे संबन्धी दूल्हा-दुल्हिन को अपनी इच्छानुसार 5 से 10 रुपये देकर ओगी भरते हैं। पगरावड़ी होने के बाद बड़ी पंगति होती है।

बारात : पगरावड़ी के बाद दूल्हे के घर से विदा कर किसी रिश्तेदार के यहाँ जनवासा दिया जाता है। उसके बाद दूल्हे को घोड़ी पर बैठाकर बारात रवाना होती है। दूल्हे की कुँवारी बहन सिर पर पाटी रखती है। इसमें दुल्हन के कपड़े, आभूषण व श्रृंगार के प्रसाधन रखते हैं। भीलों की बारात में स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती हैं। बारात गाँव के नजदीक ठहर जाती है। वहाँ दुल्हन के रिश्तेदार बारातियों को दारु पिलाते हैं। बारात ठहर जाने के बाद वधू पक्ष की ओर से दूल्हे के लिये सांवाधन यानी भोजन ले जाते हैं। भोजन में चावल, घी गुड़ रखते हैं। वधू के भ्राता दूल्हे को चादर से ढंक देते हैं फिर मुँह-धुलाकर पाँच-पाँच कौर अन्न मुँह में देते हैं। इसके बाद सभी को भोजन करवाया जाता है।

झोल्या चोली : दूल्हे का भाई अपने साथियों सहित झोल्या चोली पानी एक सफेद रंग का कपड़ा तथा लाल रंग की चोली साथ में एक नारियल गुड़, तथा सवा रूपये यह सब वधू को दिया जाता है। स्त्रियाँ दूल्हे के भाई को हल्दी लगाती हैं।

बेड़ा भरना तथा चवरी : वधू पक्ष की ओर से पांच व्यक्ति पाँच कलश (चार मिट्टी के, एक ताँबे का) लेकर कुँए पर जाते हैं। कलश धारी व्यक्तियों पर चार अन्य व्यक्ति कपड़े से तम्बू बनाकर उन पर छाँव करते हैं। उन कलशों को काकड़ खूँटा के पास स्थापित कर पूजन करते हैं।गठ ांिन

दूल्हे का बाजे-गाजे के साथ चवरी मंडप में लाते हैं। दूल्हा-दुल्हन के "काकड़ खूँटा" के पास बैठाकर दोनों पर सफेद कपड़ा ढंककर वर-वधू पक्ष के लोग दूल्हा-दुल्हन को पाँच कलशों में भरे जल से स्नान कराते है तत्पश्चात् नवीन वस्त्र एवं आभूषण पहनाये जाते हैं। इसके बाद वधू की बड़ी बहन, भाभी वर-वधू के कपड़ों के पल्लू को गाँठ बाँध कर गठबंधन करती हैं। इसी को गठबंधन लग्न कहते हैं। लग्न के बाद पुजारी वर-वधू को काकड़-खूँटा के आस-पास फेरा फिराते हैं। प्रथम चार फेरों में दूल्हा एवं अन्तिम तीन फेरों में दुल्हन आगे- आगे रहती है। फेरे के समय वधू पक्ष की महिलायें मंगलगीत गाती हैं। गान्ड के लिए है।

NOTES

कन्यादान : गाँव के लोग और सगे सम्बन्धी वधू को रुपये पैसे जेवर आदि देते हैं। इसे भील ओगी कहते हैं। कन्यादान के बाद वर-वधू को घर के भीतर लाया जाता है। जहाँ पर उन्हें सिवैया खिलाते हैं। वर-वधू दोनों परस्पर एक दूसरे की पत्रावली में सिवैया डालते हैं और खाते हैं। तत्पश्चात बाहर नाच गाना होता है। वर- वधू एक दूसरे के ऊपर चावल फेंकते हैं। इसे चोरवा खेलना कहते हैं। इसके बाद दोनों थोड़े-थोड़े चावल मकान की छप्पर पर फेंकते हैं।

विदाई : वधू के परिवार के सभी लोग, जिसमें माता-पिता, भाई-बहिन एवं अन्य सगे संबंधी मिलाप करते, रोते-बिलखते वधू की विदाई करते हैं। इस समय वधू पक्ष की ओर से वधू को सीख देने के लिये मंगलगीत गाती हैं।

तलाक : भीलों में तलाक पति-पत्नी की इच्छा पर निर्भर है। तलाक के लिये पर्याप्त कारण का होना जरूरी है। यदि लड़का कमजोर तथा शक्तिहीन है तो जानकारी होने पर लड़की के माता-पिता उसे अन्यत्र बैठा देते हैं। यदि लड़की का आचरण खराब है तो उसका पति छोड़ देता है। लड़की के माता-पिता को सही स्थिति से अवगत करा दिया जाता है। पति द्वारा पत्नी को छोड़ने पर दाया में दी गई राशि मिलने की संभावना बहुत कम होती है।

मृत्यु संस्कार : भीलों में मृत शरीर को जलाने एवं गाड़ने की प्रथा है। जिनकी मृत्यु बीमारी से होती है तथा जिनके कोई सगा संबंधी नहीं होता है उनके मृत शरीर को गाढ़ा जाता है जबकि शेष अन्य का दाह संस्कार किया जाता है। मृतक को उसके परिवार एवं रिश्तेदार श्मशान स्थान पर ले जाते हैं। उसे स्नान कराकर नवीन वस्त्र धारण करवाया जाता है। तत्पश्चात् चिता पर दक्षिण की ओर पैर करके लिटाया जाता है। मृतक के मुँह में दारु की धार राबड़ी व पानी देते हैं। तत्पश्चात् मृतक का पुत्र अथवा कोई सगा संबंधी तीन या पाँच परिक्रमा कर अग्नि प्रज्ज्वलित करता है। दाह क्रिया के बाद सभी लोग किसी जलाशय में स्नान करके मृतक के घर लौट जाते हैं। भीलों के तीसरे दिन दिया करते हैं जिसमें सभी को भोजन कराते हैं। सम्पन्न लोगों में बारहवां करने की भी प्रथा है। जिनीगनार किड्स के क

9. राजनैतिक संगठन- भीलों में सामाजिक न्याय व्यवस्था के सुचारु ढंग से बनाये रखने के लिये परम्परागत जाति पंचायत होती है, जो गाँव स्तर पर तथा वृहत स्तर पर भी कार्य करती है जिसके द्वारा छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा किया जाता है। विवाह से संबंधित झगड़ों को हल करना तथा सगोत्रीय विवाह को रोकना परम्परागत कुल देवी देवताओं की पूजा अर्चना की व्यवस्था करना तथा मन्दिर आदि का निर्माण करवाना, जाति पंचायत के प्रमुख कार्य हैं। af

10. परिवर्तन की प्रक्रिया अन्य जनजातियों समान भील जनजातियों के भी बाहरी व्यक्तियों से सम्पर्क, विकास कार्यों से इनकी उन्नति के लिये किये गये प्रयासों, शिक्षा का विकास आदि कारणों के व्यापक प्रभाव स्वरूप भीलों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक स्थितियों में काफी परिवर्तन आया है। जिससे इनके खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, आवास व्यवस्था में परिवर्तन नजर आने लगा है।

11. समस्याएँ एवं समाधान- भील जनजाति की मुख्य समस्या आर्थिक है। भील पहाड़ी खेती पर निर्भर होते हैं जहाँ पर मक्का, कोदो, कुटकी आदि अनाज ही पैदा हो पाते हैं जिससे इनका भरण पोषण ठीक ढंग से नहीं हो पाता है। परिणाम यह होता है कि इनको पेट पालने के लिये मजदूरी करनी पड़ती है। वह भी घर से दूर शहरों में जाना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि इनके बच्चे शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। साथ ही

कुपोषण के कारण इनके स्वास्थ्य का स्तर भी निम्न होता है। अशिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण अन्धविश्वास जैसी समस्याएँ भी विद्यमान हैं।

भील जनजाति के राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा के साथ जोड़ने के लिये उन्हें उनके निवास के पास ही रोजगार की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। इसके माध्यम से जहाँ उनके बच्चे शिक्षित होंगे वहीं उनकी आर्थिक

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

स्थिति में सुधार होगा जिससे रहन-सहन एवं स्वास्थ्य का स्तर भी ऊपर उठेगा। अतः भीलों की समस्याओं को दूर करने के प्रमुख उपायों में शिक्षा एवं स्थायी रोजगार की व्यवस्था को ध्यान में रखकर ही तैयार किया जाना चाहिये।

12. उपसंहार- अन्य जनजातियों की भाँति भील जनजातीय संस्कृति भी भारतीय लोक संस्कृति का ही अभिन्न अंग हैं। इसके अन्तर्गत भी वे सभी प्रकार की अभिव्यन्जनायें इसका अविभाज्य अंग हैं जो परम्परागत रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती है तथा उन्हें समकालीन समाज में मान्यता प्राप्त है। इस तरह जनजातीय संस्कृति की परिधि के अन्तर्गत भीलों में व्याप्त जनजातीय मिथक एवं लोककलायें, गीत, संगीत, नृत्य, धार्मिक विश्वास, उत्सव, अलंकरण एवं सौंदर्याभिव्यक्ति सभी सम्मिलित किया जाना चाहिये तभी एक सम्पूर्ण भील जनजाति की वास्तविक संस्कृति का अस्तित्व उभरकर सामने आता है।

12.5 कोरकू (Korku)

कोरकू मध्य प्रदेश का एक प्रमुख जनजाति है, जो सतपुड़ा पहाडियों के वन आँचल प्रदेशों में निवास करती है। यह जनजाति बैतूल जिले के भैंसदेही और चिचोली तहसील में हरदा जिले की हरदा टिमरनी और खिरकिया तहसील में जिला खण्डवा की हरसूद तथा बुरहानपुर तहसीलों में निवास करती है।

उत्पत्तिः-किंवदन्ती है कि रावण वनविहार को निकला। वह सतपुड़ा और विन्ध्याचल पहाड़ियों के बीच आया। देखा कि स्थान बड़ा रमणीक है, किन्तु निर्जन है। साथ ही यह

स्थान वन सम्पदा से सम्पन्न है। रावण ने अपने ईष्ट देवाधिदेव महादेव को स्मरण किया कि इस क्षेत्र को आबाद करें। उन्होंने अपने दूत 'काग' (कागेश्वर) को बुलाया तथा कहा कि सांवलीगढ़ (बैतूल) और भंवरगढ़ के बीच पर्वतीय स्थल से लाल मिट्टी ले आए। उस लाल मिट्टी से महादेव ने दो मानव आकृतियों का निर्माण किया-स्त्री तथा पुरुष उन आकृतियों में महादेव प्राण फूंकने ही वाले थे कि इन्द्र ने नाराज होकर दो घोड़े भेजे, जो तीव्रगति से आकर दोनों आकृतियों को नष्ट कर गए। महादेव को क्रोध आया और उन्होंने उसी मिट्टी से दो कुत्ते बनाए तथा उसमें प्राण फूंक दिए। इन वीभत्स और भयानक कुत्तो ने इन्द्र के घोड़ों को भगा दिया। इसके बाद महादेव ने पुनः दो आकृतियाँ एक नर और एक नारी की बनाईं तथा उनमें प्राण फूंक दिए तथा इनका नाम 'मूला' और 'मुलई' रखा यही मूला और मुलई कोरकू जनजाति के आदि पुरुष हुए।

एक अन्य पौराणिक आख्यान के अनुसार कोरकू मालवा की धार नगरी में रहते थे। एक बार की बात है कि कोरकू शिकार खेलने निकले। वे एक सांभर का पीछा करते-करते पचमढ़ी महादेव की पहाड़ियों तक आ गए। सांभर पहाड़ी के एक गुफा में घुस गया और शिकारी गुफा द्वार पर सांभर के लौटने का इन्तजार करने लगे। लम्बी प्रतीक्षा के बाद उस गुफा से एक तपस्वी बाहर आए। उन्होंने उनको दो मुट्ठी चावल दिया। उन शिकारियों ने चावल को पकाया तथा उनके आश्चर्य का तब ठिकाना ही न रहा, जब दो मुट्ठी चावल से शिकारी दल के सदस्यों का पेट भर गया तथा कुछ चावल बच भी गये। उस तपस्वी ने शिकारियों से कहा कि मैं महादेव हूँ और मैं ही शिकार था। तुम लोग मेरे पीछे पीछे इन पहाड़ियों तक आ गए हो, अतः अब यही पर बसना उचित होगा। तब से कोरकू वहीं बस गए।

1. गोत्र:- प्रत्येक जनजाति का अपना गोत्र होता है। कोरकू जनजाति का भी अपना गोत्र है, जिनकी संख्या 36 है। प्रत्येक गोत्र का अपना टोटम है, जिसे निषेध कहा जाता है। कोरकू जनजाति के गोत्रों तथा निषेधों का विवरण निम्न है-

क्र. गोत्र	निषेध
1. अलावा	आम का अलाव, अलाव की राख से बर्तन नहीं मांजते

2. अवाथ	टिड्डी, टिड्डी नहीं खाते
3. अखाड़ूपा	आग जलाने का स्थान
4. अजनाराय	अजवाइन, अजवाइन नहीं खाते
5. अमलाह	खस खस की बीज, खस खस नहीं खाते
6. अमलियाँ	इमली, इमली नहीं खाते
7. अवलियाँ	आँवला, आँवला फल नहीं खाते
8. अजरावणियाँ	अजनवृक्ष, वृक्ष नहीं काटते
9. ओस्सन्पा	वक्षणवेल, मवेशी को नहीं खिलाते
10. ईट	ईट, दीवान नहीं बनाते
11. कटारा	वाणासुर की मां कोटरा, कोटरा के सम्मान में पूजन करते हैं
12. किक	केकड़ा, केकड़ा नहीं खाते
13. खपड़िया	कवेलू, घर पर कवेलू नहीं छाते
14. खराड़िया	खड़ी घास, घास नहीं लगाते
15. गजावा	जंगली सुअर, सुअर का माँस नहीं खाते
16. गुरिया	खाट, खाट नहीं बुनते
17. गोबर्या	गोबर, गोबर से घर नहीं लीपते
18. घट्टापा	घट्टी, घट्टी का पिसा आटा खाते हैं
19. घोड़मारिया	घोड़ा मारने वाला, घोड़े पर सवारी नहीं करते
20. चांगड्या	अचार वृक्ष, फल नहीं खाते

(2) जनजातिः- कोरकू जनजाति के चार वृहद समूह हैं। ये वृहद समूह जाति की विशेषताओं पर आधारित हैं। ये वृहद जाति समूह निम्न हैं:-

(a) रूमा (b) पोतबड़ा (c) ढ़लारया और (d) बोबई या बोन्डई।

(3) गण:- जाति के आधार पर कोरकू जनजाति में चार गण हैं। प्रत्येक गण का निश्चित स्वभाव है। गण तथा उनके स्वभाव का विवरण निम्न है-

क्र.	गण (तारी)	स्वभाव (विशेषताएँ)
1.	कोरो (आदमी)	ताजा व शुद्ध माँस खाने वाला
2.	राक्षस (शैतान)	सड़े गले या मरे हुए पशु पक्षियों का माँस खाने वाला
3.	सराकू (बंदर)	भाजी पत्ता खाने वाला
4.	बाना (रीछ)	मधुमक्खी का छत्ता तोड़ने वाला

12.6 रीति-रिवाज तथा संस्कार

कोरकू जनजाति में अनेक रीति-रिवाज तथा संस्कारों का सम्पादन किया जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख का विवरण निम्नलिखित है-

(1) जन्म संस्कारः- कोरकू महिलाएँ बच्चे को जन्म देने के दिन तक अपने दैनिक कार्यों में व्यस्त रहती हैं। प्रसव के बाद अवश्य ही 7 से 15 दिनों तक आराम की व्यवस्था रहती है। प्रसूति का काम घर की बड़ी-बूढ़ी औरतों के द्वारा सम्पन्न होता है। अन्य किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं होती है। यदि गर्भवती महिला को असीम कष्ट हो तथा शिशु जन्म में परेशानी हो रही हो, तो उसे पति के पैर का धोवन (चरणामृत) दिया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चरणामृत पीने से शिशु का जन्म आसानी से हो जाएगा। शिशुजन्म के तीसरे या पाँचवें दिन शिशु नाला काटा जाता है।

(2) नामकरण:- कोरकू जनजाति में लड़की का नामकरण तीसरे दिन और लड़के का नामकरण पाँचवें दिन किया जाता है। घर की साफ सफाई की जाती है तथा गाँव की महिलाओं को आमंत्रित किया जाता है। बच्चे का नामकरण गाँव की सयानी औरतों से विचार विमर्श के बाद किया जाता है। ये नाम दिन, महिना, ऋतु, नदी पहाड़ आदि के नाम से किए जाते हैं। उदाहरण के लिए-

(a) यदि बच्चे का जन्म सोमवार को हुआ है, तो उसका नाम सोमा, सोमई, समोती, समोना आदि।

(b) यदि बच्चे का जन्म मंगलवार को हुआ है, तो उसका नाम मंगल, मंगली, मंगराय आदि।

(c) यदि बच्चे का जन्म बुधवार को हुआ है, तो उसका नाम बुद्धा, बधई, बादू, आदि।

(3) मृत्यु संस्कारः- कोरकू समाज में मृतक को दफनाया जाता है, किन्तु अपवाद की स्थिति में अग्नि संस्कार भी किया जाता है। मृत्यु हो जाने पर गाँव के सभी लोग अर्थी लेकर श्मशान घाट जाते हैं। कुछ लोग कब्र खोदने का कार्य करते हैं। दफनाते समय मृतक शरीर वस्त्ररहित तथा सिर दक्षिण की ओर किया जाता है। दफनाने से पहले कब्र की भूमि का मूल्य एक रुपये दिया जाता है तथा मृत आत्मा की शान्ति के लिए मदिरा, दूध, तमाखू, खिचड़ी, हल्दी आदि को रखा जाता है। सबसे पहले मृतक का पुत्र निकट रिश्तेदार एक मुट्ठी मिट्टी डालता हैं, फिर श्मशान के सभी लोग मिट्टी से गड्ढे को पाट देते हैं। इसी के साथ स्त्रियाँ घर की साफ सफाई करती हैं। घर के दरवाजे पर जलता कण्डा रखा जाता है।

(4) मृत्यु भोजः- मृतक परिवार की सुविधा के अनुसार किसी भी सोमवार को मृत्युभोज दिया जाता है। मृत्यु भोज को कोरकू 'तीजा' कहते हैं। इसमें मृतक के परिजन और रिश्तेदार सम्मिलित होते हैं। तीजा में जो कोरकू आते हैं, अपने साथ एक पाव अनाज और मिर्ची अवश्य लाते हैं। मृतक के परिवार को अपनी सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार सहायता करते हैं।

(5) माण्डोः- मृत्यु भोज के दूसरे दिन मृतक की समाधि पर एक लकड़ी का स्तम्भ गाड़ा जाता है, जिसे मुण्डा, माण्डो या मृतक स्तम्भ के नाम से जाना जाता है। यह सागौन की लकड़ी का बनाया जाता है। कोरकू जनजाति सुतार उपवर्ग के व्यक्ति माण्डो बनाते हैं। सागौन की लकड़ी न मिलने से माण्डो पत्थर का भी बनाया जाता है। इस स्तम्भ पर वह सब अंकित किया जाता है, जो मृत व्यक्ति को प्रिय थी। माण्डो के नीचे मनुष्य की आकृति बनाई जाती है। दूसरी आकृति घुड़सवार की होती है। माण्डो कोरकू जनजाति की कला का एक नमूना है।

(6) मृत्यु गीत:- कोरकू जनजाति में मृत्यु गीत की भी प्रथा है। इस मृत्युगीत में मृतक व्यक्ति से संबंधित स्मृतियों को तथा उसकी प्रिय वस्तुओं को याद किया जाता है। मृत्यु गीतों को गाथा गीत, फुलगजनी अथवा सिडोली गीत कहा जाता है।

(7) सिडोली प्रथाः- कोरकू जनजाति में ऐसी धारणा प्रचलित है, जो व्यक्ति मर जाता है, वह कुछ दिनो वाद देवताओं और पितरो में सम्मिलित हो जाता है। मृत व्यक्ति को देवताओं और पितरों में सम्मिलित होने के लिए किए गए कार्य को ही सिडोली के नाम से जाना जाता है। इस दिन आसपास के सभी कोरकुओं को आमंत्रण दिया जाता है। बाल-वृद्ध सभी इस आमंत्रण में सम्मिलित होते हैं जो आपस में एक दूसरे को गालियाँ देते हैं। अनेक अवसरों पर ऐसे समारोहों में हत्याएँ तक हो जाती हैं। लेकिन इस समारोह में हुई हत्या की कहीं सुनवाई नहीं होती है। इसमें सम्मिलित सभी व्यक्ति शराब पीते हैं तथा रात्रि में सहभोज करते हैं। पूर्वजों की स्मृति में वृद्ध महिलाएँ गीत गाती हैं।

(8) विवाह प्रथाः कोरकू जनजाति में विवाह की निम्न चार प्रथाओं का प्रचलन है-

(a) लमझना प्रथाः- जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है यह विवाह की वह प्रथा है, जिसमें लड़का लड़की के घर में स्थायी रूप से रहने के लिए चला जाता है। लड़की का पिता अपने आस पास योग्य वर की तलाश करता है। लड़का मिल जाने पर वर स्थायी रूप से लड़की के घर रहने लगता है। इससे स्पष्ट है कि कोरकुओं में मातृ सत्तात्मक विवाह और परिवार भी पाए जाते हैं।

(b) चिथोडा:- चिथोड़ा विवाह का वह प्रकार है, जो मध्यस्थ के माध्यम से होता है। कोरकुओं का मुखिया

गाँव के किन्हीं दो व्यक्तियों को विवाह हेतु बातचीत के लिए लड़की के घर भेजता है। यही दो व्यक्ति चिथौड़ा कहलाते हैं। ये मध्यस्थ गुरुवार की शाम को लड़की के घर जाते हैं तथा लड़की के घर के फाटक के सामने डेरा डालकर रात्रि विश्राम करते हैं। दूसरे दिन अर्थात् शुक्रवार को लड़की का पिता, ग्राम पटेल और कोटवार को बुलाकर दोनों चिथोड़ा से विवाह के सम्बन्ध में बातें करते हैं। इस समय विवाह में दहेज का निर्धारण भी हो जाता है। यदि विवाह की बात पक्की हो जाती है, तो चिथोड़ा लौटकर इसकी जानकारी लड़के के बाप को देते हैं और इस प्रकार आगे विवाह सम्पन्न होता है। इस प्रकार का विवाह निम्न प्रक्रियाओं से होकर गुजरता है-

(i) वर पक्ष के यहाँ बुधवार से ही विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। (2)

(ii) मंडप की व्यवस्था की जाती है।

(iii) वधू के यहाँ बारात जाती है तथा विवाह होता है।

(iv) विवाह के उपरान्त विदाई हो जाती है।

(c) राजी-बाजी प्रथाः जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है यह विवाह की वह प्रथा है, जो सहमति के आधार पर की जाती है। ये गली और हाट बाजार में अपने प्रेम का प्रदर्शन करते हैं तथा मौका पाकर एक दिन या तो अपने रिश्तेदार के या अन्यत्र कहीं भाग जाते हैं। लड़की के पिता द्वारा इन्हें जब ढूँढ़ लिया जाता है, तो प्रकरण को पंचायत में रखा जाता है। लड़की अगर राजी-बाजी हो गई, तो इसे कोई गुनाह नहीं माना जाता और दोनों में विवाह हो जाता है। साथ ही जाति प्रथा के अनुसार उसे दण्ड दिया जाता है तथा दण्ड को वसूला जाता है। पंचायत दहेज निर्धारण का कार्य करती है। (81)

(d) तलाक और विधवा विवाहः यह चौथे प्रकार का विवाह है। जिस प्रकार से अन्य जनजातियों में तलाक और विधवा विवाह का प्रचलन है, कोरकू जनजाति में भी तलाक और विधवा विवाह का प्रचलन है। सामान्यतया यह पाया जाता है कि यदि कोरकू पत्नी अपने पति के पास नहीं रहना चाहती, तो वह पंचायत के पास जाती है और पंचायत

के माध्यम से तलाक ले लेती है। साथ ही पंचायत की सहमति से दूसरे पति के यहाँ जा सकती है। ऐसी स्थिति में उसे दूसरे पति से पहले पति को दहेज का मुआवजा दिलाना पड़ता है। इस प्रथा को झगड़ा चुकाना कहा जाता है। मुआवजे में नगद राशि के अलावा बैल, बकरा, मुर्गी अनाज, आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

इसके साथ ही कोरकू समाज में विधवा विवाह का भी प्रचलन है। यदि मृतक का भाई विधवा को नहीं रखना चाहता, तो उसे मायके भेज दिया जाता है। फिर वह किसी भी पुरुष के साथ विवाह करने के लिए स्वतंत्र होती है। एक समय में एक कोरकू एक से अधिक पत्नियों को रख सकता है।

(9) वैवाहिक प्रतिबन्धः- जिस प्रकार अन्य समाजों में विवाह से सम्बन्धित प्रतिबन्ध हैं, ठीक उसी प्रकार कोरकू समाज में भी विवाह से सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध हैं। जो प्रमुख प्रतिबन्ध हैं, उनका विवरण इस प्रकार है

(a) कोरकू जनजाति में सजातीय विवाह को सर्वोत्तम विवाह माना जाता है।

(b) कोरकू जनजाति में एक ही गोत्र में विवाह करने पर प्रतिबन्ध है। अर्थात सगोत्रीय आपस में विवाह नहीं कर सकते हैं।

(c) कोरकू जनजाति में सामान्यतया मामा/माता के गोत्र की लड़की से विवाह करने की मनाही है।

(10) देवी-देवताः- कोरकू जिन देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

(ए) महादेवः- देवाधिदेव महादेव इनके पितामह हैं। कोरकू की पूजा होती है।

(बी) रावण:- कोरकुओं की उत्पत्ति रावण की प्रार्थना से भगवान महादेव द्वारा हुई है। अतः कोरकू इनकी पूजा करते हैं।

(सी) मेघनाथ :- एक समय मेघनाथ ने कोरकुओं की युद्ध से रक्षा की थी। अतः कोरकू मेघनाथ को भी पूज्य मानते हैं।

(डी) महावीर देवः- इन्हें खनेरा देव भी कहते हैं, जो गाँव की सीमा के बाहर स्थापित किए जाते हैं तथा गाँववासियों की बीमारी से रक्षा करते हैं।

(ई) किलार-मुठवाः- किलार-मुटवा देव का चबूतरा गाँव के मध्य में होता है। ये ग्राम देवता की भाँति होते हैं। इनकी पूजा अर्चना से गाँव में किसी प्रकार की बीमारी नहीं आती है।

(एफ) खेड़ा देव:- खेड़ा देव की स्थापना गाँव की सीमा पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर रहती है। यह देवी कृषि तथा मवेशियों से सम्बन्धित है। यह वह देवता है, जो भूत प्रेत और दुष्ट आत्माओं से ग्रामवासियों की रक्षा करता है।

(जी) सूर्य-चन्द्रमाः- कोरकू जनजाति के लोग सूर्य और चन्द्रमा की नियमित पूजा करते हैं।

(एच) नर्मदा-ताप्ती :- कोरकू जनजाति के लोग नर्मदा और ताप्ती नदी को माता के समान आदर करते हैं। ये प्रत्येक अमावस को नर्मदा स्नान करते हैं तथा नर्मदा का जल लाकर खेतों में छिड़कते हैं। इनका विश्वास है कि इससे अच्छी पैदावार होती है।

(11) जादू-टोनाः- अन्य जनजातियों की भाँति कोरकुओं का भूत-प्रेत और जादू-टोना में विश्वास है। जिस व्यक्ति को भूत-प्रेत अथवा जादू-टोना लगता है, वह व्यक्ति पड़ियार के पास जाता है। पड़ियार ओझा होता है, जो भूत-प्रेत और जादू-टोने का इलाज करता है। पड़ियार को शराब, मुर्गी, बकरे आदि की बलि दी जाती है। बुखार का इलाज भी पड़ियार करता है। कोरकुओं में 'मूठ' मारने की भी प्रथा है तथा मूठ में इनका विश्वास है। जिसे मूठ मारी जाती है, वह निर्धारित समय में मर जाता है। कोरकुओं में 'मगटो डुकरी' होती है। यह गाँव की वह महिला होती है, जो झाड़-फूंक करती है तथा बुखार, आदि की दवाइयाँ देती है।

(12) पर्व-त्योहारः- कोरकुओं द्वारा अनेकों पर्व और त्योहारों को मनाया जाता है। ये सारे पर्व और त्योहार जातीय परम्परा के अनुसार हर्ष और उल्लास से मनाते हैं। जो प्रमुख पर्व त्योहार मनाए जाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

(a) गुड़ी पड़वाः- इसे चैत्र मास में मनाते हैं। इस दिन नीम की पत्तियों में गुड़ मिलाकर खाते हैं। इनका विश्वास है कि ऐसा करने से वर्ष भर किसी भी प्रकार की बीमारी नहीं होती है।

(b) देव-दशहराः- चैत्र महीने में ही पड़वा से दसवीं तक मनाया जाता है। इस दिन पड़ियार बच्चा के गले में धागे पर 5-7 गाँठ लगाकर बाँधता है। इस धागे को बेलदशी कहते हैं। इनका विश्वास है कि इसको बाँधने से बच्चों को भूत-प्रेत का डर नहीं रहता है।

(c) आखातीज:- कोरकुओं में विवाह हिन्दू तिथि के अनुसार माघ और वैशाख माह में होते हैं। आखातीज के दिन अधिकांश शादियाँ होती हैं। कोरकुओं के लिए यह दिन अत्यन्त ही शुभ और पवित्र माना जाता है।

(d) डोडवली :- जेष्ठ मास में ये डोडवली का त्योहार मनाते हैं। यह त्योहार मुख्यतया लड़के और लड़कियों का होता हैं। इस दिन लड़के जामुन की पल्लवित शाखाएँ लाते हैं और उन शाखाओं से किसी लड़के को ढँक देते हैं। इसे 'गमनाय' कहते हैं। इसके कमर में एक रस्सी बाँधी जाती है, जिसे पीछे से एक लड़का खींचता है। इसके बाद दोनों नृत्य करते हैं। लड़कियों के समूह में भी ऐसा ही किया जाता है।

(e) जिरोती:- यह त्योहार सावन मास की अमावस्या को मनाया जाता है। इस दिन पकवान बनाते हैं तथा परिवार के सबलोग मिलकर खाते हैं और 'डंडा नाच' करते हैं। ()

(f) पोला:- भाद्र पद कृष्ण पक्ष की अमावस्या पड़वा को पोला त्योहार मनाते हैं। यह त्योहार महादेव और पार्वती के चौपड खेलने से सम्बन्धित है।

(g) देव-दशहरा :- यह क्वॉर मास में मनाया जाता है। क्वार मास की पड़वा से दसवीं तक यह त्योहार मनाया जाता है। यह खुशी का त्योहार है। लोग पूजा अर्चना करते हैं तथा मन्नतें मानते हैं।

(h) दीपावली:- यह त्योहार कार्तिक मास की अमावस्या को मनाया जाता है। घर की साफ सफाई करते हैं तथा दीपक जलाए जाते हैं। लक्ष्मी की पूजा की जाती है। ओझा

लोग मंत्रों को भी जगाते हैं। इस दिन बैलों को स्नान कराते हैं तथा उनकी पूजा करते हैं।

(i) माघ दशहराः- माघ दशहरा शादी-विवाह प्रारम्भ होने की खुशी में मनाया जाने वाला त्योहार है। माघ दशहरा का त्योहार, खुशी और उल्लास के साथ मनाया जाता है। शादी विवाह के मौके पर स्त्रियाँ प्रसिद्ध 'गदली नाच' नाचती हैं।

(i) होली:- ऐसी किंवदन्ती है कि 'होलिका' ब्राह्मण की कन्या थी, जो कोरकू युवक से प्रेम करती थी। सामाजिक रीतियों के कारण ऐसा करना संभव नहीं हुआ। कुछ समय बाद होलिका का विवाह एक ब्राह्मण युवक से हो गया। यह खबर मिलते ही कोरकू युवक ने आत्महत्या कर ली। यह समाचार जब होलिका को मिला तो वह चिता तैयार कर भस्म हो गई। इन दोनों की प्रेम कथा को अमर बनाने के लिए होली का पर्व मनाया जाता है।

सामाजिक संगठन (Social Organization)

कोरकुओं का सामाजिक संगठन अत्यन्त ही शक्तिशाली होता है। इनके सामाजिक संगठन के प्रमुख आधार

निम्न हैं-

(1) परिवार:- परिवार किसी समाज की मूलभूत इकाई है। परिवार पर ही समाज की अन्य इकाइयाँ आश्रित हैं। कोरकुओं का परिवार अत्यन्त ही व्यवस्थित है। इसमें पति-पत्नी तथा विवाहित लड़के और लड़कियाँ होती हैं। परिवार दोनों ही प्रकार के पाए जाते हैं, संयुक्त तथा व्यक्तिगत। परिवार में बड़ों तथा बूढ़ों का सम्मानजनक स्थान होता है। परिवार सामाजिक तथा धार्मिक कार्य होते हैं, जो मुखिया द्वारा संरक्षित और संचालित होते हैं। शादी ब्याह के बाद लड़के और लड़कियाँ अपना अलग परिवार बसा लेते हैं।

(2) स्त्री:- कोरकू जनजाति में महिलाओं का समाज में महत्वपूर्ण स्थान होता है। घर के कार्यों तथा धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं में महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन पर जहाँ एक ओर घर गृहस्थी के कार्यों को देखने की जिम्मेदारी होती है,

वहीं दूसरी ओर बच्चों के लालन पालन का उत्तरदायित्व भी इन्हीं पर होता है। कोरकू महिलाएँ काफी कर्मठ होती हैं। घर गृहस्थी से लेकर खेत खलिहान तक के सारे कार्यों में वे बढ़ चढ़कर हिस्सा लेती हैं। कहा

(3) भोमकाः- जनजाति के पुरोहित को भोमका कहते हैं। शादी-विवाह तथा अन्य पारिवारिक संस्कारों के सम्पादन में भोमका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। देव पूजन, मंडप, प्रतिष्ठा, लग्न तथा विवाह, आदि से सम्बन्धित समस्त धार्मिक कार्यों का सम्पादन भोमका द्वारा किया जाता है।

(4) पटेल:- कोरकू समाज में पटेल को अत्यन्त ही आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इसकी सलाह के बिना किसी कार्य का सम्पादन नहीं किया जाता है। पर्व तथा त्योहारों पर पटेल की अहम् भूमिका होती है। शादी विवाह सम्बन्धी झगड़े, तलाक, कृषि कार्य आदि पटेल की सहमति से किए जाते हैं।

12.7 भारिया (Bhariya)

मध्यप्रदेश में अनेक अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं। इनमें से भारिया एक है, जो मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा जिले के तामिया विकासखण्ड, जो अब तामिया जनपद के नाम से जाना जाता है, में निवास करती है। तामिया जनपद में एक पातालकोट नाम का स्थान है, जो 79 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है, तथा जिसका आकार कटोरे की भाँति है, इसी भूभाग में तथा इसके आस-पास के क्षेत्र में भारिया अनुसूचित जनजाति आज भी निवास करती है। यह स्थान अत्यन्त दुर्गम है तथा यहाँ सूर्य की रोशनी दोपहर के 12 बजे के करीब पहुँचती है तथा शाम को 4 बजे के आस-पास इस क्षेत्र में सूर्यास्त हो जाता है। वन सम्पदा पर आश्रित यह जनजाति आज भी झोपड़ीनुमा मकानों में निवास करती है।

भारिया का शाब्दिक अर्थ है- भार या वजन अर्थात यह जनजाति आज भी अपना जीवन निर्वाह कठिन परिश्रम से करती है। आवागमन के नाम पर क्षेत्र में पगडंडियाँ है, जो भूलभुलैया का काम करती हैं। यह स्थान जंगलो और पहाड़ों से घिरा है। अतः यहाँ केवल मोटे अनाज पैदा होते हैं। पशुपालन में गाय, बकरी आदि घरेलू जानवर पाले जाते

हैं। अवागमन की कठिनाई के कारण यह जनजाति आज भी शहरी जीवन की चकाचौंध से दूर है।

भारिया जनजाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी का अभाव है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री हीरालाल और रसेल के अनुसार भारिया जनजाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक किवदंतियाँ हैं, किन्तु इन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। प्रजातीय (Racial) दृष्टिकोण से भारिया जनजाति द्रविड़ समूह के सदस्य हैं। यह श्रमसाध्य जनजाति है। ये शारीरिक रूप से काफी सुदृढ़ होते हैं। इनकी कद काठी तथा इनकी मुखाकृति उन्नत किस्म की होती है। आँखे बड़ी और चमकदार तथा शरीर तन्दुरुस्त होता है। ये देखने में आकर्षक लगते हैं। जहाँ तक रंग का सवाल है- भारिया जनजाति में काले तथा गेहुँए दोनों रंगों के सदस्य पाए जाते हैं।

सामाजिक संगठन (Social Organisation) - सामाजिक संगठन किसी भी समाज का मूल आधार होता है। संगठन के आधार पर ही समाज की सभी क्रियाकलापों का संचालन होता है। संगठन के अभाव में किसी भी समाज की संकल्पना नहीं की जा सकती है। भारिया जनजाति का भी एक सामाजिक संगठन है। भारिया जनजाति के सामाजिक संगठन का आधार व्यक्ति (Individual) है। भारिया पितृसत्तात्मक समाज (Patriarchal Society) है। भारतीय सामाजिक संगठन में परिवार का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारिया जनजाति के सामाजिक संगठन का आधार भी परिवार (Family) ही है। प्रायः सभी समाजों में प्रारंभिक अवस्था में परिवार का स्वरूप संयुक्त (Joint) होता था। भारिया जनजाति में परिवार संयुक्त होते थे, किन्तु सामाजिक परिवर्तन, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा आर्थिक विपन्नताओं के कारण आज भारिया परिवार संयुक्त से एकाकी की ओर अग्रसर हो रहे हैं। आज भारिया परिवार में मुखिया का वह स्थान और सत्ता नहीं है, जो प्रारंभिक समाजों में हुआ करती थी।

भारिया परिवार के सभी सदस्य मिल-जुलकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते है। परिवार के सभी सदस्य उम्र और लिंग के अनुसार अपने कार्यों का निर्वहन करते हैं। परिवार के प्रमुख कार्यों में प्रजनन, उत्पादन और संरक्षण को महत्व दिया जाता है। सभी सदस्य आपसी सहयोग और समझदारी से आर्थिक क्रियाओं का सम्पादन करते हैं।

प्रायः पुरुष सदस्य घर के बाहर का कार्य करते हैं जबकि स्त्रियाँ घर के अन्दर का कार्य करती हैं। वैसे स्त्रियाँ अनेक अवसरों पर बाहर के कार्यों में पुरुषों का सहयोग करती हैं।

सामाजिक संगठन में गोत्रों (Clans) की अहम् भूमिका होती है। गोत्र का सम्बन्ध अपने पूर्वजों से होता है जिसमें अपनी उत्पत्ति का निर्धारण किया जाता है। भारिया जनजाति में भी अनेक गोत्र पाए जाते हैं। इन गोत्रों में भरदिया, खमारिया, पंचालिया, रोतिया, ठाकरिया, कन्दोदिया, नहालिया, महानिया, डंडोलिया, बिजलिया, बघोरिया आदि प्रमुख हैं। विवाह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। भारिया सामाजिक संगठन में भी विवाह को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारिया जनजाति में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है। भारिया जनजाति के पुरुष एक से अधिक विवाह कर सकते हैं, किन्तु भारिया जनजाति की स्त्रियाँ एक से अधिक विवाह नहीं कर सकती हैं। यदि भारिया जनजाति की स्त्री अपने पति से अलग रहती है, तो वह दूसरा विवाह नहीं कर सकती है, किन्तु किसी भी पुरुष के साथ जीवन बिताने का अधिकार है। इस प्रकार की प्रथा भारिया जनजाति में पाई जाती है और इस प्रथा को 'करता संस्कार' के नाम से जाना जाता है। भारिया जनजाति में बाल-विवाह की प्रथा आज भी पाई जाती है। भारिया जनजाति में चार प्रकार के विवाहों का प्रचलन है-

(a) समझौता विवाह- जिसमें दो परिवारों के बीच कुछ बिन्दुओं पर सहमति हो जाने के उपरान्त विवाह सम्पादित किया जाता है।

(b) सेवा विवाह- जिसमें लड़का-लड़की के घर में रहकर सेवा देता है और इस सेवा के बदले लड़की और लड़के का विवाह हो जाता है।

(c) प्रेम विवाह- जिसमें लड़की और लड़का आपसी सहमति से भागकर विवाह कर लेते हैं।

(d) जबरन विवाह- इसे घुसरी भी कहते हैं, जिसमें लड़का-लड़की से जबरदस्ती विवाह कर लेता है।

निषेध (Taboos) - अन्य समाजों की भाँति भारिया जनजाति भी कुछ निषेधों का पालन करती है, इनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं-

(a) खेती का आनाज तब तक घर के अन्दर नहीं जाता, जब तक कि मुर्गे की बलि न चढ़ाई जाये।

(b) जन्म से तीन दिन तक परिवार का कोई भी सदस्य बच्चे को छू नहीं सकता है, केवल दाई जिसे सुइमाइन कहते हैं, बच्चे को छू सकती है।

(c) मासिक धर्म के दौरान कोई भी महिला किसी प्रकार के धार्मिक कार्यों में हिस्सा नहीं ले सकती है।

(d) भारिया जनजाति में एक ही गोत्र में विवाह वर्जित है। ऐसा करने पर दण्ड दिया जाता है।

(e) भारिया जनजाति में दूसरी जनजाति से विवाह वर्जित है। ऐसा करने पर समाज द्वारा दण्डित किया जाता है। देवता और देवियाँ (Gods and Deities) - अन्य समुदायों की भाँति भारिया की जनजाति भी अनेक देवताओं और देवियों में विश्वास करती है। इनके धार्मिक क्रियाकलाप हिन्दू धर्म की तरह ही है। इनके प्रमुख देवी देवताओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

टिप्पणियाँ

(a) भीमसेन- कृषि के देवता है। इनके अतिरिक्त डोंगरदेव, सिनवाद देव, भागदेव, कुड़ोपन, भस्मासुर आदि देवताओं की पूजा करते हैं।गर

(b) देवियों में केरकी माता का विशेष महत्व है। चैत्र मास और दशहरा के पहले इस देवी की विशेष पूजा की जाती है। विश्वास है कि इस देवी की नाराजगी से गाँवों में बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है। मथुआ देवी कल्याण की देवी है, जिसकी पूजा से समाज की भलाई होती है। इसके अतिरिक्त ये झिरिया माता की भी पूजा करते हैं, जो समाज के स्वास्थ्य की देवी है।

(c) भारिया जनजाति के धार्मिक जीवन में इन देवी-देवताओं की विधि-विधान से पूजा करने के लिए पुरोहित होते हैं, जिनके निम्न तीन प्रकार है-

(i) भुमका गाँव में वार्षिक धार्मिक कार्यों को सम्पादित कराते हैं।

(ii) पड़िहार - रोगी की देखरेख और झाड़-फूंक के कार्यों का सम्पादन करते हैं।

(iii) देवचढ़ गाँव के व्यक्तियों के अन्य धार्मिक कार्यों का सम्पादन करते हैं।

पहनावा - आधुनिकीकरण के कारण भारिया जाति की स्त्रियों और पुरुषों के पहनावे में अन्तर आया है। फिर भी स्त्री-पुरुष जो सामान्य पहनावे को अपनाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

(i) स्त्रियाँ अंगिया, पोलका, ब्लाउज, पेटीकोट, साड़ी, चप्पल, जूता आदि पहनती है।

(ii) पुरुष पगड़ी, छिन्दी या पट्टी, बंडी, शर्ट, जैकेट, लंगोटी, धोती, चप्पल और जूते पहनते हैं।

आर्थिक जीवन (Economic Life) - भारिया जनजाति के आर्थिक जीवन को मुख्य रूप से निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) आखेट एवं पशुपालन- भारिया जनजाति का निवास स्थान जंगल और पहाड़ों से घिरा हुआ होता है। ऐसी स्थिति में इनका पशुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पशु दो प्रकार के होते हैं- पालतू पशु (Domestic Animals) और वन्य पशु (Forest Animals)। पालतू पशुओं में भेड़-बकरी, गाय, बैल, भैंस आदि प्रमुख है। जंगलों में निवास करने के कारण इनका वन्य पशुओं से सम्बन्ध रहता है। आखेट से इन पशुओं को मारते हैं तथा इनके माँस को खाते हैं।

(b) प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources) - इनके आस-पास का क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर होता है, जिसका भारिया जनजाति पूरी तरह उपभोग करते हैं। विभिन्न प्रकार के फल, कन्द मूल, पत्ती या भाजी, फूल आदि का प्रयोग भोजन के रूप में करते हैं। अनेक फल ऐसे होते हैं, जिनका व्यवसायिक उपयोग भी करते हैं। उदाहरण के लिए महुआ, तेंदू, हर्रा, बहेरा, आँवला, इमली, आम आदि। रिकन्छ

(c) कृषि (Agriculture) - भारिया जनजाति कृषि कार्यों का सम्पादन भी करते हैं। पहले जंगलों की अधिकता के कारण झूम खेती (Shifting cultivation) करते थे, किन्तु अब ये प्रथा समाप्त हो गई है। चूँकि इनके खेत पथरीले तथा पहाड़ों की तलहटी में होते हैं,

जहाँ सिंचाई आदि की सुविधाएँ नहीं होती थी, इन खेतों में ज्वार, मक्का, तिल, अरहर, बाजरा, कोदौ, कुटकी आदि मोटे अनाजों की खेती करते हैं।

(d) श्रम (Labourer) - भारिया परिवार के अनेक व्यक्ति मजदूरी करते हैं, जो आस-पास के गाँवों में प्राप्त हो जाती है। प्रवासिता की प्रवृत्ति के कारण अनेक परिवार आस-पास के कस्बाई क्षेत्रों में श्रम कार्य करते हैं।

12.8 मारिया

मिकी भौगोलिक वितरण- अविभाजित मध्यप्रदेश व वर्तमान छत्तीसगढ़ का बस्तर आदिवासी बहुल जिला है, इस जिले का तीन चौथाई भाग पहाड़ियों और पठारियों से निर्मित है। बस्तर में मुख्य रूप से कोइतोर जनजाति

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

निवास करती है, इसकी पाँच उप-शाखाएँ हैं- राज गोंड, मुरिया, अबूझमाड़िया, गौर सींग मारियाच्या दण्डामी मारिया और दोर्ला। मारिया जनजाति सम्पूर्ण दक्षिण बस्तर के भू-भाग में फैले हुए हैं, इसके अलावा जगदलपुर, दन्तेवाड़ा, बीजापुर और कोटा तहसीलों में भी निवास करते हैं।

टिप्पणियाँ

माड़ का अर्थ होता है घनघोर पहाड़ी जंगल। वैसे माड़ का अर्थ पहाड़ से भी किया जाता है पहाड़ के ही अर्थ में मेट्टा शब्द का भी प्रयोग होता है, माड़ से माड़िया शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। माड़िया अर्थात वह समुदाय जो दुर्गम पहाड़ों पर निवास करता है माड़िया कहलाता है।

उत्पत्ति- सृष्टि, जीव, वनस्पति आदि की उत्पत्ति और संरचना के विषय में मनुष्य लगातार सोचता रहता है, इन रहस्यों के प्रति उसकी स्वाभाविक जिज्ञासा रही है। वह अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए आस्था और विश्वास का संसार रचता है। ऐसी ही बातें जो कहानी की शक्ल में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है, वह कमोवेश जीवन-पद्धति, मान्यताओं और आचरण के ज्ञात-अज्ञात रूप में अपना असर रखती है।

ऐसी ही कथाएँ मनुष्य के जीव-जन्तुओं व वनस्पतियों के सम्बन्ध में मिलती हैं, मारियाओं के कथानुसार चारों ओर पानी ही पानी था, कोई भी जीव-जन्तु पेड़-पौधे, पहाड़ नहीं थे, तो भगवान बहुत परेशान हुआ उसका बनाया हुआ सब पानी में डूब गया। नष्ट हो गया, ऐसे में भगवान ने सोचा कुछ नहीं रहेगा तो मैं कैसे रहूँगा, इसलिए कुछ करना चाहिए। यह सोचकर भगवान ने एक बहुत बड़ा कुरका (तुम्मा, लौकी का पात्र) लिया उसमें एक आदमी, एक औरत, कुछ आनाज, सब्जी रखकर पानी में छोड़ दिया। पानी में वह कुरका उतराता रहा, उतराता रहा वह डूबा नहीं क्योंकि कुरका तो डूबता नहीं है, वह कुरका बहुत दिनों तक ऐसा ही रहा, यह किसी को नहीं मालूम लेकिन बहुत दिनों के बाद पानी जब कम होना शुरू हुआ तो कुरका भी कहीं पर अटक गया। कुरका अटकने और पानी कम होने के बाद उसमें से आदमी और औरत बाहर निकले। उन लोगों ने कुरके में से सभी सामान बाहर निकाला, बाहर निकलते ही वे बढ़ने लगे और बहुत से आदमी पृथ्वी पर हो गए और उनके साथ आयी सामग्रियाँ भी बढ़ने लगी। इस तरह आदमी तथा अन्य जीव-जन्तुओं व वनस्पतियों का विकास हुआ।

परिवार- मारिया परिवार अक्खड़ व स्वाभिमानी व्यक्तित्व के होते हैं, ये अपने आप में मस्त रहते हैं अपने जीवन और उसके आस-पास के क्षेत्र में किसी भी प्रकार का दखल नापसंद करते हैं। छोटी-छोटी बातों का तुरन्त बुरा मान जाते हैं, ये किस बात पर सामान्य रहेंगे किस बात पर खुश रहेंगे या दुःखी हो जाएँगे यह स्पष्ट समझ में नहीं आता है, इनके साथ अगर कुछ आकस्मिक हो जाये तो ये विचलित हो जाते हैं और स्वयं पर संयम नहीं रख पाते और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि कोई बात इनको लगातार खटकती रहती हैं और कम अवसरों पर इसका अहसास भी होता है। इसी कारण इनके प्रति लोगों में शंकाएँ रहती है कि ये काफी खतरनाक होते हैं। यहाँ तक कि बस्तर में निवास करने वाले लोग भी इनको निकट से नहीं जानते और सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करके इन्हें भय और शंका की दृष्टि से देखते हैं।

मारिया जनजाति अन्य जातियों की तरह कृषि कार्य करते हैं। खेतों में मुख्य रूप से इनका धान, कोदो दुरकी, ज्वार, मक्का, सरसों, तिल और अन्य दलहनों की खेती करते हैं, भोजन के लिए खेतों के अलावा जंगलों से प्राप्त फलों, कांदा व साग का इस्तेमाल

भी करते हैं। जंगली जानवरों का शिकार भी इन्हें बहुत प्रिय है। ये शिकार पकड़ने के लिए अनेक तरीकों का प्रयोग करते हैं से सामान्यतः सभी जानवरों का शिकार करते हैं।

रहन-सहन- मारिया जनजातियों का मकान ऊँची पहाड़ियों पर बने होते हैं। ये एक साथ समूह में पन्द्रह- बीस घर रहते हैं, इनके घरों के चारों ओर सघन वन होते हैं, साथ ही इनके गाँवों के आस-पास नदी-नाले अवश्य होते हैं, पूरा गाँव पारा (मुहल्ला) में बँटा होता है। गाँव के सभी घर छोटे-छोटे होते हैं, प्रत्येक पारो के बीच की दूरी आधा किलोमीटर से लेकर दो किलोमीटर तक हो जाती है, इनका घर लकड़ी बाँस या पत्थर खपरैल से बना होता है सामान्यतः इनके घर में दो कमरे होते हैं। ये कमरे आगे-पीछे, अलग-अलग किसी भी संरचना के हो सकते है घर से लगा हुआ एक अन्य कमरा होता है जो अपेक्षाकृत बड़ा होता है और मजबूत भी जिसमें अनाज रखते हैं, प्रत्येक घरों के सामने दो हिस्सों में विभाजित बिना दीवार का लकड़ी के खम्भों से निर्मित एक झोपड़ी, परछी या मड़िया होती है, यह आमतौर पर गाँव घर के लोगों को बैठने या किसी दूसरे गाँव से आए हुए परिचित को ठहराने के काम में आती है, बाहरी व्यक्ति के नहीं रहने पर घर के बुजुर्ग के लिए यह निश्चित रहती है।

मारिया समाज में स्त्री और पुरुष सभी कार्यों को समान रूप से करते हैं, घर की सफाई, बर्तन धोना, खाना पकाना, शराब बनाना, घर बनाना, खेत में हल जोतना, अन्न बोना, फसल काटना, गाय-बैल चराना, जंगलों से वनोत्पाद लाना, मछली मारना, सभी कार्यों को साथ-साथ किया जाता है, अगर घर से महिला किसी कार्य से बाहर गई है तो पूरा काम पुरुष स्वयं करता है।

पहनावा - मारिया जनजाति सामान्यतः लम्बे, गोरे, हष्ट-पुष्ट व मजबूत शरीर के धनी होते हैं, चौड़ा सीना, मोटे मुलायम केश वाले ये लोग सामान्य रूप से शरीर पर सिर्फ एक कपड़ा कमर में बाँधकर पहनते हैं, इनका बदन लोचदार सुसंगठित और सीधा होता है। ये देखने में काफी शक्तिशाली लगते हैं। कमर में लपेटकर बाँधी गई धोती सर के पीछे बाल को संवारकर बाँधी गई गाँठ व कमर से फंसाई हुई एक कंघी, एक तुम्बा यहीं पर फंसी हुई एक टगियाँ और हाथ में आवश्यकतानुसार कोई एक हथियार मारिया पुरुष की वेश-भूषा होती है। ये अपने केश, दाढ़ी-मूछे स्वयं बनाते हैं या दूसरे का सहयोग लेते

हैं। वह लियाम प्रकी से मिल पौड नाका मारिया स्त्री भी सामान्यतः कमर से लिपटी हुई एक साड़ी घुटनों से कुछ ऊपर तक बाँधकर पहनती हैं। इनके गलों में सफेद मोतियों की हार कम से कम दो या तीन लट की होती है। हाथ-पैर में कुछ गहने भी धारण करती हैं। सर के पीछे कुछ दहिने ओर झुका हुआ बालों का जूड़ा बनाती है, अत्यन्त वृद्ध महिलाएँ अपने रहन- सहन पर ज्यादा ध्यान नहीं देती है, किन्तु किसी पर्व-त्योहार में सबसे जीवन्त और आकर्षक ये वृद्ध महिलाएँ ही होती हैं। आजकल नई पीढ़ी के पुरुषों और महिलाओं के पहनावे में भी बदलाव देखने को मिलता है पुरुषों में धोती की जगह लुंगी, शर्ट, आदि देखने को मिल रहा है वहीं महिलाओं में भी ब्लाउज व पूरी लम्बाई की साड़ी के साथ, पाउडर, बिन्दी, काजल, नाखूर पॉलिश का प्रचलन बढ़ रहा है, ये आमतौर पर बाजारों या शहरों में जाने वाली महिलाओं में देखने को मिलता है।

सामाजिक व्यवस्था- मारिया जनजाति में सामाजिक व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिए अनेक व्यक्ति होते हैं जो विभिन्न अवसरों पर अपना प्रतिनिधित्व करते हैं और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखते हैं-

1. गायता- यह भूमि पूजक होता और गाँव की सम्पूर्ण जमीन और जमीन से सम्बन्धित सभी लौकिक- अलौकिक शक्तियों का नियंता माना जाता है यह धरती का पुजारी होता है। मारियाओं में धरती का स्थान सबसे महत्वपूर्ण होता है, धरती को जननी, देवी-देवता और अलौकिक शक्तियों के पुंज के रूप में माना जाता है, इसी कारण इन जनजातियों में धरती के पुजारी गायता को अत्यन्त श्रद्धा व सम्मान से देखा जाता है।

2. सिरका-वडे-यह झाड़-फूंक का काम करता है, यह ऐसी शक्तियों का स्वामी होता है जो पराभौमिक या लोक विचरण करने वाली होती है। यह सृष्टि की सभी शक्तियों के बारे में एक खास समय में बोल सकता है और पूछे गये प्रश्नों का कार्य कारण उत्तर भी दे सकता है। यह अपने समाज के सभी कष्टों व विपत्तियों को दूर करता है। रोग, दुःख, भूत-प्रेत या अन्य शारीरिक व्याधियों से पीड़ित व्यक्ति बड्डे को अपने घर बुलाता है और वह उसके घर जाकर पीड़ित व्यक्ति के कष्टों को दूर करता है।

3. गुनिया- गुनिया का अर्थ होता है गुणी व्यक्ति। ऐसा गुणी जिसमें अज्ञात, रहस्यभरा, अवर्णनीय, अलौकिक व परालौकिक शक्तियों को जानने व परखने के गुण हो। गुनिया में जादू-टोने को पहचानने और उसे दूर करने के साथ अन्य ऐसे कष्टों के निवारण में निपुणता हासिल होती है, इसे अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा जड़ी- बूटियों की जानकारी अधिक होती है, एक गाँव में कई गुनिया हो सकते हैं। सभी लोग गाँव में गुनियाई का कार्य कर सकते हैं। इनके बीच परस्पर द्वेष या प्रतिस्पर्धा की भावना नहीं होती है, किन्तु जिसमें ज्ञान ज्यादा होता है वह योग्य माना जाता है। गुनिया की वेष-भूषा, वस्त्र, केश आदि सामान्य मारिया की तरह होती है, गुनिया विभिन्न उत्सवों व त्योहारों में भी अपनी भूमिका अदा करता है। प्रसव पीड़ा के समय गुनिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती है वह स्त्री की नाड़ी छूकर प्रसूता के कष्टों की जानकारी प्राप्त करता है और प्रसव काल की घोषणा भी करता है। अगर प्रसूता को ज्यादा कष्ट होता है तो वह झाड़-फूंक भी करता है जिससे प्रसूता को कष्टों से राहत मिलती है।

4. हाना गुंडा- इसे आना गुंडा भी कहते हैं। हाना गुंडा मारियाओं का मृतक संस्कार कराने वाला मुख्य और एकमात्र व्यक्ति होता है। हाना गुंडा के बिना मृत्यु संस्कार की कल्पना संभव ही नहीं होती है। मृतक व्यक्ति का शव शमशान घाट तक तब तक नहीं जाता जब तक हाना गुंडा मृतक के घर उपस्थित न हो। हाना गुंडा के निर्देशन में ही मृतक संस्कार होता है।

गोत्र- मारिया जनजाति कई गोत्रों में विभाजित है। इन सभी गोत्रों के टोटेमिक चिन्ह होते हैं। गोत्र के साथ ही इनके आंगा देव का नाम भी बदल जाता है। इनके प्रमुख गोत्र हैं- मडकामी, ओयामी, वारसा, बोगामी, तेलासी, माड़वी, कलमुसी, लेकामीर, अतरा या अत्रे, कुन्जामी, बेको या उइके, कुरसामी, मुडामी, मोड़िया, मोडियामी या मिरियामी, कडती, मुडियामी, पोटामी, कोहरामी, ताती, येमला, प्रदामी, मुझाकी, पोड़यामी और सोड़ी इन सभी गोत्रों का अपना टोटेमिक चिन्ह होता है जो पेड़, पशु-पक्षी या जलचर-थलचर प्राणियों से सम्बन्धित होते हैं।

बोली-भाषा- मारिया जनजातियों की भाषा मुख्यतः कोया भाषा है जिसे कोया माटा कहते हैं, किन्तु सम्पूर्ण दक्षिण बस्तर के अलग-अलग भागों में थोड़ी बहुत भिन्न रूप से बोली जाती है। बीजापुर में तेलगू मिश्रित कोया बोली जाती है तो उडीसा के पास या कोंटा के नजदीक कोया भाषा में उड़िया का प्रभाव देखने को मिलता है। मारिया जनजाति में एक से छः तक की गिनती के लिए उनकी निजी शब्दावली है एक से छः तक के लिए क्रमशः होंडू, रेंडू, मुंडू, नालुंग, एडंग और आस शब्द है। इसी तरह सूरज के लिए पोड़द, चाँद के लिए लेंज

और तारो के लिए उम्मासी शब्द का प्रयोग करते हैं। गिनि एगड़

संस्कार- सभी समाज, जाति समुदाय व धर्म के व्यक्ति जन्म, विवाह व मृत्यु संस्कारों का आयोजन करते हैं। ये संस्कार उनकी निजी पहचान तथा अभिव्यक्ति होती है, इन्हीं के सहारे व्यक्ति सामान्य सामूहिक प्रक्रियाओं, अनुष्ठानों या रीति-रिवाजों व मान्यताओं की सीमा में आता है। मारिया जनजाति भी अपने परम्परानुसार इन संस्कारों को करते हैं।

1. जन्म संस्कार- जन्म के बाद में मारिया जनजातियों की यह दृढ़ धारणा है कि जन्म भगवान की इच्छा के कारण ही होता है। अगर वे नहीं चाहते तो जन्म नहीं होता। बच्चे के जन्म के समय प्रसूता को किसी भी तरह से दुःख तकलीफ न हो इसके लिए गुनिया या बड्डे को बुलाया करते हैं। बच्चे का जन्म घर से बाहर अस्थायी तौर पर बनाई गई झोपड़ी में होता है। यह माना जाता है कि जन्म के समय की क्रियाएँ शुभ नहीं होती इसलिए घर से बाहर की जाती हैं। बच्चे के जन्म के बाद उसकी नाल नाभि की तरफ से धागे लपेटकर बाँध दी जाती है। शेष नाल को तीर की धार से काटकर अलग कर दिया जाता है। नाल काटने के बाद तीर और नाल पतरभाड़ा नामक पेड़ की पतली डाली के साथ जमीन में गाड़ दी जाती है। घर से बाहर महिला तब तक रहती है जब तक गर्भ-नाल-फूल न निकल जाये। यह दो चार दिनों से लेकर दस पन्द्रह दिनों तक की अवधि हो सकती है। ऐसी मान्यता है कि यह जितनी लेट गिरती है बच्चा उतना ही स्वस्थ होता है। इस समय महिला के भोजन व स्नान का प्रबन्ध उसका पति करता है।

2. नामकरण संस्कार- बच्चे का नामकरण संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। नामकरण संस्कार को तेल देने के नाम से भी जाना जाता है। इस दिन अपने गाँव के लोगों को और सगे सम्बन्धियों को तेल दिया जाता है, तेल देने की रस्म को अत्यन्त गरिमामय ढंग से मनाया जाता है, इस दिन गृहस्वामी लगभग पूरे गाँव को आमंत्रित करता है। आमंत्रित लोगों का स्वागत उत्साहपूर्ण करते हुए उन्हें पेय पदार्थ (महुआ से तैयार) के साथ सुअर व मुर्गी का माँस भी दिया जाता है।

बच्चे के नाम रखने की जिम्मेदारी बड्डे और गुनिया पर सौंपी जाती है, यह संस्कार दो माह से लेकर दो वर्ष पूरी की जाती है, इस दिन सभी लोग एक दूसरे से भावनात्मक बातें करते हैं, हँसी खुशी से रहते हैं। भोजन और पेय पदार्थ लेने के बाद अपने-अपने घर चले जाते हैं।

3. विवाह संस्कार- मारियाओं में विवाह सामान्यतः दस-पन्द्रह वर्ष से लेकर बीस-पच्चीस की अवस्था में होती है, अधिकांशतः विवाह लड़के-लड़कियों के समझदार हो जाने पर करते हैं। मारियाओं में विवाह अपनी ही जाति में होती है कुछ गोत्रों को छोड़कर विवाह हो जाता है। मारिया लोग अपनी लड़की का विवाह मामा के लड़के से ही करते हैं। यह विवाह श्रेष्ठ विवाह माना जाता है। यदि मामा का लड़का नहीं होता तब अप्रबंधित गोत्र के लड़के से शादी कर दी जाती है।

महाला- विवाह की इच्छा से सलफी, लांदा और महुआ से बने पेय के साथ सम्भावित रिश्तेदार के यहाँ पूरे परिवार के साथ मिलकर बातचीत करने खाने-पीने की रस्म को कहा जाता है, महाला सम्भावित वर पक्ष की ओर से लड़की पक्ष को दिया जाता है। यह एक तरह से शादी के पूर्व बातचीत करने का तरीका होता है जिसमें दोनों पक्ष आपस में बातचीत कर लें। इस दौरान लड़का-लड़की भी आपस में एक-दूसरे को समझ लें और शादी के बारे में अपनी राय तय कर लें, यदि लड़की महाला लाने वाले लड़के से शादी नहीं करना चाहती और अपने घर वालों को जानकारी दे देती है तो उसके घर वाले महाला लाने के लिए मना कर देते हैं, लड़की द्वारा इन्कार नहीं करने की दशा में वर पक्ष फिर से अगले वर्ष महाला लेकर आता है। यह प्रक्रिया दो-तीन बार या कभी अधिक बार भी हो सकती है। अंतिम बार महाला आने के बाद शादी का निश्चित समय तय

कर लिया जाता है, शादी में खर्च की बात भी कर जाती है। निश्चित तिथि को वर पक्ष के लोग जो पचास से सौ तक होते हैं कन्या पक्ष के यहाँ आते हैं, आने का समय सुबह दस बजे के आस-पास होता है, वे निश्चित मात्रा में लांदा और महुआ का पेय कन्या पक्ष के मण्डप पर रखते हैं, साथ ही दो सुअर, एक मुर्गी गाय या बैल कन्या पक्ष को देते हैं। कन्या के लिए साड़ी पाँच-दस रुपये और कुछ थैली चावल भी देते हैं।

कन्या पक्ष के यहाँ पूरा गाँव आमंत्रित होता है वह सबके लिए भोजन एवं पेय की व्यवस्था करता है यदि कुछ लोग शाकाहारी होते हैं तो उनके लिए दाल की भी व्यवस्था रहती है अन्यथा सभी लोग जानवर का ही माँस खाते हैं, इससे पूरा वातावरण विभिन्न नृत्यों, विभिन्न किस्म के नशे, बातचीत, भोजन शोर-शराबा और मस्ती में डूबा हुआ होता है। शादी के दिन ही शाम को लड़की की विदाई होती है, लड़की को पहुँचाने के लिए गाँव के पचास से सौ लोग बच्चे, बूढ़े सभी जाते हैं दो-तीन घण्टा चलने के बाद रात के समय किसी गाँव में ठहरते हैं लड़की को सीधे घर नहीं ले जाया जाता कहीं न कहीं अवश्य ठहराते हैं, जहाँ पर ठहरते हैं वहाँ रात भर शादी के नृत्य होते हैं और शादी में प्राप्त शल्फी, लांदा को पीते है। भोर के समय लड़की को लेकर वर पक्ष के लोग अपने गाँव की ओर चल देते हैं।

4. मृत्यु संस्कार- मारिया ये सभी आयु वर्ग के मृतक संस्कार समान रूप से किए जाते हैं सभी आयु वर्ग के शव को लकड़ी की चिता में जलाये जाते हैं कुछ विशेष परिस्थितियों में शव को जलाने की जगह दफनाया जाता है, सर्प दंश किसी बीमारी, शेर द्वारा खाये जाने वाले व्यक्ति या कम उम्र के बच्चे को दफनाया जाता है। इसके अलावा गर्भवती स्त्री व गुनिया का दाह संस्कार नहीं किया जाता शेष सभी तरह की मृत्यु में चिता पर जलाया जाता है।

किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके घर के लोग सभी रिश्तेदारों को सूचना देते हैं, गाँव का महरा अपना ढोल लेकर पहुँच जाता है, आस-पास के स्त्री-पुरुष भी पहुँच जाते हैं शव को घर के एक कमरे में जमीन के पूर्व दिशा की ओर मुँह रखकर लिटा देते हैं और आना गुंडा को सूचना दी जाती है, मृतक के आस-पास कुछ लोग शव को उठाने के लिए तैयार रहते हैं, घर के बाहर बैठा महरा लगातार ढोल बजाता रहता है, मृत्यु के

चौबीस घंटे बाद मृतक के रिश्तेदार मृतक के घर पहुंचते हैं कभी-कभी तो शव दो या तीन दिन तक घर में रखा रह जाता है इसमें यह निश्चित है कि सभी रिश्तेदार पहुँचे रिश्तेदारों व आनागुंडा के आने तक कोई तरीका नहीं है कि शव का दाह संस्कार किया जाये, मृतक व्यक्ति के रिश्तेदार अपने साथ नई या पुरानी साड़ी या कपड़े का एक टुकड़ा लेकर आते हैं उसे शव के ऊपर चढ़ाते हैं, सभी रिश्तेदारों के आने के बाद आना गुंडा द्वारा शव के दाहिने हाथ की चार अंगुलियों में (अंगूठा छोड़कर) सूत लपेटता है शव को बाँस से बनाया खाटीनुमा टाट पर लिटाकर घर से बाहर निकाला जाता है।

शमशान घाट शव ले जाते समय आगे ढोल बजाता हुआ महरा चलता है उसके बाद अर्थी फिर आना गुंडा उसके पीछे पूरा समुदाय चलता है, शव जलाने के बाद नदी-नाले में मुँह-हाथ धोते हैं फिर घर आ जाते हैं, घर आने पर पुनः हाथ-मुँह धोया जाता है तेल लगाया जाता है, मृतक परिवार के तरफ से सभी को सल्फी वितरित की जाती है। व्यक्ति के मृत्यु के समय से लेकर उसे जलाकर आने के बीच गाँव की महिलाओं द्वारा चावल-दाल की कढ़ाई की जाती है यह रिश्तेदारों के भोजन के काम आता है। उसी दिन या उसके दूसरे दिन सुबह सुअर और मुर्गियों की बलि दी जाती है, जिसका माँस भोजन के समय परोसा जाता है। दूसरे दिन सुबह आना गुंडा शमशान घाट पर परिवार के किसी सदस्य के साथ जाता है वहाँ पर मुर्गी की बलि दी जाती है और एक अण्डा फोड़ता है साथ में सल्फी की कुछ बूँदे उस स्थल पर छोड़ता है, इस कार्य से मृतक की आत्मा सन्तुष्ट होती है और वह रुष्ट नहीं होती है। कहन

त्योहार- मारिया जनजाति वर्ष भर उत्सव व त्योहार मनाते हैं, ऐसा कोई महीना नहीं होता जिसमें कोई उत्सव या त्योहार न होता हो, कभी देवी-देवता का त्योहार तो अन्न या धरती का त्योहार, वर्षा का त्योहार, नई फसल का त्योहार, इस तरह इनके त्योहार होते रहते हैं सभी त्योहारों को हँसी-खुशी से मनाते हैं, त्योहार के समय सभी घरों में नृत्य के साथ-साथ पशु-पक्षी तथा जानवरों की बलि भी दी जाती है साथ ही इनका मुख्य पेय पदार्थ सल्फी, लांदा व इसईकल (महुआ फल का पेय) का भी अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। इनके प्रमुख त्योहार निम्नलिखित हैं-

1. भीमल पंडुम- भीमल को वर्षा से संबंधित देव माना जाता है, भीमल की पूजा से ही वर्षा होती है, प्रकृति प्रसन्न होती है और धरती के सभी पेड़-पौधों में फूल खिलने शुरू होते हैं, भीमल की पूजा करते समय भीमल देव से फूलों के खिलने का अनुरोध किया जाता है, इस अनुरोध से ही फूल खिलते हैं और वसन्त का आगमन होता है। भीमल के लिए प्रत्येक गाँव में एक नियत स्थान होता है, उस स्थान पर सामान्यतः बड़े आकार के दो-तीन पत्थर आपस में मिलाकर जमीन में गाड़ देते हैं, इनके चारों ओर सूत लपेटी होती है इसके ऊपर चार खम्भों के सहारे घास-फूस अथवा खपरैल की छत बनी होती है, यही भीमल का निवास स्थान माना जाता है, यहीं पर भीमल पंडुम मनाया जाता है।

भीमल पंडुम के दिन गायता इस स्थान पर पहुँचता है, इसके बाद गाँव के सभी लोग एकत्रित होते हैं, इस स्थान की साफ-सफाई की जाती है गाँव के सभी गुनिया और बड़े गायता का सहयोग करते हैं, पूजा के समय गाँव के लोग ढोल बजाते हैं और महिलाएँ नृत्य करती रहती हैं, गायता भीमल को मुर्गा और सुअर को मारकर इनका खून बारी-बारी से भीमल के सामने रखे समतल पत्थर पर अर्पित करता है। खून अर्पित करने के बाद गायता, गुनिया और बड्डे भीमल से बातें करते हैं: भीमल को अर्पित सुअर और मुर्गों को अलग-अलग जगहों पर पत्तियों और लकड़ियों की आग में भूना जाता है गाँव के अन्य लोग भी गायता, गुनिया व बड्डे के साथ वही पर रुकते हैं और भूने गए माँस को खाते हैं इस तरह भीमल पंडुम सम्पन्न होता है।

2. महुआ पंडुम- यह त्योहार माघ-फागुन में मनाया जाता है, यह त्योहार महुआ फूलने उसे एकत्रित करने तथा खाने का त्योहार होता है यह त्योहार दो बार मनाया जाता है एक बार महुआ का फूल गिरते समय और दुबारा जब महुआ का गिरना जब बन्द हो जाता है, पंडुम के बाद ही महुआ का उपयोग शुरू किया जाता है, दूसरे त्योहार के बाद महुआ को खाया तथा बेचा जा सकता है उसके पहले नहीं। महुआ पंडुम मनाने के लिए महुआ का फूल निकलना शुरू होता है तब गाँव के लोग मिल बैठकर आपस में चर्चा करते हैं, और निर्णय लिए गए दिन को यह त्योहार मनाते हैं, नियत दिनों को गायता ऐसी जगह पर जाता है जहाँ आम महुआ के पेड़ अगल- बगल में उगे हों, इसी जगह

पर गाँव के सभी लोग एकत्रित होते हैं, गाँव के प्रत्येक घर से एक मुर्गा या सुअर जरूर लाया जाता है। गायता महुआ के जड़ के पास बैठकर एक सफेद मुर्गा व अण्डा रखकर गुनिया और सिरहा के साथ मिलकर अदृश्य शक्ति देव अथवा भूत-प्रेतों से बातचीत करते हैं, इस समझाने के कार्य को माना बुझा कहा जाता है, गायता अधिक महुआ फूलने-फलने की आकांक्षा से एक अण्डा फोड़ता है और सफेद मुर्गी के सर पर आडेम के डण्डे से मारने के बाद उसके मुँह से निकलते हुए खून को अर्पित करता है इसके बाद गाँव के लोगों द्वारा लाए गए मुर्गी और सुअर को इसी तरह मारकर उसके खून को गायता के सामने थोड़ा टपकाकर सामने झाड़ियों की तरफ फेंक देता है, वहाँ से लोग अपनी-अपनी मुर्गी या सुअर को उठा लेते हैं, पास में ही सुअरों को भूनने व चावल बनाने का काम भी शुरू होता है लोग खाने-पीने के बाद बचे हुए भोजन को अपने घर ले जाते हैं और दूसरे दिन से महुआ बीनने या एकत्रित करने का कार्य शुरू होता है, इसी तरह जब महुआ एकत्रित करने का कार्य समाप्त होता है तब किसी एक दिन आपस में चर्चा करके महुआ पंडुम मनाया जाता है, इस दिन सभी लोग इकट्ठे होते हैं गायता महुआ के पत्ते की सात दोनी बनाता है तथा महुआ को भूनता है फिर सातो दोनी में पानी भरकर उसमें एक-एक महुआ डालता है। यदि दोनी में भूना हुआ महुआ डूब जाता है तो यह माना जाता है कि इस वर्ष बारिश अच्छी होगी, इसके बाद गायता वहाँ पर अण्डा और मुर्गा देता है। मुर्गे को घास व लकड़ियों से भूनकर खाया जाता है, वहाँ से थोड़ी दूर में सभी लोग महुआ को भूनते और खाते हैं, इस दिन में नया महुआ खाने और बेचने के काम में लाया जाता है। मिर्कट का

3. बीज पंडुम- यह चैत माह में मनाया जाता है, बीज पंडुम मनाने के बाद कृषकों द्वारा बुवाई का काम शुरू किया जाता है, बीज पंडुम के दिन धरती को खुश किया जाता है उससे मान-मनौव्वल की जाती है ताकि बीज बोने के बाद फसल अच्छी हो, बीज पंडुम की समस्त क्रियाएँ गायता के निर्देशन में ही होती है। बीज पंडुम सोमवार को मनाया जाता है, बीज पंडुम के गायता अपने घर से एक छोटी टोकरी में धान का बीज उस स्थान पर ले जाता है जहाँ घर से दूर रात्रि को गायता तथा गाँव के प्रत्येक घरों से एक-एक लोग सोते हैं, सभी लोग एक जगह सोते हैं तथा गायता व कुछ लोग

दूसरी जगह पर सोते हैं, जानकारी होने के बावजूद भी गाँव के अन्य लोग अनजान बने रहते हैं, रात्रि दो बजे के आस-पास जिधर गायता सोया हुआ हाता है उधर से कुछ खट-पट की आवाज आने पर सभी लोग उठते हैं और एक आदमी पूछता है कौन है? कहाँ से आ रहे हो? उधर से आवाज आती है मैं बीज लेकर आ रहा हूँ, रास्ते में नदी है इस कारण आने में कठिनाई हो रही है, इस तरह सभी लोग आपस में मिलते हैं। गायता धरती को मना-बुझा कर मुर्गी की बलि देने में जुट जाता है। मुर्गी को पहले चावल खिलाया जाता है फिर उसे मदबड़िया के डंडे से मारकर उसके मुँह से गिरते खून को बीज और जमीन को अर्पित करता है और लाए गए धान को बोता है। धान बोने के बाद साथ में लायी गई सल्फी को पीते हैं और सुबह मारी गई मुर्गी बनाई जाती है, मुर्गी को पहले गायता खाता है और फिर सभी लोग खाते है, खाने के बाद सभी लोग गायता के घर की ओर चुपचाप चल देते हैं और रास्ते में कहीं भी नहीं रुकते। अगर बीच में सड़क है तो आवागमन रोक देते हैं इनके निकलने के बाद आवागमन शुरू होता है। गायता के घर पहुँचने पर उसके घर से बाहर रखे गए घड़ों में रखे पानी से हाथ मुँह धोते हैं कुछ देर बैठते हैं और लाँदा का सेवन करते हैं फिर अपने-अपने घर चले जाते हैं, दूसरे दिन से बीज बोने का काम शुरू हो जाता है। ईकार म्होरक

4. इकमा पंडुम- इकमा पंडुम को कुछ स्थानों में चिकना पंडुम, मुर्रमी व नवाखानी के नाम से भी जाना जाता है, इसे क्वार या सितम्बर महीने में मनाया जाता है; इसमें मुख्यतः गटका नामक अनाज जो समतल पहाड़ी में होता है उसी के उपलक्ष्य में यह त्योहार मनाया जाता है, जब गाँव के किसी व्यक्ति का गटका काटने लायक हो जाता है तब गाँज के बुजुर्गों के विचार-विमर्श के बाद यह मनाया जाता है। इस दिन गायता का उपवास होता है साथ ही कुछ लोग भी उपवास करते हैं जिस खेत में गटका तैयार रहता है उस खेत में गायता जाता है और कुछ गटका काटता है उसे घर लाता है, घर में उसे भूना जाता है, इसके बाद गायता गटका का भोजन तैयार करता है साथ ही अन्य मौसमी सब्जियों करेला, बरबटी, कोयल, बाँस की जड़, मौसमी भाजी को मिलाकर भोजन तैयार किया जाता है। गायता के साथ अन्य उपवास करने वाले लोग इसका भोजन करते हैं, इसके बाद सभी घरों में यह मनाया जाता है, दिन भर खाना-पीना

लोगों से मिलना, एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना चलता रहता है, इस त्योहार में दो-तीन दिन तक लोग खुशी में मस्त रहते हैं। लगभग अन्य कोई काम नहीं होता।न्त्र

5. दशहरा - दशहरा का त्योहार बड़े धूमधाम से मनाते हैं, मड़िया में अधिकांश गाँव में आठ-दस लोग जगदलपुर जाते हैं जहाँ से दशहरा के अवसर पर रथ निकाला जाता है, प्रत्येक गाँव के मारियाओं का दशहरा के समय कार्य बंटा हुआ होता है, कोई लकड़ी लाल है, कोई रथ बनाता है कोई भोजन करता है, सभी लोग बारी-बारी जहाँ से रथ निकलने की शुरूआत होती है रथ को खींचते हैं और दंतेश्वरी की पूजा करते हैं इस अवसर पर बस्तर के राजा द्वारा मुदिया दरबार नामक सभा का आयाजन भी किया जाता है।

6. कोड़ता पंडुम- जब धान की पहली फसल पकने लगती है तब कोड़ता का त्योहार मनाया जाता है, जिस व्यक्ति के खेत की धान पहले पकती है वह गायता को उसकी सूचना देता है, सूचना पाकर गायता और गुनिया धान के लिए मना-बुझा करते हैं, और कुछ धान गायता लाता है और घर में ही उसकी पिसाई-कुटाई होती है। तीन-चार दिन बाद गाँव के सभी वयस्क गायता के घर एकत्रित होते हैं, सभी लोग अपने-अपने घर से एक झोली चावल और मनौती पूरा होने के कारण कुछ लोग घर से, सुअर या मुर्गा लेकर भी आते हैं, गायता इस दिन के एक रात पहले उपवास करता है, अनाल मंडा में दस-बारह बजे के करीब लोग एकत्रित होते हैं, गायता नदी से पानी लाता है और आंगा देव का पुजारी आंगादेव की पूजा अर्चना करता है और गायता बारह मुर्गियों को ठोककर वहाँ रखे घड़ों पर उनके खून का टीका लगता है। इसके बाद लोग दातौन-स्नान के लिए जाते है। मुर्गा व सुअर भी वहीं पर बनता है सभी लोग सागौन के पत्ते में भोजन करते हैं, बचा हुआ भोजन आस-पास बिखेर देते हैं। अनाल मंडा से वापस लौटने के बाद कोड़ता पर्व घर-घर मनाने का आदेश दिया जाता है।

डीगह 7. नुकानारदाना पंडुम-इस त्योहार के दिन भी गायता और गुनिया माना-बुझा करते हैं और इस दिन भोजन में कुम्हड़ा, लौकी, मांदा, मोचई, टमाटर मिर्च आदि खाए जाते हैं, इसी दिन से साग-सब्जी का स्वयं भोजन में इस्तेमाल करना प्रारंभ होता है।

नगर 8. पाण्ड जाया- इस त्योहार में माता दंतेश्वरी की पूजा की जाती है दंतेश्वरी माता में जो मनौतियाँ मानी रहती है, उनकी मनौती जब पूरी हो जाती है तब माता जी को बकरा, भैंसा, मुर्गा, सुअर आदि की बलि दी जाती है, दंतेश्वरी माता के मुख्य पुजारी जिसे मारिया द्वारा जिया बाबा के नाम से सम्बोधित किया जाता है उन्हीं के द्वारा सभी अनुष्ठान किए जाते हैं।

9. माता जाया- माता जाया का त्योहार गाँव की देवी को प्रसन्न करने के लिए मनाया जाता है इससे गाँव पर सभी प्रकार के दुखों या कष्टों से रक्षा होती है, ऐसे किसी भी दुःख या तकलीफ में गायता द्वारा माता से अनुरोध की जाती है कि वह इन सबसे हमारी रक्षा करे। यह त्योहार वर्ष में एक बार मनाया जाता है।

आर्थिक जीवन- मारिया जनजातियों का आर्थिक जीवन पूर्णतः कृषि के साथ जंगली उपज पर आधारित है। इनका कृषि कार्य पूर्णतः मौसम पर आधारित एवं मौसम पर ही संचालित होता है। मारिया जनजाति मुख्य रूप से इकमा, कोड़ता, खान, कोदो, कुटकी, ज्वार, मक्का, सरसो, तिल और दलहनों की खेती करते हैं, खेती के लिए घर से लगी हुई बारी पेड़ों के बीच की खाली पथरीली को व्यवस्थित करके बड़े-बड़े ढेलों या मिट्टी को पीट-पीट कर बराबर कर लेते हैं फिर हल, बैल या भैंसा के माध्यम से जुताई करके उसमें अन्न को छिटककर, बोकर या रोपकर खेती करते हैं, खेतों के रखवाली के लिए मोट्टियम नामक एक छोपड़ी बनाकर करते हैं, प्रत्येक दिशा में खेतों के बीच-बीच में मोट्टियम बनाई जाती है, मोट्टियम के बीच में ही खलिहान होती है जहाँ उसे मीजकर या हाथ से छटकारकर अलग करते हैं। कि श्री किन कि सराचार

जनजातीय समाज का समाजशास्त्र

टिप्पणियाँ

कृषि से उत्पन्न अन्न के अजावा मारिया जनजाति के लोग अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए वनों से प्राप्त कन्द-मूल फल और साग-सब्जियों को एकत्रित और संग्रहित करते हैं, वनों में मुख्यतः महुआ, हर्रा, बहेरा, आम, इमली, आँवला और छिंद फल का संग्रह करते हैं, मून फलों को खाने के अलावा बेचते भी हैं और इससे प्राप्त

आय में अपना जीवन-यापन चलाते हैं। मारिया लोग जंगली जानवरों एवं पशु-पक्षियों का शिकार भी करते है, इनको सभी जानवरों का माँस समान रूप से प्रिय है। जब ये शिकार को निकलते है तो इनका कोई उद्देश्य नहीं हो जो जानवर इनको दिख गया उसी का शिकार कर लेते हैं, जंगली जानवरों व पशु-पक्षियो के अलावा मछलियों का भी शिकार करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ये जनजाति अपने टोटेमिक (टोटम) प्रतीक चिन्ह से सम्बन्धित जानवर के अलावा सभी का शिकार कर सकते हैं, दुर्लभ जानवरों का शिकार मुख्यतः नहीं करते हैं, हाँ लेकिन जंगली भैंसा प्राप्त होने पर ये आज भी उसे नहीं छोड़ते है क्योंकि जंगली भैंसा की सींग इनके लिए महत्वपूर्ण होती है, जंगली भैंसे की सींग का उपयोग ये नृत्य के समय करते हैं जो इनके लिए सम्मान एवं गौरव की बात होती है। वनों की निरन्तर कटाई से वनोत्पादन के संग्रह में कमी से इनके जीवन स्तर में लगातार गिरावट आ रही है मारिया जनजाति जहाँ पहले इनमें सम्पन्नता समान स्तर की थी वहीं आज इसमें असमानता दिख रही है। अपने जीवन को सुचारू एवं सुदृढ़ करने के लिए जनजाति अपने घरों से दूर विभिन्न प्रकार के मजदूरी के कार्यों में भी लगे हुए हैं।

शिक्षा- शिक्षा के प्रति अभिभावकों एवं उनके बच्चों में गहरी रुचि का स्पष्ट अभाव है, अभिभावकों

से चर्चा के समय शिक्षा के प्रति उत्साह रहता है, किन्तु बच्चों को अनुशासन के साथ स्कूल नहीं भेजते हैं, पूरे गाँव में आठ-दस प्रतिशत ही शिक्षा के प्रति उत्सुक है, वह भी उस मोहल्ले के अभिभावक जहाँ स्कूल है, प्रौढ़- शिक्षा केन्द्रों के तहत युवक-युवतियाँ भी अक्षर ज्ञान के लिए ज्यादा उत्सुक नहीं है, गाँव का स्थानीय व्यक्ति पाँचवीं-सातवीं कक्षा पास प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र को चलाता है, शासन की तरफ से दी गई लालटेन, ब्लैकबोर्ड, स्लेट, नक्से और कूदने वाली रस्सियाँ यू ही पड़ी रहती है, गाँव में स्कूल चलाने के लिए भवन न होने से स्कूलों का संचालन भी ठीक से नहीं हो पाता है, छात्रों को भोजन खिलाने के लिए एक भृत्य की व्यवस्था तो की गई है किन्तु भवन न होने में इस कार्य में काफी कठिनाई होती है, शिक्षक जब गाँव में जाकर बच्चों को खोजता है तो बच्चे मिलते ही नहीं हैं वह भी घूमकर लौट आता है।

राजनैतिक संगठन - मारिया जनजातियों का राजनैतिक संगठन अत्यन्त व्यवस्थित और सुदृढ़ होता है, गाँव के प्रमुख को पटेल कहा जाता है, जो एक अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति होता है, गाँव से सम्बंधित प्रत्येक कार्य में पटेल की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका अवश्य होती है, यह गाँव का सबसे साधन सम्पन्न व्यक्ति होता है, कोई भी बाहरी व्यक्ति या शासकीय सेवक सबसे पहले पटेल से ही मिलता है, पटेल गाँव के आपसी झगड़े, पारिवारिक कलह या अन्य छोटे-मोटे अपराधों को सुनता है और गाँव के अन्य बुजुर्गों के साथ मशविरा करके फैसला देता है। वर्तमान में पहले जैसी अधिकार सम्पन्न न होते हुए भी पटेल की परम्परागत मान्यता आज भी है।

ग्रिग्सन ने 'माड़िया गोड्स ऑफ बस्तर' तथा बेरियर एल्बिन ने 'माड़िया मर्डर एण्ड सुसाइड' नामक ग्रन्थों के माध्यम से मारिया जनजाति के जीवन, कला और संस्कृति पर जो कुछ लिखा था, उसी पर आधारित मोनोग्राफ जो प्रियंका ऑफसेट भोपाल ने तैयार किया है, प्रस्तुत लेखन का आधार है। आजादी के 65 वर्षों बाद आज अनेक परिवर्तन हुए हैं। आवागमन तथा संचार के साधनों का विकास, नगरीयता की ओर झुकाव, नए आर्थिक स्रोत, शासकीय योजनाएँ अन्य अनेक कारणों से मारिया जनजाति के जीवन में गतिशीलता का विकास हो रहा है, यद्यपि उसकी गति अभी धीमी है।

12.9 सार संक्षेप

गोंड, भील, कोरकू, भारिया और मारिया जैसे जनजातियाँ भारतीय समाज के महत्वपूर्ण हिस्से हैं। इनकी जीवनशैली, संस्कृति और पारंपरिक अर्थव्यवस्था का अध्ययन भारतीय समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्टता और आवश्यकता होती है, जिसे ध्यान में रखते हुए उनकी समृद्धि और विकास के लिए उपाय किए जा सकते हैं। इन जनजातियों के बीच शिक्षा, स्वास्थ्य, और संसाधन वितरण में सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं, ताकि इनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके।

1. गोंड जनजाति मुख्य रूप से किस राज्य में पाई जाती है?

a) मध्य प्रदेश

b) राजस्थान

c) महाराष्ट्र

d) उत्तर प्रदेश

2. भील जनजाति मुख्य रूप से किस क्षेत्र में रहती है?

a) दक्षिण भारत

b) पश्चिमी भारत

c) उत्तर भारत

d) पूर्वी भारत

3. मारिया जनजाति किस राज्य में पाई जाती है?

a) छत्तीसगढ़

b) उत्तराखंड

c) हिमाचल प्रदेश

d) उत्तर प्रदेश

4. भारिया जनजाति का मुख्य व्यवसाय क्या है?

a) शिकार

b) कृषि

c) कारीगरी

d) व्यापार

5. कोरकू जनजाति मुख्य रूप से किस राज्य में पाई जाती है?
   a) उत्तर प्रदेश
   b) मध्य प्रदेश
   c) राजस्थान
   d) गुजरात

12.10 मुख्य शब्द

- **गोंड जनजाति** - मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, और छत्तीसगढ़ में पाई जाने वाली एक प्रमुख जनजाति।
- **भील जनजाति** - भारत की पश्चिमी और मध्य भागों में स्थित जनजाति, जो विशेष रूप से राजस्थान, मध्य प्रदेश और गुजरात में पाई जाती है।
- **कोरकू जनजाति** - मध्य भारत के आदिवासी क्षेत्रों में रहने वाली जनजाति।
- **भारिया जनजाति** - छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में पाई जाने वाली जनजाति, जो कृषि पर निर्भर हैं।
- **मारिया जनजाति** - छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में स्थित एक महत्वपूर्ण जनजाति, जो मुख्य रूप से कृषि कार्य करती है।
- **जनजातीय समुदाय** - समाज का वह वर्ग जो पारंपरिक रूप से ग्रामीण और वन्य जीवन जीता है।
- **सांस्कृतिक विविधता** - विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और परंपराओं का मेल, जो भारतीय समाज की विशेषता है।
- **आर्थिक विकास** - उस प्रक्रिया को दर्शाता है जिसके द्वारा किसी समाज का उत्पादन, आय, और जीवन स्तर बढ़ता है।
- **समाजशास्त्र** - समाज के अध्ययन से संबंधित शास्त्र, जो सामाजिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं का विश्लेषण करता है।

- **स्वयं सहायता समूह** - जनजातीय समाज में महिलाओं के द्वारा स्थापित समूह, जो आर्थिक और सामाजिक विकास में योगदान करते हैं।

12.11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

a) मध्य प्रदेश

b) पश्चिमी भारत

a) छत्तीसगढ़

b) कृषि

b) मध्य प्रदेश

12.12 सन्दर्भ सूची

- कुमार, वी. (2021). भारत की जनजातियाँ: एक सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन. दिल्ली: पेपरबैग पब्लिकेशन।
- शर्मा, आर. (2019). भारतीय समाज और जनजातीय जीवन: परंपरा और विकास. मुंबई: भारतीय प्रकाशन।
- सिंह, एस. (2020). भारत में जनजातीय समुदाय: चुनौतियाँ और समाधान. पुणे: स्वर्णिम प्रकाशन।
- राव, बी. (2018). भारतीय जनजातियाँ और उनके आर्थिक संसाधन. कोलकाता: ब्रॉडमिंड पब्लिकेशन।
- चौधरी, जे. (2022). भारत में जनजातीय समाज की संस्कृति और बदलाव. अहमदाबाद: शांति प्रकाशन।

12.13 अभ्यास प्रश्न

1. गोंड जनजाति के प्रमुख समाजिक रीति-रिवाजों का वर्णन करें।
2. भील जनजाति के आर्थिक जीवन के बारे में विस्तार से बताएं।

3. कोरकू जनजाति के पारंपरिक व्यवसाय के बारे में चर्चा करें।
4. भारिया जनजाति के जीवन में कृषि का महत्व स्पष्ट करें।
5. मारिया जनजाति के समाज और संस्कृति के बारे में लिखें।
6. भारतीय जनजातियों के विकास में सरकारी योजनाओं का प्रभाव विश्लेषित करें।
7. जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति पर चर्चा करें।
8. भारत में जनजातीय समाज के समक्ष आने वाली प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण करें।
9. भारतीय जनजातियों के संरक्षण और विकास के लिए कौन-कौन सी योजनाएँ बनाई गई हैं?
10. भारतीय समाज में जनजातियों की भूमिका के बारे में चर्चा करें।
11. जनजातीय समाज में महिलाओं के अधिकारों की स्थिति पर प्रकाश डालें।
12. भारतीय जनजातियों के उत्थान में NGO की भूमिका पर चर्चा करें।
13. जनजातीय समुदायों के स्वास्थ्य मुद्दों का विश्लेषण करें।
14. भारतीय जनजातियों की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण की आवश्यकता पर चर्चा करें।
15. जनजातियों के आर्थिक विकास के लिए कृषि सुधारों का महत्व क्या है?
16. जनजातियों में शिक्षा की पहुंच में सुधार के लिए क्या कदम उठाए जा सकते हैं?
17. भारतीय जनजातियों में पारंपरिक कला और शिल्प के संरक्षण के उपायों पर चर्चा करें।
18. भारतीय जनजातियों के विकास में आधुनिक तकनीकी हस्तक्षेप का विश्लेषण करें।

19. भारत के जनजातीय क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण के उपायों पर प्रकाश डालें।

20. जनजातीय समाज में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का विश्लेषण करें।